

तन्त्र-सहाविज्ञान

[द्वितीय खंड]

(तन्त्र के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक निहित)

५८

लघु

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारो वेद, १०८ उपनिषद् पट् दशन, २० मृत्यियो
एव १८ पुण्यग्रो के प्रसिद्ध भाष्यकार

संस्कृति संस्थान
वरेली [उ०प्र]



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

प्रकाशक

डा० चमनलाल गोतम
सस्कृति सस्थान, खवाजा कुतुब,
वरेली ।



लेखकः

प० श्रीराम शर्मा आचार्य
डा० चमन लाल गोतम



सर्वधिकार सुरक्षित



प्रथम संस्करण,

१६७०



मुद्रा

शेखर प्रिण्टलैण्ड,
गुदावन दर्वाजा, मधुरा ।



पृष्ठ

सात रुपाए पचास पंसे (७५०)

प्राक्तथन

'तन्त्र विज्ञान' के प्रथम गण्ड में भारतीय नाम-शब्दों की प्राची-नवा और उसकी उत्तरादेयता का परिचय दिया जा चुका है। उत्तरों बनलाया गया है कि बनेसान समय में 'तन्त्र' के नाम पर पापाय जनता में जिस जड़ टोना का प्रचार हो रहा है वह याम्नायिक तन्त्र नहीं है। और न वाजाए पुस्तकों से नन्त्र के नाम पर जिन प्रत्येक लिखियों, घन वैभव की प्राप्ति, स्त्री वशीकरण, शनु नाश प्रादि उहाँने वानी क्रियाओं का वर्णन किया गया है ते ही तन्त्र शिखों के मद्दतारूपं यथा माने जा सकते हैं। वस्तुत तायिक मापना का उद्देश्य यह है कि मायारिक जीवन ध्यतीत करते हुए भी—मापान्य लोगों में पार्श्व नाने वानी कुछ त्रुटियों के रहते हुए भी—मनुष्य ग्राधणात्मिक माप पर यथागतिः चलने की चेष्टा कर सके।

राजयोग, ज्ञान योग नविनयोग प्रादि सामनों में प्रारम्भ में ही यम, नियम, सत्य, अहिंसा, शीव न्रत्यार्थं आदि के इन से उच्च नियम बतला दिये गये हैं कि मापान्य कोटि का मायारिक मनुष्य प्रसन्न को उसके अयोग्य मान लेता है। वह सोचता है कि ये तो सामु महात्माओं के पालन करने योग्य बातें हैं। हमारे जैसे गृहस्थी के जनान में फैै, और चारों तरफ के दूषित बानवरण से प्रभावित व्यक्ति इतरह के सयम-नियम, त्याग तपस्या के विप्रि विधानों का कौमे पालन कर सकते हैं? इस प्रकार की परिदिव्यतियों वाले व्यक्तियों के हिनार्थ कुछ आचारों ने तन्त्र शास्त्र का उद्भव करके ऐसी विधियों और कायक्रम की योजना की कि जिसका साधन वे वर्तमान त्रुटिपूर्ण ग्रन्थों में भी कर सके। और उन्हीं के सहारे उन्नति करके ग्रन्थात्म मार्ग के उच्च स्तरों तक पहुँच जायें।

भारतीय शास्त्रों के अनुसार यह जगत् त्रिगुणात्मक है। इसमें केवल सतोगुण—उच्च आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की ही आशा रखना ठीक नहीं। सतोगुण के साथ सभी में रजोगुण और तमोगुण भी रहता है। आध्यात्मिक प्रवृत्ति वालों में सतोगुण की प्रधानता रहती है और भौतिक प्रवृत्ति वालों में रजोगुण तथा तमोगुण की अधिकता पायी जाती है। हम सासार में से रजोगुण या तमोगुण की प्रधानता वाले व्यक्तियों को पृथक् तो कर नहीं सकते, इस लिये जहाँ तक सभव हो उनके लिये इस प्रकार मार्ग-दशन करना चाहिये जिससे उनके दोष सीमित रूप में ही रहें और वे क्रमशः उनको कम करते हुये उच्च स्तरकी ओर बढ़ते रहें। तत्र में जो अनेक स्थानों पर मदिरा, मौस आदि की चर्चा आती है, उमें यही योजना रखी गई है कि जिनमें उस प्रकार की अवाक्षतीय प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं वे अपनी भावनाओं से परिवर्त्तन करके अपने दोषों को कम करते जाएं और तत्र शास्त्र के निर्देशानुसार अन्य हानि रहित वस्तुओं का व्यवहार करने लगें।

इस दूसरे खण्ड में बतलाया गया है कि अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण तन्त्र-साधना किसी समय भारत ही नहीं भारत से दूर विदेशों में भी फैल गई थी। तिब्बत, चीन लका, बर्मा, कम्बोडिया, मिश्र, यूनान रोम आदि तक में कुछ परिवर्तित रूप में शक्ति (देवी) उपासना का प्रचार हो गया था और उसके साथ तान्त्रिक क्रियाएँ भी की जाती थीं।

शक्ति साधना केवल कल्पना या अपनी व्यवितरण भावनाओं के आधार पर नहीं है, बरन वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार है, इसका विस्तृत विवेचन भी आगामी पृथ्वी में किया गया है। अभी तक विज्ञान शक्ति का प्रयोग स्थूल यन्त्रों द्वारा ही कर रहा है पर वह दिन दूर नहीं जब मानसिक शक्ति द्वारा भी अनेक प्रत्यक्ष कार्य होते दिखाई पड़ेंगे। कारण यही है कि शक्ति वास्तव में एक सूक्ष्म तत्त्व है और उसका सचालन

तथा प्रयोग जितनी अच्छी तरह सूक्ष्म प्रक्रियाओं से हो सकता है, वैगा स्थूल यत्रों से नहीं हो सकता ।

अन्तिम भाग में तीनों महाशक्तियों और दशों दुर्गांओं की साधना तथा पूजन विधि दी गई है । यह वास्तव में वहूं जटिल और रहस्य पूर्ण है और इस पुरतक से पाठकों को उसकी रूप रेखा की ही जानकारी हो सकेगी । सामान्य पूजा पाठ और उपासना तो इसके आधार पर भी की जा सकती है, पर यदि किमी विशेष प्रयोजन से कोई तात्रिक-अनुष्ठान, पुरश्चरण प्रादि करना हो तो उसके लिये उसी कृत्य से सवधित विशेष ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये और उचित तो यही है कि किसी जानकार गुरु से मार्ग-दर्शन प्राप्त करके इस मार्ग में पैर रखा जाय । तन्त्र की कोई क्रिया जल्दीवाजी अथवा हल्केपन से करने नहीं होती, वैसा करने से लाभ के स्थान में हानि की सम्भावना अधिक रहती है । इसलिये तन्त्र सावन मास में वैय और सावनानी से ही अग्रसर होना आवश्यक है । यदि सावक का प्रयत्न और भावना मत्य होगी तो महाशक्ति स्वयं उसे उन्नित मार्ग की ओर अग्रसर करती रहेगी ।

—सम्पादक

विषय-सूची

१ भारत में शक्ति उपासना का इतिहास	२
ऐतिहासिक साक्षी, वैदिककाल, पौराणिककाल, बौद्धकाल, नाथ व सिद्धि सम्प्रदाय पर शक्ति-उपासना का प्रभाव, जैन धर्म पर शक्ति- उपासना का प्रभाव ।	
२ विश्व में शक्ति उपासना का प्रसार	२१
वैज्ञानिकों - मिथ्र - चीन - ग्रीस (यूनान) - रोम - नेपाल - अन्य देशों में	
३ शक्ति - विज्ञान	३४
४ शक्ति और आधुनिक विज्ञान	४०
वैज्ञानिक समर्थन - भौतिक ऊर्जाओं से अभिन्नता - मूल ऊर्जा और भौतिक पदार्थ - मूल ऊर्जा और विभिन्न पदार्थ - गतिशीलता के साथ अविनाशिता भी - मूल ऊर्जा और आद्या शक्ति में अभिन्नता - विज्ञान और साधना में अन्तर ।	
५ शक्ति का दार्शनिक रूप	४५
भारतीय दर्शन की आधार शिला - शिव और शक्ति की एक- रूपता - अर्द्धनारीश्वर के रूप में शिव और शक्ति का अभेद । शिव और शक्ति की एकता के सूत्र - शक्ति उपासना का दार्शनिक आधार ।	
६ शक्ति का तात्त्विक विवेचन	६२
शास्त्रों में शक्ति की महिमा - शक्ति के विभिन्न प्रकार - अर्थ ध्यारुद्या - वैज्ञानिक अर्थ - शक्ति का पर्याय प्रकृति - प्रकृति की साख्य सम्मत ध्यारुद्या - प्रकृति के विभिन्न रूप - परा प्रकृति - अपरा प्रकृति - परा और अपरा के विभिन्न पर्याय प्रकृति और माया - शक्ति तत्त्व	
७ शक्ति का स्वरूप	८४
८ शक्ति सत्य है	६२

ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या का सिद्धान्त - जगत् की सत्यता के सिद्धान्त के समर्थक - तन्त्र का अभिप्राय ।

६ शक्ति - उपासना का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण	१०१
इच्छा - शक्ति का विकास - भयकर रूप का अभिप्राय - कुप्रवृत्तियों के त्याग की भावना - उन्नयनकारी रूप का उद्देश्य - नवनिर्माण की प्रेरणा - परिवर्तन की क्षमता - दिव्यशक्तियों का सगठन - अनासवत् भावना - पारमार्थिक भावना - प्राणीमात्र में प्रेम का व्रसार - प्रेरणाओं का स्रोत - शक्ति उपासना का रहस्य।	
१०. नारी रूप में शक्ति उपासना क्यों ?	११६
११ कुमारी पूजन का उद्देश्य	१३०
ग्राधार और उद्देश्य - शक्ति रूपिणी - कुमारी लक्षण - महात्म्य - कुमारी पूजन विधि -	
१२ विभिन्न शक्तियों और उनके वाहन	१४८
व्राह्मी - माहेश्वरी - कोमारी - वैष्णवी - वाराही - नारसिंही ऐन्द्री ।	
१३ आचार्य शक्ति और शाक्तमत	१६६
१४ शक्ति और वेद	१७३
१५ शक्ति और उपनिषद्	१८५
१६. शक्ति और पुराण	१९७
देवी भागवत् पुराण - मार्कण्डेय पुराण अग्नि पुराण - कालिकापुराण विष्णुधर्मोत्तर पुराण - ब्रह्मवैवर्तं पुराण - कूमंपुराण - शिवपुराण ।	
१७ शक्ति और योगवासिष्ठ	२०७
१८ शक्ति और वेदान्त दर्शन	२१७
१९ शक्ति और साख्य दर्शन	२२२
२० शक्ति और आरण्यक	२२८
२१ गीता में शक्ति तत्त्व शक्ति विकास के दो साधन यज्ञ और योग - योग - माया प्रकृति - शक्ति ।	२३०

२२ दुर्गासिंहशती और गीता मे अनुकूलता	२४८
२३ दुर्गा उपासना का बोह्दिक अध्ययन	२६१
परिभाषा - प्राचीनता - घवतरण का उद्देश्य - विभिन्न नाम - महिमा - स्वरूप - सप्तशती - कथा - कथा का आधिभौतिक अर्थ - कथा का आधिदैविक अर्थ - कथा का आध्यात्मिक अर्थ - देवी-चरित्र की बोह्दिक व्याख्या - भ्रान्तियों का निराकरण - शक्ति की प्रतिमा - आठ भुजाए आठ शक्तियोंकी प्रतीक - स्वास्थ्य - विद्या - धन - व्यवस्था - सगठन - यश - शौय - सत्य - ग्रविकार ।	
२४ दुर्गा पूजन विधि	२८६
मन्त्र - पद्धति - न्यास - बहिर्मातृका न्यास - सृष्टि न्यास - स्थिति न्यास - सहार न्यास शक्तिकला न्यास - करन्यास - हृदयादि न्यास - द्वितीय न्यास - तृतीय न्यास - चतुर्थ न्यास - अक्षर न्यास - देवी - कवच - देवी सूक्त ।	
२५ त्रिशक्ति - रहस्य	३१६
स्पष्टीकरण - योगिक रूप - महासरस्वती - दश इलोक - महासरस्वती पूजन विधि - महालक्ष्मी - महालक्ष्मी पूजन विधि - पोडशोपचार पूजन - पञ्च बीज न्यास , करान्यास - लक्ष्मी कवच - महाकाली - काली पूजन विधि - ऋष्ट्यादि न्यास - करन्यास - पद्मज्ञ न्यास - अन्तर्मातृका न्यास - बहिर्मातृका न्यास - सृष्टि मातृकान्यास - स्थितिमातृका न्यास - सहारमातृका न्यास - कलामातृका न्यास - श्रीकण्ठादिमातृका न्यास - वर्ण न्यास - षोढा न्यास , तत्व न्यास बीज न्यास , विद्या न्यास लघुषोढा न्यास - पीठ न्यास पूजा मत्र - जप, ध्यान, काली कवच ।	
२६ दस महाविद्याएँ	६६४
(१) काली-४०५ (२) तारा-४१६ (६) पोडशी - ४४१ (४) भुवनेश्वरी ४६५ (५) छिन्नमस्ता-४८४ (३) भैरवी ४६७ (७) धूमावती ५०० (८) बगलामुखी ५०३ (६) मातगी ५०८ (१०) कमला ५१५	

भारत में शक्ति-उपासना का इतिहास

ऐतिहासिक साक्षी—

इतिहासदेत्ताओं ने अपनी खोजों के परिणामस्वरूप यह घोषणा की है कि भारत में शक्ति-उपासना प्राचीनकाल से चली आ रही है। मोहनजोदडो में जो खुदाई हुई है, उसमें मकानों के मात-सात तह निकले हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि वहाँ पर क्रमशः एक एक करके सात नगर वसे और नष्ट हो गए। ऐतिहासिकों ने, जो इन नगरों के थमने के समय का अनुमान लगाया है, उसमें सबसे नीचे के नगर को ईसा से पूर्व ४००० वर्ष बताया गया है। इस खुदाई में अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं जिनमें से लिंग, शक्ति, स्वास्तिक, नन्दी के नाम उल्लेखनीय हैं। इससे स्पष्ट है कि उस समय भी भारतवर्ष में शक्ति उपासना की मान्यता थी। वैदिक काल से लेकर आज तक इस उपासना का भारतवर्ष में एक विशिष्ट स्थान रहा है। इसका हम क्रमशः अध्ययन करेंगे।

वैदिक काल—

भारतवर्ष में सदा से स्त्रियों का समुचित मान रहा है। उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक पवित्र माना जाता रहा है स्त्रियों को बहुधा 'देवी' के पवित्र नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है। नाम के पीछे

उनकी जन्मजात उपाधि 'देवी' प्रायं जुड़ी रहती है। इसलिए धार्मिक, आध्यात्मिक और ईश्वर-प्राप्ति सम्बन्धी कार्यों में नारी का सर्वत्र स्वागत किया गया है और उसे उनकी महानना के अनुकूल प्रतिष्ठा दी गई है। वेदों पर दृष्टिपात करने में स्वष्टि हो जाता है कि वेशो मन्त्रहृष्टा जिस प्रकार अनेक ऋषि हैं, वैसे ही अनेक चूषिकाएँ भी हैं। ईश्वरीय ज्ञान वेद महान् आत्मा वाले व्यक्तियों पर प्रकट हुआ है और उन्होंने उन मन्त्रों को प्रकट किया। इस प्रकार जिन पर वेद प्रकट हुए, उन मन्त्र-हृष्टाओं को 'ऋषि' कहते हैं। ऋषि केवल पुरुष ही नहीं हुए हैं, वरन् अनेक नारियाँ भी हुई हैं। ईश्वर ने नारियों के अन्त करण में भी उसी प्रकार वेद-ज्ञान प्रकाशित किया जैसे कि पुरुषों के अन्त करण में, व्योक्ति प्रभु के लिए दोनों ही सन्तान समान हैं। महान् दयालु, न्यायकारी और निष्पक्ष प्रभु भला अपनी ही सन्तान में नर नारी का पक्षपात करके अनुचित भेद-भाव के सकते हैं ?

ऋग्वेद १०.७५ के सम्पूर्ण मन्त्रों की ऋषिका 'सूर्या सावित्री' है। ऋषि का अथ निरुक्ति में इस प्रकार किया है—'ऋषिदर्शनात् स्तोमान् ददर्शति । ऋषियो मन्त्र दृष्टार ।' अर्थात् मन्त्रों का दृष्टा उनके रहस्यों को समझकर प्रचार करने वाला ऋषि होता है।

ऋग्वेद की ऋषिकाओं की सूची ब्रह्म देवता के २४ वें श्रध्याय में इस प्रकार है—

घोपा गावा विश्ववारा, अपालोपनिषद्नित् ।

ब्रह्म जाया जहुर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादिति ॥

इन्द्राणी चेन्द्र माता चा सरमा रोमशोर्वशी ।

लोपामुद्रा च नद्यद्वच यमी नारी च शाश्वती ॥

श्रीलक्ष्मी सार्पराज्ञी वाकश्रद्धा मेघा च दक्षिणा ।

रात्रि सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरित, ॥

अथर्वा “घोपा, गोधा, विश्वसारा, अपाला, उपनिषद्, जुहू, अदिति, इद्राणी, परमा, रोमशा, उवशी, लोपामुद्रा, यमी, शाश्वती, सूर्या, सावित्री आदि ब्रह्मगादिनो हैं ।”

ऋग्वेद के १०-१३६, १०-३६, १०-४०, ८-६१, १०-६५, १०-१०७, १०-१०६, १०-१५४, १०-१५६, १०-१८६, ५-२८, ८-६१ आदि सूक्तों की मे ब्रह्मष्टा यही ऋषिकाएँ हैं ।

ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनमे स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह यज्ञ करती और कराती थीं । वे यज्ञ-विद्या और ब्रह्म-विद्या मे पारगत थीं । कई नारियों तो इस सम्बन्ध मे अपने पिता तथा पति का मार्ग-दर्शन करती थीं ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण मे सोम द्वारा ‘सीता-सावित्री’ ऋषिका को तीन वेद देने का विस्तारपूर्वक वरण आता है—

‘त त्रयौ वेदा अन्य सृजन्त प्रथह सीता सावित्री सोम राजान चक्र मे तस्या उहत्रीन वेदान प्रददौ ।

—तैत्तिरीय २।३।१०

इस मन्त्र मे बताया गया है कि किस प्रकार सोम ने सीता-सावित्री को तीन वेद दिये ।

मनु की पुत्री ‘इडा’ का वर्णन करते हुए तैत्तिरीय १।१।४ मे उसे ‘यज्ञानकाशिनी’ बताया है । ‘यज्ञानकाशिनी’ का अर्थ सायणाचाय ने ‘यज्ञ नत्व प्रकाशन ममर्थ’ मे किया है । इडा ने अपने पिता को यज्ञ सम्बन्धी सलाह देते हुए कहा—

साऽन्नवीदिडा मनुम् । तथावाऽँ तवाग्नि माधास्यामि ।
यथा प्रमथा पशुभिमिथुनजनिष्यसे । प्रव्यस्त्विलोकेस्थास्यासि ।
अमि सुवर्गं लोकं जेष्यसीति ।

—तैत्तिरीय ब्रा० १।४

इहा ने मनु मे कहा—“तुम्हारी अग्नि का ऐसा अवधान करूँगी जिससे तुम्हे पशु, भोग, प्रतिष्ठा और स्वग प्राप्त हो ।”

इससे स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में नारी को उच्च सम्मान प्राप्त था और उसके सम्मान की समुचित व्यवस्था थी, बल्कि नर से नारी को अधिक प्रतिष्ठित माना जाता था। आर्यों का समाज पुरुष-प्रधान था, फिर भी उनके यहाँ नारी को उच्च दृष्टि से देखा जाता था। यह सामाजिक सम्मान ही देवी-उपासना को आघारशिता बना। वैदिक देवताओं के साथ उनकी श्रद्धाङ्गनियों के नाम भी आते हैं। पतिनयों के नामों को पतियों से पहिले सम्बोधित करने की यहाँ प्रथा थी। अत जहाँ देवताओं की उपासना होनी थी, वहाँ देवियों को भी श्रद्धास्पद माना जाने लगा। वेद का देवी-सूक्त इसका प्रमाण है। जब इस सूक्त की रचना हुई होगी, तब देवताओं की अपेक्षा देवी की उपासना अधिक प्रचलित हो चुकी होगी, तभी वाक् अपने आपको ब्रह्मवादिनी और परब्रह्मातिमका कहती है और यारह रुद्र, आठ वसु, घाता आदि द्वादश आदित्य, विश्वेदेवा, मित्रावशण, इन्द्राभिन, अश्विदय आदि को अपना रूप बताती है (ऋग्वेद १०।१२५।१)। वह विश्व की अधीश्वरी, आराधकों को ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाली और यज्ञ-योग्य देवनाशों में प्रमुख होने की घोषणा करती हैं (अथर्वा ४।३०।२)। वह सावकों को ईश्वर, सृष्टा और ऋषि बनाने की क्षमता रखती है (३)।

वेद में अदिति को देवमाता और विश्वमाता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दिति का भी यदा-कदा वर्णन है। उपस्, सरस्वती, द्योस, रात्रि, वाणी इला, इडा, राका, सिनोवानी, बृहदिवा, सररायू, सूर्या, इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, रुद्राणी अश्विनी आदि देवियों के नाम आते हैं। इससे विदित होता है कि वैदिक काल में देवी-उपासना प्रचलित थी।

यहाँ इस विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है, कि आर्य इम देश के मूल निवासी थे अथवा वह बाहर से आए और द्रविणों आदि पर विजय प्राप्त करके यहाँ के शासन बन गये। हमें तो केवल यह

देखना है कि यहाँ निवास करने वाली जातियों में शक्ति-उपासना का क्या स्थान था ?

इतिहास का परिशीलन करने पर प्रतीत होता है कि आयों और द्रविड़ों के धर्म मस्कारो, भाव, विचारो और जीवन के विषय में उनके दृष्टिकोण में समानता हृषिगोचर होती है। द्रविड़ शिमला हिल्स से लेकर काठियावाड़ तक फैले हुए ये और उनमें शिव-शक्ति की पूजा एक प्रमुख उत्तरायण के रूप में प्रचलित थी। द्रविड़ सम्पत्ता के जो अवशेष मिले हैं, उनमें कहीं शिव योग मुद्रा में बैठे हैं, तो कहीं देवी की नाभि से रुमल का फून उग रहा है और कहीं लिंग और योनि दिखाई दे रहे हैं। शिव द्रविड़ों के उपास्य देव थे, इसका प्रमाण इस तथ्य से भी मिलता है कि शिव का तमिल नाम 'सिवन' है, जिसका अर्थ लाल होता है। यह आयं नाम 'नील-नोहिन' से मिलता है। सस्कृत का शम्भु तमिल में 'सेम्बु' बना, जिसका अर्थ ताम्रा या लाल धातु होता है। द्रविणों में ताम्र वर्ण के प्रनामी देवता शिव ही थे। आयों में इसकी 'रुद्र' से समानता की जा सकती है।

जहाँ शिव हैं, वहाँ शक्ति का होना आवश्यक है, क्योंकि शक्ति के बिना तो शिव, शब बन जाते हैं। ऐतिहासिकों का मत है कि सम्भवत सनी के देह-त्याग की कथा इपी काल की है जब सती के शरीर के दुकड़े जगह-जगह गिरते हैं और वही शक्ति-पीठों की स्थापना हो जाती है।

पौराणिक काल —

पौराणिक युग शक्ति-उपासना का योवन काल कहा जाता है क्योंकि पुराणा-रचयिता और इनके व्यायर प्रचार से शक्ति-उपासना को इतना बल मिला कि वह घर-घर की उपास्य बन गई। शिव और शक्ति का युगल प्रसिद्ध है। दोनों में कोई भेद नहीं है। दोनों एक हैं। जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहिका-शक्ति, पृथ्वी और उसकी गन्ध तथा

क्षीर व उसकी घबलता में कोई भेद नहीं होता, उसी तरह शक्ति और शक्तिमान में अभेद सिद्ध होता है। पुराणों में शिव, बायु, आदि शिव का विस्तृत चित्र प्रस्तुत करते हैं। शिव-चरित्र के साथ तो पावती का घनिष्ठ सम्बन्ध है। देवी भागवत माकरण्डेय और कालिका पुराण में देवी का माहात्म्य वर्णित है। ब्रह्मवैवर्त में भी राघा के रूप में अच्छा निरूपण किया गया है।

पौराणिक शक्ति-उपासना के बीज हम वेद में भी देखने हैं, जहाँ वागाभृणी सूक्त (ऋग्वेद १०।१२५) में शक्ति-तत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। पुराण निश्चय रूप से वैदिक सिद्धान्तों का विस्तार मात्र है। उनकी रचनाका उद्देश्य ही वेदार्थ का उपन्र हण करना था। वैदिक युग से पुराण-युग तक शक्ति-उपासना को पहुँचाने के लिए उपनिषदों का भी योग प्राप्त हुआ। केनोपनिषद् में उमा को वैदिक प्रधान देवता इन्द्र को ब्रह्म का उपदेश देने का श्रेय दिया गया और देवी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, सौभाग्यलक्ष्मी, त्रिनुरा, सीता, राघा, भावना, वह-वृचोपनिषद् में स्वतन्त्र रूप से मातृ उपासना का विवेचन करके इम भावना को बल दिया गया। इसे पौराणिक शक्ति-उपासना की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है, जहाँ देवी को सबस्व माना गया है। उदाहरण के लिए सीतोपनिषद् में सीता के सम्बन्ध में कहा गया है कि “सीता ही विश्व का कल्याण करने वाली है। वे ही सब प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करती हैं। वे सब देवतास्वरूपा, सब लोकमयी, सर्व आश्रयभूता, सर्व कीर्तिसम्पन्न, सर्व धर्मसम्पन्न, सभी पदार्थों और जीवों की शात्मा, सर्व देवगन्वर्ण, मनुष्य आदि प्राणियों का स्वरूपभूता है। वे सभी प्राणियों की देहरूपा और विश्वरूपा हैं।”

जन-मानस में जब देवी ने इम भावना का रूप लिया, तब इसकी उपासना व्यापक रूप से की जाने लगी। देवी-उपासना का श्रविकाशत इसके भय निवारणी व शत्रु-विनाशिनी गुणों से हुआ है।

वैदिक युग में जो स्थान इन्द्र को प्राप्त था, पौराणिक युग में वही स्थान दुर्गा को मिला है । इन्द्र ने वृश्चामुर आदि श्रसुरों को मारकर जो ख्याति पाई थी, उसमें अधिक श्रेय दुर्गा को महिपासुर, चरण-मुण्ड, शुभ्म-निशुभ्म, रक्तबीज आदि देवत्यों के बत्र से मिला था । यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि दुर्गा का उद्भव भी देवताओं की सगठन-शक्ति का परिणाम था । जिस शक्ति में समस्त देवताओं का तेज सम्मिलित हो, उसकी कल्पना करना भी सम्भव नहीं है । इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि दुर्गा की उपासना में सभी देवताओं की उपासना आ जाती है । तभी माकरण्डेय पुराण के मृत्युशती प्रकरण में देवताओं से बार-बार देवी की रत्नति कराई गई है और देवी के महयोग से ही देवताओं की विजय दिखाई गई है । यहाँ देवी को देवताओं की अपेक्षा अधिक सम्मानित पद दिया गया है । प्रत उसकी उपासना का विकास स्वाभाविक ही था ।

यदि वैदिक काल को इस उपासना का आरम्भ माना जाए, तो पौराणिक युग में इसका योवन माना जा सकता है ।

बौद्ध काल—

बौद्ध धर्म पर शाक्त प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । इनके साहित्य में शाक्तों से प्रभावित देवियों का वर्णन आता है । साधन माला को उदाहरणात्मक प्रस्तुत किया जा सकता है । सेक्षोददेवशटीका में वाराही, नारायणी, ब्राह्मी, रौद्री, लक्ष्मी, ईश्वरी, परमेश्वरी, का नाम आता है । वज्रयान-साहित्य से प्रतीत होता है कि इन देवियों की उपासना मन्त्रों और मूर्ति सहित प्रचलित हो गई थी । ह्येनसांग ने लिखा है कि नालन्दा में तारा और हारीति की उपासना होती थी । वागीश्वरी, वसुधारा आदि देवियों के भी वर्ण चित्र उपलब्ध होते हैं । विक्रमशिंचा विश्वविद्यालय में भी देवी उपासना प्रचलित थी ।

बौद्ध धर्म में शाक्त-तत्त्वों के प्रवेश का श्रेय 'गुह्य समाज तन्त्र'

ग्रन्थ की है, जिसमें पांच ध्यानी बुद्धों की उपासना का निर्देश दिया गया है। इन ध्यानी बुद्धों की अलग-अलग शक्तियों का वर्णन आता है।

बौद्ध मत से—

'प्रज्ञापारभिता' की देवी के रूप में उपासना होती है, जिसके सम्बन्ध में मान्यता है कि वह ज्ञान और बुद्धि को प्रदान करने वाली है। वह भी आद्याशक्ति ही है। बौद्धों में 'तारा' की उपासना भी शक्ति की उपासना ही है। हिन्दू और बौद्ध-तत्त्वों की शक्ति-उपासना में साम्य है, केवल शब्दों का अन्तर है। हिन्दू धर्म में जिसे शक्ति के नाम से सम्बोधित किया है, उसे बौद्ध धर्म में 'शून्य' की सज्जा दी गई है। उनकी मान्यता है कि यह शून्य ही विज्ञान और सुख-शान्ति का प्रदाता है।

यही सृष्टि का वारण है और इसी में सब कुछ लय हो जाता है। ब्राह्मणों और बौद्धों के दर्शनशास्त्र व भाचारशास्त्र में भी साम्य हृष्टिगोचर होता है। ब्राह्मणों की 'वाराही' और 'दण्डिनी' के साथ 'वज्र-वाराही' मिलती-जुलती है। साधना-पद्धति भी एक जैसी ही है। ब्राह्मण और बौद्ध प्रणव भोकार-साधना को 'तार' कहते हैं। इप देवता की पत्नी का नाम 'तारा' है। बौद्धों की इस तारा देवी के सम्बन्ध में काफी सस्कृत साहित्य लिखा गया है। तारा के सम्बन्ध में ३३ सस्कृत ग्रथ उपलब्ध बताए जाते हैं, जिनमें तारा-उपासना-पद्धति के प्रत्येक अङ्ग पर विस्तृत विवेचन है। यह 'तारादेवी' महावान सम्प्रदाय की है। हीनयान सम्प्रदाय की 'मणिमेखला' देवी है। श्रीलक्ष्मी और श्याम में इसकी उपासना होती है। वहाँ इसे समुद्र की देवी के रूप में मानते हैं, जो तूफानों से रक्षा करने वाली है। हिन्दू धर्म में जैसे शिव-शक्ति का जोड़ा है, वैसे ही बौद्ध धर्म में तार तारा का जोड़ा है, उनके गुण एक जैसे ही हैं।

यह साधना बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध थी परन्तु ऐसा लगता है कि बौद्ध साधक छठोर नियमों से तग आ चुके थे और वह किसी सरल

मार्ग की खोज में थे जिसमें भौतिक मुखों को तिलाजलि न दी जाती हो और ससार के सभी कार्य करते हुए साधना का विकास किया जाए। 'गुह्य समाज नव' ने इसी सिद्धान्त का अश्वापन दिया कि भौतिक आलम्बन के साथ ही दुद्रव्य की प्राप्ति की जा सकती है। इससे सध में अन्य अनेतिक दोष भी उन्पन्न हो गए, जिससे साधना में विघ्न पड़ना स्वाभाविक था। इसलिए उनका दिनो-दिन वर्तन होता गया।

नाथ व सिद्ध सम्प्रदाय पर शक्ति-उपासना का प्रभाव—

नाथों का प्रेरणा स्रोत वज्रयान सम्प्रदाय को माना जाता है। बोद्धों में ८४ सिद्धों के नाम आते हैं। उनमें शारभ के ६ नाम नाथों के हैं। कोई समय था जब नाथ-सम्प्रदाय मारे उत्तरी भारत पर छाया हुआ था। ऐसा लगता है कि इसके व्यापक प्रचार ने वज्रयान को प्रभावहीन कर दिया और यही इसके लोप का कारण बना।

बुद्ध पुराण के 'अनुम'र शिव ने ही मत्स्येन्द्र का रूप धारण किया था। मत्स्येन्द्र का कौल मन में विशेष मम्बन्ध लगता है। इसे नाथ-सम्प्रदाय का सर्वप्रथम आचार्य माना जाता है। यह गोरखनाथ के गुरु थे। जन-श्रूति है कि शिव युत्र स्वामी कातिकेय ने 'कुलागम शास्त्र' को समुद्र में वहा दिया था। इसके उद्दार के उद्देश्य से शिव ने मत्यरूप प्रहण किया और जिस मत्स्य ने उस शास्त्र का भक्षण किया था, उसे मारकर 'कुलागम शास्त्र' का उद्धार किया। इसीलिए उस आगम का नाम पड़ा—'मत्स्यधन'।

ऐसी भी मान्यता है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने 'कौल ज्ञान-निर्णाय' ग्रन्थ की रचना की थी। वहाँ भैरव के मुख में यह शब्द कहलाए गए हैं कि कि "वे ही वेता, द्वापर और कलियुग में क्रम में महाकौल, सिद्धकौल मत्स्योदर के रूप में अवतार धारण करते हैं।"

'सिद्ध सिद्धात पद्धति' में पांच शिव और उनकी पांच शक्तियों का नाम आता है—अपर-शिव, परम-शिव, शून्य शिव, निरञ्जन-शिव

ओर परमात्मा-शिव की क्रमशः शक्तियाँ हैं—विजा-शक्ति, परा-शक्ति, अपरा-शक्ति, सूक्ष्मा-शक्ति और कुण्डलिनी-शक्ति। शास्त्रज्ञारों ने इसका सम्बन्ध सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा से स्थापित किया है।

'गोरक्ष सिद्धात् सग्रह पूरणाथ' के अनुयार सृष्टि-रचना से पहले प्रनयादस्था में शिव को शक्ति से परे की मान्यता दी गई है। जब शिव में सृष्टि-रचना की इच्छा जाग्रत होती है, तो वह अपने को शक्ति से युक्त करते हैं, तभी यह कार्य सम्भव हो पाता है। शिव सहिता की मान्यता है कि माया ने अपने प्रावरण से ब्रह्म को ढक रखा है और वही अपनी विक्षेप-शक्ति के माध्यम से ब्रह्म को विश्व-रूप में लाती है। यही माया जब तप से सयुक्त होती है, तो वह दुर्गा का रूप धारण करती है। सतोगुण से मिलने पर वही माया लक्ष्मी बन जाती है। रजोगुण से आलिंगन होने पर सरस्वती-रूप में अवतरित होती है।

नाथ-पथ में देवी को कुण्डलिनी-शक्ति के रूप में मान्यता दी गई है और उसी की विशेष रूप से उपासना होती है।

इवीं शती का मध्य ही नाथ सम्प्रदाय का आरम्भ माना जाता है। इनका अन्त १२वीं शती में हुआ। वैसे तो आज भी नाथ-सम्प्रदाय, कापालिक, औघड, कानफाटे और योगाचारी उपायकों के रूप में तथा सुरत शब्द योगियों, दाढ़ू-पत्थों एवं कबीर-पत्थों के रूप में सारे भारत में मिलता है।

जैनधर्म पर शक्ति-उपासना का प्रभाव—

बौद्ध-धर्म की तरह जैन-धर्म के साधकों ने भी इस सरल मार्गको अपनाया और जैन-धर्म के मूल मिद्धांतों से न मिलने पर भी वह भक्ति-भावना, वरदान, चमत्कार, मारण, मोहन, उच्चटन आदि साधनाओं की और शाक्खित हुए, इनसे उन्हें भौतिक सुखों की कामनाओं की पूति की ग्राशा थी। प्रत जैन धर्म ने देवी-उपासना को स्थान दिया।

जैन धर्म में २४ तीर्थकर माने जाते हैं। उनके बाये और एक यक्षिणी का निवास कहा है, जिसे शासन-देवी कहते हैं। इन शासन-देवियों की सूखा भी स्वभावत् २४ है। इनमें से चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती और सिद्धायिका प्रसिद्ध हैं। पद्मावती २३वें तीर्थकर भगवान् पाश्वर्नाथ की शासन-देवी है। इनके स्वतन्त्र मन्दिर और पूजा-विधान बताए गए हैं। इन्हे त्रिपुर भैरवी, त्रिपुरा, नित्या, तोतला, त्वरिता और कामसाधिनी नाम में भी पुकारा जाता है। इनकी विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ मिलती हैं, जिनमें दो, चार, आठ, द्वारह, बाईस और चौबीस भुजाएँ प्रदर्शित की जाती हैं।

अम्बिका, नेमिनाथ तीर्थकर की शासन देवी है। जैन पुराणों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। इनके भी अनग मन्दिर, पूजा-विधान और स्तोत्र आदि उपलब्ध हैं। गोगी से इसकी तुलना की जा सकती है। उसके दो पुत्र—गणेश और कान्तिकेय हैं। अम्बिका के भी दो पुत्र बताए जाते हैं। दोनों का बाहन सिंह है।

चक्रेश्वरी ग्रादिनाथ—शृष्टप्रभनाथ की शासन देवी है। उसके बाहन, स्वसूप और आयुत्र में वह वैष्णवी और नारायणी देवी में मिलती-जुलती है।

पिद्धायिका चौबीसवें तीर्थकर महावीर की शासन-देवी है। अपराजिता और कामचरणालिनी भी इसी के नाम हैं। उसका श्याम वर्ण, दिगम्बर शरीर है, चार भुजाएँ और खुले बाल हैं।

जैन पुराणों में इन चार शासन-देवियों को ही प्रमुखता दी गई है। शेष की भी यदा-कदा पूजा होती रहती है।

जैन-धर्म ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करता परन्तु चौबीस तीर्थकरों की उपासना हिन्दू-धर्म के देवी-देवताओं की तरह ही करता है। उनके तीर्थों में देवों की मूर्तियों की प्रतिष्ठापना होती है। गुजरात में अम्बाजी माता के स्थान के पास 'कुम्भारिया' ग्राम में काफी सूखा में जैन-मन्दिर है। जैन कवियों ने शक्ति-मन्त्रदाय के 'सारस्वत कल्प'

को माना है। सिद्ध मारस्वताचाय श्री बालचन्द्र सूरि ने अपने महाकाव्य 'वमन्त्र-विलास' के प्रारम्भ में शक्ति-रद्धि को स्वीकार किया है। वह अपनी दिव्य कवित्य-शक्ति का ऐसे सरस्वती देवी की उपासना को ही देते हैं। जैन धर्म के दोनों सम्प्रदायों—श्वेताम्बर और दिग्म्बर में शक्ति की उपासना का प्रचलन है परन्तु उनकी मान्यता है कि पृथ्वी के नीचे और ऊपर देवी-देवतामों का निवास है और उनकी ग्रलग-ग्रलग श्रेष्ठियाँ हैं। उनकी यह भी मान्यता है कि इनकी पूजा-उपासना से वरदान की प्राप्ति सम्भव है, जिससे सभी सासारिक इच्छाश्रो की पूर्ति हो सकती है। हिन्दू धर्म में तो ऐसा मानते ही हैं। जैन-धर्म में शक्ति-उपासना का प्रवेश इसके प्रभाव और महानता की ही साक्षी देता है।

शक्ति-उपासना का आरम्भ वैदिक काल से हुआ। पौराणिक काल में यह फली-फूली। बोद्ध व जैन-धर्म जैसे इतर धर्मों ने इसे अपनाया। नाथ व सिद्ध सम्प्रदायों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। आज भी उत्तर से लेकर दक्षिण तक व्यापक रूप से इसका प्रचार है।

• • •

विश्व में

शक्ति-उपासना का प्रसार

भारतीय साहित्य के दो भाग हैं—निगम और आगम। निगम कहते हैं वेद को प्रोर आगम तन्त्र को। निगम के प्रति सारे विश्व ने उच्च सम्मान की भावना व्यक्त की है और मैत्रमूलर जैसे उच्चकोटि के दाशनिकों ने नो अपने जीवन का अधिकाश समय इसी की सोज व प्रचार-प्रसार में ही व्यतीत किया। आगम विश्वरूपता तो ग्रहण न कर सका, परन्तु सब जान वुडरफ जैसे विदेशी विद्वानों ने इसके उद्धार के लिए जी-तोड प्रयत्न किए। तन्त्र के शाक्त-सम्प्रदाय की प्रमुख उपासना मातृ-साधना है। वैसे वैदिक साहित्य में भी इसके मूल को खोजा जा सकता है। वेद में अद्विति, दिति, सरस्वती, उपा, इला, मही, सरमा, दक्षिणा और आपोदेवी जैसी देवियों का वर्णन आता है। उपनिषदों ने भी मातृ-उपासना को स्वीकार करते हुए अनेकों उपनिषद् इसके लिए अभिहित की हैं। जैदिक साहित्य की गूँज सारे विश्व में सुनाई दी। सम्भव है इसी से शक्ति-उपासना का वीज वहाँ श्रुतिरित हुआ हो। कुछ भी हो, विश्व के अधिकाश देशों में प्राचीनकाल से मातृ-उपासना चली आ रही है और वहाँ भारत की तरह देवियों की प्रतिमाये उपलब्ध हुई हैं।

शक्ति-उपासना के दो विशेष कारण बनाए जाते हैं। सभी सम्प्रताएँ इस मन से सहमत हैं कि प्रनय के समय केवल मातृ-सत्ता

विद्यमान थी और उसी के सहयोग से सृष्टि की रचना हुई। दूपरे यह कि सभी ने इसको कृपा और दया का प्रतीक माना है। उन्होंने यह आशा रखी है कि उनको भौतिक उलझनों का समावान करने वाली वह एक विशेष शक्ति है। इस गुण के कारण जन-समूह का प्राप्त इधर आकर्षित होना भी स्वाभाविक था। ध्यवहारिक क्षेत्र में भी सच्चे प्रेम की प्रतिमा यदि किसी को कहा जा सकता है, तो वह म है—उसी से दुलार की आशा रखी जा सकती है। इसलिए जहाँ भी मातृ-उपासना प्रचलित हुई, वहाँ उसे उपरोक्त गुणों के कारण पर्याप्त बल मिला। तभी सारे विश्व ने इसे अपनाने में कोई सकोच नहीं किया। हम यहाँ प्राचीनकाल से प्रचलित विभिन्न देशों की मातृ-उपासना का संक्षिप्त वर्णन करेंगे—

बेबीलोनिया—

भारतीय देवी उमा से मिलता-जुलता नाम 'अमा' बेबीलोन में प्रसिद्ध था, जो समस्त सृष्टि की रचयिता मानी जाती थी। इस देवी को तारा और 'इश्तर' कहते थे। इस तारा का दूसरा नाम 'निनसन' था, जिसका अभिप्राय नाशकर्त्री है। परन्तु 'इश्तर' को अधिकाशत दया और करुणा की देवी माना जाता है। वह धरती पर और स्वर्ग की स्वामिनी मानी जाती थी। उनके कृपापात्र इसे अपना रक्षक और सम्पत्तिदाता के रूप में सम्मान करते थे। वह शाति और प्रसन्नता की प्रतिमा स्वीकार की जाती थी। वह मानव-जाति से प्यार करने वाली थी। बेबीलोन में 'इश्तर' देवी का सर्वोच्च स्थान था। इसकी महत्ता घपने देश तक ही सीमित नहीं रही वरन् सीरिया, मोआब, दक्षिण अरब और अबीसीनिया में भी इसकी ख्याति फैली और यह वही के स्थानीय नामों से पूजी जाने लगी। सीरिया में 'अस्टोटे' नाम से 'मोआब' में 'अश्तर' के रूप में, दक्षिण अरब में 'थास्तर' और अबीसीनिया में 'आस्तर' के नाम से विस्थात हुई।

इम देवी के सिर पर गाय के दो सींग देखे जा सकते हैं। 'अरविन्द' गाय का प्रतीक प्रकाश मानने हैं। यह देवी वहाँ के सभी देवताओं में विश्वाहित है।

वेदीलोन में आदि-देव को अप्सु और उनकी पत्नी को 'तियायत' के नाम से पुकारा जाता है। वहाँ की मन्त्रिता है कि मर्वप्रथम वह ममुद्रो के रूप में विकसित हुए और तभी अन्य देवी-देवताओं की उत्पत्ति हुई। यह कल्पना ऋग्वेद के 'भ्रप्रकेनम सलिलय' की ही प्रेरणा से बनी प्रतीत होती है। वहाँ के तीन प्रमुख देवता हैं—इनतिल, इया और भनु, जो भारत के त्रिदेवो—ब्रह्मा, विष्णु और महेश से मिलते हैं। इन तीन देवताओं की शक्तियाँ हैं—तिललिलु (घरती की देवी), दामकिना (जलदेवी) और अनातु (स्वर्ग की अधिष्ठात्री)। इम तरह से वेदीलोन ने मातृ शक्ति के महत्व को स्वीकार किया।

मिस्त्र—

मिस्त्र में प्राकाश की देवी 'नुट' मानी जाती थी, जिसके सम्बन्ध में यह धारणा थी कि वही सभी प्राणियों की रचना करती है। यह भी कथा प्रचलित है कि यहाँ के वायुदेव 'शु' ने देवी 'नुट' को अपने पैरों का सहारा दिया, फिर उसके सहयोग से लाखों तारों को उत्पन्न किया। 'नुट' को देवमाता कहा जाता था। 'शु' को 'नुट' का पति माना जाता था, जो भारतीय 'इन्द्र' की तरह पृथ्वी और प्राकाश के अधिष्ठित थे। 'नुट' भारतीय 'सुरभि' की तरह 'गौरुषिणी' थी।

माता के सृजक और सहारक दोनों रूप भारत में प्रचलित हैं, वहाँ मिस्त्र की 'सोखित' और 'सेखित' देवियों का सिर सिहनी का था। उनके हाथ में खड़ग देखा जा सकता है। वहाँ की एक और देवी 'तेपनुनने' का रूप भी सिहनी जैसा था।

ऐसा प्रतीत होता है कि मिस्त्री देवताओं का नामकरण भारतीय देवताओं में योड़े परिवर्तन से ही हुआ है। उदाहरण के लिए भारतीय

नाम 'ओम' में 'आमत्र' बन गया और 'विष्णु'—'वेस' में परिवर्तित हो गया। 'ईश' का 'इसिन्' बन गया, 'माना' का 'मत', 'शक्ति' का 'सकित', 'दिनेश' का 'दायनेशियस' हो गया और 'हर' का तो 'हर' ही रह गया। मिस्त्री देवता 'राय' की कथा महर्षि दत्तात्रेय से मिलती-जुलती है। वहाँ दत्तात्रेय के पद-चिह्न, मत्स्येन्द्रनाथ की मूर्ति व महाकाल का मन्दिर भी है। मिस्त्र की गोदेवी का नाम 'इरिस' था। भारत में कच्छप व वाराह आदि के भी अवतार माने गए हैं। मिस्त्र में 'हेकटदेवी' का रूप मेढ़क का था।

मिस्त्र में सर्वाधिक प्रतिष्ठा-प्राप्त देवी थी—'आइसिस' जी वहाँ की सहस्रनामा अश्वपूरणी मानी जाती है। इमंकी उत्पत्ति का इतिहास कुछ अच्छा नहीं है। देवी नुट का पति सूर्य-देवता 'रा' था परन्तु उसने उसकी उपेक्षा की और देवता 'जेव' से अनुचित सम्बन्ध स्थापित करके पाँच सन्तानें उत्पन्न की, जिनमें 'आइसिस' भी एक थी। फिर आइसिस ने अपने युवा भाई 'ओसिरिसे' से विवाह कर लिया। 'रा' देवता से शक्ति प्राप्त करने के लिए उसे सप से हसवाने का घडयन्त्र रचा। यहाँ तक का इतिहास तो इसका काला है, परन्तु वहाँ की प्रजा के लिए वह देवी वरदान सिद्ध हुई। मानवीय नियमों की व्यवस्था और प्रथम सम्पत्ता का पाठ 'आइसिस' द्वारा ही आरम्भ किया हुआ मानते हैं। वह खाद्य-घान्धों के भगदार भरने वाली देवी के नाम से प्रसिद्ध है।

'आइसिस' अपने देश में इतनी लोकप्रिय हुई कि वह अन्य देशों में भी पूजित होने लगी। रोम में 'सेरस' और ग्रीस में 'डिमीटर' के रूप में पूजी जाने लगी। मिस्त्र की देवियों में इसका प्रमुख स्थान था। मातृत्व और पत्नीत्व में वह आदर्श मानी जाती थी। इसे वहाँ 'कुमारी माँ' की तरह पूजा जाता था। जब ईसाई धर्म का प्रचार बढ़ा, तो इसी के नाम को कुछ जातियों में 'मेरी' के नाम से सम्मान दिया जाने लगा। 'आइसिस' की पूजा 'मेरी' के रूप में रूपात्तरित हो गई।

सात्त्विक देवियों में माइडर का प्रमुख स्थान है, जो मत्य, न्याय और वृद्धि की देवी मानी जाती है। मिस्त्री की आकाश-देवी का नाम था—‘हाथर’। सहारक देवी के रूप में ‘हेकाट’ का उच्च स्थान है। वह विभन्न प्रकार के शस्त्र धारण करती थी, वह छ भुजा वाली थी, मिहो और सर्पों से भी उसका सम्बन्ध था। वभी-वभी दिग्म्बर वेद भी धारण करती थी। इस देवी की समानना भारतीय देवी काली में सुविघापूर्वक की जा सकती है।

मिस्त्री पुराणों में अनेकों अन्य देवियों का भी वर्णन आता है। विश्व को यदि एक भवन माने, तो उसके चारों द्वारों की द्वा-पालिकाएँ भी देवी-रूप में पूजी जाती थीं। विभिन्न पशुओं को भी देवी का प्रतीक माना जाता था। सार यह है कि मिस्त्री मन्त्रिक पर मातृशक्ति वी महत्ता की अमिट छाप अद्वितीय और वह सभी प्रकार की समृद्धि और सौभाग्यों का अवतरण इसी महाशक्ति की उदारता से ही मानते थे।

चीन —

आज तो चीन में साम्यवाद का छोलवाला है, परन्तु प्राचीनकाल में यह एक आमितक देश था और यहाँ आस्तिक धर्म पृथिव्य-पल्लवित हुए थे, तब मातृ-उपासना का भी प्रचलन था।

चीन में नौ देवता माने जाते थे। उनकी ज मदात्री का नाम ‘तुवो’ था, जो आदिम जन-राशि ‘अपस्’ देवी के नाम से विलयात थी। इस ‘अपस्’ से ही निखिल विश्व की सृष्टि मानी जाती थी। वहाँ की पौराणिक गाथाओं से ज्ञात होता है कि ‘पश्चिम आकाश-देवी’ व्याघ-रूपिणी थी।

भारतीय वेद की तरह प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रन्थ चीन में ‘ई-चिंग’ (I-ching) था। इसके अनुमार ‘यांग’ (Yong) और ‘यिंग’ (Ying) दो सिद्धात हैं, जिनको सृष्टि-रचना का मूल माना जाता था। इनका भारतीय रूपातर पुरुष और प्रकृति ही किया जा सकता है।

ताथ्रोवादी धर्म में याग के प्रतीक 'चिएन' (Chien) को अजगर या अश्व और 'विंग' के प्रतीक कुन (Kun) को घोड़ी या गाय के प्रतीक में देखते हैं। वैदिक परिभाषा में गाय को मातृ चेनना की शक्ति और प्रकाश के रूप में समझा जाता है।

चीनी 'कन्फ्यूशियस' धर्म में आकाश को 'खियन' और पृथ्वी को 'ख्वान' कहा जाता था। उनकी धर्म पुस्तक में इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—“खियन आकाश है, वृत्ताकार है, मार्ग है, पिना है, मणि है, घातु है, शक्ति है, हिम है, उत्तम अश्व है वृक्षों का फन है। 'ख्वान' वस्त्र है, घन है, गो है, पृथ्वी है, माता है, पृथ्वी पर की काली उत्तरांश मिट्टी है।” यह वर्णन Myths of China and Japan पुस्तक में दिया हुआ है। पृथ्वी माता ही काली है।

जब चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ, तब भी मातृ-उपासना अपने पुराने रूप में रही। भारत में बुद्ध को अवलोकितेश्वर के नाम से भी याद करते हैं। यह अवलोकितेश्वर चीन में पहुँचकर नारी रूप में परिणत हो गया—यह आश्चर्य है। वहाँ देवी के अनेक रूप चित्रित किए गए थे। वहाँ की तीन नेत्रों और अष्टभुजाओं वाली देवी की ममानता दुर्गा से की जा सकती है। चुन्टी (Chun-ti) चण्डी से मिलती - जुलती है। यह मातृशक्ति वहाँ सतानों की सरक्षिका दुखहर्ती, सुखदाना और विपत्तियों को दूर करने वाली मानी जाती थी। प्रसिद्ध लेखक 'प्रैत' ने प्रथमी पुस्तक 'दि पिलिप्रिमेज आफ बुद्ध' में लिखा है कि “कंथोलिकों में जो स्थान मैडोना का है, वही पवित्र स्थान चीन में इस देवी का है।”

ग्रीक—

यूनानी लोग भारतीयों की तरह मन्दिर बनाकर देवों की पूजा करते थे। उनके मन्दिर स्थापत्य-कला की उत्तम कला-कृतियाँ होती थी। इनमें सोने और हाथी दाँत की बनी 'अन्येनी देवी' की मूर्ति शिल्प-कला

की दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जाती थी। इसे वहाँ प्रमुख रूप से पूजा जाता था जैसे गायत्री देवी को भारत में।

यह एक कथा से भी स्पष्ट है—यही एन्येस नगर के नामकरण की कथा वहाँ प्रचलित है। बुद्धि की देवी 'एथेनी' और समुद्र के देवता 'पोसीडन' दोनों की इच्छा थी कि उनके नाम पर एक नगर बसाया जाए, परन्तु उसके नामकरण में दोनों में मतभेद था। दोनों अपना मुकदमा लेकर 'जियस' देवता के पास ले गए। जियस ने पूछा कि वह अपने नगर को व्या उत्तम भैंट करना चाहेंगे। पोसीडन न एक सुन्दर घोड़ा भैंट करने का सुझाव दिया और एथेनी देवी ने ज़ैतून का पेड़। जियस ने यह निर्णय किया कि घोड़ा युद्ध का प्रेरक है और ज़ैतून का पेड़ जन-वत्याग का प्रतीक, इसलिए यह नगर एथेनी के नाम पर होगा उस नगर का नाम 'एथेन' हुआ। बुद्धि की देवी के उपासनी को ही ऐसे को दुष्टी और विद्या का केंद्र बनाने का श्रेय है।

कानी चौरो और डाकुओं से रक्षा करती है। यूनान की 'नावन' का भी यही उद्देश्य है। 'जूनो' देवी 'ग्रोलम्पियन' पर्वत पर निवास करने वाली वताई जाती है। पार्वती का निवास-स्थान भी कैलाश पर्वत है और वह पर्वत की पुत्री वताई जाती है। पार्वती के पुत्र का वाहन मोर है और उसे देवताओं के सेनापति का गोरवपूर्ण पद मिलने का श्रेय प्राप्त है। उसके छँ मुख और बारह नेत्र हैं। वह पार्वती की रक्षा करता है। जूनो का पुत्र 'श्रागस' भी ऐसे ही गुणों वाला है।

वहाँ पृथ्वी देवी को 'डीमीटर' के नाम से याद किया जाता है। हेरा, डानाप, और अर्तेमिस नामक देवियाँ भी वहाँ एक विजिष्ट स्थान रखती हैं। हेरा—मिलन की प्रतीक, विवाहों की अधिष्ठात्री और वहाँ के सर्वोच्च देवता 'जीयस' की सलाहकार मानी जाती है। यह प्रजोत्पादन का भी प्रतिनिनित्व करती है।

'अर्तेमिस' पालन, रक्षण, साहस, दयालुता, करुणा और

ताओवादी धर्म से यांग के प्रतीक 'चिएन' (Chien) को अजगर या अश्व और 'यिंग' के प्रतीक कुन (Kun) को घोड़ी या गाय के प्रतीक में देखते हैं। वैदिक परिभाषा में गाय को मातृ चेनना की शक्ति और प्रक्षाश के रूप में समझा जाता है।

चीनी 'कन्यूशियस' धर्म में आकाश को 'खिअत' और पृथ्वी को 'ख्वान' कहा जाता था। उनकी धर्म पुस्तक में इनका स्पष्टीकरण इप प्रकार किया गया है—“खिअत आकाश है, वृत्ताकार है, मार्ग है, पिना है, मणि है, घातु है, शक्ति है, हिम है, उत्तम अश्व है वृक्षों का फन है। 'ख्वान' वस्त्र है, घन है, गो है, पृथ्वी है, माता है, पृथ्वी पर की काली उत्तराऊ मिट्टी है।” यह वर्णन Myths of China and Japan पुस्तक में दिया हुआ है। पृथ्वी माता ही काली है।

जब चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ, तब भी मातृ-उपासना अपने पुराने रूप से रही। भारत में बुद्ध को अवलोकितेश्वर के नाम से भी याद करते हैं। यह अवलोकितेश्वर चीन में पहुँचकर नारी रूप में परिणत हो गया—यह मातृशर्य है। वहाँ देवी के अनेक रूप चित्रित किए गए थे। वहाँ की तीन नेत्रों और अष्टमुज्जामो वाली देवी की समानता दुर्गा से की जा सकती है। चुन्टी (Chun-ti) चण्डी से मिलती - जुलती है। यह मातृशक्ति वहाँ सत्तानों की सरक्षिका दुखहर्ता, मुखदाना और विपत्तियों को दूर करने वाली मानी जाती थी। प्रसिद्ध लेखक 'प्रेत' ने अपनी पुस्तक 'दि पिलग्रिमेज आफ बुद्ध' में लिखा है कि "कैथोलिकों में जो स्थान मैडोना का है, वही पवित्र स्थान चीन में इस देवी का है।"

श्रीकृष्ण

यूनानी लोग भारतीयों की तरह मन्दिर बनाकर देवों की पूजा करते थे। उनके मन्दिर स्थापत्य-कला की उत्तम कला-कृतियाँ होती थीं। **मानसिंजोड़े श्री डिल्टोन Server 'https://dsr.mani.com/ma'** | MA

की हृषि से श्रेष्ठ मानी जाती थी। इसे वहाँ प्रमुख रूप से पूजा जाता था जैसे गायत्री देवी को भारत में।

यह एक कथा से भी स्पष्ट है—यही एथेस नगर के नामकरण की कथा वहाँ प्रचलित है। बुद्धि की देवी 'एथेनी' और समुद्र के देवता 'पोसीडन' दोनों की इच्छा थी कि उनके नाम पर एक नगर बसाया जाए, परन्तु उसके नामकरण में दोनों में मतभेद था। दोनों अपना मुकदमा लेकर 'जियस' देवता के पास ले गए। जियस ने पूछा कि वह अपने नगर को क्या उत्तम भैट करना चाहेगे। पोसीडन न एक सुन्दर घोड़ा भैट करने का सुझाव दिया और एथेनी देवी ने जैतून का पेड़। जियस ने यह निर्णय किया कि घोड़ा युद्ध का प्रेरक है और जैतून का पेड़ जन-वल्याणु का प्रतीक, इसलिए यह नगर एथेनी के नाम पर होगा उस नगर का नाम 'एथेस' हुआ। बुद्धि की देवी के उपासकों को ही एथेस को बुद्धि और विद्या का केंद्र बनाने का श्रेय है।

कानी चोरों और डाकुओं से रक्षा करती है। यूनान की 'लावन' का भी यही उद्देश्य है। 'जूनो' देवी 'ओलम्पियन' पर्वत पर निवास करने वाली बताई जाती है। पार्वती का निवास-स्थान भी कैलाश पर्वत है और वह पर्वत की पुत्री बताई जाती है। पार्वती के पुत्र का वाहन मोर है और उसे देवताषो के सेनापति का गौरवपूर्ण पद मिलने वा श्रेय प्राप्त है। उसके छँ मुख और बारह नेत्र हैं। वह पावती की रक्षा करता है। जूनो का पुत्र 'प्राग्स' भी ऐसे ही गुणों वाला है।

वहाँ पृथ्वी देवी को 'डीमोटर' के नाम से याद किया जाता है। हेरा, डानाप् और अर्तेमिस नामक देवियाँ भी वहाँ एक विशिष्ट स्थान रखती हैं। हेरा—मिलन की प्रतीक, विवाहों की अविष्टात्री और वहाँ के सर्वोच्च देवता 'जीयस' की सलाहकार मानी जाती है। यह प्रजोत्पादन का भी प्रतिनिनित्व करती है।

'अर्तेमिस' पालन, रक्षण, साहस, दयालुता, करुणा और

पवित्रना की प्रतीक है। जब आत्माएँ नदीन शीर धारण करती हैं, तो यह उन ही रक्षा करती है।

'अहेना' दीरो की चीरना को प्रोत्पाहित करती है। वह स्थाप-प-य और गिल्पकला की प्रतीक है और पृथ्वी का स्वामित्व इसी के भाग म आया है।

जैन भारतीय प्रमुख देवता इन्द्र की माता अदिनि है, वैसे ही यूनान के प्रमुख देवता 'जीयम्' की माता 'रेअ' (Rhea) मानी जाती है।

'अनो-का' मातुशक्ति वही परात्परा स्वरूप के निए प्रसिद्ध है।

इस तरह से ग्रीक परम्परा मे मातृ उपासना का एक उच्चन्यान रहा है।

रोम—

रोम मे भी देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित थी। 'एलियम्' को देवी 'हेलेन' और देवता जुरीटर का युग माना जाता है। रोम के मस्थापक 'रीमस' और 'रोम्युलस' का पालन-पोषण एक मादा भेड़िया ने किया। इसनिए उसे देवी की मान्यता दी गई। वहाँ समृद्धि की देवी 'ओटस' मानी जाती थी।

भारत मे सम्पत्ति 'श्री' है। रोम मे इसका नाम 'सिरिम' है। गया के पास जो 'श्री' की मूर्ति उपलब्ध हुई है, वह इससे मिलती-जुलती है।

रोमन दुर्गा का नाम 'मिनर्वा' है। वह शब्द धारण करके राक्षसों का महार करती है। वहाँ एक और मिनर्वा भी है, जो विद्या और बुद्धि की प्रतीक मानी जाती है, और जिसके हाथ मे एक वीणा रहती है। यह भारतीय सरस्वती का रूपान्तर है।

वावूल—

भारतीय रति की तरह वावूल मे 'मिलित्ता' देवी की आराधना

होती थी, जो प्रेम, दार्भत्य और प्रणय का प्रतीक मानी जाती थी। नवविवाहित युगल के लिए इसकी पूजा करना अनिवार्य होता था। पत्नी के लिए तो देवी को प्रसन्न करना अनिवार्य होता था। इस देवी इस देवी की आगावना कुछ ऐसे विकृत ढग से की जाती थी, कि किसी भी स्वाभिमानी पति को इसे सहन नहीं करना। चाहिए क्योंकि नवविवाहिता जब तक किसी अपरिचिन युवक के आकर्षण का केन्द्र नहीं बन जाती, तब तक वह योग्य पत्नी कहलाने की अविकारिणी नहीं बन सकती थी। अनुमान है कि वेश्यावृत्ति की नीव इसी कुप्रथा ने रखी होगी।

‘तियामन’ बाबुन की प्रामुखी देवी है। अथववेद में इसे ‘तेयात’ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तिलक ने ‘तियामत’ को ‘तेमात’ सिद्ध किया था। बाबुल मे यह ‘भप्सू’ देवता की पत्नी मानी जाती थी। ऋग्वेद मे भी ‘अप्सव’ शब्द आया है, जिसका सम्बन्ध जल से है। तियामत अकाल की प्रतीक है। जल को सोखकर सुखा डालना ही उसका काम है। भारतीय इन्द्र की तरह बाबुन में ‘मदुक’ है, जो आसुरी शक्तियों से सघर्षरत रहते हैं। ‘तियामत’ से भी वही युद्ध करते हैं। जैसे इन्द्र अपने वज्र से वृत्र आदि का सिर काट डालता है, वैसे ही ‘मदुक’ तियामत का सिर काटता है। जैसे ऋग्वेद में ‘महोमरणव जल घाराओं की निर्दोष गति से चलने की बात आती है, वैसे ही तियामत की मृत्यु पर होता है।

नेपाल—

नेपाल को एकमात्र हिन्दू-राष्ट्र होने का श्रेय प्राप्त है। वहाँ पर हर क्षेत्र मे हिन्दुत्व की सजीव सूर्ति होना स्वाभाविक ही है। वहाँ बोढ़ो और हिन्दुओं का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। सरस्वती के मन्दिर में इसका व्यवहारिक उदाहरण देखा जा सकता है, जिसे ‘झन्जूश्वरी’ भी कहा जाता है और जिनके चरण चिन्ह भी वहाँ स्थापित Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MA

पवित्रता की प्रतीक है। जब आत्माएँ नवीन शरीर धारण करती हैं, तो यह उन्होंने रक्षा करती है।

'अहेना' वीरों की वीरता को प्रोत्पादित करती है। वह स्थापत्य और शिल्पकला की प्रतीक है और पृथ्वी का स्वामित्व इसी के भाग्य में आया है।

जैसे भारतीय प्रमुख देशता इन्द्र की माता अदिति है, वैसे ही यूनान के प्रमुख देवता 'जीयस' की माता 'रेअ' (Rhea) मानी जाती है।

'अनोका' मातृशक्ति वहाँ परात्परा स्वरूप के लिए प्रसिद्ध है।

इस तरह से ग्रीक परम्परा में मातृ-उपासना का एक उच्च म्थान रहा है।

रोम—

रोम में भी देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित थी। 'एलियम' को देवी 'हेलेन' और देवता जुपीटर का युग माना जाता है। रोम के संस्थापक 'रीमस' और 'रोम्युलस' का पालन-पोषण एक मादा भेड़िया ने किया। इसलिए उसे देवी की मान्यता दी गई। वहाँ समृद्धि की देवी 'श्रोटस' मानी जाती थी।

भारत में सम्पत्ति 'श्री' है। रोम में इसका नाम 'सिरिस' है। गया के पास जो 'श्री' की मूर्ति उपलब्ध हुई है, वह इससे मिलती-जुनती है।

रोमन दुर्गा का नाम 'मिनर्वा' है। वह शब्द धारण करके राक्षसों का महार करती है। वहाँ एक और मिनर्वा भी है, जो विद्या और वृद्धि की प्रतीक मानी जाती है, और जिसके हाथ में एक बीणा रहती है। यह भारतीय सरस्वती का रूपान्तर है।

बाबूल—

भारतीय रति की तरह बाबूल में 'मिलिता' देवी की आराधना

श्री जे० होम्म स्मिय के शब्दों में “हम सभी विश्वमाता, भरती माता तथा मानव-माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। भगवती माता तथा स्वर्णीय पिता की कृपा से हम जन्म लेते हैं, जीवित रहते हैं और विकास करते हैं। और जब हमारे वर्तमान जीवन का कार्य तथा श्र्यं समाप्त हो जाता है, तो हम युन भरती माँ, विश्व माँ की ममता भरी गोद में चले जाते हैं। आज समार में लक्ष-लक्ष लोग भगवती माता के लिए समान श्रद्धा रखते हैं।”

क्रीट (Crete) में मातृ उपासना रेग्रा (Rhea) के रूप में होती थी, जिन्हें जीर्म की माता कहा जाता था। उनका वाहन बिंह और पर्वत उनका निवास-स्थान था।

इसी का नाम फ्रायगिया (Phrygia) में साइब्रेन (Cyble) पड़ा। वह ‘क्रोस’ देवता की पत्नी थी। इस देवी के सम्बन्ध में महाकवि होमर और पिन्डर ने स्तुतियाँ लिखी हैं। इतिहास-वेत्ताओं का कहना है कि यहीं से देवी-पूजा रोम और ग्रीष्म में गई क्योंकि इन देशों के साथ फ्रायगिया के घनिष्ठ सास्कृतिक सम्बन्ध थे।

कुरान और वाइबिल में सृष्टि-रचना के कारणों पर प्रकाश ढालते हुए परमात्मा, श्वास और शब्द को ही प्रमुखता दी गई है। इनका अभिग्राय यहाँ भी आद्याशक्ति से ही है।

आचार्य रघुवीर ने तिव्रत और मगोलिया में से भारतीय देवी-देवताओं के रेखा-चित्रों का संग्रह किया था। आचार्य रघुवीर के अनुसार अन्य देवताओं के साथ काली देवी की उपासना, तिव्रत, मगोलिया, सुदूर उत्तर में स्थित मचूरिया तक होती थी।

तिव्रत में भगवती का नाम—‘सस्त्रियास-स्त्रियनमा’ है। तिव्रत पर बीदों का न्यष्ट प्रमाव था। बीद देवी तारा की उपासना भी वहाँ प्रचलित थी। वहाँ उमका नाम ‘डनमा’ था। श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, और भक्ति की प्रतीक के रूप में पूर्ण तारा का नाम वहाँ

है। महाकाली के भी वहाँ दर्शन होते हैं। बौद्धों का विश्वाम है कि यह देवी लोकेश्वरी पद्मा पानी की मूर्ति है। अन्नपूर्णा देवी पर नेपाल-वासियों को अच्छी आस्था है, क्योंकि वह अधिक अन्न उपजाने में सहायक सिद्ध होती है। राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी को भी नेपाली अभी भूले नहीं हैं। अन्य देवियाँ तो भारत की तरह ही ज्यों की-त्यो स्थित हैं।

अन्य देशों में—

उत्तरी अफ्रीका में देवी-उपासना का प्रचलन था। तियामत, मिलित्ता, ईसिस, इश्टर, इनिन्ना नामक देवियों की आराधना वहाँ एक लम्बे समय तक होती रही।

मिस्र की 'ईसिस' की 'इश्टर' के नाम से 'असूरिया' में पूजा हुई, जहाँ इसके दूसरे नाम 'निना' तथा 'नना' और 'इनिन्ना' थे।

सुमेर में 'निन्नो' 'नना' अथवा नन्नर, 'इनना' देवी की पूजा के चिन्ह मिलते हैं। इस पर एक महाकाव्य की रचना भी हुई थी।

इश्टर देवी का आरम्भ ही सीरिया से माना जाता है।

ईसाई धर्म में कुमारी मेरी की उपासना सर्वोपरि मानी जाती है। १४वीं शती तक वह देवमाना के पद पर प्रतिष्ठित हो चुकी थी। ईसा से चार सौ वर्ष बाद तक इसका नाम तक भी कोई नहीं जानता था। परन्तु ऐसा लगता है कि 'एशिया माइनर', सीरिया और दक्षिण योरोप में पहले से विद्यमान मातृ-उपासना का प्रभाव अन्धविश्वासी ईसाई जगत पर पड़ा और 'मेरी' को विपत्ति-तिवारिणी माता के रूप में माना जाने लगा। उभी से फ्रास, जर्मनी आदि में विशाल गिरजाघरों की नीव रखी गई।

ईसाई जगत् में 'मेरी' के प्रति श्रद्धा ईसा के समान ही है। मेरी के सम्मान के रूप में मई मास में उत्सव मनाए जाते हैं। वह उपासकों के लिए आशाप्रो का केन्द्र है।

श्री जे० होम्म स्मिथ के शब्दों में “हम सभी विश्वमाता, भरती माता तथा मानव-माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। भगवती माता तथा स्वर्गीय पिता की कृपा से हम जन्म लेते हैं, जीवित रहते हैं और विकास करते हैं। और जब हमारे वर्तमान जीवन का कार्य तथा अर्थ समाप्त हो जाता है, तो हम पुन भरती माँ, विश्व माँ की ममता भरी गोद में चले जाते हैं। आज सपार में लक्ष-लक्ष लोग भगवती माता के लिए समान श्रद्धा रखते हैं।”

क्रीट (Crete) में मातृ उपासना रेआ (Rhea) के रूप में होती थी, जिन्हे जीपस की माता कहा जाता था। उनका वाहन सिंह और पर्वत उनका निवास-स्थान था।

इपी का नाम फ्रायगिया (Phrygia) में साइब्रेन (Cyble) पड़ा। वह 'क्रोस' देवता की पत्नी थी। इम देवी के सम्बन्ध में महाकवि होमर और पिन्डर ने स्तुतियाँ लिखी हैं। इतिहास-वेत्ताओं का कहना है कि यहीं से देवी-पूजा रोम और ग्रीन में गई क्योंकि इन देशों के साथ फ्रायगिया के घनिष्ठ सास्कृतिक सम्बन्ध थे।

कुरान और बाईबिल में सृष्टि रचना के कारणों पर प्रकाश ढालते हुए परमात्मा, इवास और शब्द को ही प्रमुखता दी गई है। इनका प्रभित्राय यहाँ भी आद्याशक्ति से ही है।

आचाय रघुवीर ने तिब्बत और मगोलिया में से भारतीय देवी-देवताओं के रेखा चित्रों का संग्रह किया था। आचार्य रघुवीर के अनुसार अन्य देवताओं के साथ काली देवी की उपासना, तिब्बत, मगोलिया, सुदूर उत्तर में स्थित मचूरिया तक होती थी।

तिब्बत में भगवती का नाम—‘ससृग्णियास-स्पिधनमा’ है। तिब्बत पर बौद्धों का स्वष्टि प्रमाव था। बौद्ध देवी तारा की उपासना भी वहाँ प्रचलित थी। वहाँ उसका नाम ‘डनमा’ था। श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और भक्ति की प्रतीक के रूप में पूजित माता का नाम वहाँ

'दाम', 'त्रिराग', 'डलमा' है। वैमे तारा की नर्वाधिक प्रतिष्ठा थी जो वहाँ के घमं-जीवन पर स्थाई हुई थी।

तिब्बत की तरह मगोलिया में भी 'तारा' की उपासना होनी थी। 'तारा' को मूर्तियाँ भी वहाँ प्रतिष्ठित थी, जो सम्भवत भारत से ही गई प्रतीत होती हैं।

यदि कही हिन्दुत्व पूरण रूप से जीवित और जाग्रत स्थिति में है, तो वह बाली देश है, जहाँ की उपासनाएँ, उपासना-पद्धति, मान्यतायें और साहित्य उसी तरह श्रद्धा का पात्र है जैसा कि भारत में बलिक कुछ अशो में भारत से अधिक। 'Island of Bali' नामक पुस्तक के अनुसार बाली द्वीप में देवी 'दानु' देवी 'गगा', 'गिरिपुत्री', 'दुर्गा' तथा 'उमा' शिव की पत्नियाँ हैं।

कम्बुज में वैदिक देवी-देवताओं की उपासना प्रचलित थी। रामायण-कथा की व्यापकता के कारण सीता की वहाँ अच्छी लोक-प्रियता थी। हर्ष वधन द्वितीय ने 'मेवन' में शिव और पार्वती के मन्दिर बनवाये थे।

जिस तरह यहाँ को जलदेवी गगा मैया है, इसी तरह थाई देव में जलदेवी को 'मेखोखा' कहते हैं। उसके प्रति उनकी श्रपार श्रद्धा है। आज भी बकाक के उच्च-न्यायालय के सामने शिव की मूर्ति स्थापित है, जिसकी जटामो से गगा की धारा निकल रही है। वहाँ के ब्राह्मकार्स्टग स्टेशन के मुख्य द्वार पर सरस्वती देवी का सुन्दर चित्र देखा जा सकता है।

जावा के कुञ्जर भाग में शैव मन्दिर स्थापित है। श्री विजय साम्राज्य के शैलेन्द्र राजाओं द्वारा 'तारा' का मन्दिर बनवाया गया था (७०० शक)। वहाँ की भाषा में 'चरही'—मन्दिर का नाम है। वहाँ पर 'सरस्वती-चरही', 'विष्णु-चरही', 'शिव चरही' आदि के मन्दिर मिलते हैं।

मलाया की उपासना-पद्धति भारतीय थी। अत प्रत्येक देवता की मूर्ति का निर्माण किया गया था। वहाँ पर दुर्गा की मूर्तियाँ भी मिलती हैं।

बर्मा के पगान नगर में अन्य भारतीय देवताओं के साथ तुरा की मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण हैं।

इफ तरह से विश्व के अधिकाश देशों में शक्ति-उपासना के प्रति मान्या रही है।

• • •

शक्ति-विज्ञान

जगत दो प्रकार का है—जड़ और चेतन। जड़, चेतन पर आधारित रहता है। चेतन से ही जड़ में गति आती है। हम देखते हैं कि जड़ दिखाई देने वाली वस्तुओं में भी एक व्यवस्थित गति है, एक नियमित प्रक्रिया के अनुसार वह काय करती रहती है। सर जगदीश चन्द्र बसु ने तो वृक्षों और धातुओं तक में जीवन-तत्त्व की विद्यमानता को सिद्ध किया था। प्लाटिनम का उदाहरण ले सकते हैं। वह विष से मर जाती है। उद्धिजों में तो स्पष्ट रूप से चेतना शक्ति हृष्टिकर होती है। इस सम्बन्ध जो प्रयोग किए गए हैं, उससे यह निणय करना सरल हो जाता है कि उद्धिज में सोचने की शक्ति है, उसमें गोचरता और इच्छा-शक्ति भी अवश्य हैं। ज्ञान और कर्म तनुओं के अभाव में इन गुणों का विकास कैसे सम्भव हो सकता है?

मानव में तो इसके विविध रूप हैं। धृणा, ईर्षा, द्वेष, लज्जा भी और दया, क्षमा, करुणा, परोपकार, नि स्वार्थता, श्रद्धा, विश्वास भी। मस्तिष्क और इन्द्रियों की चेतना शक्ति प्रत्यक्ष है। इनमें दोनों प्रकार की विपरीत धारणाएँ रहती हैं, भावों का आवागमन रहता है। मन तो एक भ्रूवं चेतना-पिण्ड है, जिसकी क्रियाशीलता का अनुमान लगाना भी सम्भव नहीं है। मानव के हर अङ्ग में चेतना और स्फूर्ति है। इसी से सृजन और सहार की दोनों प्रकार की प्रक्रियाएँ सञ्चालित होती हैं। ऋतु आती है, दो प्राणियों में एक होने की इच्छा जाग्रत होती है। उनका मिलना सुष्टि-प्रक्रिया का मूल बन जाता है। दोनों के संयोग से

एक नया चेनन-पिंड स्थापित हो जाता है, जिसके घणु-घणु में चेतना भरी रहती है। विज्ञान ने भी इस क्रिया को समझने का प्रयत्न किया है। जीवन विज्ञान का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों का यह मत स्थिर हो गया है कि जीवों में जो जीवन-तत्व होता है, उसका नाश नहीं होता। जीवन-शक्ति कुर (Chromosome) जीव के साथ रहते हैं और भौतिक शरीर के नष्ट होने पर वह सस्कार और चेतना-रूप में रहते हैं। इसलिए जीवन को अनादि और अनन्त कहने में कोई सन्देह नहीं रह गया।

विश्व में चेतना की प्रक्रिया व्यवस्थित है। जब सृजन होता है, तो ऐसा लगता है कि हर वस्तु आदर से बाहर प्रा रही है, चाहे यह मानव में हो, पशु पक्षियों या पेड़-पौधों में हो। सहार के समय वह बाहर में अन्दर की ओर जाती हैं, क्योंकि उन्हें विश्व-चेता में लीन होना है। यह दोनों खेल एक ही चेतना के हैं। अकुरों के आकाश की ओर उठने की प्रक्रिया में भी और उनकी पत्तियों के पृथ्वी पर गिरने पर मिट्टी में लीन होने की स्थिति में भी एक ही चेतना-शक्ति काम करती है। वह सबमें व्याप्त है—किसी में सुप्रावस्था में और किसी में जाग्रतावस्था में। जाग्रतावस्था होने पर वह विशेष रूप से क्रियाशील रहती है। परन्तु वह पञ्चपातररहित है, उसे किसी से लगाव नहीं है। वह सबमें एक ही प्रकार की अविरल गति से प्रवाहित होती है।

इसके प्रमाण चारों ओर देखे जा सकते हैं। अपने शरीर का का दी उदाहरण लें। उसमें हृदय की गति बराबर चलती रहती है। इप गति का चलते रहना ही जीवन कहनाना है और रुकना ही मृत्यु। मन निरन्तर गतिशील रहता है। जो विवारों को गतिशील रखता है, वही व्यक्ति अलग-अलग क्षेत्रों में महान् प्रतिभाशाली बनते हैं। शरीर एक कारबाना है। उसके सभी प्रङ्ग अपने आप कार्यरत रहते हैं। रक्त अविरन गति से प्रवाहित होता रहता है, भोजन करने पर पाचन-क्रिया

होती रहती है, मस्तो का विसर्जन होता रहता है और द्वासोच्छ्रवास की क्रिया भी लम्बे समय तक सञ्चालित होती रहती है। शरीर को गतिशील रखने से वह स्वस्थ व शक्ति-सम्पन्न रहता है। मालिश व अन्य व्यायाम करने से शरीर में एक प्रकार की विद्युत दौड़ती है, जो उसको शक्तियों का विकास करती है। जो इस विद्युतधारा के प्रवाहित करने में भासमर्य रहते हैं, वही अस्वस्थ और रोगी बने रहते हैं।

सूक्ष्म शक्तियों के विकास का आधार भी यही है। साधक व्रत, उपवास, जप तप, हवन, पाठ, पूजा, योगिक क्रियाएँ, आसन, प्राणायाम, चितन, मनन आदि के द्वारा सूक्ष्म शरीर के मुस्त शक्ति-केन्द्रों को जाग्रत करता है। इसमें गति की ही अपेक्षा है।

सपार की हर वस्तु गतिशील है। वायु गति का परिणाम है। शब्द गति से ही सुनते हैं। स्पर्श, रस और गन्ध की मनुभूति भी विभिन्न प्रकार की तरणों से होती है। शरीर को सर्दी-गर्मी का घनुभव होना भी सूक्ष्म तरणों से सम्पन्न होता है। विद्युत और चुम्बक का आक्षण्ण भी गति से ही होता है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत और तारा-मण्डल के तेज में भी तरणों का विज्ञान निहित है।

विश्व की हर वस्तु गतिशील है। जिस घरती पर हम निवास करते हैं, उसकी भनेकों गतियाँ हैं। वह अपनी धुरी पर धूमती है, मेडराती है, सूर्य की परिक्रमा करती है, सूर्य के साथ कुत्तिका मण्डल की परिक्रमा करती है। अपनी धुरी पर वह २४ घण्टों में धूम जाती है। सूर्य की परिक्रमा वह एक वर्ष में करती है। मैडलाने की गति २६ हजार वर्षों में पूर्ण होती है।

पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले हर प्राणी में गति है। गति से ही वह प्राणी कहलाता है। मनुष्य के प्रतिरक्त पशु, पक्षी, कीट, पतंग और कीड़े-मकोड़े सभी गतिशील हैं। मेड-पौधों से भी गति होती है, तभी क्योंकि वह उपर बढ़ते रहते हैं। मिट्टी और पृथ्वर में भी प्रध्यक्ष गति MA

रहती है। बब उन्हें ऊपर फे का जाता है, तो पृथ्वी की प्राक्पंण शक्ति में वह नीचे आ जाते हैं।

वनस्पति जगत में भी इस असीम सक्रियता को प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। यदि हम इस प्रक्रिया का निरीक्षण करें कि किस प्रकार पृथ्वी में रग प्रौढ़ गध भगी जाती है और किस प्रकार भेवरो को आश्रित किया जाता है—उसी इसकी सत्यता सिद्ध हो जाएगी। केवल फूलों में ही नहीं, समस्त वनस्पतियों में यह सृजन-क्रिया दृष्टिगोचर होती है और यह बताती है कि प्रणु-प्रणु में, वणु-कण में इसके दर्शन हो रहे हैं।

पदार्थ (Matter) में गतिहोनता नहीं है, गतिशीलता है। उसे सृजन किया में व्यस्त देखा जा सकता है। प्राधुनिक विज्ञान ने भी इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है। विज्ञान बताता है कि पदार्थ प्रौढ़ और जीवन प्रभिन्न है, एक है, उनको प्रलग नहीं किया जा सकता। कुछ वैज्ञानिक तो जीवन को पदार्थ का एक गुण घोषित करते हैं। विश्व-चेतना भी दोनों की एकता ही सिद्ध करती है, क्योंकि जह हम सृष्टि की हर जड़-चेतन वस्तु का निरीक्षण करते हैं, तो उपर्युक्त विदित होता है कि हर वस्तु में सक्रियता है। यही क्रियाहीन कोई पदार्थ है ही नहीं। प्रणु-विज्ञान इनेक्ट्रोन को भौतिक दृष्टाई नहीं मानते। वे इस विद्युत पुरुष में गतिशीलता और इच्छा-शक्ति की विद्यमानता स्वीकार करते हैं। प्रणु में इच्छा का होना वास्तव में वैज्ञानिकों के लिये प्राश्चर्य का विषय है, परन्तु है वह प्रदृष्ट सत्य। कुछ भी हो पदार्थ प्रौढ़ जीवन एक प्रौढ़ प्रभिभाज्य है।

वर्गसी इसे स्वीकार करते हुए कहते हैं—“पदार्थ (Matter) में ही जीवन की इच्छा निहित है। यह इच्छा शक्ति वाह्य नहीं, आत्मिक है, जो प्रगति की प्रौढ़ ऊर्जा मुखी है। मनुष्य में यही इच्छा चेतना के स्तर पर पहुँच गयी है। पर सभा रूप-आकारों में यह इच्छा प्रगति-शील जीवन की बननी है। यही ब्रह्म का मातृरूप है।”

इस विश्व का हर परमाणु तीव्र गति से अपना कार्य कर रहा है। पृथ्वी तो सूर्य की परिक्रमा साढे अठारह मील प्रति सेकंड की गति से करती है, परन्तु यहाँ हर एक परमाणु हजारो मील प्रति सेकंड की गति से धूम रहे हैं। तभी तो परमाणु की शक्ति का मूल्याकृत करते हए महान् वैज्ञानिक सर जे० जे० टामसन ने कहा था—“यदि एक परमाणु के अन्दर छिपी शक्ति निकल पड़े, तो एक क्षण के अल्पाश में ही लन्दन जैसे घनी आबादी वाले तीन लगर ध्वस्त हो जाएँ। यह उस परमाणु का विद्युत और गति के कारण ही है।”

सार यह कि सारा विश्व गतिमय है—शक्तिमय है। किसी की शक्ति व्यक्त है और किसी की व्यक्त है। सारे ब्रह्माड में शक्ति के खेन लहलहा रहे हैं। शक्ति के बीज बिखरे पड़े हैं। हमारे अङ्ग-अङ्गमें शक्ति के कोष भरे पड़े हैं, परन्तु हम उन्हें अनुभव नहीं कर पाते, जो अनुभव करते हैं वे शक्ति सम्राट बन जाते हैं। सारा विश्व उनके गीत गाता है, उनकी उपासना करता है और उनसे सहायता की अपेक्षारखता है। जब हम स्वयं में वह शक्ति और सामर्थ्य उपस्थित है, तो हम दूरक्यों भागते हैं, अपने मुत्त शक्ति-केन्द्रों को क्यों नहीं जगाते? यह निश्चित है कि हममें भी वह शक्ति है, जो ससार के किसी भी प्राणी में है और हमारा भी उतना ही विकास सम्भव है जितना कि किसी भी प्राणी का हो पाया है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम शक्ति की उपासना उचित रीति से करें और अपने जीवन में गतिशीलता बनाए रखें। गति ही जीवन है, यही विकास और सफलता की आधार-शिला है। इसी क्रियाशील इच्छा-शक्ति को जादम्बा, जगजननी, जगन्माता कहा जाता है। जगदम्बा की उपासना ही क्रियाशील जीवन है।

यही चेतना-शक्ति साधनात्मक क्षेत्र में दुर्गा, भवानी, देवी, शक्ति के रूप में पूजिन है। जब हम अष्टभुजी दुर्गा के वित्र या प्रतिमा की उपासना करते हैं, तो निश्चय रूप में हम इस चेतना-शक्ति का ही

आवाहन करते हैं, क्योंकि वह सारे विश्व में अनन्त रूपों में व्याप्त है। शास्त्र में भी कहा है—

“स्वर्वस्वरूपे सर्वशे सवगक्तिसमन्विते ।

यच्च किञ्चत्कवचिद्वस्तु सदमद्वाखिलात्मिके ।

अर्थात् “सबके स्वरूप वाले, सबके ईश और समस्त ममन्वित में जो भी कुछ, कही पर भी वस्तु है, सद ग्रयवा असत्, उन सबके स्वरूप वाले में जो उसकी प्रकृति शक्ति है वही आप हैं ।”

चेतना सर्वव्यापक है। इसीलिए कहते हैं कि शक्ति जड़ चेतन में है, वह जीव-अजीव सद में है। मारा जगत् शक्तिमयी है—“सर्व शक्ति मय जगत् ।” यही शक्ति के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। माकरण्डेय पुराण, देवी-माहात्म्य १।८२ में कहा है—

यच्च किञ्चत्कवचिद्वस्तु सदमद् वाखिलात्मिके ।

तस्य सवभ्य या शक्ति सा त्वं किं स्तूयसे मया ॥

अर्थात् “और जो भी कुछ कही पर भी वस्तु है, वह चाहे मत्र हो या असत्, उन सबके आत्म-स्वरूप में उस सबकी शक्ति में जो शक्ति है, वही आप मेरे द्वारा स्तूयमान होती है ।”

देवी भागवत् (५।३२, ७७-८८) के अनुसार—

या देवी सव भूतेषु शक्तिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

इन्द्रियाणामविष्टात्री मूताना चाखिलेषु या ।

भूतेषु सतत तस्यै व्याप्त्यै देव्यै नमो नम ॥

चित्तरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्या म्यथा जगत् ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमौ नमो नम ॥

व्यापक चेतना की अनुभूति और अपन जीवन को गतिशील बनाए रखना हो सच्ची शक्ति-साधना है।

शक्ति और आधुनिक विज्ञान

वैज्ञानिक समर्थन—

आधुनिक विज्ञान भी शक्ति-सिद्धांत का समर्थन करता है। सर जान बुडरफ ने इस सम्बन्ध में लिखा है—“जड़ प्रकृति की रचना के सम्बन्ध में जो शक्ति का सिद्धान्त (Dynamic view) प्रचलित है, जिसने प्रकृति को जड़ना से शून्य बना दिया है, जिस सिद्धांत के अनुमार प्रकृति के परमाणुओं में शक्ति का एक महान् खजाना भरा हुआ है, जिप सिद्धान्त के अनुमार उसे अनिवार्यता का यत्थो वे ढग से घबरायश विश्लेषण करते-करते उसका एक अस ऐपा बच जाता है, जिसका इन तरह विश्लेषण नहीं हो सकता। जिस सिद्धान्त के अनुमार रेडियो के आविष्कार ने भौतिक शक्तियों के क्षेत्र में—जो अब तक प्यार एवं सीमित मानी जाती थी—एक नवीन एवं एक प्रकार से अनन्त शक्ति का सञ्चार कर दिया है, उसने इस बात को भी प्रमाणित करी दिया है, कि भौतिक विज्ञान शक्ति - सिद्धान्त के बहुत निकट पहुँच गया है। जिस सिद्धान्त के अनुमार—(क) शक्ति ही सबका सार है, (ख) प्रत्येक वस्तु के अन्दर अथवा y° कहिए कि समस्त विश्व के अन्दर रहते वाली शक्ति की वास्तव में कोई धाह नह लगा सकता और (ग) प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में शक्ति का पूर्ण भरण्डार भरा पड़ा है।”

भौतिक ऊर्जाओं से अभिन्नता—

विज्ञान हमें बताता है कि प्रकाश, ताप, चुम्बक आदि भौतिक

शक्तियाँ मूलत एक और अभिन्न हैं। समझने के लिए विद्युत को ही लीजिए—विद्युत के चमत्कारों ने सारे सासार को मोह लिया है। यह अदृश्य भौतिक शक्ति है। इसे 'बल्व' के माध्यम से प्रकाश में परिवर्तित करके अन्धेरे में उजाला किया जाता है। 'हीटर' और लोहे की इम्ब्री की सहायता से यही विद्युत ताप में रूपातरित की जाती है। विद्युत-घारा को लोहे पर प्रवाहित करके चुम्बक बनता है, जो दूसरी भौतिक शक्ति है। इसमें यह सिद्ध है कि भौतिक शक्तियों को एक-दूसरे में बदला जा सकता है। विज्ञान के इनी सर्वमान्य तथ्य पर जरा। गम्भीरता के नाथ विचार करें, तो हम निम्नकोव कड़ सकते हैं कि विद्युत प्रकाश, चुम्बक ऊष्मा आदि भौतिक शक्तियाँ विविव न होकर एक हैं। एक मूल ऊर्जा के ही रूप-प्रतिरूप हैं। भौतिक शक्तियों में मूलत कोई भेद नहीं है।

मूल ऊर्जा और भौतिक पदार्थ—

मूल ऊर्जा क्या है? उसका स्वरूप क्या है? भौतिक पदार्थों से उसका क्या सम्बन्ध है? उसमें और भौतिक पदार्थों में क्या अन्तर है? इन प्रश्नों का उत्तर मी प्रावृनिक विज्ञान की उपलब्धियों में खोजना होगा।

विश्व-विश्वृत वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने अपने प्रयोगों द्वारा स-प्रमाण सिद्ध कर दिखाया कि प्रकाश को पदार्थ में बदला जा सकता है। जो वात प्रकाश के सम्बन्ध में है, वही अन्य भौतिक शक्तियों—चुम्बक, विद्युत, ताप, ध्वनि आदि के विषय में भी कही जा सकती है। इसका सीधा-सा अर्थ हुआ—जहाँ ऊष्मा विद्युत आदि शक्तियाँ मूल रूप में एक हैं, वही जगती के यावत्मात्र चर अवर पदार्थ शक्तिरूप हाने के कारण मूलऊर्जा के ही प्रतिरूप हैं। मूल ऊर्जा ही भौतिक शक्तियों में अनेक विधि परिवर्तित होकर इन्हीं के माध्यम से गैस, तरल और ठोस पदार्थों में चलीभूत हो रही है।

मूल ऊर्जा और विभिन्न पदार्थ—

समस्त स्थावर जगम पदार्थ श्रणु-परमाणुओं के सशोग से बने हैं। ये श्रणु-परमाणु निरन्तर गतिशील हैं। तत्त्व या योगिक के श्रणु-परमाणु जब दूर-दूर तेजी से धूमने हैं, तो वह पदार्थ की गैमावस्था कहलाती है। जब श्रणु परमाणुओं की गति गैम की अपेक्षा न्यून होनी है, उसकी सज्जा 'तरल' या 'द्रव' है। इसी प्रकार जब श्रणु-परमाणुओं की गति अत्यन्त सीमित हो, सकुचित हो, तो उपे ठोस पदार्थ कहा जाता है। अत्यन्त सूक्ष्म बनी श्रणु-परमाणुओं की जो गति गैम, द्रव और ठोस को अनुप्यून किए रहनी है, वही भौतिक शक्ति है और भौतिक शक्तियों की शक्ति 'मूल ऊर्जा' है।

गतिशीलता के साथ अविनाशिता भी—

आधुनिक विज्ञान जहाँ स्थावर जाम पदार्थों तथा भौतिक शक्तियों को गतिशील बताता है वहाँ 'पदार्थ नष्ट नहीं होता' ऐसा उद्घोष करके वह इनकी अविनाशिता को भी तुमुन छवनि से स्वीकारता है। इसका आशय यह हृप्रा कि मूल ऊर्जा वह 'सक्रिय तत्त्व' है, जो कभी नष्ट नहीं होता। यह 'सक्रिय ह गतिशीलता' ही उसकी प्रवर 'चैतन्यता' है।

मूल ऊर्जा की उत्पत्ति—

प्रश्न यह है कि वैज्ञानिकों की 'मूल ऊर्जा', जो अविनाशी, शाश्वत, निरन्तर स्पन्दनशील, चैतन्य एव भिन्न-भिन्न पदार्थों और शक्तियों में प्रतिरूपित है, किसमें उत्पन्न हुई? भिन्न-भिन्न शक्तियों को आकपण-विकर्पण में बौनने वाली, उनका नियमन करने वाली होने के कारण वह उनमें तो उद्भूत हो नहीं सकती, तब वर्ण वह 'शू-य' से पैदा हुई? नहीं, कदाचि नहीं। सम्पूर्ण ऋषि में 'शून्य' जैसा कुछ नहीं है। सभी

और सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों के रूप में मूल ऊर्जा ही व्याप्त है। अत Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MA

मूल ऊर्जा 'उपत्ति-रूप' नहीं है। यदि वह सभूत होती, उत्पत्ति का विषय होती, तो उस 'मूल' विशेषण क्यों दिया जाता। फिर शून्य तो शून्य ठहरा। शून्य से नि शून्य का पैदा होना—चैतन्य का पैदा होना—वैमे भी युक्तियुक्त नहीं जान पड़ना। इसनिए कहना ही होगा कि वैज्ञानिकों की ऊर्जा 'स्वयं-भू' है।

मूल ऊर्जा और आद्याशक्ति में अभिन्नता—

निश्चय ही 'विज्ञान' की 'मूलऊर्जा' वह चैतन्य धारा है, जिसे अस्तिक वर्ग 'आद्याशक्ति' के रूप में पूजता है। उपनिषद् ग्राण्यों में 'आद्याशक्ति' के जो-जो गुण बताए हैं, वे सब ही इसमें विद्यमान हैं।

वैज्ञानिकों की 'मूल ऊर्जा' सबगत है। वह समस्त पदार्थों में, भौतिक शाक्तयों में, अणु अणु में, परमाणु परमाणु में अनस्थूत है। आद्याशक्ति भी सबगत है, सबव्यापक है। ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ वह न हो। वैज्ञानिकों की मूल ऊर्जा ही समस्त विश्व का मूल बारण है। विश्व के यावन्मात्र परिवर्तन उसी के हैं। ग्रव्यात्मवादियों की आद्याशक्ति भी जगज्जननी है। समस्त भौतिक शक्तियों का नियमन करने वाली है। वैज्ञानिकों की ऊर्जा गतिमय है, चैतन्य है। आद्याशक्ति को भी परम चैतन्य के रूप में स्मरण किया जाता है। मूल ऊर्जा अविनाशी और शाश्वत है, आद्याशक्ति भी आदिग्रन्थ रहित है। मूल ऊर्जा उत्पत्ति रहित है, स्वयं-भू है। आद्याशक्ति भी आत्मरूप है, स्वयं-भू और स्वयं प्रकाश्य। अत हम कह सकते हैं कि आधुनिक विज्ञान भी आद्याशक्ति पर विश्वास करता है। सज्जा शब्दों में ही भेद है। विज्ञान जिसे 'मूल ऊर्जा' कहता है, हम उसे आद्याशक्ति। इसीलिए तो मसार-प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य प्राइस्टीन ने कहा है—“विज्ञान और धर्म में कोई भेद नहीं है। दोनों साध-साध चलते हैं।”

विज्ञान और साधना में अन्तर—

वैज्ञानिक और शास्त्र दोनों शक्ति के सर्वव्यापक प्रभाव को स्वीकार करते हैं, परन्तु उनके दृष्टिकोण में कुछ भूत्तर है। विज्ञान तो शक्ति को एक अन्त्र-प्रवाह मानता है जिसका नियन्त्रण करके जैसा भी चाहे उपयोग कर सकता है। वह अपने को शक्ति का नियन्त्रक समझता है। वह उम्र असुर की तरह है, जो शक्ति के केश पकड़कर उस पर अपने प्रभुत्व की घोषणा करता है। इसमें मानव मूल्य का कोई भी स्थान नहीं है। उसका उद्देश्य केवल भौतिक स्थूल शक्तियों से काम लेना होता है। ग्राध्यात्मिक शक्तियों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं वह उम्रकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

शक्ति को मात्रा के रूप में पूँजते वाले का दृष्टिकोण अलग होता है। वह देवी को सर्वशक्तिमयी चेतना, 'स्त्रवश विहारिणि' और सर्वेश्वरी मानता है। वह उपकी सगुण उपायना अवश्य करता है, परन्तु वह उसे पत्थर की प्रतिमा मात्र नहीं मानता, वह उसे चेतना का पूँज मानकर उपायना करता है। उनके म्यून विग्रह में सजीवता की अनुभूति करके करुण प्रार्थना करता है और भौतिक व आत्मिक सभी प्रकार के लाभ प्राप्त कर कराने शायद ह करता है और पाता भी है। विज्ञान की तरह यन्त्र और दासी की तरह नहीं, प्रगती सर्वस्व मानकर वह उसका हार खटखटाता है। भक्त के लिए वह विश्व-जनती है। वह अपनी सन्नान के साय लाड और दुनार करती है, उनकी सभी कामनाओं की पूर्ति करती है, उसे मद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है, उसके जीवन का काया-कल्प करके नव-निर्माण का उत्तरदायित्व ग्रहण करती है। विज्ञान की शक्ति जड़ है, भक्त की चेतन। विज्ञान दाह्य जगत् तक सीमित रहता है। शक्ति अन्तर्जगत् के विकास का प्रत्यय करती है, दोनों के विविविज्ञान में भी वडा अन्तर है। जो भी हो, विज्ञान शक्ति-मिद्धाल को मान्यता देता है।

शक्ति का दाश्चनिक रूप

भारतीय दर्शन को आधार-शिला—

भगवान् की स्तुति करते हुए भक्त कहता है—‘त्वमेव माता च पिता त्वमेव’। गीता म भी कहा है—‘माता धाता पितामह’। भगवान् माता, पिता और पितामह हैं—यही भारतीय दर्शन की आधार-शिला है। उनकी उपासना हम किमी भी एचिकर रूप में कर लें, परन्तु वास्तविकता यह है कि उसका कोई रूप नहीं, उसका कोई नाम नहीं। समझने की सुविधा के लिए ऋषियों ने कहा—‘एकार्णी न रमते, एकोऽह बहुस्याम्’। सृष्टि-रचना के समय ऐसी प्रक्रिया हुई, इसे मूल-माया या आदि स्फूर्ति के नाम से सम्बोधित किया गया। वही ज्ञान-क्रिया शक्ति-रूप से द्वैत में आई और विश्व की रचना हुई। व्रह्म का ही व्यक्त रूप शक्ति है। जब अद्वैत, द्वैत में परिणित हुआ, तो इस द्विष्टि को शिव-शक्ति, पुरुष प्रकृति, राम-सीता, गणेश-सिद्धि, कृष्ण-रुक्मिणी आदि नामों से पुकारा जाने लगा। यह नाम अलग-अलग हैं और लोक में इनके शरीर भी भिन्न-भिन्न दिखाई दिए। इनकी लीलाएँ भी प्रथक् प्रथक् रहीं, परन्तु वास्तव में सब एक हैं, इनमें कोई अन्तर नहीं—एक है। द्वैत तो केवल सृष्टि-रचना के लिए ही ग्रहण करना पड़ा है।

दाजनिक भाषा में इन दोनों की परिभाषा करें तो हम कह सकते हैं कि सारे ममार के मन्दर तिवास करने वाली निविकार सत्ता का

नाम शिव और उसकी क्रिया का नाम शक्ति है। शक्ति के अनेक रूप हैं, जिनमें प्रधान हैं—चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया-शक्ति। एक विद्वान् ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है—“यह जो स्फुरण या क्रिया है, वह शिव का रूप है, और इस स्फुरण का जो आधारभूत अविष्टान है, वह शिव का रूप है। केवल सत्ता पुरुष है और समस्त क्रिया प्रकृति है।”

योग-वशिष्ठ (६।२।८५।१५) में कहा है—

म पर प्रकृते प्रोक्त, पुरुष पवनाकृति ।

जिवरूपधर शान्त शरदाकाश शान्तिमान् ॥

“प्रकृति से परे दिखाई न देने वाला पुरुष है, जो कि सदैव श्री शरद मृत्यु के आकाश की तरह स्वच्छ, शान्त और शिवरूप है।”

इससे स्पष्ट है कि घट्टेत कारण है और द्वैत उसका परिणाम है। दोनों में कोई भेद नहीं।

शिव और शक्ति को एकरूपता—

देवी-भागवत के अनुयार ब्रह्मा ने शक्ति से प्रश्न किया कि आप स्त्री हैं या पुरुष? शक्ति ने उत्तर दिया—“पुरुष, प्रोर मैं हमेशा एक हूँ। मुझमें और पुरुष में कोई अन्तर नहीं है। जो पुरुष है, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ, वही पुरुष है।” इसीलिए ‘नवरत्नेश्वर तत्र’ में निर्देश है कि “सच्चिदानन्दरूपिणी देवी की स्त्री, पुरुष प्रोर शुद्ध प्रस्तुरूप में उपासना करनी चाहिए।”

श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने अपने ‘अमृतानुभव’ के प्रथम प्रकरण (शिवशक्ति समावेशन) में इस विषय का प्रचार स्पष्टीकरण किया है। वह कहते हैं कि “उनका सम्बन्ध ऐसा है, जोम डण्डे दो पर ध्वनि एक, पुष्प दो पर सुपन्न एक, दीपक दो पर दीपि एक, होठ दो पर शब्द एक, नेत्र दो पर हृषि एक।”

ब्रह्म तो क्रियाहीन है, शक्ति में क्रिया है, यह सारे जगत का

विम्नार उमी के बन पर हुप्रा है। ऋग्वेद के १०वें मूर्क में देवी ने स्पष्ट कहा है—“मैं राज्यों की अविश्वासी और बन-प्रदात्री हूँ, जिसे मैं चाहूँ, वही मेरी कृता मेरे बनवान, मेरावी स्नोना और कवि हो सकता है। मैंने आकाश को प्राप्त किया है, इसलिए मैं उमके पिता के समान हूँ। मैं सूर्य चन्द्रादि नक्षत्रों की सञ्चालिका हूँ, लोकों की रचना करती हूँ आकाश पृथ्वी मेरी व्याप्त हूँ, समुद्र के जल मेरी निवास करती हूँ।”

देवी-भागवत के मानवे स्फूर्त्य के ३२वें अध्याय मे देवी ने स्वयं अपने रूप का वर्णन किया है—“मैं ही चिदशक्ति, परमह्या-स्वरूपिणी हूँ, मैं अग्नि की उपर्युक्ता, सूर्य की किञ्चणों और कमल की शोभा के समान ब्रह्म से अभिन्न हूँ। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गौरी, ब्रह्माण्डी, वैष्णवी, सूर्य, तारामण, चन्द्रमा, पशु, पक्षी, च'एड न, द्यात्रा, कूरकमी, सत्य-कर्मा, महाजन, स्त्रीनिधि, पुलिंग, दृश्यादृश्य, श्रव्य, सर्वशोतीय सब कुछ हूँ।”

अध्यात्म-रामायण मे शीता ने राम के मम्बन्ध मे कहा है कि “गम तो कुछ करने नहीं, उन्हें कोई इच्छा भी नहीं है, न आना-जाना है। सब कुछ मैं ही करती हूँ।”

मार्कंण्डेय पुराण मे देवी महामाया ने कहा है “गिरि की शक्ति उपके मुख पर अवस्थित थी, यम की शक्ति उपके केशों मे प्रवाहित थी विष्णु का बल उमकी भुजाओं में था, उपके वक्ष मण्डन चन्द्रमा की तरह सुडीन थे, उमकी कटि मे इन्द्र का तेज था, उपकी टांगों और जपाओं में वहण का वेग था, ब्रह्मा उपके चरणों मे ये घोर उसके पेर के अगूठे मे आग्नेय सूर्य चमक रहा था।”

इस तथ्य को भगवान विष्णु ने देवी-भागवत के चौथे ग्रन्थाय मे म्वय स्वीकार किया है। जब ब्रह्मा ने विष्णु मे पूछा कि आप किसकी सावना करते हैं? उत्तर मिला—“दाह्य-टष्ठि मे तो आप जगत के बनाने वाले हैं, परन्तु वेदन पुरुष हमारी इन सृजक, पालक और महारक

शक्तियों को पराशक्ति के आधित मानते हैं। शक्ति को कृपा से ही मेरी मानी गतिविधियाँ सञ्चालित होती हैं। इसीलिए मैं उसी आदिशक्ति की आराधना करता हूँ।” तभी ममस्त भूतो मे चेनना-रूप से विद्यमान शक्ति को नमस्कार किया गया है—

या देवी सब भूतेषु चेतन्येत्यभिवीयते ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥
एकैव सा महाशक्तिं तथा सर्वमिद तत्स् ॥

एक ही शक्ति अलग-अलग नामों और रूपों में व्यक्त होकर अलग-अलग कार्यों का सञ्चालन करती है। जहाँ वह सृजनात्मक कार्य करती है, वहाँ वह सहारक कार्यों का भी उत्तरदायित्व निभाती है, ताकि विश्व की व्यवस्था और नियन्त्रण को संभाल सके। जब वह सृजन-क्रिया में व्यस्त रहती है, तो मातेश्वरी कहलाती है, परन्तु जब पालन, पोषण और रक्षा करती है, तो विश्व-पिता के सम्मनानीय पद से सुशोभित होती है। लक्ष्मी और अलक्ष्मी दोनों उसी के रूप हैं। भौतिक सुखों का सीभाग्य उन्हीं को कृपा से प्राप्त होता है और धन-ऐश्वर्य का दुरुपयोग करने वाले लोगों की उचित दण्ड देकर उन्हें सुमार्ग पर भी वही लाती है। भगवान्, भगवती, महेश, महेश्वरी, ईश्वर, ईश्वरी और ब्रह्मशक्ति सब कुछ वही हैं।

समझने के लिए 'ब्रह्म' शब्द पुलिंग और 'शक्ति' शब्द ल्लो-लिंग होता है, परन्तु नक्षत्रशक्ति में इनका आरोपण नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए ल्लो वाचक और पुरुष-वाचक शब्दों को लें- पद्मी, घोनी, टोपी, साढ़ी आदि ल्लो वाचक है, परन्तु उनके मूल में एक ही तरह का मून है। यह मारी ल्लो वाचक व पुरुष-वाचक वस्तुएँ एक ही प्रकार के मून से निर्मित हुई हैं, जिनमें ल्लोंव और पुरुष व कुछ भी नहीं है। इससे यह परिणाम निकलता है कि एक ही चेतन्य अलग-अलग नाम रूप में हमें दृष्टिगोचर होता है, लोकिक दृष्टि से कुछ को

स्त्री-वाचक और कुछ को पुरुष-नाचक घोषित किया जाता है, परंतु वास्तव में वह दोनों इन सज्ञामों से तीन होते हैं क्योंकि उम चैतन्य की कोइ निश्चित सज्ञा नहीं है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए शास्त्रकारों ने यह घोषणायें की—‘त्वं हि माता च पिता त्वमेव’ ‘माता रामो मतिपता रामचन्द्र’। भगवान की माता और पिता दोनों रूपों में मान्यता है। इससे स्पष्ट है कि ब्रह्म और शक्ति के नाम-रूप तो प्रला-ग्रलग दिखाई देते हैं, परन्तु मूलन वह एक ही है। उनमें कुछ भी भेद नहीं है।

शास्त्र इस अभेद की उष्टु करते हैं। योग-वशिष्ठ ६।२।८४।३ में कहा है—

यथैक पवनस्पन्दमेकमीष्णयानलौ यथा ।

चिन्मात्र स्पन्दशक्तिश्च तथैवेकात्म सब दा ॥

“जिस तरह वायु और उमकी क्रिया, अग्नि और उषणता सदैव एक ही होते हैं, उसी तरह चिति और स्पन्द-शक्ति एक ही है।”

अन्यत्र भी कहा है—

पावकस्योषणतेवेयमुष्णणाशोरिव दीधिति ।

‘जिस तरह पावक में गर्भी रहती है सूर्य में किरण रहती है और चन्द्रमा में चंद्रिना रहती हैं, उसी तरह शिव में उमकी सहज शक्ति का निवास है।’

विष्णु पुराण के अनुमार—

स एव क्षोभको ब्रह्मन् । क्षोभ्यश्च पुष्पोत्तम ।

स सङ्क्लोचविकाशाभ्या प्रधानत्वेऽपि च स्थित ॥

केचित्ता तप इत्याहुस्तम केचिज्जड परे ।

ज्ञान मायाप्रधानञ्च प्रकृति शक्तिप्यजाम् ॥

सा वा एतस्य सद्रष्टु शक्ति सदसदात्मिका ।

माया नाम महाभाग । ययेद निर्ममे विभु ॥

“वही पुरुषोत्तम भगवान क्षोभक उभय रूप से प्रनिभात होते हैं एव सक्षेप और विकास के द्वारा ब्रह्म और तच्छक्षित-स्वरूपिणी प्रकृति व प्रबान्न रूप से विद्यमान रहते हैं। यह प्रकृति कही इच्छा-रूप से, कही मापा-रूप से और कही शक्ति रूप से वर्णित की गई है। यह शक्ति सदा-सदातिमका है एव चैतन्य-रूप भगवान् इसके द्वारा ही समस्त विश्व को रचना किया करते हैं।”

अद्वैतारीश्वर के रूप में शिव और शक्ति का अमेद —

शिव और शक्ति के एकथ को अद्वैतारीश्वर प्रतिमा के सुन्दर रूप मे प्रदर्शित किया गया है—जिसके आधे भाग मे शिव और आधे मे पार्वती उत्कीर्ण की गई है। इसे विद्वानों द्वारा मानव-इतिहास को सुन्दरतम कल्पना की सज्जा दी गई है। अद्वैतारीश्वर का शास्त्रीय अव्ययन व्यक्त भावों की पुष्टि करता है—

वागर्थातिव सवृक्तौ वाग्थ' प्रतिपक्षरे ।
जगत् पितरो वन्दे पार्वती परमेश्वरी ॥

“पुरुष से प्रकृति अनग कैसे हो सकती है, क्योंकि वह तो उसमे सम्मिलित रहती है और मनातन शक्ति कहलाती है।”

विद्यापति ने अद्वैतारीश्वर की इस प्रकार आराधनात्मक स्तुति की है जिसमे शिव और शक्ति, पुरुष और प्रकृति के समन्वित रूप की प्रभिध्यक्षित की है—

जय जय शकर जय त्रिपुरारि ।
जय अध पुरुष जयति अवनारी ॥
आध घवल तनु आधा गोरा ।
साव सहज कुच आध कटोरा ॥
अध हडमाल आव गज मोतो ।
आव चन्दन सोहे आध अभ मूती ॥

आधा चेतन मति आधा भोरा ।
 आध पटोर आध मुज डोरा ॥
 आध जोग अध भोग विलासा ।
 आध विवान आध नगवासा ॥
 आध चान अध सिदूर शोभा ।
 आध विरूप आध जग लोभा ॥
 भने कवि रतन विवाता जाने ।
 दुई कय वाटल एक पिराने ॥

इम मम्बन्ब में भृगी ऋषि की कथा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है, जिसमें शिव और पार्वती, पुरुष और प्रकृति, नर और नारी की एकता का बोध होता है । उसमें एक तरह से एक गम्भीर समस्या का समावान भी किया गया है । कथाक्षस्तु इम प्रकार से है कि एक बार देवता और ऋषि शिव की स्तुति के लिए कैलाश पर गये । जैसे देव-मन्दिरों में देव-दर्शन के साथ स्तोत्रों का पाठ और मन्दिर की प्रदक्षिणा आवश्यक मानी जाती है, उसी तरह शिव को ईश्वर की साक्षात् प्रतिमा मानकर देवताओं और ऋषियों ने शिव और पार्वती दोनों की श्रद्धापूर्वक प्रदक्षिणा की, परन्तु भृगी ऋषि के मन में शिव के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं, उनकी श्रद्धा के पात्र केवल शिव ही थे । अत उन्होंने केवल शिव की ही प्रदक्षिणा की । पार्वती ने इसे अपनी उपेक्षा सुखभी और भृगी को ककाल होने का शाप दिया । शाप प्रत्यक्ष हो गया । एक और भवन है और दूसरी और पार्वती—दोनों को ही उन्हें सन्तुष्ट करना था । भृगी को उन्होंने तीमरा चरण प्रदान किया, जिसमें वह प्रमधना से लिल उठा । वह शिव के महान् अनुग्रह का प्रतीक था । भृगी की प्रमधना से पार्वती की प्रप्रमन्नता स्वाभाविक थी । शिव को उन्हें भी रुष नहीं करना था । उन्हें वरदान दिया कि तुम आजे मङ्ग व रुर मे सुर्देव मेरे साथ रहोगी । शरीर-रूप में भी मुझमे प्रलग न होगी ।

अब पार्वती शिव का आवाह अश बन गई और दोनों एक हो गए, तो भृगी की समझ में ग्राया कि शिव-पार्वती दोनों एक ही हैं, अलग-अलग नहीं हैं। तब उसने उस समन्वित रूप की प्रदक्षिणा की। इससे नर-नारी की वस्तु स्थिति का पता चलता है। यह प्रस्तर-प्रतिमा बादामी की गुफा में उत्तरवाद है।

पुराण (शत रुद्र सहिता) में ऋद्धनारीश्वर के प्रादुर्भाव की कथा इस प्रकार वर्णित है—

“जिस समय ब्रह्माजी ने अपने द्वारा सृजन की हुई प्रजा की वृद्धि नहीं देखी, तो वे दुख से अत्यन्त व्याकुन्ह होकर परम चिन्तित हुए। उस समय एक आकाशवाणी हुई कि अब तुम मैथुनी-सृष्टि की रचना करो।” यह सुन ब्रह्माजी ने अपनी मैथुनी सृष्टि के निर्माण करने का मन में निश्चय कर लिया। इसके पहले शिव से स्त्रियों के कुल का प्राकट्य नहीं हुआ था, इसी कारण से विधाता मैथुनी सृष्टि करने के कार्य में समर्थ न हो सके। शिवजी के प्रभाव के बिना यह प्रजा किसी भी प्रकार से उत्पन्न नहीं हो सकती—ऐसा विचार कर ब्रह्मा शिव को प्रसन्न करने के लिए तत्पर हुए। पार्वती-स्वरूपिणी परम शक्ति से समन्वित परमेश्वर का हृदय के ध्यान करते हुए प्रीतिपूर्वक तप करने में ब्रह्माजी लोन हो गये। कठोरतम तपस्या में तत्पर ब्रह्माजी स शिवजी धोड़े ही समय में शीघ्र सन्तुष्ट हो गये। इसके अनन्तर पूण विद्वूप ईश्वर ने अपनी काम-प्रदायिती मूर्ति में प्रवेश करते हुए आवा नारी और आवा पुरुष का स्वरूप होकर ब्रह्माजी के समीप पदार्पण किया। तब ब्रह्मा ने भगवान शिव को अपनी परम शक्ति से सयुक्त देखकर दण्डवत-प्रणाम करते हुए करवद्ध होकर उनकी स्तुति की। शिवजी ने अपने शरीर के अद्भुत भाग से शिवा शक्तिमयी देवी को प्रकट कर दिया, तभ उनका शिव से प्रयक्त मष्ट स्वरूप दिखाई देने लगा।”

विष्णु-पुराण प्रथम भाग के चौथे ग्रन्थाय में लिखा है—

अद्विनारीनरवपु प्रचण्डोऽति जरीन्वान् ।

विभजात्मानभित्युक्त्वा त ब्रह्मान्तदेवेतत्, ॥

अर्थात् “नृष्टि के आनन्द में नद आवे शरीर से पुरुष और आवे से नारी हुए । यह जानकर ब्रह्मा सन्तुष्ट हुए और इसका विभाजन करने की प्रेरणा दी, ताकि नृष्टि का मचालन किया जा सके ।”

श्रम्भों न पुरुष को तभी पूर्ण माना है, जब उनमें नारी मयुक्त हो जानी है । नारी के अवाव में वह अग्न, अवूरा, रहना है । भविष्य पुराण के सान्तवे अव्याय में लिखा है—

पूमावद्ध पुमास्तावद्यावाद्भार्या ।

अर्थात् “पुरुष का कलेवर नव तक पूर्णना को प्राप्त नहीं करता, जब तक कि उसके आवे अग को आकर नारी नहीं भर देती ।”

वृहदारण्यकोपनिषद् (१४।१।३) में भी ऐसे ही भाव प्रदर्शित हिए गए हैं—‘मर्वत्रयम् सव कुद्ध ही आन्मा था । उमकी आकृति पुरुष जैसी थी । उमने चारों ओर नजर दीड़ाई, तो उसे अपने अतिरिक्त और कुद्ध दिखाई नहीं दिया । उसे अकेलापन अच्छा नहीं लगा, आनन्द नहीं प्राया । उसने अपने को दो भागों में विभक्त किया । उसी से पति और पत्नी बने । इसीलिए दोनों में ने प्रत्येक अपने ही आधे अश की चरह है ।’

धर्मपय ब्राह्मण ५-२-३-१० में भी कहा है—

अर्वो हवा एप आत्ममो यज्जायेति ।

“जाया अपना आवा अथ ही है ।”

ध्यास-सहिता २।१४ में भी कहा है—

यावन्न विन्दते जायो तावदर्वो भवेत् पूमान् ।

“जब तक स्त्री को प्राप्ति नहीं होती, तब तक पुरुष आवा ही रहता है ।”

विवाह के समय पति पत्नी से कहता है—

यदेतद्वद्ये तब तदस्तु हृदये मयायदेतद्वद्ये मम तदस्तु
हृदय तब ।

“यह जो तुम्हारा हृदय है, सो मेरा ही जाय और जो मेरा
हृदय है, सो तुम्हारा हो जाए ।”

ब्रह्मवैवर्त पुराणाःार ने इस सुन्दर रूप का वर्णन इस प्रकार
से किया है कि ‘भगवान् प्रकृति देवी की सहायता से ही शक्तिमान्
रहते हैं । यह नर और नारी, पुरुष और प्रकृति—दोनों अलग-अलग
दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु वस्तुत वह एक ही है’

अद्विनारीश्वर की कल्पना में ब्रह्मवैवर्त-पुराण में पुरुष को कृष्ण
और नारी को राधा का रूप बताया गया है । यह स्वाभाविक है,
क्योंकि वह कृष्ण-प्रधान पुराण है । उसमें कृष्ण को ही सर्वस्व माना
गया है । सृष्टि-रचना का रूप बतलाते हुए कहा गया है कि वह आरम्भ
में केवल अकेले ही थे ।

एक से अनेक होने की इच्छा उनके मन में उत्पन्न हुई । उन्होंने
सकलप किया और वह पुरुष और प्रकृति दो भागों में बैट गये । इस
विभाजन में दाया पक्ष पुरुष का और वाया नारीका हो गया । कृष्ण को
पुरुष और राधा को प्रकृति और सनातन माया की सज्जा दी जाती है ।

शिव और पार्वती के इस सम्मिलित रूप को विश्व में सुन्दरतम्
रूप की सज्जा दी जा सकती है क्योंकि इम कल्पना ने दो पक्षों को एक
स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया है । वाह्यदृष्टि से जो अलग-अलग
दिखाई देते हैं, जिनके शरीर की बगावट में अन्तर है, जिनके गुणों में
विभिन्नता है, जिनकी प्रकृति भिन्न दिशाओं में प्रस्फुटित होती है,
उनको श्राध्यात्मक प्रभित्यकित में, एकना के बन्धनों में बाँध दिया है ।
इसमें दिनाया है कि दोनों मिलकर ही एक इकाई बनते हैं । अनग २
दोनों प्रवूरे हैं । शिव मवशक्तिमान् हैं, परन्तु शक्ति के अनाव में वह

गतिहीन हैं। पार्वती ही उनकी गति है, शक्ति है। यही क्रियाशीलता उत्पन्न करती है। पुण्य-कथाओं में भी समझाया गया है कि पुरुष मध्य सृजित-रचना करने में अप्रमर्य थे। प्रकृति के सहप्रोग में ही वह अपने उद्देश्य में सफल हुए। प्रकृति से बब पुरुष का मिलन हुआ, तभी एक में अनेक होने की कल्पना पूर्ण हुई। उपनिषद्कार ने पुरुष और को दो वाराणी के रूप में स्वीकार किया है, जिनका मिलन ही शक्ति का सृजन करता है।

शिव और शक्ति की एकता के सूत्र—

एक विद्वान् के शब्दों में “सृजक और सृजनात्मक कारण के रूप में शिव और शक्ति का सम्बन्ध भारतीय कल्पना में अमिट है। उनका विवित परिवार जीवन की सामूहिक जीवगारी रचना का प्रतिनिधित्व करता है।”

शिव का शक्ति से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह शिव-तत्व के आध्यात्मिक विश्लेषण से विदित होता है। शिव का त्रिनेत्र शक्ति के रूप में प्रदर्शित किया गया गया है क्योंकि इससे वह सारे विश्व में काम-शक्ति को प्रवाहित करने वाले कामदेव को भस्म कर देते हैं। शिव के मस्तक पर शाति-स्तम्भ के रूप में शर्द्धचन्द्र की स्थापना की गई है, जो सह तथ्य का प्रतीक है कि उसकी शाति-गगा में कभी ज्वार-भाटा नहीं आता, आवेश रूपी लहरें शिव रूपी समुद्र में कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकती।

शिव का त्रिशूल सहारक-शक्ति का प्रतीक है। वह क्रियाशीलक प्रकृति से मुक्त होने की स्वाभाविक प्रक्रिया ज्ञा प्रतिनिवित्त करता है। वृपभ और डमरु भी शिव की शक्ति के रूप हैं। वृपभ का अर्थ है—बींव की वर्पा, महाप्राण की वर्पा। जो शक्ति सारे ससार में अपने महाप्राणों को विद्वेरे हुए है, वही शिव है, जो शक्ति अपने महाप्राणों

द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति का कारण इन्हीं हैं, उसी को शिव कहते हैं, वहीं वृषभ वाहन है।

शिव के गले में सर्प लटके रहते हैं। सर्प तमोगुण का प्रतीक है। शिव तम को नियन्त्रण में रखते हैं। सर्प सहारक शक्ति है, वह काल का प्रतीक है। काल किमी को नहीं छोड़ना पर शिव उसमें मुक्त है। सर्प क्रोध का साक्षात् रूप है, परन्तु जिसके मस्तिष्क में निरन्तर शाति-गगा का प्रवाह बना रहता है, वहीं क्रोध शक्ति का क्या प्रभाव पड़ सकता है? सर्प अमगल रूप है, शिव अपने मगल रूप से उस पर विजय का जयघोष करते हैं।

भूमि नाश का चिन्ह है। इसे वह अपने शरीर पर लगाते हैं। मुराड मृतकावस्था का बोधक है। शिव इन्हें अपने आभूषण बनाते हैं। इस अवस्था पर उनका नियन्त्रण है, क्योंकि वह सहार के देवता है। वह कालरूप है—काल-मृत्यु को अपने गले से लगाते हैं।

पिनाक शिव का धनुष है। यह उनका शक्तिशाली अस्त्र है, जिससे वह युद्धों में विजय प्राप्त करते हैं। शिव व्याघ्र चमं ओढ़ रहते हैं—व्याघ्र शक्तिशाली पशु है। शिव काल और सहार के प्रतीक है। काल शक्तिशाली सम्राटों को भी नहीं छोड़ना, फिर व्याघ्र की क्या विसात है? यह भी शक्ति का प्रदर्शन है।

इससे स्पष्ट है कि शिव-तत्त्व की सभी क्रियाएँ शक्ति पर आधारित हैं। शक्ति के बिना तो शिव—शब्द के समान हैं।

शिव का विराट् व विश्व-व्यापी रूप प्रसिद्ध है। शिव योग-तत्त्व के प्रथम अविष्कारक व प्रचारक माने जाते हैं। आयुर्वेदिक श्रीष्ठियों के जन्मदाता भी वही हैं, स्वरों के जनक भी वही हैं, पशु जगत के स्वामी हैं, तभी पशुपति नाम पड़ा। वे समस्त ब्रह्मांड की शक्ति हैं।

माझ्योपतिष्ठ (७) में ऋषि ने शिव-तत्त्व का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है—“जो भीतर-वाहर प्रज्ञा वाला नहीं है, जो दोनों ओर

प्रज्ञा वाला भी नहीं, जो न जानने वाला है और न प्रज्ञान है, जो अटष्ट, अव्यवहाय और अग्राह्य है, जो लक्षणरहित एव प्रज्ञान धन है, जो न बतलाने से आ सकता है और न चितन में, जो प्रपचरहित, कल्याणकारी, अद्वैत, सर्वथा शात है, उसे ब्रह्म का चतुर्य चरण कहा गया है, वही शिव है, उसे जानना चाहिए ।'

शक्ति का रूप भी शिव की तरह विश्वव्यापी है । वह सृजन और विनाश की शक्तियों की अधिष्ठात्री है । शिव महाकाल के रूप में प्रस्तुत किए गए है, तो विनाश-शक्ति का प्रतिनिधित्व करने वह काली के रूप आती है । शिव सथम और तप की प्रतिमूर्ति है, जिसे उत्थान की समस्त प्रक्रियाएँ सञ्चालित होती हैं, तो उमा शिव-प्राप्ति के लिए मृत्यु को गले लगाने को तत्पर होती है । वह श्रद्धा की सजीव मूर्ति है । पार्वती के रूप में वह प्रेम और दया का आगार है । जब ग्रासुरी शक्तियाँ अपना विस्तार करने लगती हैं, तो इसे सहन नहीं होना और दिव्य-शक्तियों के समर्थन रूप में वह दुर्गा बनकर उनका विनाश करने के लिए अवतरित होती है । कुमार जैसे पुत्र को वह इसीलिए जन्म देती है, ताकि बढ़ते हुए अनीश्वरवाद ग्रसुरवाद को रोके और उनके सठगन को ध्वस्त करे ।

रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने भवानी को श्रद्धा और शिव को विश्वास का प्रतीक माना है । विश्वास वह शक्ति है जिसके आधार पर सभी साधनाएँ सफल होती हैं । इसके अभाव में साधनाएँ लड़खड़ाने लगती हैं । आत्म विश्वास एक ऐसी महान् शक्ति है जिसके निना समार की सभी प्रगति इसी रहती है । आगे बढ़ने और तैयारी करने वाले से इसका सम्बन्ध आवश्यक है । शिव इसी महाशक्ति के प्रतीक हैं । कथा है कि राम ने लड़ा पर चढ़ाई करने के पूर्व रामेश्वर में शिवलिंग की स्थापना और शिव-उपासना की । इसका अभिप्राय यह है कि उन्होंने अपने आत्म-विश्वाम को जगाया, तभी वह इतना महान् कार्य सम्पादन करने के लिए आगे बढ़े ।

राम ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है—

द्रष्टुमिच्छासि यदरूप मदीय भावनास्पदम् ।

आह्लादिनी परा शक्ति स्तूया सात्त्वतसम्मताम् ॥

तदाराध्यास्तदारामस्तदधीनस्तया विना ।

तिष्ठामि ना क्षण शम्भो जीवन परम मम ॥

—श्रगस्त्य-सहिता

“श्रीराम जी ने कहा—हे शम्भो ! अगर मेरे भावनास्पद रूप को देखने को इच्छा करते हो, तो भक्तजन सम्मत मेरी आह्लादिनी पराशक्ति की मृत्यु करें । मैं उसी के महिन आराध्य हूँ, उसी मे मुझे शाराम ह, मैं उसी के आवीन हूँ । उसके बिना मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकता, क्योंकि वह मेरा परम जीवन है ।”

शक्ति-उपासना का दार्शनिक आधार—

शिव और शक्ति एकत्र हैं, ग्रन्थेद हैं । वे दो दिखाई देते हैं, वार्ष्टव में वे एक हैं । जब वे एक-दूसरे से अनग होते हैं, तो विश्व की शक्तियों में ग्रसन्तुलन उत्पन्न हो जाता है । उदाहरण के लिए एक पुराण-घटना प्रसिद्ध है—जब सती दक्ष के यज्ञ मे जलकर भस्म हो गई, तो शिव पागल-स हो गए । उनकी उन्मत्त ग्रवस्था का कारण शक्ति का शिव से अनग झीना ही है । तारकासुर के नेतृत्व मे आसुरी शक्तियों ने सिर उठाया । एक वरदान के अनुमार वह केवल एक नवजात शिशु शक्ति से ही मारा जाना था । सती ने उसा (पार्वती) के रूप मे हिमालय के यहाँ जन्म लिया । वह शिव प्राप्ति के लिए तप करने लगी । घोर तप के कारण उसका शरीर केवल मात्र ढाँचा रह गया । देवताओं ने शिव की समाधि तोड़कर उनके मन में काम-वासना उत्पन्न करने की योजना बनाई और इस कार्य के लिए कामदेव को नियुक्त किया । शिव ने ग्रपने त्रिनेत्र से कामदेव को भस्म कर दिया । अन्त में शिव पावती की तपस्या से सन्तुष्ट हुए और विश्व-नारी और विश्व-पुरुष का विवाह

एवय हुआ। तभी स्कन्द को जन्म हुआ और तारकासुर का वघ किया जा सका। इस नरह शिव सृष्टि के सर्वोपरि परिष्राता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। समुद्र-मन्थन की घटना भी इसका प्रमाण है। समुद्र-मन्थन का अभिप्राय विकाम की सनातन प्रक्रिया से है। एक विद्वान् के शब्दों में जैसे-जैसे समुद्र-मन्थन आगे बढ़ा, ग्र-धकार की माँ—शराजकता ने क्षुब्ध होकर पाप और मृत्यु का मात्रभूत विष पृथकी पर फैका। इस विष को यदि मुक्त रहने दिया जाता, तो वह सृष्टि का विनाश कर देता। तब शिव सृष्टि के परिष्राण के लिए आये और उन्होंने उस विष को पीलिया ताकि सृष्टि की विकाम योजना में भ्रत्तत अच्छाई ही, इष्ट की विजय हो।”

एक विद्वान् ने शिव और शक्ति के रूप को इम प्रकार व्यक्त किया है—

‘शिव और शक्ति के सम्मिलित स्वरूप को ‘चण्ड’ नाम से अभिहित किया गया है। एक चण्ड में दो दाने हैं लेकिन वे एक-दूसरे के इतने करीब हैं कि एक मात्रम पड़ते हैं और जो एक ही छिनके से विरे हैं, वह दो दाने शिव और शक्ति हैं तथा छिनका माया है। इस सकेत को वैज्ञानिक शब्दों में यो कहा जा सकता है कि शिव धनात्मक आवेश है और शक्ति ऋणात्मक। इन आवेशों से उत्पन्न बल-क्षेत्र ही माया का स्वरूप है, जो आवेशों को घेरता है। व्यात रहे कि उपर्युक्त सकेत जगत् प्रपञ्च के उद्भव की स्थिति का है।’

शक्ति शिव को मनातन साथी है। वह सृष्टि की आद्या रचना-शक्ति है। वह सृष्टि और सहार की दोनों प्रक्रियाओं को सम्पन्न करने की क्षमता रखती है। शिव को तरह उसके भी अनेकों रूप हैं। वह तप की साक्षात् प्रतिमा है। ग्रादर्श पत्नी के रूप में भी उसकी प्रसिद्धि है तभी मनोवाच्छित वर प्राप्त करने के लिए गौरी की उपासना की जाती है। जहाँ पार्वती के रूप में वह नारी के भौतिक रूप का प्रदर्शन करती

है, वर्हा दुर्गा के रूप में योद्धा के रूप में शक्तिशाली भ्रामुरी सगठनों को विनष्ट करती है। जिस तरह शिव मगलकारी और रोद्र दोनों रूप घारण करते हैं, उसी तरह दुर्गा के भी दोनों रूप हैं। हरिवश-पुराण के भ्रनुसार वह अन्वकार और प्रकाश दोनों हैं। मधुर और भयकर दोनों रूप उसने घारण किए हैं। तभी तो शिव और शक्ति की एकता स्थापित हो सकी है, क्योंकि दोनों के गुण और क्रियायें एक जैसी हैं।

विश्व-नारी और विश्व-पुरुष का यह मिलन सदा से अमर रहा है। यह सृष्टि की स्वाभाविक प्रक्रिया है। युग-युगान्तर से भारतीय कल्पना और साहित्य इस तथ्य से प्रभावित है कि पुरुष और शक्ति का मिलन सृष्टि के लिए मगलकारी है।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति महामाया में अभेद है। जिस तरह अग्नि में उसकी दाहिका-शक्ति का निवास रहता है, उसी तरह ब्रह्मशक्ति रहती है। जैसे शिव शक्ति के अभाव में शब्द हो जाते हैं, उसी तरह ज्ञान के बिना ब्रह्म अज्ञाती, क्रिया शक्ति के बिना अकर्मण, और आनन्द के बिना निशानद हो जाएगा। अत शक्ति और ब्रह्म में एकरूपता और अनन्यता है। शक्ति के बिना ब्रह्म क्रियाहीन हो जाता है, तो पुरुष के बिना शक्ति का भी अस्तित्व नहीं है।

श्री माधव पुण्डिलीक परिणाम ने इस सिद्धात को अपने शब्दों में यो व्यक्त किया है—

पुरुष और शक्ति दो अलग और मिन्न सत्ताएँ नहीं हैं, बल्कि अभिव्यक्ति के समय में दिव्य सत्ता की दो स्थितियाँ हैं।

इनमें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। उच्च सत्य के स्तर पर सत्ता की एकता है। विव्य सत्ता स्वामी है, जो उत्पादन का कारण और अधिष्ठिति है। उसकी चेतन-शक्ति, सर्वोच्च शक्ति वह कार्यवाहिका है, जो निज में सृष्टि के उद्देश्य के मूल सत्य को घारण किए अपनी इच्छा को सफन करती है वही अभिव्यक्ति कारिणी है। उसके बिना पुरुष

एक मूल सत्ता ही अनेकानेक भिन्नताओं और रूपों में सम्पूर्ण सृष्टि का सचालन करती है। शक्ति और पुरुष के इस सम्बन्ध के चारों ओर समस्त लीला चलती है। शक्ति के द्वारा पुरुष में जो कुछ भी अवस्थित है, वह वहिभूत होता और यथार्थ बनाया जाता है। अत यह समस्तरीय सृष्टि दिव्य पुरुष में से दिव्य शक्ति के द्वारा आविभूत हुई है। वह सृष्टि, उत्पत्ति के सत्य को अपनी लीला में धारण करती और पुरुष के सकल के अनुसार उसकी अभिव्यक्ति को रूपायित करती है। वह सृष्टि के प्रत्येक स्तर पर तथा सृष्टि की प्रत्येक इकाई में कार्यशील है।'

जित्र और शक्ति में एक अद्वैत और अभेद है, इनको अलग करना सम्भव नहीं है। शक्ति-उपासना का दार्शनिक आधार यह अद्वैत-वाद ही है।

शक्ति का तात्त्विक विवेचन

शास्त्रो मे शक्ति की सहिमा—

शास्त्रो मे शक्ति की महत्ता पर काफी प्रकाश ढाला गया है। एक तात्त्विक श्री उमानन्दनाथ ने पराशक्ति का वर्णन करते हुए लिखा है—“पराशक्ति वह शक्ति है, जिसके लिए लिए ससार का कोई भी भाग अदृष्ट नहीं है, कोई ऐसा नरेश नहीं, जो उमके नियन्त्रण में न हो, कोई ऐसा शास्त्र नहीं जो उसके ज्ञान मे न हो।”

योगिनी-तन्त्र मे कहा है—

कारणावस्थयापन्ना सदाह धातृरूपिणी ।

नाकार्य मे हि यत् किंचित्सदाह ह्यक्षरा परा ॥

कायभाव समापन्ना सदा प्रकृतिरूपिणी ।

सदा ब्रह्मादय. सर्वे सर्वे सर्वेऽप्याविर्भन्ति हि ॥

अर्थात् “कारणावस्था को प्राप्त होकर मे सदा ब्रह्मा-रूप मे रहती हूँ। यह सब कुछ हृष्टगोचर होने वाला मेरा ही कार्य है। मे सर्व ही अक्षररूपिणी परा-शक्ति हूँ। कार्यावस्थापन्न होकर मे प्रकृति-रूपिणी हो जाती हूँ, उसी समय से ब्रह्मादि देव तथा भूत्य सभी उत्पन्न होते हैं।”

आराधना करने के लाभो की चर्चा करते हुए दुर्गा सप्तशती मे कहा गया है—

आराधिता सैव नृणा योग स्वर्गपिवर्गदा ।

अर्थात् “उपासना करने पर वह साधको को योग, स्वर्ग नथा मोक्ष प्रदान करती है।”

शिव शक्ति के विना शब्द बन जाते हैं । इसे वह स्वयं स्वीकार करते हैं—

ईश्वरऽह महादेवि । केवल शक्ति योगत ।

शक्ति विना महेशानि । सदाऽह शवरूपक ॥

शक्ति युक्तो यदा देवि । शिवोऽह सर्वकामद ।

अर्थात् “हे महादेवि पार्वती । केवल शक्ति के योग से ही मैं ईश्वर हूँ । शक्ति के अभाव में मैं शब्द-रूप हूँ । जब शक्ति से मिनता हूँ तभी सर्वकामप्रद कलगणकारी शिव बनता हूँ ।”

महर्षि आत्रेय ने अपनी महिता में शक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन इस प्रकार किया है—

खोपु प्रीतिविगेपण खोष्वगत्य प्रतिष्ठितम् ।

घर्मार्थीं खोपु लक्ष्मीञ्च खोपु लोका प्रतिष्ठिता ॥

—चरक सहिता, चिकित्सा स्थान श्र० २

“प्रीति विशेष प्रकार से छियों में ही रहती है । सन्तान की जननी भी वही होती है । धर्म उनमें रहता है, इमलिए उन्हें घमपत्नी कहते हैं । अर्थ उनमें रहता है, इमलिए उनमें लक्ष्मी का निवास मानते हैं । वे शक्ति-रूप हैं, उनमें सारा विश्व प्रतिष्ठित है ।”

ब्रह्मसूत्र में कहा है—मर्वोपेना तददशनात् (द्वितीय अध्याय, प्रथम पाद) “वह पराशक्ति सर्वसामय्यं से युक्त है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है ।”

ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य (१।४।३) में कहा है—

न हि तया विना परमेश्वरस्य स्तृत्य व्य सिद्ध्यति ।

शक्ति रहितस्य यस्य प्रवृत्यनुपपते ॥

‘उसके विना ईश्वर सृष्टि का उत्पादन नहीं कर सकते क्योंकि वह शक्ति के विना क्रियाशील नहीं हो सकते ।’

भगवान् शङ्कराचार्य ने भी कहा है—

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति साविद्या त्रिगुणात्मिका परा ।
कार्यनुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिद प्रसूयते ॥

“ईश्वर की अव्यक्त नाम वाली शक्ति जिसने इस समस्त जगत् की सृष्टि की है, अनादि, अविद्या, त्रिगुणात्मिका और जगत् रूपी कार्य के परे हैं। कार्यरूपी जगत् को देखकर ही शक्ति रूपी माया की सिद्धि होती है।”

शक्ति के विभिन्न प्रकार—

शक्ति एक व्यापक तत्व है। विश्व की हर वस्तु में चाहे वह जड हो या चेतन—देखा जा सकता है। जीवन के हर क्षेत्र में इसी के चमत्कार दिखाई देते हैं। शारीरिक शक्ति की कौन उपेक्षा कर सकता है? जगत् के सभी कार्य इसी के माध्यम से होते हैं। इसी की कमी का नाम रोग है। जहाँ यह सतेज रहती है, वहाँ रोग के कोटाणु आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकते। मानसिक शक्ति का भी हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी निर्बंलता से ही चिन्ताएं, शोक, पाप, ताप, सर उठाते हैं। बौद्धिक शक्ति का विकास मानव-जीवन का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है। आज विज्ञान के क्षेत्र में जितने आश्चर्य-जनक चमत्कार दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वह इसी महाशक्ति का परिणाम हैं। शाश्वत सुख-शाति के लिए आत्म-बल की अपेक्षा रहती है। सबसे ऊँचे शिखर पर स्थित परमात्म-बल है, जिसके स्पर्श मात्र से हर क्षेत्र में शक्ति के स्रोत खुल जाते हैं। इस शक्ति का लाभ तभी उठाया जा सकता है, जब हमारी श्रद्धा-शक्ति विकसित हो चुनी हो। यह परमात्म-शक्ति के आवाहन की कुञ्जी है।

ममाज-कल्याण के लिए, सामाजिक कुरीतियों, दोषों और कुप्रवृत्तियों के शमन के लिए सघ शक्ति की अपेक्षा रहती है। राष्ट्रीय उन्नति के लिए भी उसी शक्ति को विकसित करना होता है। विश्व-

शाति की नींव में भी यही काम करती है। भौतिक क्षेत्रों में तो इसको प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। विद्युत का उदाहरण लें—इस शक्ति से हजारों लाखों क्ल-कारयाने चल रहे हैं, जिनमें मानव-हित की अनेकों वस्तुओं का निर्माण होता है। यह सैकड़ों और हजारों व्यक्तियों के श्रम को बचाती है। शक्ति के यह भिन्न भिन्न प्रकार हैं। तन्त्र के अनुसार शक्ति के विभिन्न प्रकार इस तरह वर्णित किए गए हैं—

शक्ति जब गौरी या लक्ष्मी का रूप धारण करती है, तो वह परमात्मा की सभी कामनाओं को पूरा करने की क्षमता वाली होती है। इसलिए इसे एक तरह वी शक्ति कहते हैं। इच्छा और माया के भेद यह दो प्रकार की हो जाती है। दोनों प्रकार की शक्तियों में उत्पत्ति और विनाश, पराय अपरा का भी उदाहरण आता है।

तीन प्रकार की शक्तियों में यह नाम आते हैं—१ सात्त्विक, राजसिक, तामसिक २ ज्ञान, इच्छा, क्रिया ३ आदित्य, अग्नि, वायु ४ ब्रह्मा, विष्णु, महेश ५ महामरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली ६ लक्ष्मी, सरस्वती, गायत्री ७ सफेद, लाल, काला वर्ण।

१३ वर्ष से २५ वर्ष की युवतियों में जो प्रसूता न हुई हो, उनमें रूप, योवन, शील, सौभाग्य चार प्रकार के भेद होते हैं।

पांच प्रकार की शक्तियों में रात्रा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती और स'विद्री का नाम आता है।

भौतिक शक्तियों में यह छ प्रकार की है—ताप, तडित, चुम्बक, मध्यापर्दण (Energy of Gravitation), आनोक और ग्रासायनिक। तन्त्र में पट्टशक्ति के नाम इस प्रकार आते हैं—पराशक्ति, ज्ञान-शक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, कुराइलिनी और मातृका शक्ति।

पृथ्वी, ग्रन्थि, भूचक्र-भ्रमण, दिशाएँ, जगदाघार, वायु और ग्राकाश—ये सात प्रकार की शक्ति हुईं।

अष्ट-सिद्धिर्या भी प्रसिद्ध ही हैं—ब्रह्माणी, वैष्णवी, माहेश्वरी, हन्द्राणी कौमारी, नार्सिही, वाराही और वैष्णवी यह आठ प्रकार की शक्तियाँ हुईं। मातृकाएँ १६ प्रकार की होती हैं। पीठ ५१ माने जाते हैं। ६४ योगनिधि प्रसिद्ध हैं। १०० रूपों में भी शक्ति का वर्णन किया गया है। प्राणी व पदार्थ भेद से तो यह 'अगणित' की सज्जा को प्राप्त हो जाती है।

श्र्वथ—

परब्रह्म तत्त्व को शक्ति की सज्जा दी जाती है—‘सर्व खलिवद ब्रह्म’, ‘एक मेवाद्विनीय ब्रह्म’ आदि शृति-वाक्यों में जो एक ही चित्तत्व ‘ब्रह्म’ नाम से वर्णित किया गया है, उसी को चिदानन्दमयी शक्ति कहते हैं।

शक्ति को दूनरे शब्दों में पावर (Power) एनर्जी (Energy), सामर्थ्य और योग्यता कहते हैं। समार की किसी भी वस्तु को उसके गुण घर्म और विशेषता के कारण सम्मानित किया जाय या उसकी आवश्यकता को अनुभव किया जाय, उसके मूल में शक्ति की विद्यमानता है।

ध्यवहारिक रूप में शक्ति का अर्थ बल ही है। परमार्थ में अर्थ 'उपाधि' किया जाता है। 'उप' का अर्थ है पास में, और आ+धि का अर्थ है रखना। इसका अभिप्राय यह है कि वस्तुओं के गुण, कर्म, स्वभाव में जिस गुण के कारण परिवर्तन होना है, वही शक्ति कहलाती है।

देवी भागवत (६।२।१०) में शक्ति शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई है—

ऐश्वर्यं वचनं शश्च क्ति पराक्रम एव च ।

तत्स्वरूपा तयोर्दर्शी सा शक्ति परिकीर्तिता ॥

“ए नाम ऐश्वर्य का है और कितनाम पुरुषार्थ का है। ऐश्वर्य और पुरुषार्थ स्वरूप व दोनों के देने वाली ‘शक्ति’ कहलाती है।”

ब्रह्मवैवर्तं पुराणे के अनुमार—

समृद्धिवृद्धिसम्पत्तियशसा वचनो भग ।

तेन शक्तिर्भगवती भगरूपाच सा सदा ॥

“समृद्धि, वृद्धि, सम्पत्ति और यश—इन चार ग्रण्डों का प्रकट करने वाला ‘भग’ यह शन्द होता है। इससे युक्त शक्ति भगवती है और वह स्वयं सदा भग रूप वाली है।”

अमरकोश में शक्ति के यह ग्रन्थ वर्ताए गये हैं—

कास्त्र सामर्थ्ययो शक्ति ।

शक्ति पराक्रम प्राण ।

षड्‌गुणाशक्त्यस्तित्त्व ।

इससे उपरोक्त ग्रण्डों की पुष्टि होती है।

“शक्लृशक्तो” धातु से ‘क्तिरु’ प्रत्यय करने पर शक्ति शब्द बनता है। जिम पदार्थ में जो गुण होता है अथवा ये उसमें काय उत्पन्न करने की जो योग्यता और क्षमता होती है, उस उस पदार्थ से भलग नहीं किया जा सकता जैसे अग्नि से उसको दाह-शक्ति को इसी को शक्ति कहते हैं।

माकरेडेय पुराण में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

यच्च किञ्चिच्चद् कवचिद् वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।

तस्य सर्वस्य या शक्ति. सा त्वम् ॥

सद और असद दोनों तरह की वस्तुओं में जो सत्ता ‘तत्तद-वस्तुता’ है, वही शक्ति है।

सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण बताया जाता है—ब्रह्म का प्रादि-सक्त्य ‘एकोऽहं वह स्याम्’ भर्त्य एक हूँ, वहूंत हो जाऊँ—यही प्रादा-शक्ति है।

जो तत्त्व आदिभूत और प्रकाश-रूप है, वही शक्ति है। आदिभूत से अभिप्राय यह है कि वह सबकी आदि है, उसका कोई आदि नहीं है। मार्कण्डेय-पुराण में कहा भी है—

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीखिगुणा परमेश्वरी ।

लक्ष्यालक्ष्यस्त्रह्पा सा व्याप्य कृत्स्न व्यवस्थिता ॥

“समस्त हश्य प्रपञ्चो को व्याप्त करके स्थित, व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपों वाली, त्रिगुणों से युक्त परमेश्वरी महालक्ष्मी सबकी आदिभूता है।”

प्रकाशरूपा का यह ग्रन्थ है कि वह सबको प्रकाशित करती है, वह किसी से प्रकाशित नहीं होती। कहा भी है—

प्रकाशरूपा प्रथमे प्रयाणे अमृतरूपिणी इति, अत ।

सा एव सर्वाराध्या स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुरिति ॥

अर्थात् “श्रुति में ‘सर्वाराध्या’ पद यह दिखलाया गया है कि सभी देवता और असुरों द्वारा वह प्राराबना करने योग्य है।”

व्याख्या—

स्वामी शिवानन्द ने ‘शक्ति’ की व्याख्या इस प्रकार से की है—

“शक्ति का आशय उस सत्ता से है, जो समग्र सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय का मूल है, वास्तव में जैसा सामान्यतः माना जा रहा है, देवी-पूजा यह कोई मम्रदाय अथवा किसी तरह के ‘तात्रिक-चक्र’ का गुप्त भेद नहीं है भयवा, जैसा जन-सावारण का विश्वास है। यह देवी विष्णु या शिव की ग्रदींगिनी के रूप में भी नहीं है। देवी अथवा शक्ति का उल्लेख हम सबक्ष और सब शक्तिमान चराचर जगत् की उत्पत्ति के कारण रूप में ही करते हैं। दूसरे शब्दों में कहे तो जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण भक्त-ब्रह्म का व्यक्त स्वरूप यह ‘शक्ति’ ही है, परमारम्भ इसी दिखाई पड़ने वाली शक्ति के द्वारा जगत् की उत्पत्ति,

मिथि करता है, शक्ति के द्वारा ही सर्वालु, महार और इसके द्वारा ही लय करता है। शक्तिमान् एक ही है। सत्ता और सत्ता के मूल को पृथक् नहीं किया जा सकता।”

इसीलिए शक्ति-पूजा का अथ प्रभु भी महिमा और प्रभुत्व तथा पर्वोपरि होने की पूजा है, वह सर्वशक्तिमान् की आनन्दमय सेवा है। यह बड़े खेद की वात है कि किनने ही लोग देवी को ‘खून की प्यासी हिंदू देवी’ का नाम से याद करते हैं। देवी केवल हिन्दुओं की जायदाद नहीं है—‘देवी’ किसी एक विशेष वर्म से मम्बन्धित भी नहीं है। इनना ही नहीं, देवी और देव की मित्रा निगमेऽपर भी यावारित नहीं है, हमको यह कभी नहीं भूनना चाहिए कि देव की प्रत्यक्ष शक्ति ही देवी कही जाती है। ‘देवी’ ‘शक्ति’ और दूसरे काने ही नाम और उनक भिन्न-भिन्न स्वरूप तो मनुष्य के सकुवित ज्ञान के परिणामस्वरूप निर्दिष्ट किए गए हैं। उस शक्ति की कोई व्याख्या अन्तिम नहीं कही जा सकती, मूल शक्ति तो मनुष्य की त्रुटि से परे (प्रगम्य) है।

सच्ची वात तो यह है कि समग्र जगत् किसी प्रज्ञार शक्ति का ही उपासक है, वरोंकि समार में एक भी प्राणी ऐसा नहीं है, जो किसी-न-किसी तरह की शक्ति की अभिनापा न रखता हो। भौतिक शास्त्र और विज्ञान के उपासकों ने भी यही मिथि किया है कि जगत् में सब कुछ अनन्त क्रियात्मक है, इस क्रिया-शक्ति को प्रतिक्षण स्थिर रखने वाली देवी ‘शक्ति’ वाली एक स्वरूप है।

वैज्ञानिक अर्थ—

शक्ति का वैज्ञानिक अर्थ भी है। विज्ञान, परमाणु की परिभाषा इस प्रकार करता है कि पदार्थ को, जिस मीमा के आगे विभाजित न किया जा सके, उसे परमाणु कहते हैं। शक्तिवाद का मिथात एक एवं आगे जाकर कहता है कि परमाणु विभिन्न प्रकार की शक्तियों का केन्द्र है। त्रित उरद्ध सूर्य के चारों ओर उक्त के प्रदृ-उपग्रह चक्र काटते रहते

हैं और वह एक सौर-मण्डल कहलाता है, उसी तरह परमाणु भी शक्तियों का केन्द्र है। साधारणता, यह धारणा है कि परमाणु का धर्म शक्ति है—यह ठीक नहीं है, न ही प्रकृति, शक्ति से कोई अलग पदार्थ है। यह दोनों एक हैं। शक्ति से भिन्न विश्व में कोई पदार्थ है ही नहीं।

तान्त्रिक दृष्टि में शिव को प्रताश और विमर्श को ही शक्ति कहते हैं।

शक्ति का पर्याय—प्रकृति—

गीता में शक्ति को माया (४।६), योग (६।५) और प्रकृति आदि नामों से अभिहित किया गया है।

भगवान की स्वरूपभूता आङ्गादिनी शक्ति जीवभूता, परा-प्रकृति आदि शक्ति के अन्तर्गत आते हैं।

प्रकृति इसका पर्यायवाची शब्द है, उसका अर्थ करते हुए देवी-भागवत १।१५-८ में कहा गया है—‘प्र’ का अभिप्राय प्रकृष्ट (उत्कृष्ट) और ‘कृति’ का अर्थ है सृष्टि। अत जगत् की उत्पत्ति में उत्कृष्ट को प्रकृति कहा है।

व्रह्मवंवर्तं-पुराण २।१।५ इसी प्रकार प्रकृति शब्द के अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है—

प्रकृष्टवाचक प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचक ।
सृष्टौ प्रकृष्टा या प्रकृति सा प्रकीर्तिता ॥

“‘प्र’ का अर्थ प्रकृष्ट है और ‘कृति’ सृष्टिवाचक है। सृष्टि-कार्य में जिसकी प्रकृष्टता (उत्कृष्टता) है, उस देवी को प्रकृति कहा जाता है।”

यह प्रकृति का तटस्थ लक्षण है। ‘प्र’ शब्द प्रकृष्ट सत्त्वगुण में वर्तता है, ‘कृ’ शब्द मध्यम रजोगुण में और ‘ति’ शब्द तमोगण में-

वर्तंता है। यह प्रकृति का स्वरूप-नक्षण है, जैसा कि सादृश-शास्त्र में कहा है—

सत्वरजस्तमसा साम्यावस्था प्रकृतिः ।

इन तीन गुणों से ही तीन देवताओं की—सत्वगुण से विष्णु की, रजोगुण से ब्रह्मा की और तमोगुण से लक्ष्मी की उत्पत्ति करके भगवती जगत् का पालन, उत्पत्ति और लय करती है।

प्रधानिक रहस्य में भी लिखा है—

स्वरथा सह सम्मूय विरच्चोऽण्डमजोगनत् ।

पुषोष पालयामास तल्लश्म्या सह केशवः ।

सज्जहार जगत् सव सह गौर्या महेश्वर ॥

“ब्रह्मा, विष्णु और महेश अपने अर्धाङ्गीभूत त्रिवित्र शक्ति—सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी के सहयोग से जगत् का जनन, पालन और लय करते हैं।”

अह प्रकृति रीशानी सर्वेशा सवरूपिणी ।

सवशक्ति स्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत् ॥

“प्रकृति ने कहा—मैं इशानी प्रकृति हूँ जो कि सबकी स्वामिनी और सर्वरूपिणी हूँ। समस्त शक्तियों के स्वरूप वाली हूँ और मेरे हारा ही यह सारा जगत् शक्ति वाला है।”

इसी पुराण में एक और स्थान पर प्रकृति को जगन्नननी कहा गया है—

जगन्माता च प्रकृति ।

इसके महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—

प्रधानाशस्वरूपा च प्रकृतेश्च वसुन्धरा ।

श्राधार रूपा सर्वेषा सर्वंशस्यप्रसूतिका ॥

रत्नाकरा रत्नगर्भा सर्वंरत्नाकरालया ।

प्रजाभिश्च प्रजेशेश्च पूजिता वन्दिता सदा ॥

सर्वोपजीव्यरूपा च सवसम्मद्वियामिनी ।
यथा विना जगत्सर्वं निराधारं चनाचरम् ॥

अर्थात् “यह वसुन्धरा प्रकृति को प्रधान अश श्वरूप वाली है । सबको आधार रूप वाली है तथा सम्पूर्ण दृष्टियों को सम्पन्न करती है । रत्नों की खान और अपने मध्य में बहुत-मेरत्न रखने वाली । सभी प्रकार के रत्नों की खान का घर है । इसकी सब प्रज्ञा और के स्वामियों द्वारा सदा बन्दना एवं अचंना की गई है । यह सभी प्राणियों की उपजीव्य रूप वाली होती है । इसके बिना यह सम्पूर्ण जगत् निराधार है, चाहे वह चर हो या अचर (स्थावर) हो ।”

गीता में भी कहा है—

मयाध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम् ।

अर्थात् “मुझ अध्यक्ष के द्वारा ही यह प्रकृति इस चराचर जगत् को प्रसूत किया करती है ।”

गीता (६।६) में कहा गया है—

प्रकृतिं स्वामवष्टम्य विसृजामि पुनः पुनः ।

अर्थात् ‘मैं अपनी प्रकृति को अवघूम्य करके ही बार-बार विसृष्टि किया करता हूँ ।’

गीता (४।६) में इसे माया कहा गया है—

प्रकृतिं स्वामविष्टाय सम्भवाम्यात्ममायया ।

“अपनी ही प्रकृति में अविष्टि होकर मैं अपनी माया से जन्म लिया करता हूँ ।”

गीता (६।५) में इसे ‘योग’ कहा है—

पश्य मेरोगमेश्वरम् ।

‘देखो, यह कौसो मेरी ईश्वरीय करनी या योग-सामर्थ्य है ।’

प्रकृति शब्द के तीन अक्षर प्र, कृ, ति क्रमशः सत्, रज और त-

के प्रतीक हैं। देवी-भागवत में इमर्नी पृष्ठि करते हुए कहा गया है कि 'प्र' मत्वगुण का, 'कृ' रजोगुण का और 'ति' तमोगुण का शोतक है। यह मत्, रज और तम क्रमशः ज्ञान, इच्छा और क्रिया के प्रतीक हैं।

प्रकृति के यह तीन गुण 'परमा शक्ति' के तीन देवना माने गये हैं—

निर्गुणा या सदा नित्या व्यापकाऽविकृता शिवा ।
योगगम्याऽखिलाधारा तु गया य च सम्भिता ॥
तस्यास्तु मात्त्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा ।
महालक्ष्मी सरस्वती महाकालीति च स्त्रिय ॥
तासा तिमृणा शक्तीना देहानीकागलक्षणात् ।

"वह परमा शक्ति निर्गुण, सदा नित्य, व्यापक, विकार रहित, योगगम्य और सारे विष्व का धाधार है। व्यक्त होने पर वह मत्, रज, तम—तीन तरह की हो जाती है, जिन्हें महालक्ष्मी, महामर्गस्वती और महाकाली तीन ऋचावचक नाम दिए गए। इनके तीन पूर्ण शरीरपारी देवना हैं—विष्णु, ब्रह्मा और लक्ष्मी जो सात्त्विक, राजसिक और तामसिक शक्तियों का प्रतिनिवित्व करते हैं।"

इस परमा शक्ति को परमात्मा की मूल प्रकृति कहा जाता है। परमात्मा सर्वशक्तिमान् नियामक, नित्य, मनात्मन, निरग्कार, निर्विकार, निर्गुण, अचिन्त्य, अव्यक्त व अब्रह्म है। परमात्मा की मूल प्रकृति परमा शक्ति में भी इन गुणों का होना स्वाभाविक है। अन्तर केवल इतना है कि परमात्मा विकाररहित है, तो शक्ति विकारों की जननी है। शक्ति स्वयं सत्य नित्य है, परन्तु अनित्य पदार्थों की सृष्टि करती है।

प्रपञ्चसार-तन्त्र में प्रकृति का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

प्रकृति निर्चला परावाग्रूपिणी परप्राणवात्मिका
कुण्डलिनी शक्ति ।

अर्थात् "प्रकृति भट्टल, परा-वाणी के रूप वाली पर-प्रणव के स्वरूप वाली कुण्डलिनी शक्ति है।"

अत्र मच्छब्देन स्वसवेद्यम्बहुगा सयुक्ता परा प्रकृति गृह्यते ।

अथात् “यहाँ मच्छब्द से स्व सवेद्य स्वरूप वाली है पर्यात् स्वय ही उसके स्वरूप का ज्ञान किया जा सकता है । वह परा-प्रकृति कही हुँ ग्रहण की जाती है ।”

प्रकृतिरिहापरोपलक्षिता परा विवक्षिता ।

अथात् “यहाँ पर प्रकृति पर उपलक्षित होने वाली परा कही गयी है ।”

प्रकृति की सांख्य सम्बन्ध व्याख्या—

सांख्य शास्त्र के अनुसार जगत् के मत पदार्थों का जो मूल द्रव्य है, उसे प्रकृति कहते हैं । सन्, रज व तम्—यह तीन गुण मूल द्रव्य में आरम्भ से ही रहा करते हैं, इसलिए इन तीन गुणों को ही प्रकृति कहा गया है ।

प्रकृति को ही ‘परमाशक्ति’ कहा गया है—

प्रकृतौ विद्यमानाया विकृतिर्न वलोयसी ।

प्रकृति परमा शक्तिर्विकृतिप्रतिविम्बता ॥

“जब तक प्रकृति विद्यमान रहती है, तब तक विकृति शक्तिशाली नहीं हो सकती । प्रकृति ही परमा शक्ति है और विकृति ही उसकी छाया ।”

स च ब्रह्मस्त्ररूपा च नित्या सा च सनातनी ।

यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाअग्नो दाहिका स्थिता ॥

“और वह ब्रह्म के स्वरूप वाली, नित्य और सनातनी (सदा से चली आने वाली) है । जिस प्रकार आत्मा है, वैसे ही शक्ति है, जो अग्नि में दाह करने वाली निषु प्रकार स्थित रहा करती है ।”

सांख्य के अनुसार सब रज-तम्—मूल प्रकृति के तीन गुण हैं, जो कभी साम्यावस्था में रहते हैं और कभी विषम अवस्था में । जब

यह गुण मान्यावस्था में होने हैं, तम समय को 'प्रलय' कहा जाता है। मूल प्रकृति और पुरुष के अतिरिक्त और कोई नहीं होता। किर जब प्रकृति में मंसोम होता है, तो तीनों गुणों में न्यूनाधिकृता होने लगती है और सर्वप्रथम मत्त्वगुण की प्रवानता से महत्त्व अथवा वुद्धि तत्व की उत्पत्ति होती है। जब अहङ्कार में तमोगुण की प्रवनता होने लगती है, तो शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—इन सूक्ष्म 'तन्मात्राओं' की उत्पत्ति होती है। जब तम की प्रविक्ता बढ़ती है, तब इन सूक्ष्म तन्मात्राओं से पाँच स्थूल भूतों ग्राह्यत् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। इन्हीं पाँच महाभूतों के मिलने और नीनों गुणों की न्यूनाधिकृता के फलस्वरूप वाद में भाँति-भाँति को स्थावर जगम मृष्टि प्रकट होती है।

प्रकृति के विभिन्न रूप—

प्रकृति दो प्रकार की होती है—परा और अपरा। इन दोनों से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं—

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपवारय ।

—गीता ७।६

प्रकृति के आठ प्रकार बताए गए हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, वुद्धि और अहङ्कार।

भूमिरापोऽनलो वायु ख मनो वुद्धिरेव च ।

अहङ्कार इतीय में भिन्ना प्रकृतिरष्टवर ॥

—गीता ७।४

इसे अपरा प्रकृति कहते हैं और यह गीता (७।५) के मनुसार निम्न श्लोकी की है। परा उच्च श्रेणी की मानी गई है।

अपरेयमितस्त्वन्या प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीवभूता महावाहो ययेद धार्यते जगत् ॥

परा प्रकृति—

परा प्रकृति के सम्बन्ध में जारदा-तिनक तत्र में कहा है—

नित्यानन्दवपुर्निरन्तरगलत्पञ्चाशदण्, कमाद् ।

व्याप्त येन चराचरात्मकमिद शब्दार्थरूप जगत् ॥

शब्दवृत्त्य यटूचिरे सुकृतिनश्चैनन्यमन्तर्गतम् ।

तद्वौव्यादनिश शशाङ्कसदन वाचामधीश मह ॥

“नित्य ही आनन्द-स्वरूप से युक्त निरन्तर गलत् पचास वर्ष वाला क्रम से है, जिसके द्वारा यह ममूर्ण चर और अचर शब्दार्थ रूप वाला जगत् व्याप्त है। सुकृतीगण, जिसको शब्द-वृत्त्य कहते हैं, यह चेतन्य अन्तर्गत है, वह वाणियों का अग्रीश चन्द्र के सदन वाला मह अर्थात् तेज आपकी सर्वदा रक्षा करे।”

परा का स्पष्टीकरण मुराहकोपनिषद् में किया गया है। महर्षि अङ्गिरा के पाम शौनक मुनि ने आकर प्रश्न किया—‘भगवन्। किसके जान लेने पर यह सब जाना हुमां होता है? इतना ही मुझे बताइए’ (१११३)। महर्षि अङ्गिरा ने उनने कहा कि ‘ब्रह्मज्ञानी दो विद्याप्राप्तों को ही जानने योग्य बताते हैं, उनमें एक परा और दूसरी अपरा कही गई है’ (१११४)। अगले इलोक में परा की व्याख्या की है—

परा यथा तदक्षरमधिगम्यते । (१११५)

“जिसके द्वारा अविनाशी परमेश्वर तत्व पूर्वक जाना जाता है, उसे परा-विद्या कहते हैं।”

इस पर श्री शकराचार्य की व्याख्या इस प्रकार है—

पराविद्यागम्यम् असाध्यसाधनलक्षणम्, अप्राणमनोगोचरम् अतीन्द्रिया विषय शिव शान्तम् अविकृतमक्षर सत्य पुरुषाख्यम् ।

“परा विद्या के द्वारा जानने के योग्य प्रसाध्य साधन के स्वरूप वाला, प्राण तथा मन गोचर (प्रत्यक्ष) न होने वाला, इन्द्रियों के द्वारा

न जान। जानने वाला तथा इन्द्रियों का श्रविष्य, शिव-कल्याण तथा पूजन स्वरूप, परम शान्ति, विकार में रहित, अक्षर (अविनाशी), मत्य और पुरुष नाम वाला है।”

श्री ज्ञानेश्वर ने घण्टनी ‘भावार्थ दीपिका’ में कहा कि हम लोगों की हृषि में यह श्रेष्ठ भक्ति है, शेषों की हृषि में ‘शक्ति’ और ज्ञानियों की हृषि में ‘स्वसंवितो’ है।

ध्यास ने इने ‘सनानन धर्म’ कहा है—

सत्य दान तप शोच सन्तोषो ही क्षमाज्वम् ।

ज्ञान शमो दया ध्यानमेषो धर्मं सनातन ॥

“सत्य, दान, तप, शोच, सन्तोष, क्षमा, क्रज्जुना (सरलता), ज्ञान, शम, दया और ध्यान—यही मनातन धर्म का स्वरूप है।”

गीता ७।५ में परा को जगत् को धारण करने वाली उच्च श्रेष्ठी की जीवन स्वरूपी प्रकृति कहा है। गीता १४।२७ में इसे ‘शाश्वत धर्म’ की सज्जा दी गई। गीता १५।३ में इसे ‘देवी सम्पत्ति’ घोषित किया गया है। गीता के अनुसार—

राजविद्या राजगुह्य पवित्रमिदमुत्तमम् ।

प्रत्यक्षावगम धर्म्य सुखं कर्तुं मव्ययम् ॥

“यह ज्ञान सब गुह्यों में राजा अर्थात् श्रेष्ठ है। यह समस्त विद्याओं में श्रेष्ठ, पवित्र, उत्तम और प्रत्यक्ष बोध देने वाला है। यह माचरण करने में सुखदायक, अव्यय और धर्म्य है।”

अपरा प्रकृति—

गीता ७।४ में अपरा प्रकृति का वर्णन करते हुए कहा गया है—

भूमिरापोऽनिलो वायु ख मनो बुद्धिरेव च ।

अहकार इतीय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

“पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—यह पाँच महाभूत मन, बुद्धि और महद्वार—इन पाठ प्रकारों में मेरी प्रकृति विभाजित है।”

भगवान् ने इसे मरण कहर निमित्त शेगी सो कहा है। इससे भिन्न को उन्होंने परा कहा है—

अपरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथववेद गिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दो ज्योतिःप्रमिति ।

“अपरा विद्या में चारों वेद, शिक्षा, शब्द, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिःप्रमिति आते हैं।”

मुराडक्षीपनिषद् (१।१।५) में अपरा की परिभाषा करते हुए कहा है—

अपराविद्यागोचर समार व्याकृतविषय साध्यसाधनलक्षण अनित्यम् ।

श्री शक्तराचार्य ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है।

अपराविद्यागोचर समार व्याकृतविषय साध्यसाधनलक्षण अनित्यम् ।

“यह समार अपरा विद्या के द्वारा जाना जाता है—व्याहृत विषयों वाला है और साध्य एव साधन के स्वरूप वाला तथा अनेन्य है।”

साध्यकार के अनुसार अपरा की व्याख्या इस प्रकार से की जा सकती है—

प्रकृति के आठ विभाग माने गये हैं और उसमें से सोलह विकारों की (विकृति, उत्पत्ति कही गई है) आठ प्रकृतियाँ थे हैं—

१. मूल प्रकृति, २. महत्तत्व (बुद्धि), ३. अहङ्कार, ४. शब्द, ५. स्वर्ग, ६. रूप, ७. रस, ८. गत्व। शब्द से लेकर रस तक पाँच तन्मात्राएँ कही जाती हैं। सार्थक प्रकृति उसको कहते हैं, जिससे भागे चलकर कोई ग्रन्थ तत्त्व उत्पन्न हो। इसीलिए बुद्धि और अहङ्कार के साथ तन्मात्राओं को भी प्रकृति माना गया है, क्योंकि उनसे ही सोलह विकृतियों की उत्पत्ति होती है। सोलह विकृतियाँ इस प्रकार हैं—

पाँच स्थूल भूत—प्राकाश, वायु, प्रग्नि, जल और पृथ्वी। पाँच

ज्ञानेन्द्रियां—योग, त्वचा, नय, रमना और धाम। पाँच कर्मेन्द्रियां—वाणी, हाय, पैर, उपस्थ और गुदा, ग्यारहवाँ मन कहा गया है।

यह पाँच स्थूल भूत तथा मन महित ग्यारह इन्द्रियां प्रत्यक्ष हैं और इनमे आगे चलकर किसी प्रथ्य तत्त्व की उत्तरति नहीं होती, इसलिए इन्हें विकृति कहा गया है। यह ग्यारह तिन मूर्ख तन्मात्रामा से उत्पन्न होती है, वे अनुभवगम्य हैं। जब कोई माधक अन्तमुख होकर ध्यान करता है, तो उने मूदम और निमन शब्द, स्वर्ण, रूप, रम यार गन्त का ज्ञान होता है। जब इन पाँचों के भी मूल उद्गम की खोज की जाती है, तो 'अहवृत्ति' का साक्षाৎकार होता है। 'अहङ्कार' से भी ऊपर उठ कर विचार करने में 'महत्तत्व' अथवा 'अभिप्रतावृत्ति' के दर्शन होते हैं। पर इसके ऊपर जब और किसी कारण का पता नहीं चलता, तो अनुमान द्वारा 'महत्तत्व' को उत्पन्न करने वाली शक्ति को मूल प्रकृति मन लिया जाता है, जो कि प्रनादि है। इस प्रकार महर्षि करिल ने जडतत्त्व के जो चौबीस विभाग बनाए गए हैं, वे प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य हैं, केवल तर्क द्वारा सिद्ध नहीं किए गये हैं। यह मूल प्रकृति ही तीन गुणो-सत् रज, तम् की न्यूनाविकृता के कारण जगत् के विभिन्न तत्त्वों तथा नाम-रूपों में प्रकट होकर विश्व-रचना करती रहती है।

परा और अपरा के विभिन्न पर्याय—

इस परा और अपरा शब्द को चिच्छकित और जडा भी कहा जाता है। 'चिच्छक्ति' का 'अजडा' नाम भी है। गीता १५।१६ में इनकी 'शक्तर' और 'क्षर' सज्जा भी दी गई है—

द्वाविमो पुरुषो लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।

क्षर सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥

"इस लोक में क्षर और शक्तर दो पुरुष हैं। नष्ट होने वाले भूतों को क्षर कहा जाता है और इनके मूल में निवास करने वाले अव्यय तत्त्व कूटस्थ को शक्तर।"

सारुण दर्शन में अध्यक्त प्रकृति को अक्षर और प्रकृति से होने होने वाले पदार्थों को क्षर कहा है ।

परमाणुक्ति के हन दो अङ्गों को 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' कहा गया है । गीता १३।२६ में कहा है—

यावत्सञ्जायते किंचित्सत्त्व स्थावरजगमम् ।

क्षेत्रेक्षेत्रज्ञसयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥

"हे भरत श्रेष्ठ ! याद रखो, कि स्थावर या जगम फिसी भी वस्तु की रचना क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के सहयोग से होती है ।"

क्षेत्र का अर्थ है—शरीर, और क्षेत्रज्ञ का अर्थ है—आत्मा । तिलक की भाषा में "मानसिक और शारीरिक सब द्रव्यों और गुणों का प्राणरूपी विशिष्ट चेतनायुक्त जो समुदाय है, उसी को क्षेत्र कहते हैं और उस शरीर का स्वामी क्षेत्रज्ञ है ।

इस तरह से 'जड़ा' और 'अजड़ा', 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ', 'धर' और 'अक्षर', 'अपरा' और 'परा' प्रकृति उस परमाणुक्ति के ध्यक्त रूप हैं, जिससे सृष्टि की रचना हुई है । इससे स्पष्ट है कि यह शक्ति-तत्त्व चेतन-अचेतन दोनों है ।

प्रकृति और माया—

सारुण-शास्त्र की त्रिगुणात्मक प्रकृति को ही गीता में माया कहा है । इससे मोक्ष की प्राप्ति नहीं की जा सकती । भगवान ने इसे गुणात्मक और दिव्य माया को दुस्तर कहा है—

दैवी हयेषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

—गीता ७।१४

अगले श्लोक में कहा है—

नमा दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधमा ।

मायायापहृतज्ञाना आसुर भावमात्रिता ॥

—गीता ७।१५

“माया ने जितका ज्ञान नष्ट कर दिया है, ऐसे मूढ़ और दुष्कर्मी नराधम आमुरी बुद्धि में पड़कर मेरी शरण से नहीं आते ।”

१५२३ अध्याय में अश्वत्य वृक्ष का उदाहरण देकर भगवान ने समझाया है कि उसकी ऊर ऊर है और शाखाएँ नीचे हैं। इसे ब्रह्म-वृक्ष और सासार वृक्ष भी कहा जाता है। अनुगीता में इसे ‘ब्रह्मारण्य-ब्रह्मवन्’ कहा गया है। वेदान्त दर्शन इसे ‘भगवान की माया का पसारा’ और सार्थ-इशा न ‘प्रकृति का विस्तार’ कहता है। विष्णु सहस्रनाम में इसे ‘वारुणी वृक्ष’ कहा है। इसकी व्याख्या करते हुए भगवान कहते हैं—

अधश्वोध्वं प्रसृतास्तस्य गुणप्रवृद्धा विषयप्रवाला ।

अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कमानुवन्धर्वानि मनुष्यलोके ॥

—गीता १५।२

“नीचे और ऊपर भी उसकी शाखाओं का विस्तार है कि जिनका सन, रज, तम तीन गुणों से पालन होता है और जिनसे शब्द, स्पर्श, रूप, रथ और गन्ध रूपी विषयों के आकुर फूटे हुए हैं। अन्त में कर्म का रूप पाने वाली उसकी जड़ नीचे मनुष्य लोक में बढ़नी गहरी चली गई है ।”

इस गहरी जड़ों वाले अश्वस्थ वृक्ष को काटने का उपाय भी भगवान ने बताया है और वह है—ग्रन्तासक्ति योग। इसकी सुहृद तलवार से ही उस गहरी जड़ों वाले सासार-वृक्ष को काटने का परामर्श दिया गया है (१५।३) ।

शक्ति-तत्त्व—

देवी-भागवत में साक्षिंशु के पूछने पर यमराज ने शक्ति-तत्त्व को समझाते हुए कहा—

‘वे भगवती सर्वात्मा है, उन्हीं को सबका ईश्वर और कारणों का भी कारण समझो, उन्हीं सबकी आदि और सबका परिपालन करते Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MA

वाली हैं। वे नित्यरूपी, नित्यानन्द, प्राकृतिरहित, निरकृश, निर्गुण, निरागय तथा प्राणद्वारहित हैं। वे ही नितिस, सब की सबसाक्षी सबकी प्राप्तार, परात्मर, मात्राविशिष्ट, मूलप्रकृति तथा सभी विकारों की अत्यंति फरने वाली हैं। इमात्मा ही प्रकृति से मिलकर प्रकृति कहलाने लगते हैं। प्रकृति ही 'शक्ति' महामाया और सचिवदानन्द नाम धारण करती है, वे व्यपरहित होकर भी भक्तों पर मनुष्यह करने के हेतु विभिन्न रूपों को धारण करती हैं।"

'उ होने ही पूर्य समय में गोपाल मुन्दरी (श्रीकृष्ण) का अत्यन्त मतोहर रूप धारण किया था। भवित्व में तन्मय भक्तवत्त भगवान के इसी रूप का ध्यान करते हैं। सबके स्वामी श्रीकृष्ण के शामन को मात्रकर यहां सृष्टि करते हैं। उन्हीं के शामन में स्थिति कालाग्नि रुद्र सब सहारकारी होते हैं। उन्हीं के ज्ञान से युक्त होकर मृत्युञ्जय शिव योगेश्वर, प्रभु, परमात्मनदयुक्त एव भक्ति-वैराग्य से युक्त होते हैं, उन्हों के भय से पवन चलता है और सूर्यं तपते हैं, इन्द्र वर्षा करते, मृत्यु प्राणियों को मारती, अग्निदेव दग्ध करते और वरुण सबको शीतल करते हैं। प्राकृतिक प्रनयकाल में देवनादि युक्त सम्मूर्ण चराचर विष्व, घाता और विषाता भी इन्हीं श्रीकृष्ण के आभिकृपल में लोन हो जाते हैं। क्षीरशायी एव वैरुद्ध भूरेष्ठ में निवास करने वाले विष्णु इनके बाम-पाश्व में विलीन होते हैं। ज्ञानाधीश शिवजी उनके ज्ञान में लीन होते हैं तथा सभी शक्तियाँ विष्णु माया दुर्गा में समा जाती हैं। वे विष्णुमाया-दुर्गा भी बुद्धि की अधिष्ठात्री होने के कारण श्रीकृष्ण की बुद्धि में लीन हो जाती हैं। इस प्रकार परमात्मा के पलक झेंगे पर प्रलय और जाग्रत्त होने पर सृष्टि का पुनरावेभवि होता है, वे भगवान् श्रीकृष्ण प्रलय-काल में अपनी प्रकृति से मिलकर एकाकार हो जाते हैं। तब एक परा-शक्ति ही ज्ञेय रहती है। ऐसे विशिष्ट गुणों वाली उन देवी का गुण-कीर्तन करने में कौन समर्थ हो सकता है।'

जिन पाठकों ने सृष्टि-अत्यंत और देव-तत्त्व पर मच्छी उरह विचार

नहीं किया है, उनको यठ वर्णन शायद कुछ प्रटपटा-सा जान पड़े, पर इसका धारण्य यही है कि भगवान् के स्वरूप को निराकार ग्रथवा साकार मानकर कैमा भी वर्णन क्यों न किया जाय, चाहे उसका राष्ट्र-कृष्ण के रूप में शृङ्खलागम्य बल्लन किया जाय, पर सासार और सत्य-घर्म का मूल सदा एक ही है और एक ही रहेगा। जब-जब सृष्टि होती है, वह अनेक नाम और रूपों में प्रकट हो जाता है, पर अन्त में फिर सब एक हो। तत्त्व में समा जाता है। यदि उसे 'परा-शक्ति' या 'महाशक्ति' कहा है, तो ठीक ही है। उसके विष्णु, शिव या कृष्ण प्रादि नाम साम्रादायिक दृष्टि से रख लिए गये हैं, पर सबका मूल तात्पर्य एक ही है।

• • •

शक्ति का स्वरूप

देवी के स्वरूप का जो वर्णन 'देवी-भागवत' या ग्रन्थ पौराणिक श्रथवा तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में पाया जाता है, वह बड़ा अद्भुत है। उसमें कहीं तो उसका स्वरूप ऐसा वीमत्य जान पड़ना है कि उसे पढ़कर एक मामान्य ध्यक्ति भयभीत हो सकता है। एक जगह कान्ती देवी का ध्यान करने के लिए उसका वर्णन इस प्रकार किया है—

मेघागी शशिशेखरा त्रिनयना रक्तावर विभ्रती ।

पाणिभ्यामभय वरं च विकमदरक्तारविन्दस्थिताम् ॥

नृत्यन्तं पुरतो निपीय मघुर मध्वोकमद्य महा—

काल वीक्ष्य प्रकाशिताननं परामाद्या भजे कालिकाम ॥

"जिसका वरण मेघ के समान द्यामल है, ललाट में घन्दलेखा प्रकाशमान है, जिसके तीन नेत्र हैं, शरीर पर रक्त-बस्त्र धारण किये हैं, जिसके दोनों हाथों में वर और प्रभय है, जो खिले हुए लाल कमल के ऊपर खड़ी है, जिसके समुच्च पुष्पों का मघुर रस (मद्य) पीकर महाकाल नृत्य कर रहा है और उसकी ऐसी भवस्था देखकर देवी हैम रही हैं। उसी आदिशक्ति कालिका का मैं भजन करता हूँ।"

उनके इस स्वरूप की विशेष व्याख्या करते हुए 'कान्तीध्यान' में कहा गया है—

"कालिका देवी का मुख भयकर और दर्शनीय है, चार भुजाये हैं, सिर के बाल छूटे और बिखरे हुए हैं, मुराड पाला धारण करने से

अत्यन्त शोभा पा रही है, उसके दोनों बाये हाथों में तुरत के फाटे दो मम्तुर हैं, वे ही उसके खड़ग रूप हैं। दायीं तरफ के दो हाथों में अमय और वरदान हैं। यह देवी प्रचण्ड मेघ के समान श्याम रंग की प्रीर दिगम्बर है। कागड़ में पहली हृदृश मुण्ड-नाला में गिरने हुए रक्त में उसका समस्त शरीर मना हुआ है। उसके मुख और ढाढ़ अत्यन्त भयकर जान पड़ते हैं और बड़े स्तन हैं। दोनों कानों में नर-न्पालों के श्राभूयण चारण करने में उसकी शोभा बढ़ गई है। उसका मुख हास्ययुक्त है और मुख में गिरती हृदृश रक्त-चारा के कारण मुख-कमन कम्मायमान होता जान पड़ता है। उसकी ध्वनि बोर मेव गजना के समान महाभयकर है। वह इमणान में निवाम करने वाली है। उसके तीनों नेत्र मूर्य के समान तेजस्वी, दाँत बड़े बड़े और केश लम्बे हैं। वह शिव रूपी महादेव के हृदय पर पौर रखकर खड़ी है। महाकाल के साथ विलक्षण क्रीड़ा करने में वह निमग्न है। कामदेव के समान प्रफुल्लित और प्रमन्त्र मुख है। वह मनोरथ के विद्व करने वाली है। इस प्रकार देवी कालिका का ध्यान करना चाहिए।”

केवल शब्दार्थ पर ध्यान देने से तो यह वर्णन बड़ा बीमत्म जान पड़ता है, पर जब इसके गूढ़ पूर्ण पर विचार किया जाना है, तो इसमें अनेक ज्ञान के तथा समाविष्ट प्रतीत होते हैं। एक ‘देवी-मक्त’ ने इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

‘जिम तरह छवेन, पीत आदि सब रंग काले रंग में विलीन हो जाने हैं, उसी प्रकार समस्त भूरों (यव तत्त्वों) का विलीनीकरण प्रकृति में हो जाता है। इसीलिए योगीजनों की उपास्य, निरुण, निराकार, पर्ग-शक्ति कृष्ण वर्ण की वर्णन की गई है। अविनाशी काल स्वरूप, अव्यय महाकाली के लक्षाट में जो चन्द्रकला का चिह्न बतलाया गया है, उसका आशय यही है कि वह चन्द्र, सूर्य और अग्निरूपी नेत्रों से समस्त बगत का निरोक्षण कर रही है।’ इसीलिए उसके तीन नेत्र कहे

गये हैं। वह समस्त प्राणियों का ग्राम करती है और अपने कालरूपी दीनों द्वारा चवा डानती है, इसी से उसके बख्त रक्त वर्ण के कहे गये हैं। विषति काल में वह सज्जनों की रक्षा भी करती है, इसमें उसके हाथ में वर और श्रमण बतनाये गये हैं, वह देवी रजोगुण जनित विश्व में अथाप है, इपलिए लाल कमल पर विराजमान बनलाया है। वह काल-स्वरूप और समस्त जीवत्माओं की साक्षी स्वरूप देवी मोहरूषी मदिरा पीकर नृथ करने वाले काल को देखकर हँस रही है।”

यह देवीके प्रतीकात्मक स्वरूप का वर्णन है। उसका वास्तविक, सूक्ष्म और दार्शनिक रूप तो कुछ और ही है।

शक्तिवाद के दार्शनिक साहित्य का अनुशीलन रूरने ने प्रतीत होता है कि इस उपासना का मूल स्वरूप अद्वैतवाद है। ब्रह्म का व्यक्त रूप शक्ति को माना जाता है, जिसकी कियाशीलता जड़-चेतन हर पदार्थ में परिलक्षित होती है, वह सर्वव्यापक है। वह सृष्टि की रचना, पालन-पोषण और लय सभी काम करती है। यह अथवा जगत उसकी इच्छा-शक्ति का परिणाम है। अणु-प्रणु में वह व्याप्त दृष्टिगोचर होती है। सच्चे शाक्त संघर्ष को उसके अतिरिक्त प्रीत कुछ दिखाई ही नहीं देना, हर वस्तु में वह उसे ही निहारता है। बाह्य रूप तो सबके अलग-भलग है, परन्तु मूल एक ही है। यही शक्तिवाद की भित्ति है।

अपने रूप को देवी ने स्वयं व्यक्त निया है। ‘देवी-भागवत’ का सक्षिप्त में उपदेश देते हुए भगवान विष्णु से कहा—

सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदम्भित्ति सनातनम् ।

अर्थात् “यह सब कुछ सनातन मैं ही हूँ। मुझसे अनग कोई उत्त्व नहीं है।”

अहमेवास पूर्वं तु नान्यत्किञ्चन्नगाधिप ।

‘हे नगाधिप ! मैं ही सब कुछ हूँ, मेरा अखण्ड अनन्त ब्राह्मरूप अप्रतक्यं एव अनिर्देश्य है, मनोपक और अनामय है।’

दुर्गा सप्तशती में वर्णन है कि जब शुभ-निशुभ ये देवी का घोर युद्ध हुआ और निशुभ मारा गया, तो शुभ ने देवी से कहा—‘तुम्हारा ग्रहकार व्यर्थ का है तू दूसरे की शक्ति के महारे पर युद्ध करनी है ।’ इस पर इवी ने जो उत्तर दिया, उससे उसके मूल रूप पर प्रकाश पड़ता है। देवी ने कहा—‘इस विश्व में दूसरा कोई नहीं है, मैं एक ही हूँ। यह जो अन्य देवियाँ दिखाई दे रही हैं यह समस्त मेरी ग्रन्तुभूतियाँ हैं, मुझमें इनका प्रवेश हो रहा है। यह कहना ही या कि ब्रह्माणी प्रमुखा देवी का उनमें लग हो गया और वह अकेली ही रह गई ।’

एकैवाह जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।

पश्येता दुष्ट मध्येव विशन्त्यो मद्विमूनय ॥

तत समस्तास्त्रा देव्यो ब्रह्माणी प्रमुख लयम् ।

तस्या देव्यास्तनौ जरमुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥

देवी ने कहा—‘मैं विभूति के कारण यह मेरे विभिन्न रूप ये। घब्र मैंने इन सबका उपसहार कर लिया। घब्र मैं अकेले ही युद्ध करूँगी। तू सावधान हो जा ।’

देवी-भगवत में ब्रह्मा ने जब यह समाधान करना चाहा कि तुम क्यों हो या पुरुष? तो इवी ने उत्तर दिया कि “मुझमें और पुरुष म कोई अन्तर नहीं है हम दोनों एक ही हैं। जो पुरुष है वही मैं हूँ। जो मैं हूँ, वही पुरुष है। यह भेद केवल सृष्टि के समय ही होता है। महाप्रलय के समय मैं सज्जा न पुरुष रहती हूँ, न मैं न पुरुष। जो भेद वाह्य रूप से दिखाई देता है, वह माया के कारण होता है। ब्रह्मा तो ‘एकमेवाद्विनोयम्’ है। सृष्टि के समय उसके दो रूप हो जाते हैं। फिर दीपक दर्पण और छाया के उदाहरण देते हुए समझाया कि किम नरह यह एक होते हुए भी दो प्रतीत होते हैं। इसी तरह हमारी मूर्तियाँ भी माया के कारण घनेक प्रतीत होती हैं, परन्तु वास्तव में वह एक ही है।’

नवरत्नेश्वर मे तो इस भेद को गिटा ही दिया और उपासको को आदेश दिया कि “देवी की स्त्री, पुरुष और ब्रह्म के रूप मे भावना करनी चाहिए।”

पुराणो मे सृष्टि, पालन और सहार की विभिन्न शक्तियो का वर्णन ग्रंथ है तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश को उनका अविष्ट्राता माना गया है, परन्तु तत्त्व ग्रंथो मे लिखा है कि इन तीनो देवताओ का जन्म भी शक्ति से हुआ है। ‘शक्तिं सगम तत्त्वं’ मे शिवो उत्पत्ति का वरण करते हुए कहा गया है—

त विलोक्य महेशानि सृष्ट्युत्पादनकारणात् ।
आदिनाथ मानसिक स्वभत्तरि प्रकल्पयेत् ॥

“हे महेशानि । यह (अपना रूप) देखकर उस शक्ति ने अपने पनि आदिनाथ को विश्व के सृजन-कार्य के लिए अपने मन से उत्पन्न किया ।”

ऋग्वेद ने देवों सूक्त (१०। १२५।७) मे भी कहा गया है—
अह सुवे पितरमस्य मूर्धन्,
मम योनिरप्स्वन्त समुद्र ।
ततो वि तिष्ठे भुवनाधु विश्वो—
तामू द्या वष्मणोप स्पृशामि ॥

‘मैं जगत पिता (हिरण्य गम) को प्रसव करती हूँ । इसके ऊरर आनन्दमय कोष मध्यस्थ विज्ञानमय कोष मे मेरा कारण-शरीर स्थित है । मैं सारे भुवन ने मनुप्रविष्ट होकर अवस्थित हूँ । मैं अपने ऊचे शरीर से स्वर्ग का स्पर्श करती हूँ ।’

इसो सूक्त के चौथे मन्त्र मे कहा है कि जगत की सभी क्रियाएं जगदीश्वरी की शक्ति से पञ्चालित होती है—

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति य प्रापिति मई शृणा-
त्युक्तम् ।

“प्राण, धारण, श्रवण, दर्शन, भोजन आदि सब वर्म मेरी सहायता द्वारा ही किए जाते हैं।”

सीतोपनिषद् के धनुमार सीता विश्व का कल्याण करने वाली समस्त प्राणियों की उत्पत्ति द्वितीय और विनाश करने वाली, सर्वलोक-मध्यी, सबकी आश्रयभूता, सभी पदार्थों और जीवों की आत्मा, सभी प्राणियों की देहरूपा और विश्वरूपा महालक्ष्मी हैं।

‘देव्ययर्वक्षीर्प मे देवी ने कहा कि प्रकृति पुरुषात्मक जगत् का आविर्भाव मुझमे ही हुआ है और मैं ब्रह्मरूपिणी हूँ—

अह ब्रह्मस्वरूपिणो मत्त प्रकृति पुरुषात्मक जगत् चून्धञ्च। चून्धञ्च ।

और यह भी वोपणा की है कि मैं ही जगन् हूँ—

अहमखिल जगत् ।

भगवती ने माया से भी अपने अभेद का वर्णन किया है और कहा है कि माया शक्ति ही विश्व का निर्माण करती है। व्यवहारिक रूप से जो माया और अविद्या है, वह भी मुझसे अलग नहीं है—

व्यवहारदृशायेय विद्यामायेति विश्रुता ।

तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम् ॥

देवी के विश्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

“उप विश्वरूप का स्वर्ग—महत्क, सूर्य और चन्द्र—नेत्र, दिशाएँ—कान, वायु—प्राण, हृदय—जगत्, ठांगे—पृथ्वी, व्योम—नाभि नक्षत्र—छाती, महर्लोक—करण, जनलोक—मुख, देवता—बाहु, श्रिविनीकुमार—नाभिका, मुख—अग्नि, पत्तकें—दिन-रात, समुद्र—पेट, पर्वत—हड्डी नदी—ताढ़ी, वृक्ष—केश, दोनो सूच्यायें—वस्त्र, चन्द्रमा—मन, विज्ञान-शक्ति—विष्णु, प्रन्त करण—महेश, शब्द—श्रवण, गन्ध—घ्राणेन्द्रिय, रस—रसना, मुख—अग्नि हैं।

देवी भागवत के अनुसार जब देवी ने हिमालय को अपना विराट् रूप दिखाया, तो उसे देवता भी देख रहे थे, उम समय देवी के हजारों मस्तक, नेत्र और पैर थे। करोटों सूर्यों की तरह उसकी चमक थी।

बोद्धों में तन्त्र और शक्ति उपासना का प्रवेश हिन्दू वर्म से ही हुआ है। अत इसमें शक्ति के इस सिद्धान्त का मिलना स्वाभाविक ही है। पारिभाविक शब्दों में कुछ भिन्नता आ गई है। शक्ति शब्द वहाँ 'शून्य' हो गया है। इस ही वह समस्त सुखों का आधार मानते हैं। उत्पत्ति, स्थिति और लय इसी में होता है। जीवात्मा को वह बोविस्त्व कहते हैं। इसका पर्याय है—जिसका मन नि श्रेयम की उपलब्धि के लिए उत्कठिन है। बोद्ध-तन्त्रों में 'निरात्मा' को परम शून्य का प्रतीक माना जाता है। 'बोविन्त्व' और 'निरात्मा' जब आपस में मिलने हैं, तो एक-दूसरे में इस प्रकार एकाकार हा जाते हैं, जिस प्रकार नमक जल में घुन कर अपना अस्तित्व खो देता है और जल ही हो जाता है। 'तन्त्रयान' नामक बोद्ध सम्प्रदाय में इस परम शून्य का प्रतीक 'निरात्मा देवी' है। उपासक जब अपने अह को निटाकर अपनी इष्ट देवी के विग्रह में लीन हो जाता है, तो वह अपने को ही 'देवी' मानने लगता है। देवी और उसमें कुछ अन्तर नहीं होता। इस प्रकार से बोद्ध-तन्त्रों ने भी शक्ति के इस सिद्धांत को स्वीकार किया है, जिस तरह वह हिन्दू-तन्त्रों में वर्णित है, भले ही उसके वाह्य रूप में कुछ परिवर्तन हो गया हो।

उच्चकोटि का शाक्त-साधक वही है, जो द्वैत से अद्वैत की ओर उन्मुक्त होता है और समस्त जड़-चेतन में अपने इष्ट के दर्शन करता है। वेद के अनुसार देवी स्वयं इस रूप का समर्थन करती है—“मैं ही सत्र में व्याप्त रहती हुई भोजनादि का कारण व हेतु रूप हूँ। मेरे ही द्वारा सब चेष्टाएँ होती हैं। अन्तर्यामी रूप में सबमें विद्यमान मुझ चित्-शक्ति को जो नहीं जानते, वे अज्ञानी लोग जगत् में बहुत दुख रठते हैं (ऋग्वेद १०।१२५।४)।

"ससार में सभी प्रकार की शक्तियाँ मेरी ही हैं अथवा सब शक्तियाँ मेरा ही रूपान्तर हैं। अत इसी भाव से शक्ति की उपासना श्रेयस्कर है। इस मन पर पहुँचा हुआ साधक यह समझता है कि उसकी बुद्धि, मन और इन्द्रियों पर भगवती का नियन्त्रण है, उसी के इशारे पर यह सब काम होते हैं, हमारा शरीर सो केवल एक माल है; उसके सभी कार्य भगवती की अपित होते हैं, सभी गतिविधियाँ उसी के लिए होती हैं—अपने शरीर के लिए नहीं। महाभारत (अश्व० ३२। १७-२३) के ब्राह्मण सबाद में जनक ने इसे और ढग से स्पष्ट किया है—“जिस (वैराग्य) बुद्धि को मन में धारण करके मैं सब विषयों का सेवन करता हूँ, उपका हान सुनो—नाक से मैं अपने लिए वास नहीं लेता (आँखों से मैं अपने लिए नहीं देखता आदि) और मन का भी उपयोग मैं अपने लाभ के लिये नहीं करता; अनेक मेरी नाक, आँख आदि और मन मेरे वश में हैं अर्थात् मैंने उन्हें जीत लिया है।”

भगवनी का उपासक अपने शरीर, उसके समस्त अवयवों, मन, बुद्धि, इन्द्रियों, विषयों और इच्छाओं को भगवती का रूप मानता है। लोकों को भी वह भोग की सामग्री न मानकर भगवती का ही रूप मानता है। इस मान्यता से उसकी भावना में परिवर्तन होता है और वह इन्द्रियों और विषयों का उपयोग उसी तरह करता है, जिस तरह जनक करते थे।

जब मन, वचन और शरीर से यह भावना परिपक्व हो जाती है कि यह शरीर उस आद्या-शक्ति की ही अभिव्यक्ति है, उसी का रूप है, तो वह अपने और भगवती में कुछ अन्तर नहीं समझता। अन्त में वह भगवती को ही अपना रूप समझने लगता है। दोनों में एकता और अभिन्नता स्थापित हो जाती है।

शक्ति सत्य ने

ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या का सिद्धान्त —

'योग परिष्ठ' वेदांग-गिराव का प्रतिक्रिया प्रत्य है। यह भी श्रद्धात् वेदान्त के इस प्रतिक्रिया को पारंपराया देता है फिर 'आत्म गत्यं जगतिमिथ्या' अर्थात् आत्मा गत्य है और जगत् मिथ्या है। योग परिष्ठुकार का मत है कि—

एव तावदिद विद्धि दृश्य जगदिति रिथतिम् ।
अहं चेत्याद्यताकार भ्रान्तिमात्रमसन्मयम् ॥

—४।१-२

"जो दिलाई रेने वाला जगत् और मह आदि पदार्थ स्थित हैं उनके द्वारा होते हैं, वह भ्रातिगाम और असत्य है ।"

मृगतृष्णाम्बिववासत्य सत्यवत्प्रत्ययप्रदम् ।

—४।१।७

"मृगतृष्णा की नगह, अनुभव मिद जगत् की तरह, यह जगत्य सत्य प्रतीत होता है परन्तु ही भ्रातिमय और असत्य ।"

मायेय रवणवद् भ्रातिमिथ्या रचित चक्रिका ।
मनोराजयमिवालोलसलिलावर्तसु दरी ॥

—४।४७।४।

"यह गुहिट गाया है, स्वर्ण की तरह भर है, मिथ्या बनाए हुए चक्र की तरह है, मनोराजय की तरह तथा और जल के गोंगर की तरह सुन्दर है इधिगोपर होती है ।"

समस्त कल्पनामात्रमिदम् । —६।२।१०।११

“यह समस्त जगत् कल्पना मात्र है ।

द्वी क्षमा वायुराकाश पर्वता सरितो दिशः ।

सकलपकचित् सर्वमेव स्वप्नवदात्मन ॥

—३।०।१०।१३५

“द्वी नोक, पृथ्वी नोक, वायु, आकाश, पर्वत, सरिताएं, दिशाएं, यव आत्मा के महत्व ने इस तरह निर्मित हुए हैं, जिस तरह स्वप्न की नृष्टि होती है ।”

योग वशिष्ठ के प्रनुपार यह जगत् न तो सत्य है पौर न असत्य—

तात् सत्यतिद दृश्य न चामत्य सदाचन ।

—३।४।४।३३

“यह दिखाई देने वाला जगत् न सत्य है और न असत्य ।”

न तत्सत्य न चामत्य रज्जुमर्पभ्रमो यथा ।

—३।४।४।४१

“जैसे रक्षी से सर्व का भ्रम होता है, वैसे ही यह जगत् न सत्य है और न सर्वथा असत्य ही ।”

सत्य इसलिए नहीं कहा क्योंकि यह आदि और अन में नित्य नहीं है—

आदावर्ते न यन्नित्य तत्सत्य नाम नेतरत् ।

—४।५।१२

और प्रमत्य इसलिए नहीं कहा कि प्रमत्य उसे कहना युक्तियुक्त है, जो कभी भी दिखाई न दे ।

जगत् को मिथ्या और प्रमत्य प्रमाणित करने वालों में प्रमुख थे—स्वामी शक्तराचार्य । यह अद्वितीय विद्वान् और मेवावी थे तथा इन्होंने ३२ वर्ष की छोटी प्रायु में प्रपत्ते सिद्धातों का डका समस्त भारतवर्ष में दबा दिया । ब्रह्मपूर्व पर इनका 'शारीरिक भाष्य' जगत्

प्रसिद्ध है। इनके अद्वैत सिद्धान्त का सारांश यह है कि इस जगत् में हमको नेत्रों से जो कुछ दीखता है वह सत्य नहीं है। इस समस्त विश्व-प्रपञ्च में यदि कोई वस्तु मत्य है तो वह ब्रह्म की चैतन्य सत्ता है। जो अपनी माया या अविद्या नाम वाली शक्ति ये इस दृश्य जगत् की उत्पत्ति और सहार करती है। वह माया न सत् है न असत् है वरन् उसे हम 'अनिर्बंचनीय' ही कह सकते हैं। इस माया द्वारा जगत् की उत्पत्ति ये किसी प्रकार की वास्तविकता नहीं है, वरन् उसके द्वारा निर्मित यह जगत् एक प्रकार का भ्रम या स्वप्न के सहृदय है, जो मत्य जान पड़ता है, पर जिसकी सत्ता रस्सी में सर्व का भ्रम हो जाने से अविक नहीं है।

इस सिद्धन्त को 'विवरतवाद' कहा जाता है। माया के सम्पर्क ही ब्रह्म को ईश्वर कहा जाता है और इस प्रकार अविद्या में पड़ कर वह जीवात्मा कहलाने लगता है। इस प्रकार इस जगत् के मूल में ब्रह्म को छोड़कर और कोई तत्व सत्य नहीं है। इसी माया के वशीभूत होकर जीव अपने को अल्पज्ञ, अल्प शक्ति वाला, सीमित, कर्म-बन्धनों में बँधा हुआ समझने लगता है। इसके फल से वह कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता बन जाता है और आवागमन के चक्र में पड़कर पुण्य पाप के फलों को भोगने लग जाता है। जब जीव अविद्या (माया) के रूप को समझ जाता है, तो अपने को इन्द्रियों और मन से प्रथक् पूर्ण चैतन्य सत्ता अनुभव करने लगता है, तब उसके कर्म बन्धन टूट जाते हैं, अल्पज्ञता और सीमित होने का भाव भी मिट जाता है और वह अपने शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है। यही अद्वैत सिद्धान्त के मनुमार मुक्ति की अवस्था है।

जगत् की सत्यता-सिद्धान्त के समर्थक—

वेदान्त समर्थक सभी विद्वान् इस सिद्धान्त के पक्ष में नहीं हैं। इस पर अनेकों देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा आलोचनाएँ हुई हैं। उनमें सत है कि शक्तराचार्य ने वेदान्त सूत्रों का जो अर्थ अपने भाष्य में

प्रतिपादित किया है, वह मनेक श्रयों में सूत्रों के दास्तविक प्राशय के प्रतिकूल है पौर उसे शङ्खराचार्य ने प्रतीत सिद्धाती का प्रचार करने की दृष्टि से शब्दों की सींचतान करके निकाला है। जर्मनी के एक विद्वान् 'ओवो' न वेदान्त दर्यन के अपने मनुवाद की मूमिका में निखा है कि "वादरायणका सिद्धात शङ्खराचार के सिद्धांतमें बहुत मिलता है। इसनिए, यकर भाष्यको पढ़ने से वादरायण के सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं हो सकता।"

इसी प्रकार एक अन्य विद्वान् न कहा है कि "वेदान्त मूत्रों का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उनका आश्रय शङ्खराचार्य के 'विदर्त्तवाद' के प्रतिकूल न होकर भास्कराचार्य के 'पञ्चामवाद' से अधिक मिलता है।" तीसरे विद्वान् के मतानुसार 'मूत्रों को ज्ञान से पढ़ने से पता न गरा है कि शुक्र जी अपक्षा रामानुज 'वादरायण' के अविक्षित निकट है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि शङ्खराचार्य के समय में दक्षिण भारत में बोद्ध धर्म का जोर बहुत बढ़ रहा था, जिससे वैदिक धर्म का सूर्य मूर्य प्रायः प्रस्तु हो रहा था। उस परिस्थिति में शङ्खराचार्य ने ब्रह्म मूत्र का जो माध्य निखा है उसके मूत्रों के सून आशय की ओर इतना ज्ञान नहीं दिया है जितना कि इस वान् पर कि उनके द्वारा बोद्ध धोर्म जैन भगवान् वेद-विराची मतों का स्वग्रहण करके उनको परास्त किया जाय।

वेदान्त के धन्य मन्त्रदाय भी शक्तर के मत से सहमत नहीं हैं। रामानुज के मतानुसार 'माया-भिवत्तवाद' और अद्वैत सिद्धान्त दोनों गलत हैं। ब्रह्म के ग्रन्तिग्रन्थ जीव और जड़ लगत् शब्दात् चित् और अचित् जी नित्य और स्वतन्त्र नहीं हैं, परंपरि वे ब्रह्म की ही अश हैं और ब्रह्म उनके भीतर अन्तर्यामी स्वर में रहता है। ये दोनों तत्त्व ही प्रत्यक्ष की विद्येयता हैं, जो परमात्मा में नहीं ब्रह्म के भीतर सूक्ष्म स्वर में प्रकट हो जाते हैं। इसी से इसका नामकरण 'विशिष्टाद्वैत' किया गया है।

माधवाचार्य को कहना है कि जब भगवान् सत्य हैं, तो उनका वनाया हुआ जगत् कैसे मिथ्या हो सकता है?—

श्रीमद्भवमेत हरि परतम सत्य जगत्, तत्त्वतो ।

“श्री माधवाचार्य के मत से हरि (विष्णु) ही परम तत्व हैं और जगत् सदैव सत्य है ।”

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत सिद्धान्त शब्दार्थ की वृष्टि से अद्वैत सिद्धान्त का सबमें बड़ा प्रतिपादक है। शकराचार्य ने जहाँ ब्रह्म के साथ माया को स्वीकार किया है और उसी के कारण जगत् का आविभाव स्वीकार किया है, वहाँ वल्लभाचार्य ने माया को सर्वथा अस्वीकार करके ब्रह्म को केवल एक शुद्ध तत्व माना है। इसी ब्रह्म से जीव और जगत् प्रादुर्भूत होने हैं और उसी में लीन हो जाते हैं। भगवान् सच्चिदानन्द रूप हैं। जब उनकी इच्छा होती है, तो वे अपने लीनों गुणों सहित ईश्वर के रूप में प्रकट होते हैं और अपने इन्हीं गुणों से जीव तथा जगत् की रचना करते हैं।

इस तरह से वेदान्त के अन्य सम्प्रदायाचार्य भी शकर के जगत् को मिथ्या सिद्ध करने वाले मिद्धान्त के पक्षपाती नहीं हैं।

उपनिषद् भी ब्रह्म और जगत् के सत्य होने की घोषणा करते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्मानन्द वल्ली के प्रथम अनुवाक में ब्रह्म को सत्य ज्ञान वाला कहा है—

सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

पृष्ठ अनुवाद में ब्रह्म को सत्य न समझने वाले को ही अपत्य कहा गया है—

असात्त्वेव स भवति । असद्ब्रह्मेति वेद चित् ।

ब्रह्म ही जगत् है, यह उपनिषद् वाक्यों से सिद्ध है। इसी अनुवाक में कहा है कि “परमेश्वर ने प्रकट होने की इच्छा की, उसने तप किया और तप से तपस्वी होकर इस हृश्य जगत् को रचा और उसी में प्रविष्ट हो गया ।”

स तपोऽनप्यत । स तपस्तप्त्वा इदं ॑, सर्वमसृजत यर्दि
कि च तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रविशत् ।

ब्रह्मानन्द वल्ली के प्रथम अनुचाक मे सृष्टि-रचना का वरण
करते हुए स्पष्ट कहा है कि “परनात्मा ने प्राकाश प्रकट किया । आकाश
से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जन, जन से पृथ्वी, पृथ्वी से ओपवियाँ
और ओवियियों से अन्त की उत्तरति हुई । अन्त से मनुष्य हुपा, क्योंकि
मनुष्य का देह अन्त-रस वाला है ।”

तस्मादभा एतस्मादात्मन आकाश सम्भूत । आकाशद् वायु
वायोरग्नि, । आग्नेराप । अद्भ्य पृथिवी । पृथिव्या ओपघय ।
ओषधीम्योऽन्तम् । अन्नात्पुरुष । स वा एष पुरुषोऽन्तरसमय ।

इससे स्पष्ट है कि जगत ही ब्रह्म का साकार रूप है । जगत की
हर वस्तु ब्रह्मरूप है । तैत्तिरीयोपनिषद की भृगुवल्ली मे जब भृगु ऋषि
अपने पिता वरुण के पास ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए जाते हैं तो वरुण
अन्त, प्राण चक्षु योग, मन, वर्णो सबको ब्रह्म की सज्जा देते हैं । इन
सबको ब्रह्म ही कहते हैं ।

योगवशिष्ठ मे भी यही कहा है—

सत्य ब्रह्म जगच्चेक स्थितमेकमनेकवत् ।

सर्वं वा सर्ववद्भद्राति शुद्धं चाशुद्धवत्ततम् ॥

—६२।३५।६

“एक सत्य ब्रह्म विभिन्न प्रकार के जगत के रूप मे प्रकट हो
रहा है, एक सबके आकार मे शुद्ध-प्रशुद्ध के रूप में ।”

यह भी कहा है कि—

ब्रह्मबृहैव हि जगज्जगच्च ब्रह्मबृहणम् ।

ब्रह्मैव तदताद्यत्तिविवत्प्रविजृम्भते । —६-१।२।२७

आत्मैव स्पन्दते विश्व वस्तुजातैरिवोदितम् ।

तरङ्गकराकल्लोलैरनन्ताम्बवम्बुधाविव ॥ —५।७।२।३

जगत तो ब्रह्म की वद्दन शक्ति है और ब्रह्म का बृहण है ।

ब्रह्म जो अनादि और अनन्त है, वही समुद्र की लहरों, कणों प्रीत तरणों रूप में दिखाई देना है। उपों तरह आत्मा ही जगत् की पारी आत्मा प्रेरणे में दृष्टिगोवर होता है—

करणं कमं कर्ता च जननं मरणं स्थितिं ।
सर्वं ब्रह्मं व नह्यस्ति तद्विना कल्पनेनरा ॥

—३।१००।३०

‘ब्रह्म के अतिरिक्त प्रीत और कुछ नहीं है। करण, कम, कर्ता, जनन, मरण, स्थिति—सब कुछ ब्रह्म ही है।’

ब्रह्म ही जगत् के रूप में प्रकट होता है, जगत् को मिथ्या कहना भ्रम के प्रतिरिक्त और कुछ नहीं है।

तत्त्व का अभियत—

तत्त्व-दार्शनिक भी जगत् को सत्य मानते हैं। उनकी मान्यता है कि इस जगत् में जितने जीव निवास करते हैं, वे शिव का ही रूप हैं। इसलिए यह असत्य नहीं हो सकता। वे जीव को शरीर और मन से युक्त शिव ही मानते हैं। तत्र की दृष्टि में शिव चेतना का अव्यक्त रूप है और शक्ति उसका क्रियाशील रूप है। जब शिव सत्य है, तो शक्ति असत्य कैपे ही सकती है, क्योंकि वह तो उसी का व्यक्त रूप है।

एक तात्रिक विद्वान् का मत है कि “इस आद्यागतिन को मायारूपा अर्थात् मिथ्या नहीं माना गया है। यदि अग्नि के दाह-प्रकाश धर्म को मिथ्या माना जाय तो अग्नि का स्वरूप ही स्थिर नहीं हो सकता। हमी प्रकार सत् वस्तु के स्वयस्कुरण-सामर्थ्य (वित्ति) को प्रीत स्वयं तृतीय दिखाने वाले वेग (ग्रानाद) को मिथ्या मान लिया जाय तो ब्रह्म का स्वरूप ही नहीं बनता। ब्रह्म वस्तु के स्वभाव धर्म और ओपाविक धर्म पृथक्-पृथक् हैं। जो स्वभाव-धर्म है, वे ब्रह्म की शक्तिरूप हैं और जो ओपाविक धर्म हैं, वे ब्रह्म के गुण हैं। जिस प्रकार महासमुद्र में अन्त स्पृह द्वारा पर उसकी तरङ्गमयी स्थिति हो जाती है और पुन निस्तरण स्थिति हो जाती है। दोनों ही अवस्थाएँ में जिस प्रकार समुद्र का

समुद्रत्व एकरस रहता है उसी प्रकार ब्रह्म चेतन्य की स्पन्द वाली अर्थात् स्वय स्वरूप को जानने वाली स्थिति (जिसे विमश कहते हैं) और पुन भन्तमुख होने की स्थिति ब्रह्म के ब्रह्मत्व को बाध करने वाली नही है। एक ही वस्तु अनेक प्रकार भाषती है। उसमें जो वस्तु भासती है, वह मिथ्या नही, परन्तु सत्य है। ही, उपके आकारों में सत्यत्व बुद्धि का होना भ्रष्ट है। अतएव शक्तिवाद में ब्रह्म का विश्वमय भासना मिथ्या नही है परन्तु उसमें जो भेद भासना होते हैं उन्हे व्वतन्त्र मानने वाली बुद्धि भ्रन्त होती है। विश्वरूप में भासने की ब्रह्म-मामर्थरूप शक्ति ब्रह्म पक्षपातिनी है और उन आभासों में होने वाली सत्यत्व बुद्धि मिथ्या माया है। साराश यह है कि जो वस्तु अनेकाकार भासती है, वह स्वय सत्य है, परन्तु उन अ कारों में सत्यत्व बुद्धि मिथ्या है। इसलिए शाक्त-अद्वैत में यह विश्व ब्रह्मरूप होने से ब्रह्ममयी का विलास है अर्थात् अविकरण की चमत्कृति है। इसलिए विश्व का अनुपत्त ब्रह्मरूप होने से सत्य है यानी ब्रह्म सत्य है।”

तन्त्र दर्शनिक श्री माघव पुराणलीः परिङम ने अपनी पुस्तक ‘तांत्रिक साधना’ में लिखा है—‘तत्र के ऋषियों ने अपनी सम्पूर्ण शिक्षा को इस के केन्द्रीय साक्षात्कार के आधार पर प्रचारित तथा निर्मित किया कि सृष्टि ब्रह्म या सद्वस्तु की अनन्त सत्ता वदिभूत एक अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति सत्ता में छिपी हुई चेतना शक्ति के द्वारा बाहर निकाली गई प्रक्षेपित की गई है। शक्ति जो कि ब्रह्म की, आत्म-चेतना की क्रिया-शक्ति है, माया कही जाती है अथवा उस चेतना का शक्तिरूप ही माया कहलाता है। वह मापती है—‘मियते अनेन इति माया।’ इस प्रकार ब्रह्म सत्य है, शक्ति सत्य की सत्य शक्ति है और सत्य की विशालता से दना हुआ यह ब्रह्माड भी उसी की तरह से सत्य है। तन्त्र कहता है कि विश्व दिव्यरूप से सत्य है और इसमें रहने वाला व्यक्ति भगवान् की सत्य सत्ता का अशी है।”

मत ब्रह्म सत्य है। इस अव्यक्त चेतना का व्यक्ति रूप शक्ति भी

मत्य है, जगत भी सत्य है। मूल कारण बब सत्य है, तो उसका परिणाम भी सत्य ही होना चाहिए—यह निश्चिव है।

तन्त्र का यह सिद्धान्त हमें एक नया दृष्टिकोण देता है। इसके हर कार्य में रुचि लेना भिन्नता है। तात्रिक जगत के कार्यों को ग्रपनी साधना के रूप में करता है, वह जगत को ब्रह्म का साकार रूप मानता है, हर वस्तु में उसे ब्रह्म का रूप दिखाई देना है। वह जड़ चेतन में इसी भावना का आरोग्य करता है। तभी तो वह 'सोऽह' और 'शिवोऽह' की उच्चतम साधना के लिए ग्रन्थे को तैयार पाता है। जगत को मिथ्या कहने वाला उससे उपेक्षा और घृणा करता है। प्रभु के साकार रूप की उपेक्षा करने वाला साधना के क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकता क्योंकि जगत को वह ग्रन्थे से भिन्न मानता है। इसोलिए चारों ओर ब्रिखरे प्रेन-सरोवर की लहरों से बचित रहता है। भिन्नता की भावना जहाँ सशक्त होती है, वहाँ शक्ति कौर सिद्ध का स्रोत सूखने लगता है। एकता को भावना ही शक्ति-विकास का साधन है। जगत को सत्य मानने से ही यह मावना सफन हो सकती है। अत तन्त्र-साधना हमें उच्चतम शिखर तक पहुँचाने में समर्थ है।

• • •

शक्ति-उपासना का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

नैतिक पक्ष--

देवी-उपासना को स्यापता का उद्देश्य प्रही है कि समाज में नियों के प्रति आदर और सम्मान के भाव जाग्रत हो। जिस तरह साधक अपनी छष्ट देवी को जगत्माना के रूप में देखता है, उसी तरह ने विश्व की हर स्थल में वह प्रपत्ति इवेव का ध्यान करे प्रीर उसे पवित्र भाव से देते।

ऋषियों ने अनुभव किया था कि पनुष्य की इन्द्रियाँ बनवान बोडी की तरह सशक्त होती हैं, वह अपनी तृप्ति के लिये उसे अपने इच्छन मार्ग पर धमीट कर ले जाती है। इन्द्रियों के वश में होकर पनुष्य अन्धा हो जाता है, उमसी सोचने समझने की शक्ति क्षीण हो जाती है। विवेक उसका साथ छोड़ देना है। इन्द्रियाँ रूपी घोड़े जहाँ भी उसे ले जाते हैं, वह मदमस्त हाथी की भाँति उनका पीछा करता है और गड्ढे में गिर जाता है।

इतिहास साक्षी है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुर्ति भी कभी-कभी इन्द्रियों को अपने वश में न रख सके, उनके पैर डगमगा गये और वह गलत रास्ते पर चल पड़े जिससे आज तक उनके ऋषित्व पर कलक का टीका लगा हुआ है। विश्वामित्र जैसे महान् तपस्त्री ऋषि जिन्होंने नवीन सृष्टि की रचना का माहस किया है, वह भी एक अप्सरा के काम-जाल में फँस गये और भोग-क्रियाओं में लम्बे समय तक लिप्त रहे, जिससे

मत्य है, जगत् भी सत्य है। गून कारण ब्रह्म सत्य है, तो उमका परिणाम भी सत्य ही होना चाहिए—यह निश्चित है।

तत्त्व का यह सिद्धान्त हमें एक नया दृष्टिकोण देता है। इसके हर काय में रुचि लेना यिष्ठाता है। तात्रिक जगत् के कार्यों को अपनी सावना के रूप में करता है, वह जगत् को ब्रह्म का साकार रूप मानता है, हर वस्तु में उसे ब्रह्म का रूप दिखाई देना है। वह जड़ चेतन में इसी भावना का आरोग्य करता है। तभी तो वह 'सोऽह' प्रौर शिवोऽह' की उच्चतम सावना के लिए अपने को तैयार पाता है। जगत् को मिथ्या कहने वाला उससे उपेक्षा प्रौर घृणा करता है। प्रभु के साकार रूप की उपेक्षा करने वाला साधना के क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकता क्योंकि जगत् को वह प्रयत्न से भिन्न मानता है। इसोलिए चारों प्रौर ब्रिखरे प्रेम-सरोवर की लहरों से वचित रहता है। भिन्नता की भावना जहाँ सशक्त होती है, वहाँ शक्ति कोर सिद्ध का स्रोत सूखने लगता है। एकता की भावना ही शक्ति-विकास का साधन है। जगत् को सत्य मानने में ही यह सावना सफल हो सकती है। अत तत्त्व साधना हमें उच्चतम शिखर तक पहुँचाने में समर्थ है।

• • •

न रही। मुझमें गोरी जब माक्रमण करता प्रोर विजय प्राप्त करता हुआ मिर पर ग्रा पहुँचा, तो उनके प्रवानमन्त्री ने काम-निन्द्रा से उसे जगाया। परन्तु अब वया हो सकता या? इमाना अभिप्राय है काम ने राष्ट्रों के भविष्य ही बदल डाले।

चन्द्रगुप्त मौर्य एक विदेशी सुन्दरी के कामजाल में फँस गये थे। प्रवानमन्त्री चाणक्य ने उसे सावधान किया था। दिग्बिजयी सिकन्दर दिग्बिजय करते हुए अपन देश लोटेतो एक रूप-लावण्य की साक्षात् मूर्ति फिनिप को अपने साथ लाए। उनके गुह अरस्तू न उसे सावधान किया कि यह विष-हन्त्या है। इनके शरीर का स्पर्श हो तुम्हारे सारे शरीर को विषाक्त बना देगा और तुम्हारा जीवन नष्ट हो जाएगा। सिकन्दर उससे दूर रहने लगा। इससे फिनिस चिढ गई और काम-बाण फैक्ने आरम्भ कर दिए। वह पक्न हुई और अरस्तू उसके प्रमन्जाल में फैम गये। एक दिन उसने अरस्तू को खेन में घोडा बनाया और उसकी नाक में नकेल डालकर मारे कमरे में उसे छुनाया। सिकन्दर ने यह सारा हृश्य देखा। वह आश्चर्यचिन रह गया। जब गुह से इस सम्बन्ध में पूछा तो उत्तर मिला, 'जो रमणी मुझ जैसे प्रतीण अनुभवी वयोवृद्ध पढित को भी वशीभूत करके हीन-से-हीन काम करवा सकती है, वह मुझसे कम आयु के कम अनुभवी युवक के लिए पौर भी अधिक खतरनाक नहीं हो सकती वया?

पुराणाचार्योंने काम के सभी उत्पातों का सर्वेक्षण किया था और वह इउ परिणाम पर पहुँचे थे कि नारी जाति के प्रति समाज में उच्च भवनाओं को उत्पन्न करने से ही इस लक्ष्य की पूर्ति की जा सकती है। वह समाज तो आमुरी समाज कहलाया जायगा, जिसमें किसी युवक ने किसी युनती को देखा, उसके सौन्दर्य पर वह आसक्त हो गया, उसमें विवाह करने की सोचने लगा। राजाधिकारी हुआ तो अपने प्रभाव से उसे अपने घर में लाने का प्रयत्न किया, अन्यथा और तरह-

उनका तेज क्षीण हो गया। पराशर मुनि नदी पार करते हुए नाव में नाविक की कन्या पर आसक्त हा गये। उनके मन में काम वासना आती और तूफान की तरह आई और नाव में ही उन्होंने अपनी ज्वार-माटा की तरह उछलतो लहरों को शान किया। शान्तनु भी एक नाविक की लड़की पर आसक्त हो गए और उससे विवाह की सोचने लगे। यह उदाहरण बनाते हैं कि हमें अपने कामतत्व के सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिए। उसकी प्रवन्तता को नियन्त्रण में रखने की क्षमता प्राप्त करनी चाहिए। किसी सुन्दर लड़की को देखकर उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखना अपनी मानसिक कमज़ोरी का चिन्ह है। इस असन्तुलन से समाज में अव्यवस्था उत्पन्न होती है। यह इष्टिकोण अपनाने से तो किसी की माँ-बहिन-लड़की का सम्मान सुरक्षित नहीं रह सकता।

इतिहास ने जहाँ-जहाँ ऐसे उदाहरणों को दीहराया है वहाँ तवाही, बर्दादी और खून-खराबी के अतिरिक्त और कुछ दिलाई नहीं दिया। अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी के रूप-लावण्य के समाचार सुने थे। उसे प्राप्त करने करने के लिए वह कामरूपी राक्षस हजारों प्राणियों का खून करने के लिए उद्यत हो गया। इतिहास ने रावण जैसे महापरिष्ठ का भी इन्द्रियों के वशीभूत होकर एक नीच कर्म करने पर वाध्य किया। घर्मचारीयों ने ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति से सवधान रखने के लिए रावण के शुद्ध-कर्म का प्रदर्शन करना प्रारम्भ कर दिया, ताकि समाज उससे शिक्षा ले।

हिन्दू धर्म कहता है कि स्त्री को भोग की सामग्री मात्र मत समझो, जीवन की पूर्णता प्राप्त करने के लिए अपना जीवन-साधी मानो, सुष्टि-रचना की प्रभु-लंबा का माध्यम समझो। यदि उसे सवधानी से न बरतोगे, तो वह नरक की खत बन जायगी। पृथ्वीराज सयोगिना को स्वयंवर से भगान्हर ले गरा और उसमें इतना अधिक आसक्त हुआ कि उसे अपने राज्य के काम-काज की कुछ भी खबर न

न रही। मुझमें गोरी जब शाक्तगण करता और विजय प्राप्त करता हुआ मिर पर ग्रा पहुँचा, तो उनके प्रवानमन्त्री ने काम-निक्षा से उसे जगाया। परन्तु अब क्या ही मत्ता था? इसी अभिप्राय है काम ने राष्ट्र के भविष्य ही बदल डाले।

चन्द्रगुप्त मौर्य एक विदेशी सुन्दरी के कामजाल में फँस गये थे। प्रवानमन्त्री चाणक्य ने उसे मावधान किया था। दिविविजयी सिकन्दर दिविविजय करते हुए अपने देश लौटे तो एक रूप-लावण्य की साक्षात् मूर्ति फिनिम की घपन साय नाए। उनके गुह अरस्तू न उसे सावधान किया कि यह विष-रूप्या है। इनके गरीर का स्पर्श ही तुम्हारे मारे गरीर को विषाक्त बना देगा और तुम्हारा जीवन नष्ट हो जाएगा। सिकन्दर उसमें दूर रहने लगा। इससे फिनिम विड गई और काम बाण फैक्ने आरम्भ कर दिए। वह पक्ष ही श्री अरस्तू उसके प्रमन्जाल में फैंप गये। एक दिन उसने अरस्तू को खेत में घोड़ा बनाया और उसकी नाक में नकेल डालकर मारे कमरे में उसे छुनाया। सिकन्दर ने यह सारा हश्य देखा। वह आश्चर्यवक्तिन रह गया। जब गुह से इस सम्बन्ध में पूछा तो उत्तर मिला, 'जो रमणी मुझ जैसे प्रबीण अनुभवी वयोवृद्ध पडित को भी वशीभूत करके हीन-स-हीन काम करवा सकती है, वह मुझमें कम भाषु के कम अनुभवी मुख क निए पौर भी अधिक खतरनाक नहीं हो सकती क्या?

पुराणाचार्योंने काम के सभी उत्पातों का सर्वेक्षण किया था और वह इन परिणाम पर पहुँचे थे कि नारी जाति के प्रति समाज में उच्च भवनाश्रों को उत्पन्न करने में ही इस लक्ष्य की पूर्ति की जा सकती है। वह समाज तो आमुरी समाज कहलाया जायगा, जिसमें किसी युवक ने किसी युनती को देखा, उसके सौन्दर्य पर वह आसक्त हो गया, उसमें विवाह करने की सोचने लगा। राजाधिकारी हुमा तो अपने प्रभाव से उसे घपने घर में लाने का प्रयत्न किया, अन्यथा और तरह-

के बहयन्त्र करने लगा । वह तो पशुओं का-सा समाज हो गया, जिनमें कोई विषिवत् पति-पत्नी नहीं होते । भगवान् ने मनुष्य को बुद्धि और विवेक इसीलिए दिया है कि वह इनका सदुपयोग करे ।

समाज की इस निर्वन्न वृत्ति को अनुभव करते हुए ही देवी-उपासना का प्रारम्भ किया गया ताकि देवियों के प्रति साधक के अन्त-करण में पवित्र भावनाओं का सचार हो, समस्त नारी जाति में वह इष्टदेवी के दर्शन करे और उन्हे माता, वहिन और पुत्री के पवित्र भाव से देखे । घर्म के साथ जुड़ी हुई यह भावना साधक के मन में जम जाती है और वह एक सम्य मनुष्य की तरह प्रमाज में विचरण करता है । यही देवी-उपासना का रहस्य व लक्ष्य है । देवी-उपासना के इस नीतिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर जो साधक गत्यत्री, दुर्गा, लक्ष्मी, काली आदि देवियों की साधना करते हैं वही अपन चारित्रिक, मानसिक व आत्मिक स्तर को ऊँचा उठाने में सफल हो पाते हैं, शेष तो ग्रन्थकार में ही भटकते रहते हैं ।

काम तत्व जैसी विनाशकारी प्रवृत्ति को नियन्त्रित रखने का यह अनोखा मनोवैज्ञानिक साधन है, जिससे साधक के मानसिक स्तर में परिवर्तन प्राप्त है, उसकी विचार-भूमि में सातिवक अंकुर उगने लगते हैं । वह भोगों के दुष्परिणामों के प्रति जागरूक हो जाता है । नारी को भोग की सामग्री समझने वाला महिलाएँ काम का दास बनता है और नीच-से नीच और जवन्य-से-जघन्य अपराध भी उसकी लिप्सा की शाति के लिए करने पर तत्पर हो जाना है । इस विनाश को रोकने का वैज्ञानिक साधन देवी-उपासना है, जब हर स्त्री को साधक विश्व मारा के रूप में देखता है ।

देवी उपासना का उद्देश्य काम पर रोक लगाना नहीं है । यह तो कामेन्द्रिय का स्वामाविक घर्म है । आवश्यकता पड़ने पर इसका उपयोग करना ही चाहिए, परन्तु वह काम भोग की सज्जा में न आए ।

भोग के प्रति आसक्ति से शास्त्रकारों ने वचने के लिए प्रेरित किया है, और सुझाव दिया है कि भोग में त्याग की प्रवृत्ति श्रेयस्कर है। इससे इन्द्रियों के स्वाभाविक घम का भी पालन हो जाता है और कोई हानि नहीं हो पाती।

इच्छा-शक्ति का विकास—

यह भी कार्य इच्छा-शक्ति के सहयोग से ही सुविधापूर्वक हो पाते हैं। मनीषी ऋषियों ने इच्छा शक्ति को देवी का रूप दिया। वह भली प्रकार जानते थे कि जीवन को सफलता-अमफलता उत्तरापं-अपकर्पं, उन्नति-अवनति और उत्थान-पतन सब मनुष्य की इच्छा शक्ति की सबनता तथा निर्वलता के परिणाम हैं। सब और हृषि इच्छा शक्ति सम्पन्न लोगों को भ्रमद्रव विचार, कुक्लपनाएँ भयानक, परिस्थितियाँ, ढलभने भी विचलित नहीं कर सकती। वे अपने निश्चय पर हृषि रहते हैं। उनके विचार स्थिर और निश्चित होते हैं। वे उन्हें बार बार नहीं बदलते। प्रबल इच्छा शक्ति से शारीरिक कष्ट भी उन्हें अस्थिर नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति हर परिस्थितियों में अपना रास्ता निकाल कर आगे बढ़ते रहते हैं। अपने व्यक्तिगत द्वानि-लाभ से भी प्रभावित नहीं होने।

हृषि इच्छा-शक्ति मानसिक क्षेत्र का वह दुर्ग है, जिसमें किसी भी वाह्य परिस्थिति, रूपना, कुविचारों का प्रभाव नहीं हो सकता। हृषि इच्छा-शक्ति-मुम्पन्न वर्गित जीवन की भयहङ्कर भक्षावातों में भी अजेय चट्टान की तरह घटल और स्थिर रहता है। ऐसा मनुष्य सदैव प्रसन्न और शात रहता है। जीवन का सुख, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, प्रसन्नता, शाति उसके साथ रहते हैं।

जिस व्यक्ति में इच्छा-शक्ति की जितनी प्रबलता है, वह उतना ही अधिक कार्यक्षम होना है। मानव-देह पर इच्छा-शक्ति का ही शासन है, क्योंकि इच्छा द्वारा ही सब इन्द्रियाँ अपने कार्यों में लगती हैं। अत्यन्त निर्वल मनुष्य भी इसके बल से बलवान बन जाते हैं।

दण्डे-बड़े उपस्थियों की साधनाओं में इच्छा-शक्ति का ही हाथ

था। बडे-बडे प्रग्रामो में विजय-श्री प्राप्त कराने का श्रेय भी इच्छा-शक्ति को ही रहा है। बडे-बडे हृत्याकाड़ों में जो वीभत्ता उत्पन्न हुई वह सब इच्छा-शक्ति के कारण ही हुई। प्राप इसे जिम कार्य में लगायेगे, वह उनी में लग जायगी। उसी को पूर्ण करने का प्रयत्न करेंगी।

देवी-उपासना से इच्छा-शक्ति को विकसित करके हम जीवन के हर क्षेत्र में द्रुतगति से बढ़ सकते हैं।

भयङ्कर रूप का अभिप्राय—

चित्रों, मूर्तियों और कथाओं में देवी के दो रूपों का चित्रण किया गया है। एक भयकर और दूसरा उन्नयनजारी। भयङ्कर रूप के दर्शन हम तब करते हैं, जब देवी को देव कर्य के लिए युद्ध-स्थेत्र में उतरना पड़ता है। सामने शक्तिशाली योद्धा हैं, जिन्होंने देवराज हन्द्र जैसे वीरों को परास्त करके आसुरी सम्राज्य स्थापित कर रखा है। उन्हें घराशायी करने के लिए देवी को भयङ्कर रूप धारण करना पड़ा, जो विजय को कामना करने वाले हर पक्ष में होना स्वभाव-सिद्ध है। आसुरी शक्तियों के विनाश के लिए यही रूप अपेक्षित है। जिन परिस्थितियों में देवी को आसुरों में जूझना पड़ा, वे हर मानव के जीवन में आती हैं। किसी-न किसी रूप में यह होना ही है। भगवान् बुद्ध के सामने भी यही स्थिति थी। हमारे और प्रापके सामने भी आयेगी। उमका डटकर सामना करने के लिए अपनी देवी-शक्तियों को एकत्रित करके पूरी शक्ति के साथ उन पर आक्रमण करना चाहिए। देवी का सौम्य रूप ही प्रशस्त माना गया है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर इस रूप को धारण करने में भी कोई हाति नहीं है। इस भयङ्कर रूप की ग्रन्तुरुति बनकर हमें भी अपने मानसिंह शत्रुप्रों का तिर काटना होगा, 'यही देवी के क्रूर रूप का अभिप्राय है।

कुप्रवृत्तियो के त्याग की भावना—

पशु-बलि देवी-उपासना का आवश्यक अङ्ग माना जाता है। यह प्रतीकात्मक रहस्य है, जिसे न समझ कर देवी के पवित्र नाम को कर्त्त्विक किया जाता है। वास्तव में बलि का तात्पर्य प्रान्तरिक कुप्रवृत्तियो का त्याग ही है।

उपनिषद् का वचन है—

काम क्रोध लोभाद्य पशव ।

अर्थात् “काम, क्रोध, लोभ, मोह यह पशु हैं, इन्हीं को मार कर यज्ञ में हवन करना चाहिए।”

इसी प्रकार—

काम क्रोध मुलोभ मोह पशु काच्छित्वा विवेकासिना ।
माम निर्विषय परात्म सुखद भुञ्जति तेषा वुधा ॥

—भैरवयामल

अर्थात् ‘विवेकी पृष्ठ काम, क्रोध, लोभ और मोह रूपी पशुओं को विवेक रूपी तलवार में काटकर दूसरे प्राणियों को सुख देने वाले निर्विषय-रूप मास का मक्षण करते हैं।’

महानिर्वाण तन्त्र में भी इसी आशय का इलोक आया है—

कामक्रोधी द्वौ पशु मनसा बलिमर्पयेत् ।

कामक्रोधी विघ्नकृतो वलि दत्तवा जप चरेत् ॥

‘काम और क्रोधरूपी दोनों विघ्नकारी पशुओं का वलिदान करके उपासना करनी चाहिए। यही शास्त्रोक्त वलिदान-रहस्य है।’

अनन्तरिक रूप से यह आत्म-शुद्धि की, कुविचारों, पाप, तापों, कषाय कल्पणों से बचने की शिक्षा है।

रहस्य-तन्त्र का कथन है—

कामक्रोधी विघ्नकृतो वलि दद्याज्जप चरेत् ।

एक दूसरे तन्त्र का वचन है—

इन्द्रयाणि पशुन् हत्वा ।

अब देवी कुप्रवृत्तियों के त्याग की प्रेरणा देनी है ।

उन्नयनकारी रूप का उद्देश्य—

मातृ उपासना का दूसरा रूप उन्नयनकारी है । वह उत्यान सी प्रतिमा है । अवगुणों पर कुठाराघात करना उपका सर्वप्रथम कर्तव्य है । दोष उसके सामने मकुचिन हो जाते हैं । दोषों के विनाश के साथ ही आत्मिक प्रगति होनी चलती है । देवी तो सदगुणों की खान है । पवित्रता, उदारता शील, लज्जा, चेनना, बुद्धि, शिष्टना उपके चारित्रिक अङ्ग हैं । देवताओं के सम्मिनित प्रयत्न से उसका जन्म हुआ । वह दिव्य गुणों की समन्वित मूर्ति है । जो देवी-भक्त सदगुणों के विकास की ओर ध्यान नहीं देता, वह माता के प्राण्यात्मिक पर्यान से वचित रह जाना है । जिस पर माता का वरद इम्त रहता है, वही उसे प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त कर पाता है । शेष तो भौतिक कामनाओं की पूर्ति में ही उलझे रहने हैं । देवी प्रेरित करती है कि जीवन के आघार-स्तम्भ सदगुण हैं । अपने गुण, कर्म, स्वभाव को श्रेष्ठ बना लेना, अपनी आदनों को श्रेष्ठ सज्जनों की तरह ढाल लेना वस्तुत एक ऐनी बड़ी सफलता है, जिसकी तुलना किसी भी भून्य सामाजिक लाभ से नहीं की जा सकती । विदेशी मनोपी भी इस रूप की प्रशंसा किए विना नहीं रह सके हैं । 'दि ग्रेट मदर' नामक पुस्तक के प्रणेता श्री एरिश न्यूमन ने लिखा है—

"कालातर मे भारतीय मातृशक्ति ने प्रकाशपूर्ण उन्नयनकारी रूप के चरम रूप की प्राप्ति कर लिया । केवल तन्त्रों की शक्ति के रूप में नहीं, काली—जो स्वयं भयकारी मूर्ति थी, उन्नयनकारी आध्यात्मिक स्तर पर स्वनन्धता और सुरक्षा की महात् देवी वन गई, जिसकी तुलना में पद्मिनी की कोई देवी ठहर नहीं सकती और सर्वोत्तम रूप में 'सारा'

का उदय हुआ, जिसके देवी-प्रकाश की कोई सीमा नहीं। प्रज्ञापारमिता के रूप में वह दोधिसत्त्वों की भी जननी है।”

देवी प्रकाशरूपा है, वह दिव्यता का पुञ्ज है। कथा भी है कि आदि में सब अन्धकार था, देवी की कृपा से प्रकाश हुआ। देत्यो न उपका भयण कर लेना चाह, परन्तु देवी ने उनको ही नष्ट कर दिया। देवी प्रकाश, ज्ञान और ज्ञान की द्योतक है। अन्धकार उसके समक्ष रह नहीं सकता। दिव्यता के आगार में कुविचारों को कहाँ स्थान मिल सकता है? वह तो प्रत्येक ज्ञानार्थि में जनकर भृप हो जाएगे। देवी का रोम-गोन करोड़ों सूर्यों के प्रकाश से दमरुता है। उनकी चपक देव-राज्य की स्थापना का उद्घोप नरनी है। हमारा मनोराज्य भी ऐसे हा प्रगति पुर्जों से अलकृत होना च हिए। यही देवी को उपासना, समीपता का रहस्य है।

नव-निर्माण को प्रेरणा--

सृजन-शक्ति माता का एक विशेष गुण है, जिसके कारण उसे इस पवित्र नाम से सम्बोधित किया जाता है। शगीरधारी माँ प्राण-गिड का निमण करती है, जबकि विश्व-माता सारे विश्व को जन्म देनी है। यह उनकी स्वभावगत विशेषता है। यह विश्व के हर अणु, परमाणु में विद्यमान है—एक-दूसरे में न्यूनता भन ही हो जाए। मानव में यह अविकृत विकसित होनी है। महर्षि विश्वामित्र तो इसके प्रतीक ही बन गए थे। उन्होंने नई सृष्टि की रचना का महान् प्रयत्न किया था। राष्ट्र में नई चेतना, समाज में नया प्रकाश, व्यक्ति में नया जोश ही इससे प्रभित्रैत है। जीवन को नए सांचे में ढालना, विवारों को उच्च, पवित्र और परिपक्व करना, अन्ती शक्ति-मावनों को गति देना ही अभीष्ट है। निर्माण की शक्ति और क्षमता तो ईश्वर-प्रदत्त है, जो इसका उपयोग नहीं करता, वह अविकसित, पिछड़ा हुआ और दीन-हीन रह जाता है। यह मातृशक्ति की उपासना से वचित रहना है। सृजन-शक्ति से जीवन का नव-निर्माण लक्षित है।

परिवर्तन की क्षमता—

परिवर्तन की क्षमता नारी का जन्मजात सौभाग्य है। इसके प्रमाण नित्य देखने में आते हैं। वह शुक्र को शिशु में बदलती है, रक्त से दुग्ध-शारा को प्रस्फुटन करती है। वह शिशु के विचार-चक्र को अपना इच्छानुपार चलाती है—उसे जैसा बनाना चाहे बना सकती है। शिशु-जन्म के बाद भी वह उसमें परिवर्तन लाने की क्षमता रखती है। मदालसा जैसी विदुती नारियों के उदाहरण जगत् प्रसिद्ध है, जिन्हें नोरियों से आत्मोत्थान की भूमिका तैयार की थी। नारी गृहस्थ को नरक और स्वर्ग दोनों बना सकती है। जहाँ उसके शरीर से प्रेम, स्नेह, से हुआ। इसमें सगठन शक्ति और भौतिक साधनों के अभाव में भी स्वर्गीय वातावरण निर्माण कर डालती है परन्तु जहाँ रौद्र रूप के दृश्य होते हैं, वहाँ साधन-सम्बन्ध धरानों में भी कलह, खलेश और असन्तोष व्याप्त रहता है। मातृशक्ति परिवर्तन चाहती है। वर्तमान परिस्थितियों और क्षमताओं में जो श्रुर्णना है उसे पूर्णना में परिवर्तित करना ही उसे प्रभीष्ट है।

दिव्य शक्तियों का सङ्घठन—

देवी का जन्म देवताओं की सम्मिलित शक्ति सौहार्द की कुहार निकलती है, जन की महत्ता परिलक्षित होती है। कहा भी है—“सध शक्ति कनौयुगे”। प्रगति के लिए सगठन शक्ति आवश्यक है। देवी इसके द्वारा सामाजिक जीवन में विकास चाहती है।

देवी के जन्म वा उद्देश्य आसुरी शक्तियों का विनाश था। उसने समाज को अव्यवस्थित करने वाले शक्ति-स्रोतों पर प्रहार किया, घोर सघर्ष हुआ, विजयश्री देवी के पक्ष में रही। वह तो रहनी ही थी क्योंकि प्रत्यक्ष विजय दिव्यता की ही होती है। हमारे मन क्षेत्र में जो आसुरी तत्त्व विद्यमान हैं, उनसे लोहा लेने के लिए देव-तत्त्वों को सगठित करना होगा और उनके विरुद्ध जिहाद बोलकर ललकारना होगा। उन्हे परास्त किए विना आत्म-कल्याण सम्भव नहीं है। यह

सग्राम आवश्यक है। जो व्यक्ति इसके लिए अपने को तैयार नहीं करता, वह असुरों से प्रभावित होकर असुर ही बन जाता है, जिसे जीवन-नाश की सज्जा दी जाती है।

अनासक्त भावना—

कमल का गुण देवी को प्रिय है। तारा का आमन कमल का बना है। देवी मेडोना और डेमेनेर के हाथों में इसे देवा जा सकता है। आइसिम के रथ का पहिया इसे बना हुआ है।

कमल भारतीय सम्कृति का महाप्रतीक माना जाता है। इसका जन्म पक में होता है, परन्तु फिर भी यह निर्मल और पवित्र रहता है। यह जन्म में रहते हुए भी उसमें अनग रहता है, जल से अलिप्त रहता है। कमल के प्रतीक से यह प्रेरणा मिनी है कि हमें जन्मार में रहने हुए भी उसमें आसक्त नहीं हाना चाहिए, उसमें अलिप्त रहता चाहिए। ससार के भोग बुरे नहीं हैं, परन्तु उन्हें त्यागनुरूप क ग्रहण करना चाहिए। परिवार के पानन-पाषण को एक परम पवित्र कर्तव्य मानना चाहिए। हर सदस्य के बौद्धिक व आत्मिक विकास के लिए जी-टोड प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु उसमें मोह और ममता नहीं होनी चाहिए।

कमल को प्रकाश प्रिय है, वह मदेव प्रकाश के मम्मुख रहता है। जब सूर्य निरुक्त है —कमन प्रपनी पखुडियाँ खोन देना है, मानो अपनी अपार प्रसन्नता का प्रदर्शन कर रहा हो। जब तक सूर्य रहता है, उसका मुख प्रकाश की ओर ही रहता है। उसे अन्वकार प्रिय नहीं है, वह प्रकाश पर मरता है। वह 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का पुजारी है, मानो वह यही प्रार्थना करता रहता है —मुझे अन्वकार से प्रकाश की ओर ले चलो। भगवान् उसकी पवित्र भावना से श्रोत-प्रोत प्रार्थना स्वीकार भी कर लेते हैं। कमन की प्रेरणा है कि हमें भी अज्ञानात्मकार और अविवेक से मदेव दूर रहना चाहिए तथा ज्ञान, प्रकाश, ज्योति और विवेक को आदर्श बनाना चाहिए।

पर्वतीय उच्चता का बोथ—

देवी का पर्वत से सम्बन्ध स्थापित किया गया है। पावती तो तो पर्वतराज की पुत्री ही घोषित की गई। देवी को पर्वत प्रिय भी है। देवी के अधिकांश प्रणिद्ध उपासना ग्रह पर्वतो पर स्थित है। पर्वत से उच्चता का बोध होता है। देवी का आसन पर्वत पर रहता है। हमारे जीवन का आधार उच्च विचार होने चाहिए। उच्च वचारों के पर्वतीय आसन पर बैठकर ही आध्यात्मिक उन्नति को क्षमता प्राप्त की जा सकती है।

परमार्थिक भावना—

देवी अन्नपूर्णा है, विश्वघात्री है, शाकाहारी है। वह अपने पुत्रों को भूखा नहीं देख सकती। वह उनके दुख-र्द्दि को अपना समझती है, उसे अपना समझती है, उसे दूर करने का प्रयत्न करती है, निरन्तर विश्व-कल्याण में रत रहती है। हमारा समाज कुरोतियों, कुप्रवृत्तियों और दुराद्योगों से भरा पड़ा है, इसे स्वच्छ और पवित्र बनाने के लिए देवों की समिलित और सगठित प्रयत्न करने चाहिए।

प्राणी-मात्र में प्रेम का प्रसार—

देवी केवल मनुष्यों की ही माता नहीं है। वह पशु, पक्षियों, पर्वतों, चट्टानों और लताओं की भी जननी है। सिंह तो उसका प्रसिद्ध वाहन है ही। बैल, हस, मोर, गजराज, ऐरावत भी देवी के वाहन हैं। वह सभी प्राणियों की माँ है। उसका रूप सबमें विवरा पड़ा है। वह यही चाहती है कि उसके हर रूप का सम्मान किया जाए अतने स्वार्थ के लिए उसकी हिंसा न की जाए, किसी प्रकार की पीड़ा न दी जाए, पशुओं में भी देवी के दर्शन करके उनसे प्रेम-व्यवहार किया जाए और यथासम्भव उनका पालन-पोषण किया जाए।

चदगुणो का प्रयास—

देवी को ज्ञान, प्रकाश, पवित्रता, श्रेष्ठता, उच्चता, दिव्यता प्रिय हैं। इनी मेरे उमकी शोभा और सौन्दर्य निहित हैं। आयाय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, इमुक्ता असयम, स्वार्थ, भूठ, फरेव सब मन की गङ्दगी हैं। इनमे दुर्गन्ध फैलती है, जो देवी को अप्रिय है। तभी वह इस दिव्य सौन्दर्य का पुनर्जीभूत ग्रिह मानी जाती है।

प्रेरणाओं को स्रोत—

स्पष्ट है कि देवी-मावना मानव मेरे अनेकों जन्मों से व्याप्त जटना को नष्ट करके आन्तरिक प्रकाश और स्फुरणा को उद्भावित करती है। वह अवगुणों की गङ्दगी से हटाकर सदगुणों के उच्च पवनीय आत्मन पर प्रतिष्ठित करती है। यह काम सहज मे ही नहीं हो जाता, इसके लिए दीघकालीन प्रयत्न और पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है। इस सधर्य के लिए वह हमें तैयार करती है। वह केवल व्यक्तिगत उत्यानके लिए ही प्रेरित नहीं करती, उत्यानके व्यक्तिगत सामाजिक प्रगति से सम्बन्धित मानती है। इसके लिए उपाय भी मुभातो है। उपत्याग की बलि—आहृति मांगती है। अपनी सृजक शक्तियों को सतेज रखने का आहृति मांगती है। कमल की तरह भीग मे त्याग की परम्पराएँ को निभाते हुए, सभी छिपों मे मातृ-मावना की ज्योति जनाकर काम-तत्त्व पर विजय प्राप्त करके आन्तरिक सत्ता को जाग्रत करने की प्रेरणा देती है। उसका उद्देश्य मानवीय मूल्यों की परिवर्ति को हटाकर दिव्यता के दर्शन कराना है। मातृ-शक्ति की दिव्य किरणे हमे शक्ति से माप्लावित करती हैं और फक्कझोर कर कहती है—तुम हाड़-मांस के पुनर्ले मात्र नहीं हो, तुम सजेव शक्ति-सम्पन्न चेतन मात्मा हो, शक्तियों का स्रोत है। तुममे वह शक्तियाँ निहित हैं कि विश्व के किसी भी असम्भव कार्य को सम्भव बना सकते हो। गति, सक्रियता, सजीवता

तुम्हारे विशेषण हैं, अस्त्र शस्त्र हैं, इन्हे उठाओ और जीवन का सधर्ष आरम्भ करो, जो रुकावटें आये उन्हे दूर करते हुए निरन्तर मागे बढ़ते चलो। यही जीवन है। तुम शक्ति, आशा और माहस के रूप हो, प्रत, जीवन का निखार करो।

शक्ति-उपासना का रहस्य--

शक्ति उपासना विभिन्न उद्देशयों से की जानी है। वास्तविकता की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जाना है। शक्ति श्रणु-प्रग्नु में ध्यास है। विश्व की सभी वस्तुओं में क्रियाशीलता का कारण यही है। यही उनका पालन-पोषण करती है। इपलिए इसे जगज्जननी कहा जाता है। इसकी सच्ची उपासना इसे व्यापक रूप से अनुभव करना है। सृष्टि की रचना कर्तव्य बुद्धि से करना तो आवश्यक है। परन्तु अपनी पत्नी के अतिरिक्त विश्व की किसी भी अन्य स्त्री की प्रीर कुद्दिश से देखना दुर्गा का असमान भौत अवहेलना है। दुर्गा अन्धभक्तों से प्रसन्न नहीं होती, जो उनके लिए पशुओं का बलिवान करें, वच्चे की बलि करे अथवा अपनी जिहवा काट डालें। उनका वरद हस्त ता उस भक्त के लिए उठा है, जो नारी जाति के प्रति मातृ भाव की पवित्र भावना रखता है। वही शक्ति सम्राट है। ब्रह्मचर्य से शक्ति की सुरक्षा होती है। भोग और उमकी भावना से उसका अपव्यय होता है। शक्तिविकास के सावन अपनाए जाये और अनावश्यक व्यय को रोका जाए, यही शक्ति के सञ्चय का उपाय है। दुर्गा विद्या की देवी है, वह बुद्धिमानोंको ही वरदान देती है। बुद्धिमान वहा है जो अपने शक्ति-कोणों को सुरक्षित रखना जानता है।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर आदि सभी शक्ति के विग्रेधी तत्त्व हैं, शत्रु हैं। दुर्गा इनको नष्ट करके इनकी मुराडमाला गने में धारण करती हैं, तभी तो वह त्रिह की सवारी करती है और राक्षसों का दलन

करती है। जो इन्द्रियों के गुलाम हैं, काम के वश में होकर तगह-तरह का नाच नाचते हैं, जिहवा के वश में होकर शरीर को जर्जर करते रहते हैं, तामसिक व राजसिक आहार से मनोवृत्तियों को तमोगुणी व रजोगुणी बनाते रहते हैं, उनका मन निरन्तर अशात रहता है। दुर्गा की अपार स्तुति करने वाले ऐसे भक्त उनसे निराश ही होते हैं और कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। इन्द्रियों को वश में करके उनका मदुपयोग करने वाले ही सच्चे शक्ति-उपासक मान जाते हैं। इन्हे ही दुर्गा की सिद्धि प्राप्त होती है।

यह है शक्ति-माध्यनिक दृष्टिकोण, जिसे अपना-कर हम विकास-पथ की ओर उत्तमुत्तम हो सकते हैं।

• • •

नारी रूप में शक्ति-उपासना क्यों ?

कई व्यक्ति पूछते हैं—महाशक्ति को नारी के रूप में क्यों पूजा जाता है, जबकि अन्य सभी देवता नर-रूप हैं ?

इस शब्द के मूल ग्राधार में मनुष्य की वह सान्यता काम करनी है, जिसके अनुमार नर को श्रेष्ठ और नारी को निकृष्ट माना गया है। घरों में नारियों नर की सेवा-पूजा करती हैं, उसके अधिकार-आधिकार्य में रहनी हैं, उन्हें छोटा या हेतु माना जाता है। स्त्री का वर्चस्व स्वीकार करने में पुरुष अपना अरमान मानते हैं। किसी स्त्री अफसर के नीचे पुरुष कर्मवारियों को काम करना पड़े, तो बाहर से कुछ न कहते हुए भी कुड़कुड़ते हैं। किसी घर में स्त्री की बात चलती हा, पुरुष अनुगामी हो तो उसका मखोन उडाया जाता है। नर को नारी के प्रति जो यह सामर्थ्यकालीन निरस्कार बुद्धि है, उसी से प्रभावित होकर उसे यह सोचना पड़ता है कि वह नारी-शक्ति की पूजा क्यों करे ? जब नर देवता सौजन्द है, तो नारी के अर्गे मस्तक झुकाकर अपने नरस्व को हेय क्यों बनाया जाय ?

भगवान् को नारी-रूप में पूजने से किसी की कोई हानि नहीं वरन् लाभ ही है। माना के हृदय में अपार वात्मन्य है। जितनी करुणा एवं ममता माना में होती है, उतनी ओर किसी सम्बन्धी में नहीं। उपासना के लिए भगवान् के किसी घनेष मम्बन्धीरूप में ही मान्यता प्रदान

करनी पड़ती है। निराकार ब्रह्म का ध्यान सम्भव नहीं, ध्यान के बिना उपासना नहीं हो सकती। निराकारवादी भी ध्यान-उपासना प्रयोजन के लिए प्रकाश का ध्यान करते हैं। प्रकाश भी आखिर पचभूनों के अन्तर्गत आता है। ध्यान भूमिका में प्रयुक्त किए जाने वाले प्रकाश-बिन्दु एवं मूर्ख पगड़ल का एक आकार बन ही जाता है, इसलिए उपासना में कोई न कोई आकार तो निर्धारित करना ही पड़ता है। इस आकार के साथ जितनी ही आत्मीयता, ममता, घनिष्ठता होगी, उन्ना ही मन लगेगा और चित्त एकाग्र होगा और भावनात्मक तन्मयता की ओर हृषि के साथ भगवन् प्राप्ति की आर प्रगति होनी चली जायगी।

जिसके साथ घनिष्ठता स्थापित की जाती है, उनके साथ कोई रिश्ता बन जाता है। रिश्ते का अर्थ है—आत्माधारण घनिष्ठता। परिवार के सदस्य, कुटुम्बी और कन्याओं के आदान-प्रदान में सम्बन्धित रिश्तेदार कहलाते हैं। उसमें अतिकृत लोगों को मित्र कहते हैं, गुरुजन भी। इन्हीं वर्गों में स्वाभाविक प्रेम बढ़ता है। इनके सान्निध्य से सुख और विद्योग म दुख मिलता है। भगवान् को प्राप्त करने के लिए उससे प्रेम-सम्बन्ध दृढ़ करना होता है और उसके लिए उसे कोई प्रेम-पात्र कुटुम्बी रिश्तेदार अथवा मित्र जैसा सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है। इस सम्बन्ध—मान्यता—में जितनी अधिक आत्मीयता होगी, उतनी ही प्रतिक्रिया भी मिलेगी। गुम्बज अथवा कुएँ की प्रतिब्वनि की तरह हमारा प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम एवं प्रनुग्रह बनकर हमारे पास वापिस लौटना है। जिस स्तर का भाव या प्यार हम भगवान् के प्रति व्यक्त करते हैं उसी के प्रनुष्प दीवार पर मारी हूई रबड़ की गेद की तरह लौटकर भगवान् की प्रनुहम्या हमारे पास वापिस आ जाती है। इसलिए भगवान् को कोई न-कोई सम्बन्धी मानकर चलना होता है। उस मान्यता के आधार पर ही हमारी उपासना में प्रगति होती है।

भगवान् से कोई भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। उस

एक को ही किसी भी आत्मीय भावना के साथ देखा जा सकता है। उसके लिए इर मान्यता उपयुक्त है। कहा भी है—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव भ्राता च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणा त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव, ॥

प्रार्थना में जिन सम्बन्धों को गिनाया गया है, उनमें माता का सम्बन्ध सर्वप्रथम है। वह सर्वोंपरि है, क्योंकि माता से बढ़कर परम नि स्वार्थ, अतिशय कोमल करुणा एवं वात्सल्य से पूर्ण और कोई रिश्ता हो ही नहीं सकता। जब हम भगवान को माता मानकर चलते हैं, तो उपकी प्रतिक्रिया किसी सहृदय माता के वात्सल्य के रूप में ही उपलब्ध होती है। इस उपलब्धि को पाकर साधक धन्य हो जाता है।

पिता से माता का दर्जा सौ गुना अधिक बताया गया है। यो पिता भी बच्चों को प्यार करते हैं, पर उस प्यार का स्तर माता की तुलना नहीं कर सकता। इसलिए सबमें भगवान को माता मानकर चलना अपने ही हित में है। इसमें अपने को ही अधिक लाभ होता है।

नारी के प्रति मनुष्य में एक वासनात्मक दुष्टता भी जड़ जमाए बैठी रहती है। यदि इसे हटाया जा सके—नर और नारी के बीच काम-कौतुक की कल्पना हटाई जा सके, तो विष को अमृत में बदलने जैसी भावनात्मक रसायन बन सकती है। नर और नारी के बीच 'रथि' और 'प्राण' विद्युत-धारा-सी बहती है, उनका सम्पर्क वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करता है, जैसा कि बिजली के 'नेगेटिव' और 'पोजेटिव' धाराओं के मिलन से विद्युत सचार का माध्यम बन जाता है। माता और पुत्र का मिलन एक अत्यन्त उत्कृष्ट स्तर की आघ्यातिमक विद्युत-धाराओं का सृजन करता है। मातृ-स्त्रेह से विहीन बालकों में एक बड़ा मानसिक अभाव रह जाता है, भले ही उन्हे प्रन्य सासारिक सुविधाएं कितनी ही अधिक बयों न हो। पत्नी, वहिन, पुत्री ग्रादि के रूप में भी नारी नर को महत्वपूर्ण भावनात्मक सोयण प्रदान करती है, और उसकी मानसिक

अपूर्णता को पूर्ण करने में सहायक होती है। यह सासारिक स्तर की बात उपासना के भावना-क्षेत्र में भी लागू होनी है। माता का नारी-रूप ध्यान भूमिका में जब प्रवेश करता है, तो उसमें प्राण की एक बड़ी अपूर्णता पूरी होती है।

युवती नारी के रूप में माता का ध्यान करके हम नारी के प्रति वासना-दृष्टि हटाकर पवित्रता का दृष्टिकोण जमाने का अध्यास करते हैं। इसमें जितनी ही सफलता मिलती है, उनना ही बाह्य जगत में भी हमारा नारी के प्रति वासना-दृष्टि रखने में मन हटउ जाता है। इस प्रकार नर-नारी के बीच जिम पवित्रता की स्थापना हो जाने पर प्रतेक ग्रात्मिक बाधाएँ, कुण्ठाएँ एवं विकृनियाँ दूर हो सकती हैं, उसका लाभ सहज ही मिलने लगता है। मता का ध्यान एक वृद्ध नारी का नहीं वरन् एक युवती का होता है। युवती में यदि उत्कृष्टता की तथा पवित्र दृष्टि रखी जा सके, तो समझा चाहिए कि ग्रात्मिक स्तर मिछ्ड योगियों जैसा तेजस्वी बन गया। उपासना में इम महाशक्ति को नारी रूप देकर इस एक महत्वपूर्ण ग्राध्यात्मिक आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि में शक्ति स्त्रीलिंग है। इसलिए यदि ध्यान-कल्पना में उसे नारी रूप में निश्चित किया जाय, तो उसमें अनुचित कुछ भी नहीं है। सच तो यह है कि शक्ति-नत्व को स्त्री-रूप के वर्गों में विभक्त ही नहीं किया जा सकता। यह विभाजन तो शरीरधारी प्राणियों में मन्त्रानोत्पत्ति प्रयोजन के लिए होता है। दिव्य शक्तियाँ न तो शरीरधारी हैं और न उन्हें प्रजनन ही करना है, ऐसी दशा में उनमें वास्तविक निः-भेद नहीं। उहे नर-नारी के रूप में तो ध्यान सुविधा के लिए ही चिन्तित किया जाता है अथवा भाषा में जिस प्रकार का लिंग प्रयुक्त होता है, उसी आवार पर उनका शरीर बना दिया जाता है। यह वस्तु वास्तविक नहीं वरन् मानवी कल्पना का खेल है।

अग्नि स्त्री लिंग है, तेजस् पुर्णिलिंग है। शब्दो में लिंग-भेद है, पर वस्तु एक ही है। वायु स्त्री-लिंग और मरुत् पुर्णिलिंग। बात एक ही है, पर शब्दो के अधार पर लिंग बदल गया। उपर्युक्त पुर्णिलिंग है, वाटिका स्त्री-लिंग—एक ही चीज के दो स्वरूप। शेष्या और पलग एक होते हुए भी लिंग पृथक् है। चन्द्रमा को हिन्दी में नर और ओंग्रेजी में नारी मानते हैं। वस्तुतः चन्द्रमा एक ग्रह निष्ठमात्र है, वह नर है न नारी। भाषा और कल्पना में उसे नर-नारी के रूप में खोचा जाता है। परब्रह्म की सर्वोर्परि शक्ति को स्त्री कहा जाय या पुरुष, यह हमारी भाषा और कल्पना पर निर्भर है। वस्तुतः वह लिंगभेद से परे है। उपासना में शक्ति भी तुलना नारी रूप में करके हम अपना ही साधना-त्मक एवं भावनात्मक प्रयोगता पूर्ण करते हैं। अतएव इसमें सन्देह तथा विवाद की कोई गुआहशा नहीं है।

नर की जननी होने के कारण वस्तुत नारी उससे कही अविक श्रेष्ठ एवं पवित्र है। उसका स्थान सम्भवत बहुत ऊँचा है। माता का पूज्य स्थान उससे भी ऊँचा है। पुरुष की अपूरणतायें नारी के स्नेह क सिचन से ही दूर होती हैं। इमनिए यदि नारी के रूप में हमारा उपास्य-इष्ट हो, तो वह एक धोचित्य ही है। अनादि काल से भारतीय धर्म में ऐसी मान्यता चली आ रही है, माता को ही नहीं पत्नी को भी पति से अविक एवं प्रथम स्थान मिला है। पति-पत्नि के सम्मिलित नामों में पत्नी की प्राथमिकता है। लक्ष्मी नारायण, सीता राम, रघु-श्याम, रमा-महेश, शशी-पुरन्दर, माता-पिता, गणा-सागर आदि नामों में पत्नी को ही प्राथमिकता मिली है। कारण उमकी वरिष्ठता ही है। इस तरह भी यदि देवता का पुर्णिलिंग स्वरूप अविक उत्तम है या स्त्री लिंग स्वरूप, तो उसका सहज उत्तर नारी के ही रूप में शायेगा। ऐसी दशा में यह शका करना उचित नहीं।

शक्ति को नारी का रूप देकर उसे तो पूज्य स्थान पर वेठाया गया है, उसमें कुद्र श्रनुचित नहीं हुआ है।

उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि में अगणित शास्त्रोय प्रमाण मिलते हैं, उनमें में कुछ का उल्लेव नीचे किया जाता है—

अचिन्त्यस्याप्रमेस्य निर्मुणस्य गुणात्मन ।

उपासकाना मिद्धर्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना ॥

“परब्रह्म की सभी शक्तियाँ अचिन्त्य और निर्गुण हैं। उन स्वरूपों को उपासकों को समझाने के उद्देश्य में ऋषियों ने उनके रूपों की कल्पना करके मूर्तियों को बनाया है।”

भेद उत्पत्तिकाले वै सर्गा प्रभवत्यज ।

दृश्यादृश्य विभेदोऽय द्वैविद्ये सति सर्वथा ॥

नाऽह नारी पुमाश्चाह न कलीव सर्गसक्षये ।

सर्गं सति विभेद स्यात् कल्पितोऽय धिया पुन ॥

अह बुद्धिरह श्रोदच धृति कीर्ति स्मृतिस्तथा ।

श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा ॥

—देवी भागवत

“उत्पत्ति के समय सृष्टि के अर्द्ध से ही भेद प्रतीत होता है। यह दृश्य प्रदृश्य का विभेद—द्वैतवाद सदैव रहता है अर्थात् सृष्टि-दशा में ब्रह्म और शक्ति दोनों स्वतन्त्र रूप से प्रकट होते हैं। प्रलय हो जाने पर न में स्त्री हूँ, न पुरुष और न कलीव हूँ। केवल सृष्टिकाल में ही बुद्धि द्वारा कल्पित भेद-दृष्टि में आता है। सृष्टि की विकास-श्रवस्था में ही बुद्धि, श्री, धृति कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, पिपासा और क्षमा में हो हूँ।”

अरूप भावनागम्य पर ब्रह्म कुलेश्वरि ।

अरूपा रूपिणी कृत्वा कर्मकाडरता नर ॥

—कुलाणं च उत्तम

“वह ईश्वरी शक्ति अरुप और केवल भावनागम्य है। पर कर्मकाण्ड में मन्त्रगत मनुष्य उप अरुप में से ही रूप की कल्पना कर लेते हैं।”

जगन्माता च प्रकृति पुरुषश्च जगतिता ।

गरीयसर्ति जगता माता शतगृणो पितु ॥

—ब्रह्मवैवर्त पुराण

“जगजजननी प्रकृति है और जगत का पिता पुरुष है। जगत में पिता से सौ गुना अधिक महत्व माता का है।”

न बाला न च त्व वयस्था न वृद्धा,

न च छा न षण्ठ पुमानेव च त्वम् ।

सुरो नासुरो नरो वा नारी,

त्वमेका परब्रह्मल्पेण सिद्धा ॥

—महाकाली स्तवन

“हे महामाया ! न तुम बालिका हो, न वयस्क हो, न वृद्ध हो, स्त्री, क्लीव और पुरुष भी तुम नहीं हो, न देवता हो, न दानव हो, न नर हो, न नारी हो, तुम केवल परब्रह्मस्वल्पिणी हो।”

अचिन्त्यापि साकार शक्तिस्वरूपा,

प्रतिव्यक्यघिष्ठान सत्वेक मूर्ति ।

गुणातीतानिद्वन्द्व बोधेकगम्या,

त्वमेका परब्रह्म रूपेण सिद्ध ॥

—महाकाली स्तवन

“तुम प्रवित्तनीय होते हुए भी साकार मूर्तिरूपा हो। प्रत्येक प्राणी में मत्खण्ड रूप में विराजनन रहती हो तथा गुणातीत हो। केवल तत्त्वज्ञान से ही तुम जानी जाती हो। तुम परब्रह्म रूप से प्रसिद्ध हो।”

त्व स्त्री त्व पुमानसि त्वं,

कुमार उन वा कुमारी ।

त्वं जीर्णो दण्डेन वचसि त्वं,
जातो भवति विश्वतो मुख ॥

—इवेत० ४३

“तू स्त्री है, तू पुरुष भी है, तू ही कुमार और कुमारी है तू वृद्ध होकर लाठी के सहारे चलता है और तू ही उत्पन्न होकर सब और मुख बाला हो जाता है।”

सा च ब्रह्म स्वरूपा च नित्या स च सनातनी ।
यथात्मा च तथा शक्विनर्दयागनी दाहिका स्थिता ॥
अतएव हि योगीन्द्रे स्त्री पुम्भेदो न मन्यते ।
सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शश्वत् सदपि नारद ॥

—देवी भाग० ६।१।१०।११

“वही ब्रह्म प्रकृति ब्रह्मस्वरूपा, नित्या और सनातनी है। हर-ब्रह्म परमात्मा के अनुरूप सभी गुण रम प्रकृति में निहित हैं जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति सदैव रहनी है। इसी में परम योगीगण स्त्री-पुरुष में भेद नहीं मानते। हे नारद! वे कहते हैं कि सत्-प्रसत् जो कुछ भी है, सब ब्रह्ममय है।”

‘कामधेनु तन्त्र’ में कहा है कि—

युवती सा समाख्याता सा महाकुण्डली परा ।

अर्थात् “वह परा जैसी महाकुण्डली युवती के रूप में कहो गई है।”

स तस्मिन्नेवाकशे ख्यामाजगाम बहुशोभ मानामुमा
हैमवतीम् ।

“इन्द्रादि देवताओं को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने को ब्रह्मस्थान में जो प्रतिमा प्रकट हुई, उसी स्त्री-मूर्ति का दर्शन इन्द्र को हुआ।”

जगद्वात्री महामाया ब्रह्म रूपा सनातनीम् ।

दृष्ट्वा प्रमुदिता सर्वे देवताप्सर किन्नरा ॥

—हृद विष्णु-पुराण

“जगन्माता, महामाया, ब्रह्मरूपा, सनातनी, महाशक्ति को देखकर देवगण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर सब परम हर्षित हुए ।”

जयखिला सुराराध्ये जय कामेशि कामदे ।
जय ब्रह्ममयि देवि ब्रह्मानन्द रसात्मिके ॥

—ललितोपाख्यान ८।२

‘हे महादेवि ! तुम ही समस्त देवताओं की आराध्या हो, तुम्हीं सबं कामनाओं की ईश्वरी और उनको पूर्ण करने वाली हो ।’

त्वमेव सबजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
त्वमेवाद्या सृष्टिविद्यो स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥
कायर्थि सगुणा त्वं परमानुग्रहाविग्रहा ।
परब्रह्म स्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी ॥
तेज स्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया ।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वधारा परात्परा ॥
सर्वब्रोज स्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया ।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वं मञ्जल मञ्जला ॥

—ब्रह्मवैवत पु० प्रकृतिं० २१६।७।१०

‘तुम्हीं विश्व-जननी, मूल-प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं, सृष्टि-उत्पत्ति के समय आद्याशक्ति के रूप में विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जाती हो । यद्यपि वस्तुत तुम निर्गुण हो तथापि प्रयाजनवश सगुण हो जाती हो । तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एव सतातनी हो । परम तेजस्वरूप, सर्वपूज्या एव आश्रय-रहित हो । तुम मर्वज, श्वर प्रकार से मगल करने वाली और सर्वमगलों की मगल हो ।’

कथ जगत् किमर्थं तत् करोपि के न हेतुना ।
नाह जानामि तद्देव यतोह हि त्वदुद्भव ॥

“हे देवी ! तुम किसके लिए, विस हेतु जगत् की सृष्टि करती हो—मैं इस बात को नहीं जानता, क्योंकि मैं तुमसे उत्पन्न हूँ ।”

माया ख्याया कामधेनोर्वर्त्सौ जीवेश्वराबुभी ।

—शक्तितत्त्व विमर्शिनी

“जीव और ईश्वर दोनो माया रूपी कामधेनु के दो बछडे हैं ।”

उपरोक्त प्रमाणो में पञ्चद्वादश को नारी-रूप में चित्रण करने का रहस्य प्रकट किया गया है। नर और नारी में से किसे प्रायमिकता मिले ? इस प्रश्न के उत्तर में नृत्य-विज्ञान का, जीवविज्ञान का भी सहारा लिया जा सकता है। शोवकर्त्ता इनी निष्ठार्थ पर पहुँचते हैं कि प्रायमिकता नारी को ही है। पहले भूमि बनी, बीजो का आविभवि इसके उपरान्त हुआ ।

नृत्यवेत्ता ‘हेवलाक ऐलिस’ इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव जाति का आरम्भ नारी से ही होता है। पुरुष का अस्तित्व पीछे प्रकाश में प्राया । उन्होंने लिखा है—

“प्रायमिकता और प्रकृति के नियमानुसार पहले नारी ही ही उत्पत्ति हुई । सावारणन्या प्राणी भाव की उत्पत्ति नारी जाति पर ही अवलम्बित है। प्राणी जगत् की सृष्टि के लिए पुरुष की आवश्यकता ही न थी अथवा गोणु थी। रज और वीर्य के सयोग से विभिन्न गुणो द्वाग जावन-शक्ति को परिपूष्ट एव प्रस्फुटित करने के हेतु जाभ की दृष्टि से पुरुष जाति का पीछे से विकास हुआ ।”

नारी में देवत्व की मात्रा पुरुष की तुलना में कहीं अधिक है। इसलिए जहाँ पुरुष को अपने गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता होने पर ही पूज्य पद एव सम्मान मिलता है, वहाँ नारी को उसकी जननी, भगिनी, कन्या आदि विशेषताओं के कारण जन्मजात सम्मान मिल जाता है। उनके हृदय में वह विशालता विद्यमान है जिसके आधार पर शिशु को अपने शरीर का रस निचोड़कर प्रदान कर सकती है।

इन्हीं विशेषताओं के कारण मानवी होते हुए भी उसे देवी कहा जाता है। अधिकांश स्त्रियों के नाम के अन्त में देवी पद जोड़ा जाता है जैसे कि शकुन्तला देवी, रमिला देवी, भगवती देवी आदि।

शास्त्र कहते हैं—

स्त्रीषु प्रीतिर्विशेषेण स्त्रीष्वपत्य प्रतिष्ठितम् ।
घर्मार्थीं स्त्रीषु लक्ष्मीश्च स्त्रीषु लोका प्रतिष्ठिता ।

—चरक सहिता—चि० स्था० अ० २

“प्रीति का निवास अधिकतर स्त्रियों में ही होता है। सन्तान की जननी भी वे ही होती हैं। घर्म स्त्रियों में रहता है, लक्ष्मी भी स्त्रियों में रहती है। इसलिए सनार स्त्रियों में ही स्थित है।”

नारी-रूप में परमात्मा का दिव्य दर्शन हम पग-पग पर कर सकते हैं। इस प्रकार की दिव्य हृषि किसे प्राप्त है, उसे सच्ची आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त हुई समझनी चाहिए। शक्ति-उपासना में नारी-प्रतिमा को वन्दनीय मानकर मनुष्य को पवित्रतम बनाने का प्रयत्न किया गया है। नारी वस्तुत मूर्तिमान महामाया ही है। देखिए—

जननी जन्म काले च स्नेह काले च कन्यका ।

भार्या भोगाय समृक्ता अन्तकाले च कालिका ।

एकैव कालिका देवा विहरन्ती जगत्त्रये ॥

“यही महामाया जननी रूप में हमकी जन्म देती है, कन्या-रूप में हमारी स्नेह की पात्र बननी है, भार्या के रूप में भोगदात्री बन जाती है और अन्त समय में कालिका के रूप में हमारी इहनीना सवरण कर देती है। इन प्रकार एक ही महादेवी तीनों लोकों में विचरण करती रहती है।”

तत्त्व-ग्रन्थों में नारी को भगवान की मूर्तिमान प्रतिमा मानकर उसकी विधिवत् पूजा करने का विवान है। विभिन्न ग्राम्य तथा मियति की नारियों को विभिन्न देवियों के रूप में पूजनीय मानकर उनका

वन्दन ग्रन्थत किया जाना है। ब्राह्मण भोजन की तरह ही कन्या-भोजन का भी पुरुष माना जाना है। नव-रात्रियों में, तुरश्चरणों के अन्त में तो विशेष रूप से कन्या-भोजन कराने की ही परम्परा है। ब्राह्मण तो विद्या, तपश्चर्द्धा एव सेवा के आवार पर ही ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं, पर कन्यायों में वह तत्त्व जन्मजान रूप से स्वभावतः अनापास ही विद्यमान रहता है।

कुमारी कन्यामो तरु ही पह दिग्य भाव सीमित नहीं माना गया है। वरउ उनका क्षेत्र अपने विशाल है। प्रयेक नारी में देवत्व की मान्यता रखना और उनके प्रति पवित्रतम् शब्दा रखना एवं वैषा ही व्यवहार करना उचित है, जैसा कि देवी देवतामो के सायं किंग जाता है। नारी, मात्र को भगवती की प्रतिमायें मातकर जब साधन के हृदय को पवित्रता का अभ्यास हो जाय, तब समझना चाहिए कि उसके लिए परम सिद्धि की प्रवत्था भव समीप है। शास्त्र उसी प्रकार की मनोभूमि बनाने का हमें निर्देश करते हैं और बताते हैं— ।

सर्वस्त्रीनिलया, जगद्भासय पश्य स्त्रोमात्रमाविशेषत ।

“स्त्री-मात्र को जगत्‌माता और जगत्‌गुरु मानकर पूजो ।”

विद्यासमस्तास्त्रव देवि भेदा ,

स्त्रिय, समस्तासकला जगस्तु ।

स्तर्येक्या पूरितमस्व नैतत्,

वास्ते स्तुति स्तुव्य परा परोक्ति ॥

“इस सम्पूर्ण ससार मे जो परा-अपरा विद्याएँ हैं, सो आपका ही भेद हैं। इप ससार मे समस्त नारियाँ आपका ही भेद हैं। ससार मे समस्त नारियाँ आपका ही रूप हैं।”

या काचिदुद्भवा लोके सा मात्रं कृनसम्भवा ।

कृष्णन्ति कल्योगिन्यो वनिताना व्यतिक्रमात् ॥

स्त्रिय शतापरावाच्चेत् पूष्टेणापि न ताडयेत् ।

"दग गरार मे जो गी कोई नाही है, व गव भाता ग, गमान होती है प्रथम भावूत्य पासित गम्प न होत क फारणु भावृगम प्रादर की पान होती है। यदि लियो का गमादर नही होता है और काई भी घ्यविक्रम किया जाता है, तो कुलयांगनी कुतित हो जाती है। यदि भी क गी यागण हो, तो गी उप गुप्त ग गी लाडित नही करना चाहिए। लियो क रोपो का भा व्यान म तही भाता भाइत गीर उनक विशेष गुणो का ही प्रकाशन करते रहता भाइत।"

यथ नार्थरतु पूज्यन्ते रमन्ते तथ दधता ।

यथ नार्था न पूज्यन्ते दमथानं तत्र विगृहम् ॥

—मनु

"जही नारी को पूजा होती है, वही भगव निवाग करती है, जही नारी का तिरतार होता है, वह घर निवाय हो ब्यापान है।"

त्रीणा निन्दा प्रहारं च कोटित्य चा प्रिय वच ।

आत्मनो हितमान्वच्छब्देवो भवते विवर्जयेत् ॥

"भष्मा कर्तव्य धाहन भाला, भाता का उपाय क्षी भी निवान करे, न उन्हे गार, न उनसे घुल करे, न उनका जी दुष्टाय।"

नारी भाव के प्रति उच्च भावना रखने और उनक साथ गृहाय सदृश्यवठार करने से व्यक्ति एव भगान का सर्वांगीण उत्सार हो रहका है। भावनाताक परिवर्तना ऐ बढ़का भगुय के पारा और कोई श्रेष्ठा हो नही गमणी।

जब हम भगवान का भागा के स्वयं गे पूज्य है तो ऐ भी हृषार क्षिए भाता जीता वाटगरप ले अर प्रस्तुम होत है। फहमा न होणा कि विता की हुलना म भाता का दृश्य अस्थविक कोपन होता है। यह भ्रष्टन पुन एव भक्त के प्रति सहम दी करणाद्र हो रठती है। भाता की दरमा लेने वाला अपेक्षाकृत गदेव ही भागिक भाभ म रहता है। ऐसे उदाहरण भी हैं—

पिते वत्वत्प्रेयाजनति परिपूणीगसि जने ।
 हित स्त्रोनी वृत्या भवति च कदाचित्कलुषधी ॥
 कि येतन्निदोष व इह जगतीति त्वमुचितं ।
 रूपाये विस्थार्य स्वजनयसि माता तद सिन ॥

—पराशर भट्ट

“परम पिता परमात्मा जब अपराधी जीव पर पिता के समान कुपित हो जाते हैं, तब आप ही उन्हे नमझाती हो कि—यह क्या करते हो ? इस ममार मे पूर्ण निर्दोष कौन है ? उनका क्रोध शान कर आप हो उनमे दया उपजाती हैं । इसलिए आप ही हमारी दयामशी माता हैं ।”

पुरत पतित देवी शारण्या वायस तदा ।
 तच्छ्र, पादयो स्तस्य योजयामास जानकी ॥

—रामायण

“जब काकरूपी जपन्त तीनो लाको मे आश्रय न पाकर रामच द्र जो की शरण आकर दूर पड गया, तो जानकी नी ने उसका सिर राम-चन्द्रजी के पैरो मे रखकर उसकी रक्षा की प्रारंभना की ।”

अस्तु, नारी को हेय या छोटा मानकर उमे पूजा के अयोग्य होने की कुशका मन में नहीं उठने देनी चाहिए और न यह सोचना चाहिये कि पुर्जित देवता का पूजन पातृ पूजन से अधिक उत्तम है । माता ही प्रथम देवता है । माता को शरण लेकर हम अपने ऊपर चढ़े हुए चिन्ताओ, कुरुठाओ, दैय दुर्भावो एव शोक-सतापो से छुटकारा पा सकते हैं ।

कुमारी-पूजन का उद्देश्य

आधार और उद्देश्य—

कुमारी-पूजन का महत्व भारतवर्ष में प्राचीन कान से प्रतिष्ठित रहा है। भारत अध्यात्मवादी देश है। प्रत्येक द्विया जिसका आध्यात्म से सम्बन्ध है, यहाँ उच्च सम्मान की पात्र रही है। जहाँ पेड़, पौधों और जलाशयों तक की पूजा-प्रचा होती हो, वहा सात्त्विकता की प्रत्यक्ष मूर्ति—कुमारी की कैसे उपेक्षा की जा सकती है। उपे उच्च आपत पर विठाना हमारे उच्च मिथ्यातो का ही प्रतीक है। देवी-देवताश्रो की आराधना में हमारा उद्देश्य ईश्वर के किन्हीं विशिष्ट गुणों को अपने में ओत-प्रोत करना होता है। जब मूर्ति-पूजा से हन गुणों के आकर्षण की प्रक्रिया को साकार रूप दे सकते हैं, तो क्रियाशील आराधना शीघ्र फलदायी सिद्ध हो सकता है।

शास्त्रों में ईश्वर को सनातन-कुमारी माना गया है। श्वेता-इतरोपनिषद् (४।३) में ईश्वर को स्त्री, पुरुष, कुमार और कुमारी सभी की सज्जा दी गई है—

त्वं स्त्रो त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।

व्योक्ति—

तदेवाग्निस्तदादिव्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ।

तदेव शक तद् ब्रह्म तदायस्तद् प्रजापति ॥

— श्वेताश्वतरोपनिषद् ४।२

“वही अभिन है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही नक्षत्र है, वही जन प्रौर प्रजापति है तथा ब्रह्म भी वही है।”

सबमें विभु को देखने वाला कुमारी में भी अपने इष्टदेव के दर्शन करता है। एक विद्वान् ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में अपन भावों को प्रभिव्यक्त किया है—

“ईश्वर ही सनातन कुमारी है, जो खिले हुए कमलों के गुच्छे के समान नवीन और कोमल है और जिसके नेत्र-ह्यो कमल विश्व-स्थी जल में तैरते रहते हैं। वह मनुष्यों की प्रार प्रेमरूप और करणा भरी हृषि ये देखनी है और उसकी वाणी में सन्ध्याकालीन मन्द-मद वायु का मुकोमन मगीत भरा हृप्रा है। जब मनुष्य की छाँखे उसकी भ्रांतों के स्पश्म में आती है और उसके अगरो पर धिरकने लगते हैं, तब वह उसकी अत्मा को अपन में और अपनी आत्मा का उसके अन्दर देखने लगता है। यहाँ तक कि उसका पुरुष-भाव भी मिट जाना है और समार के सभी पदार्थ मधुर और कोमल हो जाते हैं।”

ईश्वर की कुमारी के पवित्र रूप में उपासना करना एक विशिष्ट जीवन पद्धति है, जो नैतिक व आध्यात्मिक गूणों का विकास करने के साथ-साथ मनोविकारों और दुष्प्रवृत्तियों के शमन में भी महायक सिद्ध होती है। ऐपा मात्रक नारी को भोग की सामग्री नहीं, पवित्रता की मूर्ति मानता है। जहाँ भी इसके दर्शन होते हैं, उसका मस्तक स्वतं झुक जाता है। इसके विवरीन जिम मन में नारी के प्रति बुरे भाव उत्पन्न हो जाते हैं, वह आत्मधाती तो है ही, सामाजिक न्याय से भी वह पापी ठहरना है। वह अपने शरीर, मन, आत्मा, समाज और राष्ट्र मधों के साथ विश्वासघात करता है। विषय-वासनाओं का गीता में इस प्रकार दुष्परिणाम घोषित किया है—

“विषयों का विन्तन करने वाले पुरुष का इन विषयों में सुग चढ़ जाता है। फिर इस ढग से यह वासना उत्पन्न होती है कि हमको

काम (अर्थात् वह विषय) चाहिए और इम (काम की तृतीय होने में विद्युत होने से) काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होनी है : क्राव से समोह अर्थात् अविवेक होता है, समोह से स्मृति-भ्रष्टा, स्मृतिभ्रष्टा से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से (पुरुष का) सर्वस्वनाश हो जाता है ।” (२।६२-६३)

ऋषि मानव मन का विश्लेषण और प्रधारण करके इस परिणाम पर पहुँचे थे कि नावारण अकिञ्चित् में पुर ने मन्त्रागे वर अशुभाव का आविष्ट्य रहना है थोड़ा-ना भी उत्तेजन कारण मिन्ने पर वह उस ओर पवृत्त होने लगते हैं, अतः नहे एक मनोवैज्ञानिक मोड़ देना ही उन्नित है । व्यवहार में देखा गया है कि काम जीवन के किसी भी मोड़ पर व्यक्ति को पथभ्रष्ट कर सकता है । बड़े-बड़े ऋषियों भी इसका शिकार हो चुके हैं । इससे तो तभी बचा जा सकता है, जब व्यक्ति का मन पूर्ण रूप से सस्तारित हो चुका होता है और वह अपने चारों ओर सत्य-शिव-सुन्दर के ही दर्शन करता है । नारी को पवित्र रूप में देखना एक उच्च साधना है, जो उसे प्रातिमक उत्थान की ओर तीव्र गति से ले जाने में सहायक होता है । देवी का उपासन पतन में सुरक्षित रहना है यह साधना की आवश्यक प्रक्रिया है । यदि इनका पालन न हो सके, तो मार्ग में अनेकों प्रकार की ब्रावाएं उत्पन्न होती रहती हैं ।

शक्ति-रूपिणी—

कुमारी शक्ति, सिद्धि, तेजस्विता, सात्त्विकता, पवित्रता, शालीनता व कोमलता की प्रतिमूर्ति है । आसुरी तत्व उसमें पनप नहीं सकते । यदि वह ऐपा साहम करते हैं, तो वह उनका भक्षण कर जाती है, उन्हे नष्ट कर देनी है, उसका तेज इतना प्रवण है । योगिनी-तत्त्व में इस सम्बन्ध में एक प्रेरक कथा आती है—

तत् काली करास्या द्विजकथ्यास्वरूपतः ।

गत्वा कोलापुर देवी कोलासुर ममीपत ।

तमयाचत् तद्भक्ष्य कुमारी दत्य पुञ्जवम् ॥

‘एक समय की बात है कि करानवदना महाकाली ने ब्राह्मण कन्या का रुण बारश कर कोलापुर के कोलापुर में पहुँचकर उस देत्य में भोजन मौगा ।’

मातृनातविहीनाह महायररिविता ।

थुविताह महागज भोज्य मह्य प्रदीयताम् ॥

वह बोली—मैं माता-पिता विहीना एवं अमहाय कन्या हूँ ।
हे राजद! मुझे भोज्य पदार्थ दीजिए ।”

तत् कोलासुरो देवि मायया परिमोहित ।

दयया ता करे घृत्वा विवेशान्तः पुरे स्वयम् ॥

“उस कुमारी पर कोलासुर मोहित हो गया और हाथ पकड़कर उस अग्ने अग्नि पुर पे ले गया ।”

उवाच भाज्य दाम्यामि तुम्य तत्ते समीप्सितम् ।

अत्रोपविश वाले त्वमासन मणिरञ्जिते ॥

“श्रीर कहने लगा—हे बाले ! तुम्हारी जो इच्छा हो, वही भोजन में तुम्हे हूँगा । तुम इस मणि-बट्टि श्रेष्ठ आदन पर आकर दैठो ।”

इत्युक्त्वासी ददी भोज्य नानाविघमनेकश ।

भुक्त्वा सा सकल देवि पुरदेहीति वादिनी ॥

पुनददंदी वहुतर तच्चापि वभुजे स्वयम् ।

नाह तृप्ता वदन्नी तां तदोवाच महासुर ॥

यथा तृप्तिर्भवेद्वाले तावद्वि कुरुतत्तथा ।

इत्युदोरितमाकर्ण्य कालो वानस्वरूपिणी ॥

कोप हय हय हस्तिनच रथ सैंय मवान्धवम् ।

क्षणेन दभुजे काली कोल चापि महावलम् ॥

"यह रहकर देत्य ने अनेक पहार के भोजन उसे दिये, बालिका ने उन्हे खाकर कहा—इनसे मैं तृप्त नहीं हुई, यसी ओर भोजन दो। देत्य ने फिर बहुत-गा भोजन दिया और उसे भी खाकर बाली कि—मैं इससे भी तृप्त नहीं हुई। यह सुनकर देत्य रुहने लगा कि जिससे तुम्हारी तृप्ति हो सके, वही भक्षण कर सो। यह सुनकर बालरूपिणी काली ने उपका बोष, अश्व, हाथी, रथ, सेता, बान्धव आदि का भक्षण कर कोलासुर का भी भक्षण कर लिया।"

अथासुरास्तथा नाष्टात् वृष्ट्वा विष्णुमुखा सुरा ।

निरन्तरे पुष्पवृष्टिं चक्षते ननुतु परम् ॥

जगु सुलाजित गीत देवगन्धवाक्यन्तरा ।

विद्याधरी देवपत्नी किञ्चरीभि समन्तत ॥

"फिर विष्णु आदि देवताओं ने सब शगुप्तों का सहार हुआ देतकर पुष्प-नृष्टि की। देव, गन्धर्व, किन्नर एवं विद्याधरी विशिष्यदों और देव पत्नियाँ हर्षातिरेक म नृत्य करने लगी।"

पूजिता तै कुमारी सा कुसुमनंदनोऽद्वै ।

सर्वलौके पूजिता च कुमारी सा दिने दिने ॥

"फिर सबने नन्दन वन में उत्पन्न पुष्प और चारनादि से उप कुमारी का पूजन किया। फिर सभी के यहाँ कुमारी को पूजा होने लगी।"

इस कथा का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि कुमारी में स्वाभाविक रूप में इतनी शक्ति होती है कि वह ग्रवगणों व दुष्प्रवृत्तियों को नष्ट कर डालती है। कुमारी-जन्म से साधक में भी यह शक्ति ग्रवतरित होती है। इस शक्ति के विकास होने पर ही प्रगति का मार्ग प्रशस्त होना सम्भव है। हिन्दू धर्म में कुमारी-पूजन का यही कारण है। तन्मो ने भी इसे साधता के रूप में प्रपनाया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण साधु-बेला तीथ में देखा जा सकता है, जहाँ दोनों नवरात्रों में प्रष्टमी के दिन

नियमपूर्वक कुमारी-पूजन होता है। ब्राह्मण-भोजन की तरह ही कन्या-भोजन का भी पुण्य मना गया है। नवरात्रियों में, पूर्णचरणों के श्रन्त में तो विशेष रूप से कन्या-भोजन करने की ही परम्परा है। ब्राह्मण तो विद्या, तत्पश्चर्या एव सेवा के आधार पर ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं पर क्याम्ब्रों में वह नव जन्मजात रूप म स्वभावत अनायाम ही विद्यमान रहता है।

कुमारी-लक्षण—

कुमारी किसे मना जाए ? इस पर शास्त्रों म पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। वृहज्ज्योतिष्पार्णव, वमस्कन्च द, उमामना स्त्रम्भ इ, अध्याय १२८ में कुमारी का निष्ठवण किया गया है और पूजा योग्य कुमारी के लक्षण बनाए गये हैं—

एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थ ता विवर्जयेत् ।

गन्धपुष्पफनादीना प्रोतिस्तस्या न विद्यते ॥

द्विवर्षोत्तर मारभ्य दशवर्षाविवि क्रमात् ।

पूजयेत्सर्वकार्येषु यथाविध्युक्तमार्गे ॥

कुमारिका द्विवर्षा तु त्रिवर्षा च विमूर्तिनो ।

चतुर्वर्षा तु कल्याणी पञ्चवर्षा तु राहिणो ॥

पड्वर्षा तु भवेत्काली सप्तवर्षा सु चण्डिका ।

शोभवी चाष्टवर्षा तु दुर्गा तु नवमा स्मृता ॥

दशवर्षा सुभद्रेति नामाभि परिकीर्तिना ।

तत्तत्कापनया वयोऽवस्था विशेषेण पूजनम् ।

दुख दरिद्रादिद्रिपनानाशाय वत्रूणा नाशहेतवे ॥

“ दो वर्ष की आयु वाली कन्या से लेहर १० वर्ष की अवस्था तक की कुमारी ही पूजा के योग्य मानी गई है। एक वर्ष की कन्या को गन्ध-पुष्पादि में कोई प्रीति नहीं होती है। अत वह पूजा के योग्य नहीं होती हैं। दो वर्ष की कन्या कुमारिका होती है। तीन वर्ष की आयु

बाली त्रिमूर्तिनी कही जाती है। चार वर्ष की कल्पाणी, पाँच वर्ष की रोहिणी छँ वर्ष की कालिका, सात वर्ष की चण्डिका, आठ वर्ष की शाम्भवी, नौ वर्ष की अवस्था बाली कन्या दुर्गा का अवतार कही जाती है और दस वर्ष की सुभद्रा के नाम के नायिकों के यहाँ प्रसिद्ध है। तत्त्व सत्त्वा में उपी अवस्था बाली कन्या का पूजन करना चाहिए। दुख और दरिद्रता का नाश करने के लिए तथा शत्रुप्री के विनाशाथ और आयुष्य एवं बन की वृद्धि के लिए कुमारिकाओं का पूजन होता है। उक्त कामनाप्री के लिए दो वष की कन्या का अर्चन करना चाहिए।”

अन्य तत्त्वों में इस प्रकार वर्णन है—

“एक वर्ष बाली बालिका ‘कुमारी’ कहलाती है, दो वर्ष बाली ‘सरस्वती’, तीन वर्ष बाली ‘विवासूर्ति’, चार वर्ष बाली ‘कालिका, पाँच वर्ष की होने पर ‘सुभगा’, छ वर्ष की ‘उमा’, सात वर्ष की ‘मालिनी’ आठ वर्ष को ‘कुवजा’, नौ वर्ष की ‘काल सन्दर्भी’, दसवें में ‘मपराजिता’, ग्यारहवें में ‘रुद्राणी’, बारहवें में ‘भैरवी’, तेरहवें में ‘महालक्ष्मी’, चौदह पूर्ण होने पर ‘शीठनायिका’, पन्द्रहवें में ‘क्षेत्रज्ञा’ और सोलहवें में ‘ममिका’ मानी जाती है। इस प्रकार जब तक चतुर्दश का उदागम न हो, तभी तक क्रमशः सग्रह करके प्रतिपदा प्रादि से लेकर पूर्णिमा तक वृद्धि-भेद से कुमारी पूजन करना चाहिए।”

—रुद्रयामल, उत्तराखण्ड ६ पटल

“आठ वर्ष की बालिका गोरी, नौ वर्ष की रोहिणी और दस वष की कन्या कही गई है। इसके बाद वही महामाया और रजस्वला भी कही गई है। बारहवें वर्ष से नेत्र बीपवे वर्ष तक वह सुकुमारी कही गई है।”

—विश्वसार तत्र

भी दो वर्ष से लेकर दस वष तक की श्रवस्था की कुमारियों का ही पूजन करना चाहिए। जो दो वर्ष की आयु वाली है वह कुमारी, तीव्र वर्ष की त्रिमूर्ति, चार वर्ष की कल्याणी, पाँच वर्ष की रोहिणी, छँ वर्ष की कालिका, सात वष की वणिड़का, आठ वष की शाम्भवी, नौ वर्ष की दुर्गा और दस वर्ष मुग्धदा कही गई है। इनका मत्रों द्वारा पूजन करना चाहिए। एक वप वाली कन्या को पूजा से प्रसन्नता नहीं होगी। अत उसका ग्रहण नहीं है और यारह वष से ऊपर कन्याओं का पूजा में ग्रहण वर्जित है।”

- मन्त्र महोदधि १८ तरङ्ग

‘जो कुमारी को अन्न, वल्ल, जल अर्पण करता है, उसका वह अन मेर के समान और जल समुद्र के समान अक्षुण्णा और अनन्त होता है। काली-तत्त्व में कहा गया है— सभी बड़े बड़े पर्वों पर अधिकतर पुराय मुहूर्त में और महानवमी की तिथि को कुमारी-पूजन करना चाहिए। सम्पूर्ण कर्मों का फन प्राप्त करने के लिए कुमारी-पूजन श्रवश्य करे।’ वहन्तील तन्त्र के अनुसार—“पूजित हुई कुमारियाँ विघ्न, मय और अत्यन्त उत्कट शत्रु को भी नष्ट कर डालती हैं।” रुद्रयामल में लिखा है—‘कुमारी साक्षात् योगिनी और श्रेष्ठ देवता है। विचियुक्त कुमारी को श्रवश्य भोजन करना चाहिए। उस पाद्य, अध्य कुकुम और शुभ चन्दन आदि अपण करके उसकी पूजा करे।’

तस्माच्च पूजयेद्वाला सर्वजातिसमुद्भवाम् ।

जातिभेदो न कर्तव्य कुमारी पूजने शिवे ॥

“सभी जाति की कुमारियों का पूजन करना चाहिए, क्योंकि कुमारी की पूजा में जाति-भेद निवेद है।”

जातिभेदान्महेशानि नरकान्न निवर्तते ।

विचिकित्सापरो मन्त्रा ध्रुवच्च पातकी भवेत् ॥

“इस कार्य में जो मनुष्य जाति-भेद का विचार करता है, वह

नरक में गिरकर उठ नहीं सकता । यदि म प्रशान् मनुष्य कर्म नहन म
न दह करे, तो वह पारी होना है इस मात्र ममनो ।'

माहात्म्य—

तत्त्वो मैं कुमारी पूजा के माहात्म्य का उल्लङ्घन किया गया है ।
योगिनी तत्त्व में साधना का फल इस प्रहार द्वारा यदा है—

देवोवुद्भवा महामक्त्या तत्त्वमात्ता परिपूजयेत् ।
सर्वविद्यास्पृहा हि कुमारी नाम सशय ॥

"इसलिए महाभक्ति भाव म प्रीर दर्शी में तुदि चरण गानिका
की पूजा करे । गानिका सब विद्या स्वामिणी है, इसे प्रगत नहीं है ।

एका हि पूजिता वाला सर्व हि पूजित भवेत् ।
यदि भाग्यवत्ताद्देवि वेश्या कृन नमुदभवाम् ॥
कुमारी लभते कान्ते सर्वस्वेनापि साधक ।
यत्तत पूजयेत्ता तु स्वर्णरोप्यादिभिर्मुदा ॥

"एक गानिका की पूजा करने से हो सब दर्शी-देवताओं की पूजा
हो जाती है । यदि भाग्य स वेश्या के वश में उत्तमन वालिका मिल
जाय, तो प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वरण, चाँदी ग्रादि सर्वद्व प्रदार करके प्रीर
पूजा करे ।"

तदा तस्य महासिद्धिर्जयते नात्र सशय ।

महासिद्धिर्भवेदस्य स एव सदाशिव ॥

"ऐसा करने से साधक महासिद्धि को प्राप्त करता है, और वह
सदाशिव के समान हो जाता है ।"

लक्षण तस्य वक्षमामि तच्छृणुष्व प्रियवदे ।

वपुस्तस्य महेशानि काञ्चन परिजायते ॥

सर्वसिद्धियुतो भूत्वा क्रोडते भैरवोयथा ॥

"जो कुमारी की साधना करता है, उसका देह कञ्चन के समान

कानिवान होता हैं और मव सिद्धियो से सम्पन्न होकर भैरव के समान क्रीड़ा करने वाला होता है ।”

स्वर्गं मर्त्यं च पाताले गतिस्तस्य सुनिश्चितम् ।

हठात्तु जायते सर्वं यद्यन्मनसि वतते ॥

“वह स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तथा सबत्र ही गमन कर सकता है ।

जव जैसा चाहे वैसा रूप घारण कर सकता है ।”

देवदानव गन्धर्वं नागं किञ्चनरं पोपित ।

विद्याधरी राजनारी सेवन्ते त दिवानिशम् ॥

“देव, दानव, गन्धर्व, नाग, किञ्चरी, विद्याधरी, राजनारी यह सभी कन्या-पाषक की सेवा करती है ।”

अन्ते च प्राप्यते तेन पर निर्वाणमुत्तमम् ।

कुमारीपूजने काले साषक शिवता व्रजेत् ॥

साषक अन्त में परम निर्वाण-पद प्राप्त करता हैं और कन्या-पूजा के समय में उसे शिवत्व की प्राप्ति होती है ।”

कुमारी पूज्यते यत्र स देश क्षितिपावन ।

महापुण्यं तमो भूयात्समन्तात्कोशं पचकम् ॥

“जहाँ कन्या की पूजा होती है, वह स्थान पृथ्वी में पवित्र है। पाँच कोश तक उसमें अपवित्रता नहीं रहती ।”

महाराज प्रयत्नेन सर्वसिद्धिफलप्रदम् ।

सवयज्ञोत्तम भूप कुमारीपूजन शृणु ॥

कृते यस्मिन्महालक्ष्मोरचिरेण प्रसोदति ।

श्रामन्त्रयेददिने पूर्वे कुमारी भक्तिपूर्वकम् ॥

पूजादिने समाहूय कुमारीमाद्यदेवताम् ।

कुमारीपूजन कृत्वा महालक्ष्मी प्रसीदति ॥

मण्डले चरणौ तस्या क्षालयेच्छुभवारिणा ।

अर्चयेद्देष्मपानेण वारि पूष्पाक्षतै समम् ॥

सुविताने युभे स्वाने पद्मजोपरि पीठों ।

उपवेश्य कुमारी ता स्वागे न्यासान्ममाचेत् ॥

— टुड्डजयोतिशालुप, घमस्काष द, उरानना नम्भ ३, प्राप्ताद् १२८

‘हे गङ्गा ! इन नएड़ी पूजा के विवाह में दुन्निरा के दुर्ग
का बहुत दशा मृत्यु हाना है और यह मवनिदि के फन दो प्रदान करन
वाला होना है। सम्भव यजो में इने उनम् वननाया जाना है।
इसके करन पर महान्नको उहूत ही शोश्र प्रपान हो जाती है। मण्डल
में कुमारिका के चरणों का पहिले शुभ एवं शुद्ध जन से प्रपानन करना
चाहिए। किसी हेम पाण द्वारा पृष्ठाक्षन में उत्तरा अचन कर। सु-
वितान में शुभ स्थान पर पीठ पद्मज के ऊरर ऊर कुमारिका को बैठा-
कर अपने प्रङ्गों में न्यास करे।’

विसज्येत्कुमारी ता स्वगृहे सत्त्वनिभर ।

अनेन विधिना भवत्या कुमारी योऽभिपूजयेत् ॥

पृथिव्या राज्यमासद्द शिवसायुज्यता प्रजेत् ।

य य प्राथयते काम देवनामपि दुर्लभम् ॥

कुमारीपूजन कृत्वा त त प्राप्नोत्यसशयम् ।

ब्रह्माविष्णुमहेशाना कुमारी परमा कला ॥

“इस विधि से जो कुमारी का पूजन करता है, वह पृथ्वी पर
राज्य जैसा देवता पाकर अन्त में शिव की सायुज्यना को प्राप्त होता
है। जिस जिस कामना की प्रार्थना साधक करता है, चाहे वे दुर्लभ भी
क्यों न हो, कुमारी के पूजन करने से उन सबकी निश्चय ही प्राप्ति हो
जाती है।”

आयुष्यवलवृद्धयथ कुमारी पूजयेत्तर ।

आयुष्कामस्त्रिमूर्ति तु त्रिवगस्य फलाप्तये ॥

अपमृत्युव्याघि पीडादु खानामपनुत्तये ।

सौह्यधान्य धनारोग्य पुत्रपौत्रादिवृद्धये ॥

कल्याणी पूजयेद्वीमान् नित्य कल्याणवृद्धये ।
 आरोग्य सुखकामी च जयकामी तथैव च ॥
 यगस्कामी नरो नित्य रोहिणी परिपूजयेत् ।
 विद्यार्थी च जगर्थी च राज्यार्थी चविशेषत ॥
 गत्रूणा च विनाशार्थ कालिका पूजयेन्नर ।
 ऐश्वर्य शुभकामी च स्वर्गकामी च यो नर ॥
 सग्रामे जयकामो च चण्डिका परिपूजयेत् ।
 दुख दारिद्र्यनाशाय नृप समोहनाय च ॥
 महापाप विनाशाय शास्त्रवो च प्रपूजयेत् ।
 मवलोत्कट शत्रूणा सुग्रामाधन कर्मणि ॥
 दुर्गा दुर्ग विनाशाय पूजयेद्यत्नतो बुध ।
 सौभाग्यधन धान्यादिवाच्छ्रनार्थ फलाप्तये ॥

“जो अपनी आयु की कामना रखना है, वह उसकी पूर्ति के लिए तथा त्रिवर्ग के फलों की प्राप्ति के लिए त्रिमूर्तिनी कुमारी का यजन करे । ग्रप-मृत्यु व्याविष, पीड़ा के दुखों के नाश के लिये धन, धान्य, सौख्य, आरोग्य, पुत्र, पीत्रादि के लिए कल्याणी नाम वाली कन्या का पूजन करे । इससे नित्य उक्त वस्तुओं की वृद्धि और कल्याण होता है । आरोग्य के मुख तथा जय की कामना वाली और यशोवृद्धि के लिए इच्छुक पुरुष को ‘रोहिणी’ नाम वाली कन्या का यजन करना चाहिए । विद्या, जप और राज्य की इच्छा वाले को यह पूजन अभीष्टप्रद होता है । शत्रुग्रों के विनाश करने की कामना वाले को छ वर्ष की आयु वाली ‘कालिका’ नाम की कन्या का पूजन करना चाहिए । अपने ऐश्वर्य, शुभ, स्वर्ग और सग्राम में जय प्राप्त करने का मनोरथ रखने वाले पुरुष को ‘चण्डिका’ नाम धारिणी सात वर्ष की आयु वाली कन्या का पूजन करना चाहिए । दारिद्र्य, दुख के नाश, नृपों का सम्मोहन और महापापों के नाश के लिए ‘शास्त्रवी’ नाम की कन्या का पूजन

करे । मगल और उत्कट शत्रुघ्नो के उग्र दुर्ग के विनाश के लिये दुर्गा का यत्तेष्ठूर्धक पूजन करना चाहिए । नीमार्ग और धन-धार्य तीर्तुद के लिए तथा बाजिद्वन श्रय को फन-प्राणि के लिए और दाना दासी तीर्तुदोत्तरी के लिए सुभद्रा का पूजन करना चाहिए ।”

उपरोक्त कथा-पूजन के माध्यात्म्य को अतिशयोक्ति यैनी में भनें हो वर्णन किया गया हो, परन्तु यह निश्चित है कि इस प्रक्रिया में नैतिकता का उच्च गुल्यारूप निहित है । यदि पुरुषों में आरम्भ ने ही हम कुमारियों के प्रति पवित्र और उच्च सम्माननीय भाव रखने की शिक्षा व प्रेरणा देने की पद्धति रो अपनाएं, तो कोई कारण नहीं कि पुरुषों में नारी जाति के प्रति कुत्सित भाव उत्पन्न हो सके । आज के युग में जब चारी और चन्द्रियों, कहानी, उपन्यासों और पत्र-पत्रिकाओं ने स्वार्यवश कामुक वानावरण बना रखा है तो इसकी अतीव श्रावश्यकता अनुभव हो रही है । इस पूजन को ध्यापक रूप में प्रचलित किया जाना चाहिए और इसमें निहित चरित्रगत उच्च भावों का विश्लेषण करना चाहिए । मनु जैसे महर्षियों के मन में भी नारी ने अपनी पवित्रता की धारा ली थी, तभी उन्हें कहाना पड़ा था कि जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवना निवास करते हैं ।

अत कुमारी पूजन को नैतिक उत्थान की एक उत्तम सावना मानना चाहिए ।

कुमारी पूजन-विधि—

देवी-पुराण में विधि का निर्देश इस प्रकार है—

ब्रह्मोवाच

न तथा तुष्यते शक होमदान जपेन तु ।

कुमारी भोजने नात्र यथा देवी प्रसीदति ॥

अत्र नवरात्रे प्रक्षात्म्य पादौ सर्वासा कुमारीणा ।

च वासव सुलिप्ते भत्तले रम्ये तत्रता आसन स्थिता ॥

पूजयेद् गन्व पुष्पैश्च स्त्रिभिश्चापि मनोरमै ।
 पूजयित्वा विवानेन भोजन तामु दापयेत् ॥
 खण्ड लड्डु गुड सर्पि दधिक्षीर ममाक्षिकम् ।
 ताम देय कुमारीणा गनै स्स भोजयेत्तुता ॥
 पातीय याचित देयमन्न वा याचित शुभम् ।
 तास्तृप्तास्तु यदा सर्वास्तदा त्वाचमनदेत् ॥
 आचम्य चाक्षतान्दत्वा त्वया क्षन्तव्य मित्युत् ।
 दानु गिरसि दातव्याः कन्यकाभिरथाक्षना ॥
 तेनापि प्रणिपातस्तु कतव्यो भक्ति पूर्वक ।
 अनेन विधिना शक्र । देवी क्षिप्र प्रसीदति ॥
 ददाति विविवान्कामात्मनोभीष्टान्सुराविप ।
 राज्य कृत्वा तत पश्चाद्देवीलोकञ्च गच्छति ॥
 स्कान्देऽपि । एकका पूजयेत्कन्यामेकवृद्ध्या तर्थेव च ।
 द्विगुण त्रिगुण वापि प्रत्येक नवक वरम् ॥
 नवभिर्लभते भूमिमैश्वर्य द्विगुणेन तु ।
 एक वृद्ध्या लभेत्क्षेममेकेनश्रियभभेत् ॥
 एक वर्षा तु या कन्या पूजार्थं ता तु वर्जयेत् ।
 गन्व पुष्प फजा दोना प्रीतिस्तस्या न विद्यते ॥
 यथोक्ता लाभेतु विवाहितापि या पुष्पणी तावत—
 पूज्याविवाहानन्तर मपि कन्या त्वमुपजायते ॥
 तावत्सपूज्यते कन्या यावत्पुष्प न हृश्यते ।
 इति भगवन्त भास्कर धृत देवी पुराणवचनात् ॥
 कामना परत्वेन आसा क्रमेण पूजाया विशेष उक्त ।
 तत्रैव । दुख दारिद्र नाशाय शत्रूणा शनाय च ॥

सुभद्रा पूजयेन्मत्यो दासी दासविवृद्धये ।
पूजा प्रकारश्च तत्रैव । प्रातःकाले विशेषणे कृत्ताम्यज्ञो
विशेषत ॥

अथ वर्ज्य कन्या आह

हीनाधिकाङ्गी कुष्ठादि विकारा कुकुलातथा ।
ग्रन्थि स्फुटित सर्वाङ्गी रक्त पूय ब्रणाङ्गिता ॥
जात्यन्धा केकरा काणा कुरुपा तनु रोमशाम् ।
सत्यजेद्रोगिणी कन्या दामी गर्भं समुद्भवाम् ॥
अथ ज्ञाति भेदेन कामना भेदेपु तत्पूज्य तामाह ।
ब्रह्माणी सर्वं कार्येषु जयार्थं नृप वशजाम् ॥
लाभार्थं वैश्य वशोत्था सुतार्थं शूद्र वशजाम् ।
दाहणे चान्य जातीया पूजयेद्विधिना नर ॥
अथ वरणं भेदेन पूजाभेद ॥
गौरी भर्वेष्ट ससिद्धये पोताङ्गी जय कीर्तये ।
लाभार्थऽरुणवर्गांगीमसितामारणादिष्वति ववचित् ॥
एक वश समुद्भूता कन्या सम्यक् प्रपूजयेदिति कौलावलि
तन्त्रे ॥

तत्त्व विधि

यजमान पूजयेच्च कन्याना नवक शुभम् ।
द्वि वर्पद्यादशाद्वात्ता कुमारी परिपूजयेत् ॥
श्रधदिक हायनाल्प वयस्का वर्ज्या ।
त आसने उपवेश्यावाहयेत् मन्त्रेण ॥

अथावाहन मन्त्र

ॐ मन्त्राक्षर मयी लक्ष्मी मातृणा रूप धारिणीम् ।
नवदुर्गात्मिका साक्षात्कन्यामावाह्याम्यहम् ॥

अनेनैव मन्त्रेण नवापि आवाहयेत् ।
अशक्तो यथाशक्ति एकामपि पूजयेत् ॥

॥ पाद्यादि पूजनं विधाय ॥

द्विहायना कुमारी सज्जा
सर्वंस्वरूपे । सर्वेषैः । सर्वंशक्ति स्वरूपिणि ।
पूजा ग्रहाणा कौमारि । जगन्मातर्नमोस्तु ते ॥१
त्रिहायना त्रिमूर्ति सज्जा
त्रिपुरा त्रिपुराधारा त्रिवर्षी ज्ञानरूपिणीम् ।
त्रैलोक्य वन्दिता देवी त्रिमूर्ति पूजयाम्यहम् ॥२
चतुर्वर्षा कल्याणी
कलात्मिका कलातात् कारुण्य हृष्या शिवाम् ।
कल्याणा जननी देवी कल्याणी पूजयाम्यहम् ॥३
पञ्चवर्षा रोहिणी
अणिमादि गुणाधारामकाराद्यधारात्मिकाम् ।
अनन्त शक्तिका लक्ष्मी रोहिणी पूजयाम्यहम् ॥४
षष्ठ्वर्षा कालिका
क्रामचारा शुभा कान्ता कालचक्र स्वरूपिणीम् ।
कामदा करुणोदारा कालिका पूजयाम्यहम् ॥५
सप्तवर्षा चण्डिका
चण्डवीरा चण्डमाया चण्ड मुण्ड प्रभञ्जनीम् ।
पूजयामि सदा देवी चण्डिका चण्ड विक्रमाम् ॥६
अष्टवर्षा शाम्भवी
सदानन्दकरी शान्ता सर्व देव नमस्कृताम् ।
सर्वभूतात्मिका लक्ष्मी शाम्भवा पूजयाम्यहम् ॥७
नवहायना दुर्गा
दुर्गम् दुस्तरे कार्ये भवदुख विनाशिनीम् ।
पूजयामि सदा भक्तया दुर्गा दुर्गंति नाशिनीम् ॥८

दशवर्पि सुभद्रा
सुन्दरी स्वरण वण्डिभा सुख सौभाग्य दायिनीम् ।
सुभद्रजननी देवी सुभद्रा पूजयाम्यहम् ॥६

नित्य आरती यहाँ करना

कुमारी पूजनान्ते तद्वस्तादक्षतादिक स्वशिरसी विधाय
भक्त्या अनुव्रजेत् सुवासिनी ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् इष्टमित्र-
वान्धवादिना सह स्वयमपिभुज्ञोत शेष काल गीत वाचादि-
भिर्नयेत् ।

॥ इति कुमारी पूजनम् ॥

अष्ट रात्रे न दोषोऽय नवरात्रे तिथिक्षये ।

सूतके पूजन प्रोक्त जपदान विशेषत ॥

देवो मुद्दिश्य कर्तव्य तत्र दोषो न विद्यते ।

रजस्वला तथा शौच ब्राह्मणेश्च सुपूजयेत् ॥

सभतृं काणा स्त्रीणा नवरात्रे गधादि सेवन न दोषाय ।

तदुक्त हेमाद्रौ । गन्धालकर ताम्बूल पुष्पमालानुलेपनं ॥

कुमारी पूजने विशेष कौलावली तन्त्रे ।

एव प्रणवयोगेन चतन्य तत्तुमचयेत् ॥

वाणी माया तथा लक्ष्मीर्माया कूचद्वय तत् ।

एते च प्रणवा ज्येया कुमार्या परि पूजने ॥

चतुदश स्वरेणाढ्यो भृगुविन्दिन्दु सयुत ।

चतन्य बीज कथित साधकाना समृद्धिदम् ॥

एव द्वाम्या त्रिभिश्चैव सप्तधानवधा पुन ।

नित्यक्षेणा नियत पूजयेद्विधि पूर्वकम् ॥

वाग्भवेन जल देय मायया पादशौचकम् ।

लक्ष्म्याचार्द्य प्रदद्यातु कूचबीजेन चन्दन ॥

शक्ति बीजेन पुष्पाणि धूप षष्ठेन दापयेत् ।

वाग्भवेन पुरक्षोभ मायया च गुणाष्टकम् ॥

श्री बीजेन श्रियोलाभ मायथा शत्रु सक्षय ।

भैरवेण तु बीजेन खड्गत्वमनुगच्छति ॥

न्यासादिक प्रकृत्वं आदौस्वीय क्रमेण तु ।

कुमार्यंगे तत पश्चाद्विशेषन्यासमुत्तमम् ॥

॥ तपोऽखण्ड दीपदानम् ॥

दीपादि विचारो डामर तन्त्रे ।

सौवर्णं गजतताम्र कास्यलोह च मार्तिकम् ।

गोधूम माष मुदगाना चूर्णेत घटित तथा ॥

सौवर्णं कार्यसिद्धि स्याद्रौप्ये वश्यजगद्भवेत् ।

ताम्र तयोरभावेऽपि कास्ये विद्वेषण भवेत् ।

मारणा लौहपात्रेस्यादुच्चारो मृष्मये तथा ॥

गोधूम चूर्णं घटिते विवादे विजयो भवेत् ।

माषजे शत्रु सस्तम्भो मौद्रेस्याच्छान्तिसत्तमा ॥

सन्धिकार्यं नदीकूलद्वयमृत्सना समुद्भवम् ।

भलामेसर्वं पात्राणा कूर्यात्ताम्र च मार्तिकम् ॥

विभिन्न शक्तियाँ

और उनके विधें

शक्ति एक है। वह विभिन्न नामों से विस्थान है। जब रक्त-बीज के मारे जाने पर शुभ्र और निशुभ्र के साथ देवी का युद्ध हो रहा था और निशुभ्र भी मारा गया, तो शुभ्र ने देवी की सङ्घायक सप्त मातृका-शक्तियो—ब्रह्माणी, साहेश्वरा, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही तथा ऐन्द्री की ओर सकेत करते हुए कहा—‘तुम दूसरों का धार्षण लेकर युद्ध करती हो और अपने पराक्रम का झूठमूठ भ्रमिमान करती हो।’ इस पर देवी ने इन सातों शक्तियों को अपने भीतर समेट लिया और कहा कि ‘यह सब मेरी विभिन्न शक्तियाँ हैं, जो मेरी इच्छा से प्रकट रहती हैं, अन् देख मैं अकेली ही तेरा वध करती हूँ।

तन्त्रों में देवी की आठ शक्तियों का वर्णन आता है। इसलिए वह अष्टमुजी कहलाती हैं। इन शक्तियों के अलग-अलग वाहन हैं। इन शक्तियों और उनके वाहनों का वर्णन इस प्रकार है—

१—ब्राह्मी—

सृष्टि-शक्ति को ब्राह्मी कहते हैं। ब्रह्मा सृष्टि के प्रधिष्ठाता है। तन्त्र की परिभाषा में एक विद्वान् ने इसे ऐसे व्यक्तकिंग है—

‘पद्यन्ती बाणी मे अवस्थित प्रकाशाश को वामाशक्ति और विमर्शांश को इच्छागत्ति कहते हैं। महापत्तात्म पराशक्ति अपने गम में स्थित बीजभावापन विश्व का कार्यरूप में ब्रह्म प्रसार करने को जब

उद्यन होती है तो उपर्यें विश्ववर्मनकर्तृत्व रहने के कारण उसे वामा-शक्ति कहा जाता है। इसका पर्याग ही ब्रह्मा है। महात्रिकोण की वाम रेखा का उपलक्ष्य होने के कारण इसे अकृशाकार कहा गया है। पिता-मह ब्रह्मा की शक्ति—भारती के पर्याप्ति-इच्छाशक्तयात्मक जनन-मामर्थ्य इसमें विद्यमान रहता है।”

यमर की उत्पत्ति करन वाली शक्ति ब्रह्मा निराकार व सूक्ष्म है। उसे स्थूल नेत्रों से देखा जाना सम्भव नहीं है। इसलिए कलाकार ने उसके गुणों को सुन्दर ढग से विचित्रित किया है। ब्रह्मा के चार मुख और चार हाथ बनाए गए हैं। एक साधारण मकान बनाने वाले मिथ्यों को भी वही मावधानी और मूझ-वूझ में काम लेना पड़ता है। किंवित् ५४ लाख योनियों का निर्माण करने वाले ब्रह्मा को तो अपने कार्यकर्ताओं से काम लेने के लिए चारों ओर हृषि रखनी पड़ती है। यदि उसके निरीक्षण में शिथिलता आ जाए, तो निर्माण कार्य में अव्यवस्था होना स्वाभाविक है।

निर्माण का कार्य कोई साधारण कार्य नहीं है। उसमें चारों ओर अर्थात् हर हृषि से विचार करना पड़ता है। वह चारों दिशाओं में काम करने की क्षमता रखते हैं। चारों हाथों में चार वेद हैं अर्थात् वह ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं। पुराणों में वेदों की उत्पत्ति ब्रह्मा से ही बताई जाती है। सपार को सम्य और सुसम्भृत बनाने वाली शिक्षाओं व सिद्धान्तों के गूल स्रोत वही है। विचार-शक्ति का उद्भव उन्हीं से हुआ है।

ब्रह्मा तप-शक्ति के भण्डार माने जाते हैं। ब्रह्मा-वैवर्त पुराण में कथा आती है कि जब ब्रह्मा को सृष्टि की उत्पत्ति का भादेश मिला, तो वह विष्मय में पड़ गए कि इस महान् काय को कैसे किया जाय? श्राकाशवाणी हुई कि सौ वर्ष तक गायत्री की उपासना करो, तो सृष्टि की उत्पत्ति करने की क्षमता प्राप्त हो सकेगी। ब्रह्मा ने सौ वर्ष तक तप किया, परिणामस्वरूप वह इस योग्य हुए।

ब्रह्मा को कमल के पुष्प पर विठाया दिखाया जाता है। कमल जल में रहना भी उसमें घनग रहता है, जनक का प्रभाव उस पर नहीं हो पाता। ब्रह्मा द४ लाख योनियों के अंगों-खण्डों जीवों की सत्पत्ति हर अणु कात रहते हैं, परन्तु इसी के मध्य उसका लगाव, मोह व आसक्ति नहीं है। यदि ऐसा न होता, तो वह आती सत्तान का जोक मनाते ही न थकते और जोक मनाने के लिए घनग विमाण खोलना पड़ता। प्रत इस मुझसे दूर रहने के लिए वह अनिस्तना व अनापकि के विद्वात को अपनाते हैं। इसी ब्रह्मा की शक्ति को ब्रह्माणी भहा गया है।

ब्रह्माणी का वाहन हृषि है। हृषि विवेक बुद्धि का प्रतीक है। उसके मासने दूध और पानी रख दिया जाय तो वह उन्हे अलग-अनग कर देगा और पानी को छोड़कर दूध-ही-दूध पी लेगा। ब्रह्मा प्रत्येक जीव रूपी हृषि से यही अपेक्षा रखते हैं कि हमारा विवेक सदैव जाग्रत रहे। वस्त्र में तत्त्व और प्रत्यक्ष का, सत्य और असत्य का, शेष और अशेष का जो निर्णय बुद्धि देती है—हमें क्या करना, क्या न करना, इसका निर्णय दिव्य प्रकाश के आधार पर करन वाली अद्वितीय बुद्धि एक ऐसी अद्भुत शक्ति है, जिसी तुलना में विश्व की और कोई शक्ति मनुष्य के लिए हितकारी नहीं है।

तमसाञ्च दिन बुद्धि से, चाहे वह किसी ही उपजाऊ वयों न हो, उससे मनुष्य का पच्चा हिन नहीं हा मना और उसे आत्मक मुख जाति के दर्शन हो सकते हैं। भोग गिलास के बोडे में उपादान वह जहर जमा कर सकती है, पर इन उपादानों के कारण चिन्ता, भय, आशङ्का, तृष्णा, मोह, मद आदि की साथा इन्हीं बढ़ जाती है कि उनका भार भास्मा के लिए अमागण्डण त्वर में कष्टदायक मिद्द होता है। जो सम्पत्ति नोति-यनीति का ध्यान न रखकर इसलिए कमाई जाय कि इसमें मुख की वृद्धि होगी, वह विपरीत परिणाम उपस्थित करती

है। थोड़ी-सी बाहरी तड़क-भड़क दिखाकर भीतर का सारा आनन्द नष्ट कर देती है। उस आन्तरिक उशान्ति के कारण छोटे-मोटे अनेकों शारीरिक, मनसिक एवं आत्मिक रोग उत्तन होते हैं और वे हर घड़ी उस आदमी को बेचैन बनाये रहते हैं, जो अपने को बुद्धिमान समझने का दम भरता है। तममाच्छन्न बुद्धि जितनी प्रधिक तीक्ष्ण होगी, उतनी ही अविक्षिक विपत्ति का कारण बनेगी। ऐसी बुद्धि तो जितनी मन्द हा उतना ही उत्तम है।

तममाच्छन्नादित बुद्धि द्वारा उपन्न हुए विचार और कार्य हमारी प्राण शक्ति को दिनो-दिन घटाते हैं। भोग प्रवान कार्यों से शरीर दिनो-दिन क्षीण होता है स्वाथ प्रधान विचारों से मन दिन-दिन अथाह पाप-पक में फँसता है। इस प्रकार जोवन की चेहरे में अमरुण छिद्र हो जाते हैं जिनमें होकर सारी उपार्जित शक्ति नीचे गिरकर नष्ट हो जाती है। चलनी में च हे कितना ही दूष दुड़ा जाय यद्य नीचे गिर जायगा और चलनी खाली शी-खाली रह जायगी। यही बात तममाच्छन्न वक्ति के लोगों के बारे में है। कुछ सी कीमती भोजन खायें, सब विषय-भोग की, चटोरपन की उषणता में जल जायगा वे चाहे जितनी बुद्धि दौड़ा-कर नई कमाई करें पर तृष्णा स्वार्थपरता, भय, अहङ्कार, लोभ आदि कारणों से चित्त सदा दुखी ही रहेगा और उससे मानसिक शक्तियाँ नष्ट होती रहेंगी। इन दोनों कारणों से प्राण निर्बल ही रहेगा और वह न्यून प्राण व्यक्ति मसार में नाना प्रकार के उद्गों के साथ किसी प्रकार हीन जीवन ही व्यतीत करता रहेगा।

सतोगुणी, ऋतम्भग विवेक बुद्धि हमारे शारीरिक आहार-विहारों को सात्त्विक रखती है, सयम, ब्रह्मचर्य, आस्वाद, श्रमशीलना, सादगी, प्राकृतिक दिनचर्या होने से बलवीर्य बढ़ता और शरीर सक्रिय रहता है और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। मन में अपरिग्रह, परमार्थ, सेवा, त्याग, सहिष्णुता, तितिक्षा, दया, सहानुभूति, मैत्री, करुणा,

नम्रता, निःहङ्कारता, धर्म, श्रद्धा, ईश्वरपरायणता आदि की भावना काम करती है। यह भावना जहाँ रहती है, वहाँ के परमाणु सदैव प्रकृति प्रौर चंतन्य रहते हैं तथा उनका विकास होता है। इस प्रकार शरीर प्रौर मन दोनों की मुग्जा एवं वृद्धि की मात्रिक उन्नति होने के प्राप्त शक्ति सुरक्षित रहती है और उसकी वृद्धि होनी रहती है। ब्राह्मणी शक्ति का बाहन हृष हने इनी विवेच वृद्धि के विकास की प्रेरणा देता है।

२-माहेश्वरी—

यह लय शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। प्रलय भाव का प्रतीक माहेश्वर है। यह महात्म प्रेरणाप्रो का स्रोत है।

सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि का चक्र चलता ही रहता है। यह प्रकृति का स्वाभाविक क्रम है। गीता (१८।१८) में कहा है—“ब्रह्मा का जब दिन आरम्भ होता है, तब अव्यक्त से व्यक्त में प्रकट जाता है और जब त्रि होती है, तो पहले की तरह अव्यक्त में लोक हो जाते हैं।” अगले इनोक में और अधिक स्पष्ट करते हुए भगवान् ने कहा है—“इच्छा हो या न हो दिन होने पर जन्म लेना। और रात्रि होने पर लीन होना—यह चलता ही रहता है” (१८।१६)। उत्पत्ति, स्थिति और लय को हम प्रत्यक्ष रूप से खुने नेत्रों से देखते हैं। जो, उत्पन्न हुमा है, उसे नष्ट होना ही है। जिसने शरीर धारण, किया है, उसे एक दिन मरना है, इसमें कुछ भी सदैह नहीं है और मरने के बाद किर जन्म लेना है।

इस स्वाभाविक क्रम में कुछ भी निराश होने की बात नहीं है। अज्ञानवश हम विनाश होने वाले तत्त्वों से अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। जब वह सृष्टि के स्वाभाविक प्रवाह में बहने लगता है, तो व्यर्थ की प्रशान्ति और दुख को अपने सिर मढ़ लेते हैं। जब हम नित्य देखते हैं तो सृष्टि के आदिकाल से यह क्रम बाबर चला आ रहा है और मन्त्र तक,

चलता रहेगा, तो इसमें दुख की कौन-सी बात है ? चूंकि हम शरीर को सर्वस्व मानकर चलते हैं इसनिए उपके विनाश होने पर दुखी होते हैं। सांसारिक दुखों में बचने के लिए प्रावश्यक है कि हम वस्तु-स्थिति को समझें और नाशवान तत्वों के नष्ट होने पर दुखी न हो। हम अपना आत्म-निरीक्षण करें कि हम शरीर नहीं, बरन् आत्मा है। नाश शरीर का होगा है, आत्मा का नहीं। यदि शरीर नष्ट हो रहा है, तो उसका अभिशाप केवल पुराने जीर्ण शीर्ण वस्त्र बदनकर नए पहनना है। उसके मूल तत्व का विनाश नहीं हो रहा। चाहे केसी भी भयङ्कर आँधियाँ और तूफान आवें, भूचाल और घोर वर्षा हो, नगर-के नगर ध्वस्त हो जाये और सारे विश्व का भी विनाश होकर प्रलयकारी स्थिति उत्पन्न हो जाय। आधुनिक काल के विनाशकारी ग्रस्त शस्त्रों, एटम व हाइड्रोजन बमों का हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह तो स्थूल वस्तुओं को ही नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। हानि और नाश के क्रम इष्ट जगत में पग-पग पर चलते रहते हैं उनसे सुरक्षित रहने का एक-मात्र उपाय है—प्रनन्द्य-भाव में स्थित रहना।

यदि शस्त्रों में वर्णित प्रनय की-सी स्थिति कभी उत्पन्न हो जाए, जिसमें सारे विश्व का विनाश हो जाए और चारों ओर जल-ही-जल दिखाई दे, तो यह समझना चाहिए कि उस स्थिति में हमारा कुछ नष्ट नहीं हुआ। उस ममत्य भी केवल पचभीतिक शरीर ही नष्ट होगा। वस्तु स्थिति यह है कि शरीर भनेको बार नष्ट हो चुका है और भनेको बार जन्म ले चुका है। यदि एक बार और नष्ट हो जायगा, तो इसमें दुःख और चिन्ता की कौन-सी बात है ? वेदान्त (२।३।१७) में कहा गया है कि “जीवात्मा उत्पन्न होता या मरता नहीं है।” श्रुति में भी ऐसा ही कथन मिलता है। उन श्रुतियों के द्वारा ही इसको अविनाशी होना कहा गया है। छादोग्योपनिषद् (६।१।१३) में भी स्पष्ट कहा है—“जीव के मरने पर शरीर भी मरता है जीवात्मा स्वयं नहीं

मरता ।” अन् यदि इम अपने वास्तविक रूप को समझ लें, तो प्रलय में भयभीत होने की कोई बात नहीं है। प्रलय तो हमारी पथ-प्रदर्शिका है और हमें शिखा देती है कि इप जगत् की हर वस्तु नष्ट होने वाली है, अतः उनकी प्राप्ति में ही अपने जीवन का ग्रन्थलय समय नष्ट न करके शविनाशी तत्त्व को प्राप्त करो, जिसका कभी नाश नहीं होता। माहेश्वरी की भी यही प्रेरणा है ।

माहेश्वरी का वाहन वृष (वैल) है। इसकी आध्यात्मक व्याख्या निम्न प्रकार है। वृषम् को मनुष्मृति (दा१६) में घर्म की सज्जा दी गई है—

वृषो हि भगवान् घमस्तस्य य कुरुते अलम् ।

वृषल त विद्युर्यवास्तस्माद्वर्म न लोपयेत् ॥

“भगवान् घर्म साधात् ‘वृष’ है। जो इसको नष्ट करेगा वह वृषल—पापी कहा जायगा। इसनिए घर्म को लुप्त न करना चाहिए ।”

शिव-वृराण (रुद्र सहिता पार्वती खण्ड) में शिव पार्वती के विवाह के समय का वर्णन करते हुए कहा गया है—‘चिषुद्ध स्फटिक के तुल्य दीप्तिमान परम सुदर वृषभ पर भगवान् महेश्वर विराजमान हुए। इस वृषभ को बड़े-बड़े महर्षियों ने शास्त्र में घम बतलाया है ।’

कामनामो और इच्छामो की वर्दी करने वाला होने के कारण ‘वृषभ’ नाम पड़ा। कामनामो की पूर्ति करना रुद्र के अधिकार में है। वे कृद्धि-सिद्धि दाता हैं। वे भोजे शहू प्रसिद्ध हैं। शोध ही प्रसन्न होकर साधक को वरदान दे देते हैं शक्ति के सम्राट् हैं, शरीरधारियों को समस्त कष्टों से दूर रखने की क्षमता रखते हैं। यजुर्वेद में उन्हें देवता कहा गया है (१८।२०), अन् वह प्राणियों का कल्याण ही करते रहते हैं। इसीलिए उनका नाम शिव है—वह तो कल्याण के साक्षात् रूप है। पृथ्वी, जन, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत्—यह

उनकी अष्टमूर्ति कही गई है, वह तो प्राणीमात्र के लिए निरन्तर महयोग की भावना रखता है। इनके अनात्र में शशीरधारियों का जीवन यहाँ असम्भव हो जाए। यह सब माक्षत् देव स्वरूप है।

वेद में वृत्र का चार पैर वाला अवर कहा गया है। वे चार पैर हैं—र्म अथ, काम और मोङ्ग। वृत्र का एक अर्थ है—वीर्य की वर्षा, महाप्राण की वर्षा।

काम की मज्जा वृप है। सृष्टि की उत्पत्ति के लिए वह उपयोगी तत्व है। इनका गणना जीवन की आवश्यकनाओं में आती है। यदि इसके अनुर मानव मन में उत्पन्न न होते, तो सृष्टि रचना भी न हुई होती। जहाँ तक आवश्यकता का प्रश्न है, वहाँ तक तो यह पवित्रता का प्रश्न है, परन्तु जब इसमें पर्यादा-उल्लङ्घन किया जाता है, तब वह भोग की भीमा में ग्रा जाता है और यह मानव का शत्रु बन जाता है तथा इसकी गणना आसुरी शक्तियों में होने लगती है।

अर्थवेद ४।१।१०८ में “वृपम को पृथ्वी का पोपक, धारक, उत्पादक, रकाशक, प्रेरक, विजेता और फनदाता की उपाखियों से विभू-पित करते हुए अन्त में ब्रह्म और विराट् के समान बनाया गया है।”

माहेश्वरी का वाहन-आधार वृपम के धर्म आदि गुण हैं। माहेश्वरी की सच्ची पूजा इन्हें अपनाना ही है।

३—कौमारी—

जो शक्ति देव-शक्तियों का नेतृत्व करती हुई आसुरी शक्तियों पर विजय का उद्योप करती है उसे कोमारी कहते हैं। कुमार उसकी प्रतिप्रात् शक्ति को कहते हैं। कुमार को पुगणों में स्वामी कार्तिकेय, स्वाद, मनत्कुमार, पारामातुर के विभिन्न नामों से भी याद किया जाता है। उनके ६ मुख और १२ नेत्र हैं। उनमें तप और शक्ति का समन्वय है। उनके हाथों की सहस्र और अन्य अङ्ग शक्ति के प्रत्यक्ष रूप हैं।

'स्कन्दिर-धातु' से स्कन्द शब्द बनता है। स्कन्दिर का भर्त्य स्पष्ट है—गतिशीलता और सीखना। क्रिंगाशीलता सेनापति की मुख्य विशेषता होनी चाहिये। सूर्य मे वस्तुप्रो को सोखने की शक्ति है। इससे वह अत्यन्त जन-उपयोगी बिद्ध होती है। जहाँ नभी अविक्ष होती है, वहाँ रोग चर्तन्न होते हैं। जहाँ सूर्य पहुँचना है, वहाँ रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। सोखना एक अत्यन्त उपयोगी तत्त्व है और यह अग्नि को विशेष गुण है।

कुमार रुद्र को भी कहते हैं और रुद्र अग्नि को। इसलिए कुमार अग्नि का नवाँ रूप बनाया गया है। महाभारत वन-पर्व २२। १५-१६, ऋग्वेद ५। २। १, १०। ३५, कठोपनिषद् १। २, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३। १। ८। १५ के अनुभार कुमार से अग्नि का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीन होता है।

स्कन्द देवताओं का सेनापति है। इसलिए उनकी पत्नी का नाम अलकारिक रूप से 'देवसेना' ठीक ही रखा गया है। काठक सहिता ३६। ८, मैत्रायणी सहिता १। १०। १४, ४। ३। ८ के अनुभार अग्नि को ही देवताप्रो का सेनापति माना गया है। इसलिये स्कन्द अग्नि का अलङ्कारिक रूप है।

स्कन्दकुमार का लाल रङ्ग से विशेष सम्बन्ध बताया गया है। अग्नि भी इसी वर्ण की होती है। वाचम्पत्य क्षोप इमकी पुष्टि करता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुभार अग्नि का घोड़ा भी अलङ्कारिक रूप से 'रोहित' लाल कहा जाता है। कीमारी शक्ति के यही गुण बतलाये जाते हैं।

कीमारी का बाहन मयूर है। मयूर का प्राकृतिक मौदर्य प्रसिद्ध है। शारीरिक सौन्दर्य तो अस्थायी रहना है—जीवन का वास्तविक सौन्दर्य तो सदगुणों का विकास करना है, जिसकी ओर मुन्दरता के प्रतीक मोर इगित करते हैं।

मोर मेर वर्षा की भविष्यवाणी करने की मूळत शक्ति विद्यमान है। वह अपने सूक्ष्म नेत्रों से वर्षा के आगमन को अनुमत करता है और 'मेहो मेहो' करके उसकी चेनावनी देना है। नेत्रों को देखकर वह इतना प्रमन्न हाता है मात्रा कुवेर का खजाना उमे ही मिल गया हो। जिस तरह एक साधक को अपनी कठोर साधना के फलस्वरूप अपने इष्टदेव के दर्घन कर प्रगार आनन्द की प्राप्ति होती है, उसी तरह मोर भी मेघों के माथ आत्ममान होना चाहता है। वह आनन्द-विभोर हो ताचता है। किसी नन की का नाच तो कुछ क्षणों के लिए मानस-पटल पर स्थिर रहता है परन्तु मोर का यह घट्टभूत नाच क्वियो व साहित्यकारों के कल प्रिय हृदयों मे युगों से विद्यमान है और जब भी उनका मन अपनी मस्ती में ताचता है, तो वह मोर के वर्णन कभी नहीं भूलते।

मोर और सर्प की शक्तियां प्रसिद्ध हैं। मोर जहाँ भी सर्प को देखता है, उसे नोचने लगता है। सर्प क्रोत्र, स्वार्थ, अहकार व दम्भ का प्रतीक है। इसके विपरीत मोर को ज्ञान, विवेक व परोपकार का प्रतिनिधि मात्रा जाता है। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने अहकार व दूसरों से बड़ा समझने वाली भावना उ पन करने वाले रत्न-मणियों की सहायता से शोभा-वृद्ध नहीं की। वह ज्ञान के प्रतीक मोर-पख से ही सन्तुष्ट रहे। इसका अर्थ है कि वह राजा होने हुए भी भोतेकरा की सीमाओं मे बहुत दूर ये।

कोमारी का वाहन मोर हमे सद्गुणों के विकास करने की प्रेरणा देता है।

४—वैष्णवो—

विश्व के पाननकर्ता को विष्णु कहते हैं, उसकी शक्ति वैष्णवी कहलाती है।

और आकाश दोनों को कहते हैं। आकाश का हम अन्त नहो पा सकते इसलिए उसे अनन्त कहते हैं। विष्णु का शब्दन्-पथान यही अनन्त ग्रथात् आकाश है। हमें भी आकाश जैवी विशाल उदारता का परिचय देना चाहिए।

शनपथ ब्राह्मण (१।२।५।५) ने घोषणा की है 'वामेनाह विष्णु-राम' ग्रथात् जो विष्णु है, वही वामन है। वामन को बोना दिखाया गया है। वह पहले छोटा था, प्रत्य था, फिर वह बड़ा और विराट् हो गया। ग्रणिभा ही भूमा बनता है। श्रणु ही विस्तार पाकर महत् बनता है। छोटे-से वामन ने अपने छोटे छोटे पेरों से सरी सृष्टि को नाप लिया।

ऋग्वेद १०।६०।१६ में कहा है—'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' वह प्रथम धर्म थे, उही का धारण सरक्षण व रणु करते हैं। वह धर्मों को सभालते हैं—धारण करते हैं।

विष्णु वह सत्त्व है, वह व्यक्ति विद्वेष है, जो सबत्र व्यापक है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक में फैला हुआ है, जो तीन पगों में सरी सृष्टि को धेर लेता है। त्रिविक्रम तो वह प्रसिद्ध ही है। उसकी जगमगाहट तीनों लोकों के ग्रणु श्रणु में दृष्टिगोचर होती है, प्राणीमात्र में वह समाया हुआ है।

विष्णु तीन पेरों से सारी सृष्टि को नाप लेते हैं। यह 'चलना' उनकी गति, क्रियाशालता और सरकंता की ओर इंगित करता है। वह सदैव जागरूक रहते हैं। जो नियम विश्व की उत्तरति के नमय बने थे उनको धारण किये रहना, उनकी दख्वरेव और मैभाल रखा। विष्णु का धर्म है।

शनपथ ब्राह्मण १।२ में यज ना ही विष्णु रहा गया है और कहा है कि यज के प्रथम वद से पृथ्वी, द्विरोप के अन्तरिक्ष और तृतीय से आकाश में प्रवेश करता है।

विष्णु मन्त्रापक गति और वलि आमुगी शक्तियों का प्रतीक है। बामन द्वारा दति का वांचा जाना ईश्वर द्वारा विश्व की नियम-बद्धता का सूचक है।

विष्णु मन्त्रापक है और चारों दिशाओं में व्याप्त है, करा कण में समाए हुए हैं, प्राणीमात्र में उन्तरा निवास है। जल में, घन में, पुष्प, लताओं, पहाड़ों, इन्द्रियों, वनों, पशु पक्षी, पुनर्जन्म और जी में वही दिव्याई देते हैं।

ऐसा द्वाष्ट रखने वाला ही उच्च वैष्णवी साधक है।

वैष्णवी शक्ति का बाहर गहड़ है। भागवत १२।१।१६ में तीनों देवों को गहड़ कहा है। उसे ही यज्ञ मप विष्णु बाहन करते हैं। देवतयी स्वप्न गहण ही यज्ञ मन्त्र भगवान के बाहन है। ऋग्वेद साम-वेद और यजुर्वेद में ही यज्ञ ने समाप्ति मानी जाती है। अत वेदात्मा ही गहड़ है और भगवान विष्णु उन पर विराजते हैं।

स्थूल रूप में गहड़ और सप की शक्ति है। गहड़ सप भक्तक है। सर्व औंच को दुष्टता का प्रतीक है वड विष में भरा हुआ है। विना कारण इस विष का दुष्टयोग करके इसी दी भी जीवन-लीला का समाप्त कर देता है—यह उन ग्र स्वभाव है। गहड ज्ञान के प्रतीक है। उन्हें यह दुर्दण्डी व्यवहार परमदं नहीं, इसलिए इसे वह परपते नहीं देता चाहते। भगवान ऐसी शक्ति को नियन्त्रण में रखते हैं, जो हुओ, अमुगे और राक्षसों का मद्दार करने में दक्ष हो। सर्व तम का प्रतीक है। भगवान मत् से शानप्राप्त रहते हैं। भगवान की मत्-शक्ति तम को खा जाती है। जो भगवान की पूजा, उपासन, पाठ और ध्यान आदि करते हैं, उनमें भी मत् तत्त्व विकृमिन होता है जो तप को निगत जाता है। यह गहड़ का सर्वों का खाना है।

वैष्णवी साधक ज्ञान को लक्ष्य बनाकर प्रपत्ती साधना का क्रम

बनाता है और जब कभी सी आसुरी शक्तियाँ उसके मार्ग में बाधक बनती हैं, वह उन्हे शक्तिपूर्वक नष्ट करने में सावधान रहता है।

५-वाराही—

कालशक्ति का नाम वराह है। वर का अर्थ श्रेष्ठ भृत्या आत्मा है। उसे आहन अथवा आवृत करने वाली शक्ति का नाम वराह है। यही पृथ्वी को दौनो द्वारा पाताल से निकालती है। इसका प्रधिष्ठान वाराही करती है।

काल से सभी भयभीत होते हैं। इसका विस्थार नाम मृत्यु है। साधारणतया शरीर के नष्ट होने को मृत्यु कहते हैं। भारत के तत्त्वज्ञानियों ने इस पर गहन अनुमत्वान और खोज की है। वह इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि स्थून शरीर के नष्ट होने पर मनुष्य का नाश नहीं समझना चाहिए। उन्होंने मिथ किया है कि मनुष्य एक ऐसा अदृश्य गुप्त-तत्व है, जो इस पायिव शरीर के नष्ट होने पर भी ज्यों-का त्यो बना रहता है। यह शरीर तो आत्मा का खोल है। इसके हट जाने से आत्मा के प्रस्तुत्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह तो जैव पहले था वैदा ही बना रहता है।

गीतकार ने इसे यूँ समझाया है कि मृत्यु पुराने वस्त्रों को ब्रदल कर नये ग्रहण करने की क्रियामात्र है और इष्ट कहा है कि "यह शरीर का स्वामी अत्मा नित्य अविनाशी और अचिन्त्य है" (गीता २।१८)। "यह किसी से मारे जाने वाला नहीं है" (२।१९)। 'इसको शस्त्रों से काटा नहीं जा सकता है, इसे प्रग्नि में जनाया नहीं जा सकता, इसे वानी से मिथोपाया या गत्ताया नहीं जा सकता और वायु से सुखाया नहीं जा सकता।' (२।२३)। "इसकी रक्षा ऐसे यत्य करते हैं, जिन पर इस जगत् की किसी भी वस्तु का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। यह ऐसा अदृश्य तत्व है जो सदैव एक सा बना रहता है जिसकी वृद्धावस्था और नाश कभी नहीं होता, जिसमें किसी प्रकार का कोई सो परिवर्तन नहीं

होता । इसमें सम्बन्धित शगीर का वब भी हो जाय, तो यह मारा नहीं जाता' (२१२०) । यह अब, नित्य, शाश्वत और पुरातन है ।

अन हमें काल में डरना नहीं है, वरन् उसे गले लगाने के लिए सदैव तत्पर रहना है । वह ईश्वरीय शक्ति है, उसका स्वागत करना ही हमारा धर्म है ।

वाराही का कोई वाहन नहीं है ।

६-नारसिंही—

नरसिंह शब्द का विश्लेषण करते हुए नरसिंहपूर्वता पिन्युपनिषद् में कहा है कि 'सब प्राणिये में मानव का पराक्रम प्रसिद्ध है और सिंह भी मध्यमे अधिक पराक्रमी होता है । अन नर और सिंह दोनों के सयुक्त रूप से पराक्रम में अधिक प्रवलता होती है, इसीलिए भगवान् ने यह रूप चारण किया है । वे अपने इस रूप से विश्व का कल्याण करते हैं । उनका यह स्वरूप अविनाशी एव सनानन है ।'

नृसिंह, हिरण्यकश्यप का वब करते हैं । हिरण्यकश्यप आत्मो की उस स्थिति को कहते हैं, जब वह विद्यो में लिप्त हो जाती है और उसका पतन ग्राम्य होता है । आत्म ज्ञान का विकास ही उसके उत्थान का एकमात्र उपाय है । यही ब्रह्मविद्या नारसिंही शक्ति है क्योंकि यही जीव को नृसिंह बनानी है ।

ब्रह्मविद्या के आधार पर उपलब्ध ज्ञान से मनुष्य अपनी निज की वस्तु-स्थिति को समझ सकता है, आत्मज्ञान उपलब्ध कर सकता है । ब्रह्म की महानता और उसके सान्निध्य की उपयोगिता भी उसकी समझ में आती है । प्रिय-अप्रिय परिस्थितियों में जो राग, द्वेष, हृप, शोक भरे आवेश उठते रहते हैं, उनकी उत्तेजनात्मक अशुभ प्रतिक्रियाओं से भी नचे रहना ब्रह्म-ज्ञान के आधार पर ही सम्भव है । ब्राह्म जीवन में सुख और आत्म करण में शान्ति को समुचित मात्रा में प्राप्त कर सकना भी ब्रह्म-सम्बन्ध की प्रगाढ़ता पर ही निर्भर है । सुख और शांति की

इन्द्र की प्रशंसा के वेद में सूक्त-के-सूक्त भरे पड़े हैं। ऐसा लगता है कि उम युग में इन्द्र ने प्रत्यन्त वीरतापूर्ण कार्य किए थे और अतायें से आयों की रक्षा की थी। महान् रक्षक और योद्धा के रूप में इन्द्र ने आयों का हृदय जीत लिया था, तभी उन्हे सर्वोच्च आसन पर अवस्थित किया गया था। इसीलिए उनकी कीर्ति देश की सीमायों का तोड़कर विदेशो में भी फैली। श्री त्रिवेणीप्रसाद सिंह के अनुमार ‘‘तृत्रहन बहराम’ पथवा गम के रूप में ईरान तथा ‘वाहाजन’ में एव पर्गक्षमी ‘हरकुलेश’ के रूप में मध्यपूर्व तथा याहव में भी। इन्द्र की पूजा हुई, तथा वरणा, मिश्र एव नामत्य के साथ इन्द्र नाम से भी यह मिश्र के राजायों के देवता रहे।’’

इन्द्र का जीवन हमें बनाता है कि ममार मे शाति-द्रोहियों का नाश करना चाहिए, अन्यायों और प्रत्याचारों के विरुद्ध सघर्ष जारी रखना चाहिए, जब तक कि उनको समाप्त न किया जाए। हर व्यक्ति को असुरना निरन्तर परेशान किए रहती है। अत उमे निरन्तर सघर्ष-रत रहना है, जीवन पर उसे प्राप्त आतरिक शत्रुप्रो से लड़ते रहना है, उमे तब तक दम नहीं लेना है, जब तक कि उत पर विजय प्राप्त करके इन्द्रामन पर विराजमान न हो जाये। ऐन्द्री-शक्ति की यही प्रेरणा है।

इन्द्र का वाहन ऐरावत है। ‘ईद’ धातु का अर्थ गति है। ‘रावान’ का अर्थ गतिविशिष्ट है। ऐरावत से क्रियाशीलता का ही भास होता है। इन्द्र मे यदि क्रियाशील का गुण न होता तो वह कैमे ग्रासुरी शक्तियों के महादुर्गाँ का विघ्वस कर सकने में समर्थ होते। व्यावहारिक क्षेत्र मे भी हम इसका समर्थन पाते हैं।

क्रिया से बल की प्राप्ति होती है। क्रियाहीन व्यक्ति की शक्तियाँ कुरिठत हो जाती हैं। मरिता का जन क्रियाशील रहता है, तो उसमें जीवन तत्व की मात्रा शक्ति पाई जाती है। खड़ा पानी उस पक्षी को तरह है, जिसके पास घाट लिए जायें ताकि वह वह उड़ने मे मजबूर हो

जाए। प्रव हहीन जल सड़ने लगता है और चलते पानीमें शक्ति का इतना विकाप हो जाता है कि उसके पहयोग से विद्युत् उत्पन्न की जाती है, मशीनें चलाई जानी हैं, अन्य ग्रनेको कार्य किए जा सकते हैं। शक्ति का प्रयोग जहाँ भी किया जायगा, वहाँ उक्ता उनका हादिक रूप से स्वागत करेगी।

जो व्यक्ति परिश्रम नहीं करते, उनका स्वास्थ्य गिरने लगता है, खाना हजम नहीं होता, दस्त माफ नहीं होता—जीवन रसहीन हो जाता है। क्रियाशील जीवन व्यतीन करने वालों के स्वास्थ्य की सुरक्षा रहती है। उनके मुख-मण्डल पर एक अपूव तेज चमकता है, जो क्रियाशीलता का ही दोतक है। निरन्तर गद्दी पर बैठने वाले व्यापारी का पेट बढ़ जाता है, शरीर ढोना पड़ जाता है। रोग पनपने हैं, बढ़ने हैं और उन्हें प्रोटसाहन मिलता है। मजदूर सूबी रोटी खाकर भी अत्यन्त परिश्रम का कार्य करने की क्षमता रखता है। दण्ड, बैठक, दौड़, कुश्ती, मुरदर आदि के व्यायाम से स्वास्थ्य के निखरने का भी यही अभिप्राय है :

केवल चेतन्य जीवों में ही नहीं, जड पदार्थों में भी यही नियम लाग् होता है। लोहा एक स्थान पर पड़ा रहे, तो उसे जग लग जाता है। परन्तु जो सान पर रखा जाता है, उसकी धार तेज होती है। हीरा जब खराद पर चढ़ाया जाता है, तभी उसका रूप-रग निखरता है अन्यथा वह मिट्टी से सना हुआ एक पत्थर ही लगता है। पत्थर से हीरा बनाने का श्रेय क्रियाशीलता को ही है। स्पष्ट है कि हम भी यदि अपने पत्थर रूपी जीवन को हीरा बनाना चाहते हैं तो हमें इसी अटल सिद्धान्त का अनुकरण करना होगा, तभी हमारे जीवन में जीवन आ पायेगा।

इन्द्र साक्षी हैं कि जीवन में सर्वोच्च पद प्राप्त करने के लिए हमें

निरन्तर गतिशील रहना होगा।

८—चामुण्डा—

काली ने चण्ड और मुण्ड नामक दो महावीर असुरों का युद्ध में वध किया था, इसलिए उनका नाम चामुण्डा पड़ा ।

चण्ड प्रकृति और मुण्ड निवृत्ति के बोधक हैं । इन्हें नष्ट करने वाली प्रलय शक्ति ही चामुण्डा कहलाती है । इम जगत में अपार सख्या में चण्ड और मुण्ड भरे पडे हैं और वह निरन्तर आसुरी प्रहार करते हैं । यदि उनके प्रति सावधानी न वरती जाय, तो निश्चय ही हमें दुख-फलह-क्लेश का ही सामना करना पड़ेगा । हमें अपनी शक्तियों का विकास करना होगा और इनपे युद्धरत रहने के लिए सदैव तैयार रहना हागा अन्यथा जीवन में निराशा-ही-निराशा देखेंगे । आशा और विश्वास के दशन के लिए चामुण्डा का आह्वान आवश्यक है ।

चामुण्डा का कोई वाहन नहीं है ।

यह शक्ति के विभिन्न वाहनों का रहस्य है । यदि इन प्राच्या-तिमक रहस्यों को जीवन में उतारा जाय, तो जीवन अवाध गति से प्रगति-पथ पर आँख तो सकना है, इस कुछ भी सन्देह नहीं है ।

आचार्य शंकर और शक्ति मत

स्वामी शङ्कराचार्य वैदिक धर्म के सम्प्राप्त माने जाते हैं, साथ ही उन्हे शाक्त-सिद्धान्तों के विवेचन में प्रमाण स्वीकार किया जाता है। कुछ शाक्त उन्हे मायावादी और अपने कुछ सिद्धान्तों का विरोधी भी समझते हैं। सम्भव है कभी उन्होंने शाक्त-मत का खण्डन भी किया हो। कथा है कि वह एक बार शाक्तमत का खण्डन करने के लिए कश्मीर गये थे। वहाँ दस्तों में वह विलकुल अशक्त हो गए, तो एक बारह वर्ष की कथा उनके पास आई और कान में कहा कि आप तो शाक्त-मत का खण्डन करने आ ये हैं? शङ्कर ने धीरे में कहा—‘मैं आया तो इसी उद्देश्य से था परन्तु आपनी मुझमें बोचने की शक्ति नहीं है। रोग से मुक्त होकर जब स्वस्थ हो जाऊँगा और शक्ति आ जायगी तो कुछ करूँगा। शक्ति के बिना तो कुछ भी करना सम्भव नहीं है।’

उस कथा ने कहा—“जब आप शक्ति के अभाव में कुछ भी करने में अमर्थ है तो शाक्तमत का खण्डन और भद्रैत मत का मण्डन किस प्रकार कर सकेंगे? मैं ही शिव की शक्ति शिवा हूँ। शिव तो एक, अद्वितीय, कूटस्थ, अवल, ध्रुव और एकरस है। उनमें किया का अमाव है। शिव ने मेरी—शक्ति की रवना भी है—इससे आप भी सहमन हैं। फिर आप उमका खण्डन कैसे कर सकते हैं? खण्डन-मण्डन तो मैं ही करूँगी, शिव कुछ नहीं करेंगे। जिसके अभाव में आप कुछ भी करने में असमर्थ हैं, उसका आप खण्डन कैसे न करेंगे? मैं शिव से

श्रमिष्ट हैं फिर भी जगत् जीव शिव और अपने प्रस्तित्व की सत्ता को मैं मिछू करते हूँ। अत मेरा खण्डन कैसे करोगे ?

मुनके हैं, शङ्कर आवाक नह गए और कश्मीर से लौट आए। तब से उन्होंने शाकन मत का खण्डन नहीं किया। एक किवदन्ती और है कि एक बार वह महादेव के दशनों के लिए कैलाश गये और उनमें सौदर्य लहरी मारी, जो शिव न दे दी। नन्दी को यह अच्छा नहीं लगा जब वह चलने लगे तो नन्दी ने भण्टा मारा और पुस्तक को छीनने का प्रयत्न किया। वह आधी पुस्तक प्राप्त करने में सफल हो गया। शङ्कर के पास आधी ही रह पाई। यहाँ आकर उन्होंने इसका पुनरुद्धार किया। शाक्तों के लिए सौदर्य-लहरी का प्रत्येक इलोक मन्त्र-रूप होता है। अत इससे वह एक महान् शाकन दृष्टिगोचर होते हैं।

ऐसा लगता है कि शङ्कर को शाकन दृष्टि गुरु परम्परा से ही प्राप्त हुई है। उनके परमगृह गोदापाद महान् वेदान्तिक होने के नाते आग्रहक्य-कारिका के रचयिता थे। इसी और वह योगाचारों के श्रद्धेत्वाद के भी पक्षपाती थे। आगम-मत के बह विशिष्ट विद्वान् थे—यह उनकी 'सुभगो-दय स्तुति' से परिलक्षित होता है। इस पर अनेकों टीकाएँ हैं। आचार्य शङ्कर ने भी इस पर टीका लिखी थी। उन्होंने 'श्री विद्यारत्न सूत्र' की भी रचना की थी। इसकी अनेकों टीकाएँ हुई हैं।

कुछ प्राचीन ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि शङ्कर गुरु-परम्परा से में शाक्त मत के उपदेश व उपासक रहे हैं। 'श्री क्रमोत्तम' श्रीविद्या का श्रेष्ठ ग्रन्थ है। उसमें शिव से प्रारम्भ करके विशिष्ट, शक्ति, पराशर, व्याप, शुक्रदेव, गोडवाद, गोविन्दपाद और शङ्कर का नाम आता है। मातृपूजा के एक ग्रन्थ 'नुमुखि पूजा पद्धति' में भी इस क्रम में कुछ समानता है। भक्ति इतना ही है कि शङ्कर के बाद 'बोधघन' और 'जानघन' है। 'भुवनेश्वरी रहस्य' में भी इसका वर्णन आता है। इससे स्पष्ट है कि वह भुवनेश्वरी, मातृगी और श्रीविद्या के उपासक व प्रचारक थे।

शङ्कुर ने तन्त्रमत के प्रसिद्ध छं सम्प्रदायो—शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य और कापालिक के सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया था और उनकी हड्डा से प्रतिष्ठापना की थी। इन सम्प्रदायों के उपास्य देवों की स्तुतियों की भी उन्होंने रचना की थी। इस तरह से तात्रिक सम्प्रदायों को एकता में उनका व्यक्तित्व प्रादर्श रहा।

शङ्कुरकृत भवानी-स्तुति प्रसिद्ध है। उपका पहना श्लोक इस प्रकार है—

भवानि स्तोतु त्वा प्रभवति चतुर्भिर्वदनै ।

प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथन पञ्चभिरपि ॥

न षड्भि सेनानीदशशतमुखैरप्यहिपति—

स्तदान्येषा केषा कथा कथमस्मिन्नवसर ॥

‘हे भवानी ! सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा अपने चार मुखों से, त्रिपुर देत्य पर विजय प्राप्त करने वाले शङ्कुर अपने पाँच मुखों से, छ मुखों वाले कार्तिकेयजी और हजार मुख वाले शेषजी भी तुम्हारी स्तुति करने में अपमर्श रहते हैं। फिर मेरे जैसे जीवों के लिए तो यह कैसे सम्भव है ?’

ब्रह्मसूत्रों के भाष्य में भी उन्होंने शाक्त-मत का प्रतिपादन किया है। यथा—

न हि तया विना परमेश्वरस्य स्तष्टत्वं सिद्ध्यति ।

शक्तिरहितस्य तस्य प्रवृत्यनुपपत्तते ॥

—ब्र०सू० शा०भा० १४।३

“शक्ति के अभाव में ईश्वर सृष्टि की रचना नहीं कर सकते, क्योंकि इसके बिना उनका क्रियाशील होना सम्भव नहीं है।”

इसी प्रकार—

एकस्यापि ब्रह्मणो विचित्रशक्तियोगात् क्षीरादिवद्विचित्र-परिणाम उपपद्यये ।

—ब्र०सू० शा०भा० २।२।२४

इस परा शक्ति की सामर्थ्य से ही व्रहा को शरीर अथवा इन्द्रियों के घारण की अपेक्षा नहीं रहती। इनके बिना भी वह सर्वज्ञ और सब शक्तिमान रहते हैं।

‘सौदर्य-लहरी’ शङ्कर की एक अनुग्रह रचना है, जिसे यदि कवित्व और तात्रिक ज्ञान की त्रिवेणी कहा जाय, तो अतिशयोक्ति न होगी। इसमें ३५ टीकाएँ प्राप्य हैं, जिनमें वामेश्वरसूक्ति, नरसिंह, अच्युतानन्द और कैवल्याश्रम की टीकाएँ अभी तक भी प्रकाशित नहीं हो पाई हैं। लक्ष्मीवर की टीका उत्तम है। शङ्कर ने इसमें धीविद्या का समुद्घार किया है।

सौदर्य-लहरी का प्रथम श्लोक ही शिव-शक्ति के सम्बन्धों पर प्रकाश ढालता है—

शिवशक्त्यायुक्तो यदि भवति शक्ति प्रभवितु ,
न चेदेव देवो न खलु कुशल स्पन्दितुमपि ।
अतस्त्वामाराध्या हरिहरविरच्छादिभिरपि ,
प्रणन्तु स्तोतु वा कथमकृतपुण्य प्रभवति ।

“शिव यदि शक्ति से मचिन होना है, तो वह प्रभावशाली एव शक्ति-सम्पन्न हो सकता है और यदि ऐमा नहीं होता, तो वह देव स्पन्दन न करने के लिये भी कुशल नहीं होता है। अतएव आराधना करने के योग्य आप ही हैं, जिनको हरि, हर और व्रहा आदि भी प्रणाम करते हैं तथा स्तवन किया करते हैं ग्रन्थया अकृत पुण्य वह कैसे समर्थ हो सकता है।”

और भी कहा है—

शरीर त्वं शम्भो शशिमिहिरवक्षोरुहयुग,
तवात्मान मन्ये भगवति नवात्मानमनधम् ।
अत शेष शेषीन्ययमुभय साधारणतया ,
स्थित सम्बन्धो वा समरसपरानन्दपरयो ॥

“शम्भु का शरीर आप ही हैं, आपके दोनों स्तन शशि और सूर्य हैं। हे भगवनी ! मैं आपको ही श्रद्ध नवीन श्रात्मा मानता हूँ। अतएव शेष और शेषी यह उभय में साधारणता से स्थित सम्बन्ध है, जो समरस परानन्द पर आप दोनों को है।”

इसी प्रकार—

मनस्त्व व्योम त्व मस्दसि मस्तसारथिरसि,
त्वमापस्त्व भूमिस्त्वयि परिणताया न हि परम् ।
त्वमेव स्वात्मान परिणामयितु विश्ववपुषा,
चिदानन्दाकार शिवयुवतिभावेन विभृपे ॥

—सौदर्य लहरी ३५

“आप ही मन हैं, व्योम तथा वायु भी आप ही हैं और मरुत के सार्वयि भी आप हैं। आप ही जल हैं। परिणत आप में भूमि है, अन्य नहीं है। आप ही स्वकीय श्रात्मा को विश्ववपु के द्वारा परिणमित करने के लिए ज्ञान तथा आनन्द के आकार वाला स्वरूप शिव और युवती के भाव से धारण किया करती हैं।”

उनके शाक्त मत का पक्षपाती होने का प्रमाण नीचे के दो स्तोत्रों से भी भली प्रकार सिद्ध होता है—

शब्दब्रह्मयी चराचरमयी ज्योतिर्मयी वाडमयी,
नित्यानन्दमयी निरञ्जनमयी तत्त्वमयी चिन्मयी ।
तत्त्वातीतमयी परात्परमयी मायामयी श्रीमयी,
सर्वश्वरमयी सदाशिवमयी मा पाहि मीनाम्बिके ॥

—मीनाक्षी-स्तोत्र

“मीनाक्षी मा ! तुम शब्द-ब्रह्म से युक्त हो, चराचर में व्याप हो, प्रकाश स्वरूपा हो, वाणी में व्याप हो, नित्य आनन्दमयी हो, निर्लेप हो, तत् और त्वम् पदों से युक्त एव चैतन्यस्वरूपा हो। तत्त्वों से पृथक् हो, परात्पर हो, माया और लक्ष्मी से परिपूर्ण हो, सारे ऐश्वर्यों की हो, प्रमाणी हो, सदाशिव से युक्त हो, मुझ भक्त की रक्षा करो।”

चकार निरुणव्रह्मोऽपि सगुणव्रह्मविजेपण सदभाव-
समुच्चयपर सर्वत्रापि द्रष्टव्य । 'सच्चिन्मय शिव साक्षात्स्या-
नन्दमयी शित्रा' इति वचनेन खीर्णपा चिन्तयेददेवी पुरुषामथवे-
श्वरीम् । अथवा निष्कल ध्यायेत् सच्चिदानन्दविग्रहम्' इति
स्मृत्या च 'त्वं खो त्वं पुमान्' इति श्वेताश्वतरोपनिषद् उपाधि-
कृतनानारूपसम्भवोक्तेश्च । अतएव 'सेय देवतैक्षन्' इत्थादौ 'तत्सत्य
स आत्मा' इत्यन्ते च, श्रुती खीर्णान्तदेवतादिपदानी तत्सत्यमिति
नपुरकान्तस्य, स आत्मेति पुर्णिलिङ्गात्मशब्दस्य एकार्थत्वम् ।
अविवक्षिनोपाधिमत्तया तत्वं परलक्ष्यायस्यैकात्वात् । तस्मात्
तत्वं लक्ष्यार्थं सर्वेऽपि गुणावर्णिनु सम्भवनीति हयग्रीवेण
अस्या त्रिभूत्या वहव, चकारा उपात्ता । —ललितात्रिशती भाष्य

"चकार निरुणव्रह्म का और मणिव्रह्म का वोध कराने वाला
ममझना चाहिए । 'शिव साक्षात् पत्, चिन् और आनन्द से युक्त है'
और 'देवी का खीर्ण-रूप में अथवा पुरुष-रूप में चिन्तन करे' अथवा
'सच्चिदानन्द ब्रह्म के निरुण रूप का ध्यान करे'—इप स्मृति-वचन में
'तुम खी हो और तुम पुरुष भी' इस श्वेताश्वतरोपनिषद् के वचन का
प्रमाण उपस्थित है । इसनिए 'इस देवी ने देखा', 'वह सत्य है, वही
आत्मा है' प्रादि में, वेद में स्त्रीलिङ्ग शब्दों एवं पुर्णिलिङ्ग शब्दों का एक
ही ग्रथ है । उपाधि न कहे जाने के कारण परमात्म-प्रय भी एक ही
है । इसलिए तद और त्वम् पदों द्वारा सारे गुणों का वर्णन भी परमभव
है, इसलिए हप्त्रीव ने इसमें वहूत से चरार बनाए हैं ।"

शङ्कर वेदान्त तथा अद्वैतवाद के, आचार्य माने जाते हैं । तन्हों
का गम्भीर अवलोकन करने वालों को भी उनमें यही ध्वनि सुनाई देनी
है । यौव तथा शश्वत् ग्रामों में विभिन्न स्थानों पर इस मन की महिमा
का गान किया गया है । चतुर्षिं भैरवागमों में भी अद्वैतत्व का
प्रतिपादन है । यह तन्ह जीवात्मा को परमात्मा के साथ अभेद सिद्धि
मानते हैं । तात्रिक स वना का पहला सिद्धान्त भी यही है—

देतो भूत्वा यजेद् देवम् ।

सामर्थ जो भागो उपास्य देव के सामने पापा रणापित करनी पाएंगे । सामर्थ गत गो पत्तेक सामर्थ में भर्तुराम ही प्राणाता रहती है । इसी तरीके प्राचीर-भारा रहती है—

षट् देवी न लात्योऽस्म ब्रह्मैवाहु न सोक्षमाक् ।

सञ्जिनदानन्दरूपोऽहु नित्यमुखस्वयमात्मवाच् ॥

'मैं देवी हूँ, भग्न नहीं । मैं ब्रह्म ही हूँ । शोक का विषय नहीं ।
सत्, चित् और सानन्द गुणों से पूर्व मैं नित्यमुख हूँ ।'

इससे स्पष्ट है कि शश्कूर वेरोत्तम गत हो परमा सामर्थ्यं छोड़े द्युए गी धानत-धत का समर्थन करते ही और इसके उपरेक्षा गे ।

शश्कूर ने 'पापा-मार' नाम के तार ही रखना भी ली है । इसकी दीन उनके शिष्य पद्मापादामार्थ ने पिपी है । 'लीलं पद्मी' के संतिरिक्षत 'प्रतिवान-सतीभाष्य' उनकी एक उपान कुर्त माली जाती है ।

इससे शश्कूर को तार-पापा हो एक स्वर्मन माना जा सकता है ।

शक्ति और वेद

वेद में शक्ति तत्व का अभाव है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वेद के अनुशीलन से ज्ञात होगा है कि आर्य ऋषि ईश्वर के मातृस्वरूप की ग्राराधना से परिचित थे। प्रमाणस्वरूप अनेकों मन्त्र उपलब्ध होते हैं, जो इस भावना के बोधक हैं। वेद में कहा है कि एक 'अजा' से ही प्रजाओं की सृष्टि हुई है। उस 'अजा' से यह आद्याशक्ति ही अभिप्रेत मानी गई है।

ऋग्वेद में तो एक पूरा सूक्त इसी के लिए सुरक्षित है। अम्भृण ऋषि की विदुषी कन्या वाक् को परमात्म-साक्षात्कार हुआ था और ईश्वर के साथ अभिन्नता प्राप्त करने में वह सफल हुई थी। उनकी अनुभूतियों के साररूप मन्त्र वेद में दिए हुए हैं, जिन्हे देवी-सूक्त के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ऋग्वेद के १० वें मण्डल का १२५ वाँ सूक्त है—

अह रुद्रे भिर्वसुभिश्वराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवै ।

अह मित्रावस्तुषोभा विभम्यहमिन्द्राग्नी अहमाश्वनोभा ॥

अह राष्ट्रो सगमनी वसूर्ना चिकिनुषो प्रथमा यज्ञियानाम् ।

तां मा देवाव्यदघु पुरुत्रा भूरिस्थात्रा भूर्यदेशयन्त ॥

अहमेव स्वयमिद वदामि जुष्ट देवानामुत मानुषाणाम् ।

य कामये तत्मुग्र कृणेमि त ब्रह्माण तमृषि त सुमेघाम् ॥

मया सोऽन्तमत्ति यो विपश्यति य प्राणति य ई

शणोत्युक्तम् ।

अमन्त्रवो मा त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेय
ते वदामि ॥

अह सद्गाय धनुरा तनोमि ब्रह्माद्विपे शरवे हन्तवा ।

अह जनाय समद कृणाम्यह द्यावापृथिवी आ विवेश ॥

अह सोममाहनस बिभम्यहत्वष्टाह त्वष्टारमुत पूषण भगमे ।

अह दवामि द्रविणा हविष्मते सुप्राख्या यजमानाय
सुन्वते ॥

अह सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरस्वन्त समुद्रे ।

तनो विनिष्ठे भुवनानि विश्वोतामू द्या वर्षमणोप

रपृशामि ॥

अहमेव वाताइव प्र वाम्यारममाणा भुवनानि विश्वा ।

परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावतो महिम्ना स बभूव ॥

अर्थ — “मैं घारह रुद्र और आठ वसुओं के रूप से विचरती हूँ ।

घाता आदि द्वादश प्रादित्य प्रौर विश्वेदेवा रूप मे भी विचरती हूँ । मैं मिश्रावरण का भरण करनी, इद्राग्नि और अशिरदय को धोरण करती हूँ ।

मैं ब्रह्मात्मका दिवाई पड़ने वाले मम्पूर्ण विश्व की अधीश्वरी हूँ इमनिये आरामको को ऐश्वर्य प्राप्त कराती हूँ । मैंने परब्रह्म मे माक्षात्कार किया है, इमलिये यज्ञयोग्य देवताओं मे मैं प्रमुख हूँ । ऐसी मुझे, फनदाना देवता ग्रन्थक स्थानों मे प्रतिष्ठित करते हैं । इप्र प्रकार देवगण जो कुत्र करते हैं, वह सब मेरे निमित्त ही होता है ।

मैं स्वप्र आत्मरूपा हूँ । मैं इन्द्रादि देव और मनुष्यों को भी प्रिय ब्रह्मात्मक वस्तु का उद्देश करती हूँ । मैं जिसी रक्षा करना चाहती हूँ उसे प्रबल बनाती हूँ । मैं उसे ईश्वर, मृग और ऋषि बनाकर सुन्दर बुद्धि मे सम्पन्न करती हूँ ।

ब्रह्म भक्षण करने वाला भोक्ता मेरे द्वारा ही खाता है । देवना,

सुनता, श्वांस लेना आदि सभी काय मेरे द्वारा ही किये जाते हैं। मैं इस प्रकार अन्तर्यामी रूप से व्याप्त हूँ। जो मुझे नहीं जासते, वह उपक्षीरा हो जाते हैं। हे मित्र ! यह भक्ति करने के योग्य जो कुछ, मैंने कहा है, उसे ध्यान में सुन ।

त्रिपुरासुर को मारने के लिये मैं ही बनुप उठाती और स्तुति करने वालों के लिये यद्ध करती हूँ। मैं स्वर्ग और आकाश को अदृश्य रूप से व्याप्त करती हूँ।

शत्रुओं का जहाँ नाज हो जाना है, ऐसे स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं से मध्वन्धित सोम का मैं पोषण करती, त्वष्टा, पूषा और भग देवता का भी मैं ही पोषण करती हूँ और मैं ही हविदाना यजमान को भी यज्ञ का फलरूप ऐश्वर्य प्रदान करती हूँ।

इस दीखते हुए लोक के शिररूप सत्यनोक में निवास करने वाले विद्याता को मैं ही उत्पत्त करनी हूँ। इम मसार की मैं ही कारणरूप हूँ, ब्रह्म-चैतन्य की निमित्त भी मैं ही हूँ। सम्ब्र में बड़वान्त और विद्युतरूप तेज भी मैंग है। मैं सब प्राणियों को प्रकट करती, स्वर्ग और ब्रह्म में अद्यमत विकारों को मायात्मक देह से स्पर्श करती, पृथ्वी के ऊपर पितारूप द्युलोक को प्रेरित करती और अन्तरिक्ष के जन्म के विकार रूप देवताओं में जो ब्रह्म व्याप्त है, उसके द्वारा मैं सबको छूती हूँ।

मैं किसी अन्य को स्वायता लिए विना सब प्राणियों को उत्पन्न करती हुई वायु के समान प्रवृत्त होती हूँ। द्युलोक, पृथ्वी और सम्पूर्ण विकारों से रहित ब्रह्म-चैतन्य रूप वाली मैं अपनी ही महत्ता से ऐसी शक्तिशालिनी हो गई हूँ ।”

इयम ददोद्र भसमृणाच्युत दिवोदास वद्यवश्वाय द्राशुपे ।

या शाश्वन्तमाचरवादावम पर्णि ता ते दात्राणि तविपा

सरस्वति ॥

इय शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत्सानु गिरीणा
तविपेभिरुमिभि ।

पारावतधनीमदसे सुवृक्षितभि सरस्वतीमा
विवासेम धीतिभि ॥
सरस्वति देवनिदो निवर्हय प्रजा विश्वस्य वृसयस्य
भायिन ।
उत क्षितिभ्योऽवनीविन्दो विषमेभ्यो अस्त्रो
वाजिनीवति ॥
प्रणो देवी सरस्वती वाजे भिर्वाजिनीवती
धीनामविच्छवतु ।
यस्त्वा देवि सरस्वत्युपन् ते धने हिते
इन्द्र न वृत्रतूये ॥

‘ सरस्वती ने हविदाता वध्यस्व को दिवोदास नामक पुत्र प्रदान किया । उन्होंने अदानशील पणि का शोषण किया । हे सरस्वती तुम्हारे दान विस्तृत हैं । यह सरस्वती पर्वत के तटों को अपनी लहरों से तोड़ती है । हम उन्होंकी सेवा करते हैं । हे सरस्वती ! तुमने देव निन्दको और त्वष्टा के पुत्रों को मारा तथा मनुष्यों को भूमि देकर जल-वृष्टि की । अग्नवनी सरस्वती रक्षा करने वाली हैं, वे हमें भली प्रकार तृप्त करे । इन्द्र के समान तुम्हारी भी जो स्तुति करता है, वही पुरुष धन प्राप्ति वाले समान में जाता है । तुम उसकी रक्षक होओ ।’

त्व देवि सरस्वत्यवा वाजेपु वाजिनी
रदापूपेव न सनिम् ।
उत स्या न सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनि
वृत्रधनी वृष्टि सुरदुतिम् ॥
यस्या अनन्तो अहूतस्त्वेपश्चध्युर्गाव
अमश्चरति रोहत् ।
सा नो विश्वा अतिद्विप. स्वसृत्या ऋतावरी

उत न प्रिया प्रियासु सप्तम्बसा सुजुष्टा

सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥

“हे सरस्वती ! तुम युद्ध मेर करो । पूषा के समान हमें
उपभोग्य धन दो । शत्रु का नाश करने वाली रथाहृषा सरस्वती हमारे
श्रेष्ठ स्तोत्र की रक्षा करो । इन सरस्वती का वेगवान जल शब्द करता
हुआ जाता है । सूर्य जैसे दिन को लाते हैं, वैसे ही सरस्वती विजय
लेकर अपनी अन्य भगिनियों सहित आती हैं । सरस्वती की प्राचीन
ऋग्वियों ने सेवा की थी, वह हमारी स्तुति के योग्य हो ।”

आपप्रर्षा प्रार्थिवान्यरु रुजो अन्तरिक्षम्

सरस्वती निदस्पातु ॥

त्रिषधस्ता सप्तधातु. पञ्चजाता वर्धयन्ती ।

वाजेताजे हव्याभूत ॥

प्रचा महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या

आपसामपस्तमा ।

रथइव वृहती विभवने कृतोपस्तुत्या चिकितुपा सरस्वती ॥
सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरी पयसा

मा न आ धक् ।

जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥

“जिन सरस्वती ने स्वर्ग और पृथ्वी को तेज से पूर्ण किया है,
वे हमें निन्दकों से बचावें । सप्त नदियों वाली सरस्वती सग्राम में
शाहवान करने योग्य होती है । यशवती, नदियों में श्रेष्ठ, गुणवती
सरस्वती विद्वान् स्तोता की स्तुति के योग्य हैं । हम हीन या पीड़ित
मत करो । हमारा बन्धुत्व स्वीकार करो । हमें निकृष्ट स्थान को प्राप्त
न हो ।”

एक विद्वान् ने इन शब्दों में सरस्वती का विवेचन किया है—

‘वेद का प्रतीकवाद सरस्वती के अलङ्घार में अत्यधिक स्पष्टता

के माथ अपने आप को प्रकट कर देता है, छुगाकर नहीं रख सकता। वह तो सीधे तीर पर और स्पष्ट रूप से बाणी की देवी है, एक दिव्य अन्त प्रेरणा की देवी है। “सरस्वती का सम्बन्ध न केवल अन्य नदियों के माथ है, किन्तु अन्य देवियों के साथ भी है, जो देवियों की स्पष्ट तीर से आध्यात्मिक प्रतीक है।” इना, मही या भारती और सरस्वती—ये तीनों उन प्रार्थना मन्त्रों में, जिनमें कि अभिन के साथ देवताओं को यज्ञ में पुकारा गया है, एह स्थिर सूत्र के रूप से इकट्ठी प्राती हैं।”

ऋग्वेद के श्रीसूक्त में भगवती के जड़ और चेतन रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है—

का सोऽस्मिता हिरण्यप्रकारामाद्र्दा,
ज्वलन्ती तृप्ता तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थिता पश्चवण्डा
तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

“किसी आत्मद-प्रभुग्रन्थ तथा सुस्थ, स्तिर्ग्र, प्रेमाद्यपद, प्रकाश शील जड़श्वरूप और अपने लोक में सोने के महल वाली, अपने आप तृप्त और द्वूपरों को प्रसन्नता प्रदान करने वाली, पश्चाकर सिहामन में विराजमान और मन्त्रों में पूज्य रूप प्रचावितार से स्थिति पद्म वर्ण वाली उस भगवती का मैं ध्यान करता हूँ।”

अथर्ववेद के चौथे कांड के ३०वे सूक्त की देवता भी वाक् है। इसमें भी उ मन्त्र है और यह वही ऋग्वेद वाले ही मन्त्र उद्घृत है, परन्तु प्रस्तुत करने में कुछ अन्तर है। अथर्ववेद के ऋषि को वाक् देवी की बाणी ने प्रभावित किया, तभी पूरे-का पूरा सूक्त उसी प्रकार देदिया जैसा ऋग्वेद में है। इसमें वेद की शक्ति विषयक मान्यता और दृढ़ होती है। दुर्गा की स्तुति करते हुए अथर्ववेद का ऋषि कहता है—

मन्त्राणा मातृका देवी शब्दाना ज्ञान रूपिणी ।
ज्ञानानां चिन्मयातोता शून्याना शून्य साक्षिणी ॥

यस्या परतर नास्ति संपा दुर्गा प्रकीर्तिता ।
ता दुर्गा दुर्गमा देवो दुराचार विघातिनीम् ।
नमामि भवभीतोऽहं ससाराणं तारणीम् ॥

“मन्त्रो में मातृका, शब्दो में ज्ञान, ज्ञानो में चिन्मयीता, शून्यों
में धून्य साक्षिणी रूप से और जिनमें परे और कुछ नहीं है, वही है माँ
दुर्गा । उन्हीं दुर्विज्ञेय, दुर्गम, दुराचारनायिनी, समार से पार करने वाली
भगवती दुर्गा को मैं भवभीत जन नमस्कार करता हूँ ।”

ईश्वर के मातृरूप को ऋग्वेदमें अदिति कहा गया है । वही वेदमें
मातृत्व-रूप का प्रतिनिधित्व करती है । इस अखण्ड आनन्द और चैतन्य
को स्फुरित करने वाली शक्ति का रहस्यमय नाम ‘अदिति’ रखा गया
है । उसे देवनामयी भी कहा गया है । ‘अदिति’ के रूप का वर्णन करते
हुए ऋग्वेद (१।८।१०)में कहा गया है—

अदितिदैर्दितिरन्तर्निक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्र ।
विश्वे देवा अदिति पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्ज-
नित्वम् ॥

“आकाश, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवता, सभी
जातियाँ अथवा जो उत्पन्न हुआ है और होगा, वह सभी अदिति के
रूप हैं ।”

ऋग्वेद दा२५।३ में इसे सत्यनिष्ठा और महिमामयी कहा गया
है और तेजस्वी तथा ऐश्वर्यशाली मित्रावरुण को राक्षसों का वल मिटाने
के लिए प्रकट करने का गौरव प्राप्त हुआ है । दा४।२ में मित्र, वरुण
और प्रथमा की माता कहकर उसे सुखदाता, धनदाता और मगलकारक
कहा गया है । २।२।७।७ में कश्चुमो से सुरक्षा के लिए अदिति से प्रार्थना
की गई है । १।१।३।६।३ में अदिति को पृथ्वी की धारक और आकाश
से यूक्त कहा गया है, जिनकी मित्र, वरुण नित्य सेवा करते हैं । दा४।७।१
१२ में पुत्र को जीवित रखने के लिये रक्षा की प्रार्थना की गई है ।

५।४६।६ में अदिति को सर्वव्यापक स्वीकार किया गया है । ७।४०।४ में अदिति को प्रकाशमयी का विशेषण दिया गया है । २।४०।६ में अदिति को तेजस्विनी कहा गया है और शत्रुप्रो से रक्षार्थ प्रार्थना की गई है । ७।४३।६ में अदिति से दोषमुक्त करने की प्रार्थना की गई है अर्थात् वह इस शक्ति से सम्पन्न है ।

यजुर्वेद (२।१५) में अदिति के गुणों का वरण करते हुए कहा गया है—

महीमूषु मातर७ सुन्रनानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम ।

तविअत्राम जरन्तीमुरुचो ७ सुरामणिमदिति ॥

सुप्रणीतिम ॥

“महान् यश वाली, शेष कर्मों की माता। और सत्यरूप यज्ञ की पालिका, बहुकृत से रक्षा करने वाली, दीर्घ मार्ग मे गमनशील और अजर तथा कल्याणरूप अदिति को रक्षा के लिए प्राहृत करते हैं ।”

ग्रथर्यवेद ६।४।१-२ में अदिति को प्रजेय बल की रक्षा कहा गया है ।

श्री भरविन्द ने अदिति की व्याख्या करते हुए लिखा है कि “अदिति वह अनन्त सत्ता है, जिससे देवता उत्पन्न हुए हैं और जो अपने सात नामों और स्थानों (धारानि) के साथ माता के रूप मे वर्णित की गई है । यह भी माना गया है कि वह अनन्त चेतना है, गी है, या वह आद्या ज्योति है, जो ‘सप्तगाव’ मे व्यक्त होती है ।

वेदों की अदिति—प्रनन्त अखण्ड शक्ति—देवताओं की माँ है । मूलरूप से अदिति एकमेव और स्वयं प्रकाशित अनन्त सत्ता की शुद्ध चेतना है । अदिति वह ज्योति है जो समस्त वस्तुओं की माँ है । यह वह गाय है, जिसका यन समस्त विश्व का पोपण करता है । यहाँ निम्न-सत्ता में वह भू-सिद्धात के रूप मे व्यक्त हुई है । अदिति—प्रनन्त माँ—अपने बालकों—देवताओं—के जन्म तथा काय के द्वारा मानव-सत्ता में अपने को उपलब्ध है ।”

दिति दैत्यों की माता है—इसका भी वेद में वर्णन आता है। अदिति और दिति की वैज्ञानिक व्याख्या करते हुए एक प्रविकारी विद्वान् ने एक बार लिखा था—

“जिस प्रकार ध्यक्ति को जन्म देने वाली माता होती है, उसी प्रकार जगत् और ब्रह्माड को उत्पन्न करने वाली माता भी है। नि सीम विश्वातीतता (Transcendence) में से विश्व को जन्म देना विश्व-माता का काम है। परन्तु विश्व की उत्पत्ति के बारे में विलक्षण ही अलग, फिर भी अविगोष्टी और एक दूसरे के पूरक दो दृष्टिविन्दु हैं। एक के अनुसार विश्व की उत्पत्ति विश्वातीत परचेतना (Super-consciousness) में से हुई है, जबकि दूसरे के अनुसार अचेतना (Inconsciousness) में से। पहला दृष्टिविन्दु आत्मवादी का है और दूसरा भौतिकवादी का। दोनों सच्चे हैं। एरु ही घटना को ये अस्तित्व के दो छोरों से देखते हैं।

जब ऊपर के छोर से विश्व की उत्पत्ति को देखते हैं तो विश्व की माता नि सीम अविभक्त चित्-शक्ति है। ऋग्वेद की भाषा में ‘चित्ति’ तथा देवों की माता ‘अदिति’ है। जब नीचे के छोर से देखते हैं, तब विश्व की माता विभक्त एवं विमाजक अचेतना है। वेद की भाषा में ‘अचित्ति’ तथा दैत्यों की माता ‘दिति’ है। चित्त एवं अचित्ति, अदिति एवं दिति दोनों एक साथ ही जगत् की माताएँ हैं। पहली है नि सीम चेतना और दूसरी है उभी का दर्पण में पड़ना रलटा प्रतिविम्ब (Mirror Image)। पुराणों के अनुसार अदिति और दिति दोनों कश्यप की पत्नियाँ हैं। कश्यप सूर्य है और सूर्य अतिमानस चेतना का प्रतीक है। प्रतिमानस चेतना विश्व को उत्पन्न करने वाली है—उसके भीतर अदिति और दिति प्रवर्ति नि सीमता और सीमता, एकत्व और अनेकत्व, प्रखण्डता और खण्डता—दोनों का सम्पूर्ण समन्वय है, स वादिता है।

श्रद्धित अथवा ति सीम चेतना देवो की – आदित्यो की माता है। दिति अथवा विभक्त हुई—टुकडे हुई (दो—आयखरणे घातु पर से) चेतना दैत्यो की माता है। देव तथा आदित्य दिव्य-तत्त्व है, वे सभी को अविभक्तता, सवादिता की ओर ले जाते हैं। दैत्य श्रद्ध्य तत्त्व हैं, वे सभी में विभक्तता एव विस्वादिता का निर्माण करते हैं।

श्रद्धित की विरोधिती भलिन सत्ता को दिति कहा जाता है। इसीलिए उसके पुत्रों का नाम दैत्य पढ़ा। दिति के विरुद्ध श्रद्धित है। दैत्य के विरुद्ध आदित्य है, असुरके विरुद्ध देव हैं। ऋग्वेद ७।१५।१२ में ‘दितिश्च दाति वार्यम्’ दिति को इच्छित फल देने वाली कहा गया है। ४।२।११ में भी दिति को प्रदान करने वाला कहा गया है। अथर्ववेद १५।१८।४, १६।६।७ में देवी के रूप में दिति का वर्णन किया गया है। ७।७।१ में दिति के पुत्रों का उल्लेख है।

कुछ अन्य अन्य देवियों का वर्णन वेद में भाता है। सूर्यदेवी के सूक्तों में शक्ति के पत्नी-भाव का उल्लेख है। ऋग्वेद के परिशिष्ट में लक्ष्मीसूक्त भाता है। ऊषादेवी के सूक्तों में शक्ति के कुमारी-भाव का वर्णन है। श्री अरविन्द ने इन सुन्दर और सुगठिः शब्दों में ऊषादेवी की व्याख्या की है—

“ऊषा स्वर्ग की पुत्री, श्रद्धित की शक्ति और मुख है। वह सर्वदा मानवों पर दिव्य ऊपोति की उन्मुक्तता बिखेरती है। वह आध्यात्मिक समृद्धि की भागमनी है। भू सत्ता पर स्वर्ग के स्वर्णिम कोप की वर्षा है। ऊषा मानव मज्जान की राति में सर्वोच्च ग्रातोक की दिशा का प्रतीक है। ऊषा का मून चिन्तन और अग्निरस की कथा वैदिक विचार का हूदय है। ऊषा देवमाता भी है। वह उन्हे मानव की धुद्रता से बिना दबाये और हमारी प्रज्ञा में विना प्रावृत्त किये ही मानवता में जन्म देती है।”

ऋग्वेद में इनको सबसे ऊपर के लिए समर्पित है। ऋग्वेदके प्रथम Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MA

मण्डल के ६२वें मूँहत में इसकी महिमा वर्णित है। यहाँ इसे आकाश की पुत्री और प्रदमुन प्रकाश से युक्त कहा गया है। (५) प्रिय सत्य वाणी की ओर प्रेरित करने वाली गौरमो द्वारा मनुष्य है, उससे पुत्र, पौत्र और बोडों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। (७) वह सौभान्यवती है (८), वह सब लोकों को देखती है और चिन्तनशील प्राणियों की वाणी को जानने वाली है। (९) वह आकाश की सीमाओं को प्रकट करने वाली है। प्रथम मण्डल का ११३वाँ सूक्त भी पूरा ऊपा के निए विहित है। वहाँ इसे कर्मज्ञेत्र का द्वार खोनने वाली कहा गया है (४), सिकुड़कर मोते हुए को यह धनेश्वरी चैतन्य करती है, वह भोग, पूजा, घन, दृष्टि, आरोग्य की प्रेरणा देती हुई सब मुवनों को प्रकाश से मर देती है (५), सब मुवनों पर हमका अधिकार है (६), यह उज्ज्वल-वसना युवती सभी पायिव घनों की स्वामिनी है (७), यह जीवित को प्रेरणा देने वाली मृत को चैतन्यता प्रदान करती है (८), अजर-प्रमर यह ऊपा अपनी इच्छा से गतिमान है।

ऋग्वेद (पाँचवें मण्डल) के ७६ ८० मूँहों की देवता भी ऊपा है। ७६ वें मूँहत में इसे श्रेष्ठ त्रुद्धिदाता (१) घनदाता (२) अन्वकार मिटाने वाली (३) ऐश्वर्यशानिनी (४) अन्वदाता (५) कहा गया है। ८०वें मूँहत में सर्वव्यापिनी, यज्ञों की उत्तम प्रकाश से पूजनीय है (१)।

वेद में देवताओं की पठिनयों के नाम भी देवियों के रूप में आते हैं। जैसे इन्द्र की इन्द्राणी, वरुण की वरुणानी, अग्नि की अग्नायी, शुद्र की चद्राणी, अश्विनों की अश्विनी आदि।

मरुतों की माता को 'पृष्ठिन' कहा गया है। दोस् को भी एक ग्रन्थ मूँहत दिया गया है। 'रात्रि' का भी १०।१२७ में भ्राह्मान किया गया है। 'पुरवि' समृद्धि की देवी है। इसका वेद में ६ बार नाम आया है। प्रचुरना की देवी 'विरागु' है। हूँ और वी की पाहुतियों का 'स्वूचीकरण इना' में फिरा गया है। 'इडा गाय से सम्बन्धित है।

'राका' उदारता और समृद्धि की देवी है। 'सिनीवाली' बहुप्रसूता, परिवार की स्वामिनी, सन्तानप्रदाता है। अथर्ववेद (दा४६।३) मे इसे विष्णु पत्नी घोषित किया गया है। 'नव-चन्द्रमा' का प्रतीक 'कुहू' का भी उल्लेख आता है।

ऋग्वेद १।१३।६ में इला, सरस्वती और मही को सुख देने वाली कहा गया है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि वेदों मे भी ईश्वर के मातृरूप को स्वीकार किया गया है, देवियों की महिमा का यशोगान किया गया है, उनकी उपासना की प्रेरणा दी गई और उन्हे सुख एवं सोभाग्य प्रदान करने वाली बताया गया है। अतः इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि वेद मातृ-उपासना—शक्ति-उपासना—को मानते हैं।



शक्ति और उपनिषद्

आत्म-विद्या, ब्रह्म विद्या के रहस्य का उपनिषदों में विवेचन हुआ है। उपनिषद् शब्द का अर्थ ही है—‘परमात्मा की प्राप्ति का रहस्य-मय ज्ञान’। भारतीय तत्त्वज्ञान का जितना उत्कृष्ट विवेचन उपनिषदों में मिलता है, उतना ग्रन्थत्र कही नहीं है। सप्ताह के समस्त तत्त्वज्ञानियों के लिए यह ज्ञान अमृतोपम रहा है। जिसने इसका जितना ही अवगाहन किया है, उसे उतना ही आनन्द मिला है। आत्म-कल्याण का मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए उपनिषदों से बढ़कर प्रकाश-स्तम्भ और कोई हो नहीं सकता। विदेशी दार्शनिकों का भी यही अभिमत है कि उपनिषदों के समान अत्मा को ऊँचा ठाने वाला ज्ञान सप्ताह में और कही नहीं है।

भारतीय अध्यात्मवाद के प्रतीक उपनिषदों ने शक्ति और उसके सत्त्वज्ञान को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। अनेकों उपनिषदें इसी के लिए अभिहित की गई हैं। वहवृत्त, देवी, त्रिपुरा, त्रिपुरातापिनी, सीता, सौभाग्यलक्ष्मी, तारा, काली, कौल, सरस्वती हृदय, अरुण, अद्वैतभाव और श्री विद्यातारक—शक्ति के बोवक उपनिषद् माने जाते हैं। इनमें से कौल, त्रिपुरा और भावना उपनिषद् का भाष्य प्रसिद्ध तात्रिक दार्शनिक भास्कर राय ने लिखा है और त्रिपुरा व भावना पर अप्पय दीक्षित ने। इनका प्रकाशन तात्रिक टेस्ट ग्रन्थमाला, कलकत्ता द्वारा हुआ है।

भावोपनिषद् देवी के परस्वरूप का प्रतिपादक है। इसमें श्रीविद्या

की अव्यात्म प्रतिष्ठा है। शावन श्रद्धैतवाद की आधारशिला इसी उप-निषद् पर रखी गई प्रतीत होती है।

त्रिपुरगतापिनी मे गूल श्रीविद्या की पञ्चदशाक्षरी का उद्भार मिलता है। इसमे देवी की स्थूल व सूक्ष्म दोनों प्रकार की पूजन-पद्धति का विवेचन है। यह नृसिंह-तापिनी से मिलता जुलता है।

‘सरस्वती हृदय’ मे ऋग्वेद के सरस्वती से सम्बन्धित मन्त्र है। उनका तात्रिक विनियोग भी दिया हुआ है। श्रहणोपतिपद तत्त्वरीय आरण्यक से सम्बन्धित है।

देवी नपनि द तो सम्पूर्ण इसी विषय का विवेचन करता है। देवतामो की विज्ञासा पर देवी ने उत्तर दिया—

‘मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूँ। यह कार्य, कारण, रूप, प्रकृति और गुरुष तमक विश्व मुझसे ही उत्पन्न हुआ है। मैं आनन्दरूपिणी तथा आनन्दरहित रूप वाली है। मैं विज्ञानमयी और अविज्ञानरूप हूँ। मैं ज्ञानव्य ब्रह्म तथा ब्रह्म से परे भी हूँ। मैं पञ्चीकृत महाभूत हूँ। दिखाई पड़ने वाला यह सम्पूर्ण विश्व मैं ही हूँ। विद्या-प्रविद्या वेद-प्रवेद भजा और भ्रन्जा। मैं ही हूँ। मैं नीचे भी हूँ औरऊपर भी हूँ, आगन-बगल मे भी मैं ही हूँ। मैं रुद्रो और वसुप्रो के रूप मैं सनार करने वाली हूँ। श्रादित्यो और विश्वेदेवो के रूप मैं सचार भ्रमण करती रहती हूँ। मैं ही मित्रवरुण इन्द्राग्नि और अश्विद्वय की पालिका हूँ। सोम, पूषा, भग और त्वष्टा को मैं ही धारण करती हूँ। तीनों लोकों को आक्रान्त करने के उद्देश्य से पदक्षेप करने वाले विष्णु ब्रह्मा व प्रजापति के धारण करने वाली हूँ। देवतामो के लिए हवि-वाहक और सीमाभिपत्र वाले यजमान के निमित्त इवियुक्त घनों को धारण करती हूँ। मैं उपासकों के लिए घनदायिनी, ज्ञानवती, यज्ञो मैं नायिका तथा सम्पूर्ण विश्व की अधीश्वरी हूँ। विश्व के वितारूप आकाश को परमात्मा के ऊपर मैं ही प्रकट करती हूँ। मेरा स्थान आत्मरूप की शारियती बुद्धि वृत्ति मे है। इस प्रकार जोनने वाला ज्ञानी पुरुष दिव्य समर्पित प्राप्त करता है।’

फिर देवताओं ने देवी की स्तुति करते हुए तथा दक्ष को सम्बाधित करते हुए कहा —

"हे दक्ष ! आपकी कन्या भाद्रिति के प्रमूला होने पर अमृतत्व गुण वाले देवताओं की उत्तरति हुई । काम, याति, कमल, वज्री, मुहा, सकलह । वर्ण एवं मात्रा यह सब उस जगत्पाता की ब्रह्मचरिणी सूत्र विद्या है । यह विश्व को सोहित करने वाली, पाश, अ कुश, घनुष-वाण धारिणी परब्रह्म की शक्ति है, यहो श्रीनदाविद्या हैं —इन प्रकार जानने वाला पुण्य शोक मन्त्राव से मुक्त हो जाता है । हे जगत्पाता तुम्हें नमस्कार है । तुम सभी प्रकार स हनारी रक्षा करने वाली वता ।

वही यह एकादश रुद्र, द्वादश भाद्रिति प्रीत्र अष्टवसु हैं । वही यह सामयायी विश्वदैवा हैं । वहा यह यातु गान, दैव्य, राजन, पिश च, यद्या प्रीत्र मिद्ध हैं । वही यह विष्णु प्रीत्र रुद्र रूप वानी तथा मत्त्व सब-कला काष्ठादि सहित कान स्वरूपा हैं । भाग घोर माझदायिनो, पारनार्गती, विन्द्र की अविष्टात्री, प्रन्त से प्रनीत, क याण-मङ्गर रूप वानी, दोप रहित एवं प्राश्रयवदी भी वही हैं । हन इन देवी को सदा नमस्कार करते हैं ।

हृदय-नमन में निवास करने वानी, श्रहणोदय ने सरान प्रभा वाली, पाश-प कुश धारिणी पतोहर रूप वाली वरद हृष्ण प्रीत्र मन्त्र मुद्रा वाली विनेत्र, लोहितवपना, कामना पूर्ण करने वाली देवी का मैं मदा भजन करता हूँ । हे महादेवि ! तुम प्रहान् भग और प्रहान् पकट को दूर करने वाली तथा कहुगुमयो मूर्ति हो । मैं तुम्हे नमस्कार करता हूँ । ब्रह्मादि भी जितके यथार्थ रूप को नहीं जानते, इन्हिए जो अज्ञोर तथा प्रवा न होने से अनन्त कही जाती हैं जो दिवाई न पड़ने से मनहाया, जन्मरहित होने से अजा, एक ही मर्वत्र ध्यात होने से एक तथा विश्वरूप में अड़ली हो सुखोमित्र से नेका कही जाती है । ममन्त्र अनंग में मूनाक्षर रूप में रहने वाली, चिन्मरातीना, शू यमाखिणी वे

सर्वथेष्ठ दुर्गा के नाम से प्रसिद्ध है। उा संगात-पातार से पार करने पाली, परातार ऐ तष्ट करने पाली दुर्गा देवी को मैं भयसागर से भय-भीत दुर्गा नमस्कार करता हूँ।”

गठारोपनिषद् में देवी का महारथ्य वर्णन करते हुए कहा गया है—“देवी मे श्रद्धाद् की उत्तिरी और पह्नी ससार की उत्पत्ति से पहुँचे थी। वह ही कामकला और शृङ्खारकला के नाम से प्रसिद्ध है। उन्हीं से श्रद्धा, पितृसु प एवं का पादुभवि दुर्गा। उन्हीं से सारे मरुदगण, गन्गायं, घटाराये और किन्नर उत्पत्ति हुए, समस्त भौग-वासियों का भारण वहो द्वई। सा कुत्र उन्हींसे सृजन हुआ। शक्ति रो गमकुछ बना। गमुणा तथा समस्त स्थावर-जगत् प्राणियों (मरुडज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज) की उत्पत्ति उन्हीं से हुई। उन्हीं को अपरावक्ति, शास्त्रवी गिला, पादिविला, द्वादिविला सादिविला य रहस्यरूपा कहुते हैं। वे ही वह मधार तथा हैं, जो प्रणय वा प्रतिपादन करती हैं—प्रणवस्यरूपा है, प्रत्येक प्राणी की जाई पर अग्निभित है। वे ही तीनो अत्यस्तान्नी(जाग्रन, स्थान और सुपुत्रि) य तीनो प्रकार के शनीरो (स्थूल, मुष्मण और कारण) में ज्ञात हो रही हैं और वही उनको प्रकाशित कर रही हैं। वे प्रत्येक प्राणी में जीता उत्पन्न करती हैं। उन्हीं को आत्मा कहा जाता है। उनको त्रौषकर सबकुल यमरथ परात्म है। वे परमहा का चोप कराने पाली विद्या वस्ति है। वे श्रद्धा का ज्ञान कराने पाली हैं। वे सत्, नित् और मानन्दस्यरूपा हैं। प्रत्येक परतु के यात्रर और भीतर ज्ञात हो रही है। उनके शक्ति, शाति और प्रिय तीनो छष सत् नित् और यागम्य के योगक हैं। इस प्रकार से वह महानियुरसुदर्शी समस्त स्थूल यज्ञुप्रो मे भवित्वा है। मैं भी युग, देवता, सारा ससार य शेष सभ कृत ये देवी हैं। सलिला हो गता है, वे ही परमहा तत्त्व हैं। पौष्टि व्यों (पौष्टि, भाति, प्रिय, नाम, रूप) के व्यापो भीर परो रूप के न ज्ञाने से जो सत्ता गेप रह जाती है, उसी को परम तर एहते हैं।

‘वह (शक्ति) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर की परमशोभा है, वह सत्, चित्, आनन्द की लहरी है। वह भीतर वाहर ध्यास रहती हुई स्वयं प्रकाशित हो रही है। वह समस्त दृश्य पदार्थों के पीछे रहने वाली वरतु-सत्ता है। वह आत्मा है। उसके अतिरिक्त सभी कुछ असत् अनात्म है। वह तित्य, निर्विकार, प्रद्वितीय, परमात्मा भी परम दिव्य चेतना की आदि अभिव्यक्ति है। सृष्टि के आदि में देवी ही थी और इनी पराशक्ति भगवती से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा सम्पूर्ण स्थावर जडात्मक मृष्टि उत्पन्न हुई। ससार में जो कुछ है इसी में सन्निविष्ट है। भुवनेश्वरी, प्रत्यगिरा, सावित्री, सरस्वती, ब्रह्मानदकला आदि अनेक नाम इसी पराशक्ति के हैं।’

सरस्वती रहस्योपनिषद् में सरस्वती देवी से इस प्रकार दीन भाव से प्रायना की गई है।

‘जिस सरस्वती का स्वरूप वेदात् वा सार भूत ब्रह्मत्व हो है और जो विभिन्न नाम रूपों में प्रकट हैं, वे सरस्वती मेरी रक्षिका हों।’ दान से सुशोभित होने वाली स्तोतामों को रक्षिका एवं मन्त्रवती भगवती सरस्वती इन साधकों को भन्न से परिपूण करते।

‘‘देवों और उनके अग उपागों में जिन एक देव की स्तुति की जाती है तथा जो परब्रह्म की अद्वैत शक्ति है, वे भगवती सरस्वती हमारी रक्षिका हो।’’

‘जो वर्ण, पद, वाक्य में भर्थों सहित मर्वन्त्र व्यास्त है जो आदि मन्त्र स पर एवं अनन्त रूप वाली हैं, वे देवी सरस्वती मेरी रक्षा करने वाली हों।’

‘जो सरस्वती देवताओं की प्रेणात्मिका शक्ति, अधिदेवरूपिणी एवं हमारे भीतर वाणी रूप में प्रतिष्ठित हैं, वे भगवती मेरी रक्षिका हो।’

जो सरस्वती मन्त्रयामी रूपसे लोकत्रय का नियन्त्रण करते

वाली है तथा जो सद्ग-ग्रादित्य ग्रादि ग्रनेक देवताओं के रूप में अवस्थित हो हमारी रक्षिका हों।

‘जिन सरस्वती देवी में ब्रह्मतत्त्ववेत्ताजन नाम-रूप वाले सभूण् प्रपञ्च को ग्राविष्ट करते हुए उनका ध्यान करते हैं, वे देवी मेरी रक्षिका हो।’

‘जो सरस्वती देवी अन्तर्दृग् वाले जीवों के समक्ष विभिन्न रूपों में प्रकट होती तथा जो ज्ञाति रूप से व्याप्त है, वे सरस्वती मेरी रक्षिका बने।’

सौभाग्यलक्ष्मी उर्निषद् में देवताओं के पूछने पर भगवान् ग्रादि नारायण ने उपदेश देते हुए कहा।

देवताओं। एकाग्र मन से सुगो। स्थून सूक्ष्म प्रौर कारण रूप अवस्थाओं से जो तुग्रीयावस्था, वरद तुग्रीयावस्था से भी परे निर्गुण एवं विराट रूप वाली हैं, जो मन्त्र रूप आसन पर प्रतिष्ठित होने वाली हैं, पीठों और उग्रीठों में विराजमान देवगण से घिरी हुई हैं, उन चार भुजा वाली लक्ष्मीजी का श्रीसूक्त की पन्द्रह ऋत्वाओं के हारा वितन करना चाहिए।

राघोपनिषद् में श्री गत्ता का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है —

‘श्री कृष्ण ही प्रकृति से परे प्रौर ग्रविनाशी हैं। जाह्नवादिनी, सविनी, ज्ञानेच्छा, क्रिया इत्यादि इनकी ग्रनेक शक्तियाँ हैं। इन सबमें ‘ग्राह्णादिनी’ मध्ये प्रवान है। यह उनकी मर्वाधिन अन्तर्ग है, इन्हीं को राघा कहते हैं। भगवान् कृष्ण स्वयं इनकी ग्राराधना करते हैं। श्री राघाजी सदैव कृष्ण की ग्राराधना करती हैं। राधिरा को ‘ग-धर्वा’ भी कहा जाता है। समस्त गोपियाँ, श्री कृष्ण भगवान् को महपियाँ भी कहा जाता है। समस्त गोपियाँ, श्री कृष्ण भगवान् को महपियाँ और लक्ष्मी का प्राविभर्वि भी राघाजी के शरीर से ही हुप्रा है।

रम-सागर भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही क्रीडार्थं एक से दो रूपो में विभक्त हो गए हैं।

श्रीराधा सर्वेश्वर भगवान् कृष्ण की भी सर्वेश्वरी हैं, उनकी समस्त विद्याश्रो में सनातनी हैं। ये श्री कृष्ण की प्राणों से अधिक प्रिय देवी हैं। चारों वेद भी एकान्त भाव से इनकी स्तुति करते हैं। व्रत्यजामी श्रृंगि इनकी गति को जानते और कहते हैं। इनकी महिमा इननी अधिक है कि मैं चाहे अपनी समस्त आयु रसे कहता रहूँ तो भी उसका पार नहीं मिल सकता। ऐ राधा जी जिस पर प्रसन्न होती है, उसे तुरन्त परमत्वाम की प्राप्ति हो जाती है। यदि कोई राधाजी की अवज्ञा करके कृष्ण भगवान् की आराधना करते की इच्छा करता है तो वह सर्वाधिक मूढ़ है।

सीतोपनिषद् में सीता की मूल प्रकृति स्वीकार करते हुए कहा गया है —

सीताजी क्षक्ति रूपिणी हैं। मूल प्रकृति होने-से वे ही प्रकृति रही जाती है। प्रणव की प्रकृति रूपा होने से भी उन्हे प्रकृति कहते हैं। ये साक्षात् योगमाया ही हैं। उनका सीता नाम तीन वर्णों का है। सम्पूर्ण विश्व प्रपञ्च के बोज भगवान् विष्णु हैं। उनकी योगमाया का वा रूप ईश्वर है। स' कार को सत्य अमृत, सिद्धि चन्द्र तथा प्राप्ति का वाचक कहते हैं। दीर्घ अकारयुक्त 'त' कार विस्तार करने वाला एव महालक्ष्मी रूप वाला कहा है। ईकार वाली अव्यक्त महामाया अपने अमृतमय, अवयवों और दिव्य भूपणों से विभूषित रूप से व्यक्त होती है। वे अत्यरुपा अपने प्रथम रूप में शब्दव्रह्म से युक्त हैं। वे प्रसन्न होकर वुद्धि रूप में वोघ देने वाली हैं। वे सपने द्वितीय रूपमें जन इम भूल पर ध्यात हुई तब जनक की यज्ञ मूर्मि में हलके अग्रभाग से प्रकट हुई। उनका तृतीय रूप ईकारमय एव अव्यक्त हैं।

है कि श्री राम के नित्य सान्तिष्ठय के कारण सीता जी विश्व का कल्याण करने वाली हैं। वे ही सब प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करती हैं। वही मूल प्रकृति के रूप में प्रसिद्ध षडैशवर्य से युक्त भगवती हैं। प्रणवस्वरूपा होने से अह्मवेत्ता उन्हे प्रकृति कहते हैं। वे सीताजी सर्वंटेवता स्वरूप, सर्ववेद-रूपिणी, सर्वलोकमयी, सबकी आश्रयभूता, सर्वकीर्तियों से सम्पन्न, सर्व धर्मसम्पन्न, सभी पदार्थों और जीवों की आत्मा, सब देव गत्वर्व, मनुष्य आदि प्राणियों की स्वरूप हैं। वे सभी प्राणियों की देहरूपा और समस्त विश्वरूपा महालक्ष्मी हैं। वे भगवान् से भिन्न और अभिन्न भी कही जाती हैं।

वे शक्ति रूपिणी होकर इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और साक्षात् शक्ति से रूप में प्रकट होती हैं। उनकी इच्छाशक्ति से युक्त स्वरूप भी तीन प्रकार का है। श्रीदेवी, भूदेवी, नौलादेव के रूप में वे मगल-रूपिणी, प्रभावरूपिणी तथा चन्द्र, सूर्य, अरिनि रूप में अत्यन्त तेजमयी होती हैं। वे चन्द्ररूपिणी होकर श्रीपदियों की पुष्ट करती हैं। वे कल्पवृक्ष, लता गुलम, पुष्प, पत्र फल तथा श्रीषष्मियो-महीषवियो के स्वरूप को प्रकट करने वाली हैं। उसी चन्द्ररूप में देवताओं को 'महस्तोम यज्ञ का फल देती हैं। प्रन्न द्वारा प्राणियों को और अमृत द्वारा देवताओं को वे ही तृप्त करती हैं।

वे ही सब नोकों को प्रकाशित करती हैं दिवस, रात्रि निमेष, घड़ी, पक्ष, मास, ऋतु, अयन और सम्बत्सर आदि के भेद से मनुष्य को शतायु प्रदान करती हुई स्वयं प्रकाशित होती है। निमेष से परावंत तक नथा विनम्र और गीव्र ता के भेद से परिपूर्ण कलाचक्र तथा जगत-चक्रादि के भेद से काल के सभी अग-प्रत्यग उन्हीं के स्वरूप हैं। इसी लिए वे प्रकाश स्वरूप और कानस्वरूपा हैं।"

केनोपनिषद् की कथा के श्रनुमार जब देवताओं को अपनी रूपता पर गवं होने लगा कि यह उनकी अपनी शक्तियों के द्वारा

हुआ हो तो ब्रह्मने उसे अटकार की चूर करना चाहा । वे एक दश के रूप में प्रकट हुए । यमी देवताओं न अपनी शक्तियों का प्रदर्शन किया परन्तु यमी अनुकूल रहे । उन्हें बालविकास में परिवर्तन करने के लिए हृषीकेश उमा प्रस्तु हुई और कहा कि वह परब्रह्म है । हस्ते उक्त का परिचय इन का थ्रेय दर्शी का भी दिया गया है ।

ग्रन्थ पूर्वाननोयोपनिषद् में ब्रह्मागड का प्राकृत्य शक्ति से श्रीकार करने हुए कहा गया है—

कारणात्मेन चिच्छेक्त्या रजस्मत्वतसोमुखे ।
यथैव वटवीजन्थ प्राकृतोऽय महाद्रुम ॥

"प्राकृत ब्रह्मागड जी चिच्छेक्ति में उमी तरह उत्पत्ति होती है जैसे एक वटीज में मूष्म सूप से एक महानदृक्ष अवस्थित रहता है और उत्पन्न होकर एक विद्यान वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो जाता है ।"

जावानोपनिषद् में शक्तिका महत्व प्रदर्शन हुए कहा गया है—

आवारणक्त्यावद्वृत्, कालाग्निरयमूर्खंग ।
तथंव निम्रग सोम शिवशक्तिपदाम्पद ॥
विद्याशक्ति ममम्नाना शक्तिरित्यभिवीयते ।

यद्यन्ति "आपार शक्ति में अधारणा किया हुआ—कालाग्नि यह ऊर्ध्वगामी है । उसी भाँति निम्नगामी भी है । यह ऐसे शिवशक्ति के अन्त में आनन्द रखने वाला है । कुसम्नों की विद्याशक्ति शक्ति नाम ने नहीं जानी है ।

मगदीनोपनिषद् में काली का विवेचन करते हुए कहा गया है—

काली कर्णली च मनोजवा च
मुलोहिता या च सुश्रम्भवणी ।

स्फुलिङ्गनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वा ॥

अर्थात् “काली अत्यन्त उग्र, मन के समान चचल, लालीयुक्त, धूम्र वण्ण, चिङ्गारियो से युवत, दैदीप्यमान, विश्वरुचि – यह लपलपाती हुई सात जिह्वा ऐ अग्नि की हैं।

मारहूकोपनिषद् में शक्ति की परिभाषा करते हुए कहा है कि यह वह तत्त्व है जो मन, वाणी और इन्द्रियों की दिखाई नहीं देता —

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।

विद्युत्, अग्नि आदि भी वहाँ नहीं पहुँच सकती ।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारक
न विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निं ।

वृहदारण्यकोपनिषद् में ‘बाल्येन तिष्ठासेत’ वाक्य द्वारा मातृभाव की उपासना का उपदेश दिया गया है।

छान्दोग्योपनिषद् (६।३।२) में ब्रह्म के लिए स्त्री वाचक दवता शब्द का प्रयोग हुआ है। यह भी कहा है कि सृष्टि रचना से पूर्व वह चिति शक्ति सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहती है—

आसीदेवेदमग्र आसीत् तत्समभवत् ।

(७।२४।१) में नारदजी के पूछने पर सत्कुमार ने कहा—

स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नोति ।

“भूमा अपनी ही महिमा में म्युत है और वस्तुत तो उसमें भी नहीं है शर्यात् आश्रय रहित है।”

श्वेताश्वतरोपनिषद् में ऋषि इस प्रकार घोषणा करते हैं —

माया तु प्रकृति विद्यान्मायिन तु महेश्वरम् ।

तस्यावयवं भूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥

“प्रकृति को माया और महेश्वर की माया का स्वामी समझे । उसीके आगे से यह अखिल विश्व घ्याप्त हो रहा है ।”

परास्य शक्तिविविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ॥

(६१८)

“उस परमेश्वर की स्वाभाविक पराशक्ति, ज्ञान, बल और क्रिया विभिन्न प्रकार की सुनी गई है ।”

जिस परमेश्वर को अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, नक्षत्र, जल, प्रजापति और ब्रह्म कहा गया है (४१२), उसे ही स्त्री और कुमारी भी घोषित किया गया है—

त्वं स्त्री त्वं पुमानभि त्वं कुमार उत्तरा कुमारी ।
त्वं जीर्णे दण्डेन वचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुख ॥

(४१३)

“तू स्त्री है, पुरुष भी तू है, तू ही कुमार और कुमारी है, तू वृद्ध होकर लाठी के सहारे में चलता है और तू ही उत्पन्न होकर सब और मुख वाला हो जाता है ॥”

एक और स्थान पर कहा है—

य एको वण शक्तियोगाद्वर्णान् निहितार्थो दधाति ।

(नयमें) जो एक होकर भी शक्ति के योग से सृष्टि में अनेक हो जाता है ।

तैत्तिरीयोऽनिपद् मे भी यही भाव व्यक्त किए गए है “आनन्द व्यपा चिति-शक्ति से सब मूल उत्पन्न होते हैं, उसी से जीते और उसी में लीन हो जाते हैं ।”

नृसिंह उत्तर तापनोयोपनिषद् मे शक्ति तत्त्व को विभिन्न नामो मे स्मरण किया गया है। वह नाम हैं—आत्मा, अव्यक्त, प्रलता, असग, अलिंग, अभय, अगन्ध, अशन्ड, अस्पर्श, अरूप, कुट, शुद्ध, अद्वय, अबोद्धव्य, अगन्तव्य, आदि।

कठोपनिषद् मे कहा है “(जिस तरह अग्नि सर्व व्यापक है, उसी तरह चिति शक्ति भी सारे जगत में व्याप्त है।”

शक्ति और पुराणा

पुराणा भारतीय साहित्य का महत्वपूर्ण अग है। वे भी तत्र में प्रभावित दिखाई देते हैं। इसका प्रमाण यह है कि उनमें तान्त्रिक चिदानन्दी और विविविवानों का प्रवेश हुआ है। कुछ आवृत्तिक विवानों ने इस विषय पर चाज की है। डॉ हाजरा ने अपनी पुस्तक “Puranic Records on Hindu Rites and customs” में इस पर विस्तृत प्रकाश डाला है और कहा है—अष्टत शती में प्राचीनतर पुराणाशों में तान्त्रिक पूजा का लेश भी विद्यमान नहीं है। प्रथमत पुराणों में किसी देव विशेष के मुद्रा-मास घादि का ही वर्णन किया गया और तदनन्तर सभग्र तान्त्रिक विधियों का उपन्यास स्मार्त कर्मों के साथ में ही बिना किसी वैषम्य के पुराणों ने प्रस्तुत किया। दशम और एकादश शती में पुराणों में तब्दील ने अपनी पूर्ण प्रतिष्ठा तया प्रामाण्य प्राप्त का लिया। गङ्गड़ और शगिन पुराण में उपलब्ध तान्त्रिक विद्यात इसके प्रमाण हैं।”

देवी भागवत पुराण—

देवी भागवत को भले ही उप-पुराण माना जाता हो परन्तु गान्धों के निए वह किसी भी महापुराण से कम नहीं है क्योंकि इसमें शक्ति तत्त्व का विस्तृत प्रतिपादन है। इसमें जहाँ सी हृषि दोडाएँ, तन्त्र का प्रभाव ही परिलक्षित होता है। इनमें शक्ति की प्रवानता को खुले स्वप्न में स्वीकार किया गया है। शक्ति की महमा पर प्रकाश डालते हुए एक स्थान पर रहा है—

वर्तते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप ।
शववच्छ्रक्तहीनस्तु प्राणी भवति सर्वदा ॥

अर्थात् हे राजन ! समस्त भूतो में सर्वरूप से शक्ति विद्यमान है । शक्ति के बिना ही प्राणी शव की तरह हो जाता है ।

ब्रह्मा ने भगवती से प्रश्न किया कि जिस ब्रह्म को वेद 'एकम्' 'अद्वितीयम्' स्वीकार करते हैं, वह ब्रह्म आप ही हैं ? यदि है तो पुरुष या स्त्री है । इस पर भगवती ने यू उत्तर दिया—

सदैकत्व न भेदोऽस्ति सर्वदेव ममास्य च ।
तोऽसौसाहमह योऽमौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ॥

मेरा और ब्रह्म का सदैव से एकत्व रहा है । किसी तरह का भेद नहीं रहता । मैं वही हूँ जो वे हैं और वे वही हैं जो मैं हूँ । मतिविभ्रम से ही यह भेद दिखाई देता है ।

सृजासि जननि देवान् विष्णुस्द्राजमुख्यान् ।
तै स्थितिलयजनन कारयस्येकरूपा ॥

(देवी भागवत)

अर्थात् हे जननि ! विष्णु रुद्र और भज प्रमुख देवों का आप सृजन किया करती हैं । उनके द्वारा एक रूप वाली आप स्थिति-लय और जन्म किया करती हैं ।

सर्वचंतन्यरूपा तामाद्या विद्य च धीमहि ।
—०००—बुद्धिया न प्रचोदयात्

अर्थात्—सबका प्रात्मरूप जो ईश्वर की पराशक्ति है, उसका मैं ध्यान करता हूँ ।

देवी भागवत में जहाँ जहाँ देवीय उल्लेख आथा है वहाँ-वहाँ उसकी शक्ति विशिष्ट परम्परा से ही अभिप्राय स्वीकार किया गया है ।

तून सर्वेषु देवेषु नाना नामधरा ह्यहम् ।
 भवामि शक्तिरूपेण करोमि च प्राक्रमम् ॥
 गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही वैष्णवी शिवा ।
 वारुणी चाथ कौवेरी नारसिंही च वैष्णवी ॥

अर्थात्—समस्त देवों में निश्चय ही मैं नाना रूप घारण करने वाली हूँ । मैं शक्ति रूप से होनी है और प्राक्रम किया करती हूँ । मैं ही गौरी—ब्राह्मी—रौद्री—वाराही—वैष्णवी—शिवा वरुणी कौवेरी—नार-पिंडी तथा वैष्णवी रूप वाली होनी हूँ ।

तृतीय स्कन्ध के २६वें अध्याय में नारद के उपदेश से भगवान राम ने शक्ति की आराधना की और परिणाम स्वरूप रात्रण से सीता, को छुड़ाने में सफल हुए ।

एक स्थान पर कहा है कि समस्त देवता भी शक्ति की ही प्रेरणा से ही सुख दुःख का मनुभव करते हैं । मनुष्य तथा अन्य जीवों की तो बात ही क्या ?”

देवी से पूछने पर स्वयं उन्होंने एक स्थान पर कहा है —

एक मात्र ब्रह्म ही अद्वितीय है, वही नित्य और सनातन है, परन्तु जब वह विश्व-रचना में तत्पर होता है, तब एक से अनेक हो जाता है । जैसे किसी उपाधि के कारण दीपक एक का दो दिखायी दना है, या दपण में प्रतिविम्ब दिखायी देने से एक का अनेकत्व प्रतीत होता है, वैसे ही ब्रह्म या मुझमें अनेकत्व की प्रतीति होती है । यह भेद सृष्टिकाल में विश्व-सृजन के लिए ही होता है, और इसके भी दृश्य और अदृश्य रूप से दो भेद हैं । सृष्टि का अन्त होने पर मैं पुण्य, स्त्री या नपु सक कुछ नहीं रहती । यह भेद सृष्टि कार्य के अवसर पर ही उत्पन्न होता है जिसे मैंने ही स्वरूपना द्वारा रचा है ।”

“मैं ही दुः्ख हूँ, श्री, वृत्ति, कर्ति, मति, अद्वा, मेवा, दया,

लज्जा, कुधा, तृष्णा एव धमा भी मैं ही हूँ । कान्ति, शान्ति, पियासा, निदा, तद्रा, जरा-अजरा, विद्या-प्रविद्या, सृहा, मेघा, शक्ति और अशक्ति भी मैं हूँ, ससार मे ऐसा कुछ भी नहीं जसमे मेरी सत्ता न हो, जो कुछ दिखाई देते हैं वे मव मेरे ही रूप हैं । मैं ही सब देवताओं के रूप मे विभिन्न नामो से स्थित हूँ और उनकी शक्ति रूप से पराक्रम करती रहती हूँ । जन मे जो शीतलता है वह मैं हूँ । अग्नि मे उषणा, सूर्य मे ज्योति और चन्द्रमा मे ठडक मैं हूँ । ससार के सम्पूर्ण जीवों की स्पन्दन क्रिया मेरी ही शक्ति से होती है, यह निश्वय है कि मेरे अभाव मे वह नहीं हो सकती । मेरे बिना शिवजी दैत्यों का सहार नहीं कर सकते । ससार मे जो व्यक्ति मुझसे रहित होता है उसे 'शक्तिहीन' ही कहा जाता है, कोई उसे 'रुद्रहीन' या 'विष्णुहीन' नहीं कहता ।

"पृथ्वी भी जब शक्ति से सम्पन्न होता है, तभी वह स्थिर रहकर भार धारण करती है, यदि शक्ति—शून्य हो तो एक परमाणु का भार भी नहीं उठा सकती । शेष, कूर्म तथा दसो दिग्गज मेरी ही शक्ति को प्राप्त करके अपने-अपने काय की सिद्धि मे समर्प होते हैं । मैं सम्पूर्ण ससार के जल को पी सकती हूँ, अग्नि को नष्ट कर मकती हूँ और वायु की गति को रोक सकती हूँ । विद्व मे कभी किसी तत्व का अभाव नहीं होता । जो वस्तु अनादि है, वह कभी सर्वथा नष्ट नहीं हो सकती और जिस वस्तु का आदि है, वह असन्त समय तक टिक नहीं सकती । जिस प्रकार घड़ा के फूट जाने पर भी उसकी मिट्टी का अस्तित्व बना ही रहता है, उसी प्रकार अगर यह समग्र पृथ्वी छ्वस हो जाय तो भी परमाणुओं के रूप मे उसका अस्तित्व बना ही रहेगा ।"

मार्कण्डेय पुराण

मार्कण्डेय पुराण पर भी तान्त्रिकप्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि शक्तिवाद का प्रसंद्ध ग्रन्थ 'सप्तशती', इसी पुराण का एक अश

है जिसमें भगवती की कथा विस्तृत रूप से वर्णित हैं । देवी माहात्म्य, मधुकैटम् वध, महिषासुर संन्य वध, देवताओं के सम्मिलित तेज से देवी का श्रोविभर्गि और उसका महिषासुर की सेना से भयकर सग्रह महिषासुर वध, उसके प्रमुख मेनाध्यक्षों का देवी द्वारा मारा जाना, धूम्रलोचन, चण्डमुण्ड, रवतबीज, निशुम्भ, शुभ्र आति का वध, देवी स्तोत्र, देवताओं की देवी का वरदान आदि विषय विस्तार से आए हैं, जिनमें देवी की महान महिमा प्रकट होती है । देवी का महात्म्य बरण करते हुए यहां गया है ।

“देवी ने इम विश्व को उत्पन्न किया है और वही जब प्रमन्त्र होती है, तब मनुष्यों को मोक्षदायक वर देती है । मोक्ष की सर्वोत्तम हेतु स्वरूपा, व्रह्मज्ञान स्वरूपा विद्या एव समार-वधन की कारण रूपा वही है, वही ईश्वर की भी अवीश्वरी है ।”

शक्तान्विक्त देवीमत्व का काफी विस्तार है । कुछ इलोकों का अनुवाद यहां दे रहे हैं ।

“देवताओं ने यहां—इस प्राणिजगत को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणत हुई है, एवं जो समस्त सुरगणों एवं महामुनियों की पूज्या हैं हम भवितपूर्वक उन अस्तिका देवी को प्रणाम करते हैं, वह हम सर्वां कर्त्याणां करें । अनन्त भगवान् व्रह्मा एवं महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वरणन करने में असमर्थ हैं, वह देवी चण्डशा मध्यात् विश्व का पोपण करने के लिए और उसके अहित व भय के नाश के लिये आकाशित हैं । त्रुनीत कार्य करने वाले प्रणियों के गृह में लक्ष्मीस्वरूप पाप-कर्म करने वालों के गृह में दरिद्र स्वरूप, स्वच्छ हृदय से अध्ययन करने वाले के मस्तिष्क में बुद्धि स्वरूप, मदग्राचरण वालों के लिए श्रद्धा स्वरूप और पवित्र कुलमें उत्पन्न प्राणियों की लज्जास्वरूप है, उनदेवी को नमस्कार करते हैं । हे देवी ! आप

लज्जा, सुधा, तृष्णा एवं क्रमा भी मैं ही हूँ । कान्ति, शान्ति, पियासा, निद्रा, तद्रा, जरा-प्रजरा, विद्या-प्रविद्या, स्पृहा, मेघा, शक्ति और धशक्ति भी मैं हूँ, ससार मे ऐसा कुछ भी नहीं जिसमे मेरी सत्ता न हो, जो कुछ दिखाई देते हैं वे सब मेरे ही रूप हैं । मैं ही सब देवताओं के रूप मे विभिन्न नामों से स्थित हूँ और उनकी शक्ति रूप से पराक्रम करती रहती हूँ । जन मे जो शीतलता के बह मैं हूँ । अग्नि मे उषणा, सूर्य मे उषोनि और चन्द्रमा मे ठडक मैं ही हूँ । ससार के सम्पूर्ण जीवों की स्पन्दन क्रिया मेरी ही शक्ति से होती है, यह निश्चय है कि मेरे अभाव मे वह नहीं हो सकती । मेरे बिना शिवजी देत्यों का सहार नहीं कर सकते । ससार मे जो ध्यक्ति मुझसे रहित होता है उसे 'शक्तिहीन' ही कहा जाता है, कोई उसे 'रुद्रहीन' या 'विष्णुहीन' नहीं कहता ।

"पृथ्वी भी जब शक्ति से सम्पन्न होतो है, तभी वह स्थिर रहकर भार धारण करती है, यदि शक्ति—शून्य हो तो एक परमाणु का भार भी नहीं उठा सकती । शेष, कूर्म तथा दसो दिग्गज मेरी ही शक्ति को प्राप्त करके अपने-अपने काय की सिद्धि मे समर्थ होते हैं । मैं सम्पूर्ण ससार के जल को पी सकती हूँ, अग्नि को नष्ट कर सकती हूँ और वायु की गति को रोक सकती हूँ । विश्व मे कभी किसी तत्व का अभाव नहीं होता । जो वस्तु अनादि है, वह कभी सर्वथा नष्ट नहीं हो सकती और जिस वस्तु का आदि है, वह असन्त समय तक टिक नहीं सकती । जिस प्रकार घडा के फूट जाने पर भी उसकी मिट्टी का अस्तित्व बना ही रहता है, उसी प्रश्नार अगर यह समझ पृथ्वी ध्वस हो जाय तो भी परमाणुओं के रूप मे उसका अस्तित्व बना ही रहेगा ।"

मार्केंडेय पुराण

मार्केंडेय पुराण पर भी तान्त्रिकप्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि शक्तिवाद का प्रमिद्ध ग्रन्थ 'सप्तशती', इसी पुराण का एक अश

है जिसमें भगवती की कथा विस्तृत स्पष्ट से वर्णित है । देवी माहात्म्य, मधुकैटम् वध, महिपासुर संन्य वध, देवताओं के सम्मिलित तेज से देवी का श्राविभर्यि और उसका महिपासुर की सेना से भयभर सग्रह महिपासुर वध, उसके प्रमुख मेनाव्यक्षों का देवी द्वारा मारा जाना, धूम्रलोचन, चण्डमुरुण्ड, रवतबीज, निशुभ्म, शुभ्म आदि का वध, देवी स्तोत्र, देवताओं की देवी का वरदान आदि विषय विस्तार से आए हैं, जिनमें देवी की महान महिमा प्रकट होती है । देवी का महात्म्य वरण करते हुए यहा गया है ।—

“देवी ने इस विश्व को उत्पन्न किया है और वही जब प्रमन्त होती है, तब मनुष्यों को मोक्षदायक वर देती है । मोक्ष की सर्वोत्तम हेतु स्वरूपा, ब्रह्मज्ञान अवरूपा विद्या एव समार-वधन की कारण रूपा वही है, वही ईश्वर की भी अवौश्वरी है ।”

शक्तिक्रिया देवीमत्व का काफी विस्तार है । कुछ इलोकों का अनुवाद यहाँ दे रहे हैं ।—

“देवताओं ने यहा—इस प्राणिजगत को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणत हुई है, एवं जो समस्त सुरगणों एवं महामुनियों की पूज्या है हम भवितपूर्वक उन अमिका देवी को प्रणाम करते हैं, वह हम सबका कल्याण करें । अनन्त भगवान ब्रह्मा एवं महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ है, वह देवी चण्डमा ममात्र विश्व का पोपण करने के लिए और उसके अहित व भय के नाश के लिये श्रावकाक्षित हो । त्रुटीत कार्य करने वाले प्रणियों के गृह में लक्ष्मीस्वरूप, पाप-कर्म करने वालों के गृह में दरिद्र स्वरूप, स्वच्छ हृदय से अध्ययन करने वाले के मस्तिष्क में दुष्टि स्वरूप, मदग्राचरण वालों के लिए अद्वा स्वरूप और पवित्र कुलमें उत्पन्न प्रणियों की लज्जास्वरूप है, उनदेवी को नमस्कार करते हैं । हे देवी ! आप

जगत् का पोषण करे । आपका चिन्त्ये स्वरूप वर्णन करने में हम असमर्थ हैं । हे देवी ! आपका दानवों का विनाश करने वाला अपरिमित वीर्य एवं दानवों व देवगणों के प्रति रण-क्षेत्र में आपका अनुपम आचरण हम किम प्रकार वर्णन करे । हे देवि ! आप विकारहीन आद्या-प्रकृति हैं, श्रथ च सत्त्व, रज एवं तमेगुण वाली होने पर भी आप विश्व के निए कल्पणाकारी हों । राग-द्वेष आदि से युवत विष्णु व महेश आदि भी आपका प्रकृत तत्त्व नहीं जानते । हे देवि ! आप अपार हैं और सभी जगत् पदार्थों की आप आध्यय-स्वरूप हैं, यह विश्व आपका ही अश स्वरूप है ।”

उपरोक्त विवरण से ही स्पष्ट है कि पुराणकार किस रूप में देवी को देखते हैं ।

अग्नि पुराण—

अग्नि पुराण पर शावत ग्रन्थवा शैय तत्रो रा कुछ भी प्रभाव नहीं है केवल वैताणव पाचरात्रों का प्रभाव है जिनके सम्बन्ध में २५ पाचरात्र सहिताश्री का उल्लेख भी ३१ वें भाष्याय में माया है । इसमें तात्रिक विविविधानों तथा कर्मों का पर्याप्त वर्णन है । दीक्षा विधान पर पूरा प्रकाश ढाला गया है । मत्रों का विस्तार भी काफी है । गणेश, विन्द्य वासिनी, त्रिपुरा, बटुक नदा योगिनी और वागेश्वरी के पूजा विधान दिए हुए हैं । षट् कर्मों से सम्बन्धित मन्त्र दिए गए हैं—

शान्तिवश्यस्तम्भनादि-विद्वेषोच्चाटने तत
मारणान्तानि शसन्ति षट् कर्माणि मनीपिणि

“शान्ति-वश्य-स्तम्भन-विद्वेषण-उच्चाटन और मारण ये छँ
कर्म मनीपी लोग कहते हैं ।”

त्रैलोक्य मोहन मन्त्र, सग्राम विजय मन्त्र, भी दिए गये हैं ।

अग्नि पुराण की अनुशीलन में तो ऐसा लगता जैसे पुराणकार किसी तत्र ग्रथ को ही रचना करने जा रहे हो ।

कालिका पुराण—

कालिका पुराण तो शक्तिवाद का सबतत्र पुराण है । ब्रह्मागड़ पुराण के दूसरे भाग के अन्तर्गत ललिता सहस्र नाम का ३२० श्लोकों का पूरा प्रकरण आता है । कूर्म पुराण में परमेश्वरी के आठ हजार नाम आए हैं । वही ऐसा उल्लेख है कि अर्धनारीश्वर के पुरुष अश में से शिव प्रकट हुए और स्त्री अश में से शक्तियाँ । वाराह पुराण ७०।२४-२५ और पद्म पुराण ६।५३।४ प्र५ के अनुसार चारों युगों में क्रम से वेद, सूर्यि पुराण और तत्र का प्रचार रहा है । परिणाम स्वरूप कलियुग के प्राणियों के लिए तत्र ही कल्याणकारक माना गया है ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण—

विष्णु धर्मोत्तर में चरिडका का वर्णन है ।

निगद्यते ह्यथो चण्डो हेमाभा सा सुरूपिणी ।

त्रिनेत्रा यौवनस्था च कृद्वा चोद्धर्वस्थितामता ॥

“इसके अनन्तर वह सुरूप वाली हेम की आभा के समान आभा वाली—तीन नेत्रों से युक्ति यौवन में स्थित, वरमकुद्ध और ऊर्ध्व में अवस्थित चरणी कही जाती है ।”

भद्रकाली का वरण इस प्रकार मिलता है—

अष्टादशभुजा कार्या भद्रकाली मनोहरा ।

आलीढस्वासनस्था च चतुर्सिंहे रथे स्थिता ॥

अक्षमाला त्रिशूल च खड्गशचन्द्रशच यादव ।

बाणचापे च कर्तव्ये शङ्खपद्मे तथैव च ॥

अथर्त्—भद्रकाली अठारह भुजाम्रो वाली, मनोहर—श्रालीड अपने श्रामन पर स्थित, चार सिंहो वाले रथ में विराजमान—ग्रक्ष माला—त्रिघूत—खड़—चन्द्र—वारण—चाप—शख और पद्म द्वे धारण करने वाली हैं।

भागवत पुराण—

भागवत (१०।२।१०-११) में भगवान ने योगमाणा को ब्रह्म में जन्म लेने की आज्ञा देते हुए कहा था—

अर्चिष्यति मनुष्यास्त्वा सर्वकामवरेश्वरीम् ।

धूपोहापरबलिभि सर्वकामवरप्रदाम् ॥

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ।

दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च

अधर्नि—समस्त कामना तथा वरो की ईश्वरी श्रावको मनुष्य धूप-उपहार और बलिके द्वारा सर्व काम वरप्रदा की भाँति अर्चना किया करते हैं। मनुष्य भूमरडल में नामधेय और स्थानों को किया करते हैं। दुर्गा-भद्रकाली-विजया, और वैष्णवी ये नामधेय लिया करते हैं।

ब्रह्मवैर्वत पुराण—

ब्रह्मवैर्वत पुराण (प्रकृति० २।६६।७-१०) में स्वयं भगवान कृष्ण कहते हैं—

त्वमेव सर्वजननी मूनप्रकृतिरीश्वरी ।

त्वमेवाद्या सृष्टिविधौस्वेच्छया त्रिगुणात्मका ॥

कायर्थं मगुणा त्वा च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।

परब्रह्मस्वरूपा त्व सत्या नित्या सनातनी ॥

तेज स्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रह ।

सर्वस्वरूपा सुवर्णा मवधिराग परात्परा ॥

सर्वं बीजं स्वरूपा च सवपूज्या निराश्रय ।
सवज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलं मङ्गला ॥

“तुम सबकी जननी भूत प्रकृति ईशगरी ही, सृष्टि उत्तरति के मम प्राद्यागत्ति के रूप में रहती ही और अपनी इच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जानी है, तुम कार्य के लिए सगुण बन जानी ही परन्तु वास्तव में तुम निर्गुण ही हो, तुम परब्रह्मस्वरूप सत्य, नित्य और ननाननी हो, तेज स्वरूप और भक्तों पर अनुग्रह करने वाली ही, सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वधार और परात्पर ही तुम विना आवश्यके, सर्वपूज्या और सर्वं बीजं स्वरूपा ही, तुम सर्वज्ञ, सब तरह से मगलकारक और सब प्रकार के मगलों के भी मगल ही ।

ब्रह्मवैर्वतं पुराण मे एक और स्थान पर कृष्ण रावा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं,—

“है राघे ! जिस तरह तुम ही, उसी तरह मैं भी हूँ । हम दोनों मे अमेद है । जिस तरह क्षरि मे ध्वलिमा अर्णिन मे जलाने की शक्ति और पृथ्वी मे गन्ध बिद्यमान है, उस तरह मे तुम मे हूँ । जिस तरह कुम्हार मिट्टी के बिना और सुनार बिना सोने के आभूषण नहीं बना सकता । उसी तरह मैं तुम्हारे बिना सृजन क्रिया मैं असमर्थ रहता हूँ । सृजन क्रिया का मैं बीज रूप और तुम आवार भूता ही । तुम्हारे बिना मैं केवल ‘क्रमण’ पुकारा जाता हूँ परन्तु तुम्हारे साथ लीग ‘श्रीकृष्ण’ कहने हैं । तुम भी सम्पत्ति, विश्व की आवार कूता और मेरी सबकी सर्वशक्ति रूपा ही ।”

कूर्म पुराण

कूर्म पुराण मे देवी तत्त्व की व्याख्या इस प्रकार की है —

एक सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्य मचलं ध्रुवम् ।
योगी नस्तं प्रपश्यन्ति महादेव्या परमं पदम् ॥

परात्पतर तत्व शाश्वत शिवमच्युतम् ।
अनन्ते प्रकृतीं लीन देव्यास्तत् परम पदम् ॥

अर्थात् "वह देवी ही एक मात्र आद्वितीय सर्वगमी, सूक्ष्म, कूटस्था, अचल और निरथ स्वरूप है। योगीजन ही उसके उपाधि रहित परम पद के दशन करने में मर्मर्थ हैं और वे ही उसके परात्पर तत्व, शाश्वत, अल्याणकारी और अविनाशी स्वरूप का अनुभव कर सकते हैं।

शिव पुराण

पुलिङ्गमखिल धत्ते भगवान पुरशासन ।
स्त्रीलिङ्ग चाखिल धत्ते देवमनोरमा ॥

(शिवपुराण वा० ८० उ० ४)

"पुरारि भगवान शिव ससार व्यापी पुलिङ्गता को धारण करते हैं और देवप्रिया शिवा समस्त स्त्रीलिंगता को धारण करने वाली हैं।"

गुरु शिवपुराण में भी तात्त्विक विधि विधान अध्याय ७-११, २१-२३, ३५, ३७-३८ में दिए हुए हैं।

इससे स्पष्ट है कि इन पुराणों ने शक्ति के महत्व की स्वीकार किया है और इस मिद्दान्त के व्यापक प्रसार में सहयोग किया है।

शक्ति और योग-वासिष्ठ

योग वासिष्ठ भारतीय दार्शनिक साहित्य में एक उच्च स्थान रखता है। इसे भारतीय मस्तिष्क की सर्वोत्तम उपज और कुत्ति स्वीकार किया जाता है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का यह मरल व श्रेष्ठ साधन है। दर्शन के अतिरिक्त इसका काध्य भी उच्च कोटि का है। इसकी श्रेष्ठता का मूल्याकन इसी तथ्य में किया जा सकता है कि अनेकों उपनिषदों में योग वासिष्ठ के इलोक ज्यों के त्यों ने लिए गए हैं और अधिकाश में उसके भाव ग्रहण किए प्रतीत होते हैं। महोपनिषद्, याज्ञवल्क्य उपनिषद्, योग कुरुडली उपनिषद्, वराह उपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद्, याडिल्य उपनिषद्, अक्षिं उपनिषद् अन्तपूराणि उपनिषद् ब्रह्मसन्धासोपनिषद् और पैगल उपनिषद् में कहीं इलोक और कहीं पूरे अध्याय के अध्याय ले लिए गए हैं। तेजोविन्दु, योग शिखा, अमृत विन्दु, मौभाग्यलक्ष्मी, मैत्रायणी, त्रिपुरातापिततो और जावाल उपनिषद् में प्राय मिद्वान्त योगवासिष्ठ में मिलते जुलते हैं। ऐसा लगता है कि इनके रचयिताओं ने इनकी निर्माण सामग्री इसी मूल स्रोत से ग्रहण की है। इसलिए भारतीय दार्शनिक साहित्य में इसका स्थान गीता और उपनिषदों से किसी भी तरह कम नहीं है वरन् अधिक ही है।

भारतीय दर्शन के इस सिरमोर ग्रन्थ ने शक्ति का सुन्दर प्रतिपादन किया है। योग वसिष्ठ के प्रसिद्ध भाष्यकार दाशनिक श्री भीखन लाल आश्रेय न योग वासिष्ठ में शक्ति विषयक मिद्वान्त का

त्रिवेचन करते हुए लिखा है “ ‘ब्रह्म’ और ‘माया’ अथवा ‘शिव’ और ‘शक्ति’ दो तत्त्व नहीं हैं। ‘शब’+‘शक्ति’ अथवा ‘चिच्छक्ति’ उस एक ही परम तत्त्व का नाम है जो जगत में दो रूप में प्रकट हो रहा है। एक वह रूप जो हमारा तथा ससार के समस्त पदार्थों का ‘मात्मा’ है। वह सदा एक रस, निविकार और अखण्ड रहता हुआ सब विकारों का साक्षी है। दूसरा वह रूप है जो दृश्यमान है, जिसमें नाना रूपात्मक विकार सदा ही होते रहते हैं। ससार के जितने क्षण धण में रूप बदलने वाले दृश्य पदार्थ हैं, वे सभी परम तत्त्व के इस रूप के रूपान्तर हैं। एक रूप का नाम ‘शक्ति’ है। दूसरे रूप का नाम ‘शिव’ है। एक रूप क्रियात्मक है, दूसरा शान्त्यात्मक। एक का दर्शन बाह्य पदार्थों में होता है, दूसरे का हृदयुहा में। एक को उपासना करने से प्रभुदय की सिद्धि होती है, दूसरे के ध्यान से निषेयस की, सदा से कुछ मनुष्यों की रुचि एक की ओर रही है और दूसरों की दूसरी ओर। पहनी श्रेणी के मनुष्यों को हिन्दू शास्त्रों में प्रवृत्ति माग के परिक आंग दूसरी श्रेणी के मनुष्यों को निवृत्तिमार्ग के परिक कहा है। इनप उच्च कोटि के वे सौभाग्यशाली महात्मा हैं जिनके जीवन में दोनों रूपों की उपासना का अविरोधात्मक रामन्वय है। उन लोगों के लिये एक रूप बिना दूसरा अधूरा है।”

योग वसिष्ठ ब्रह्म को सर्वशक्तिमान स्वीकार करता है।

समस्तशक्तिरखचित् ब्रह्म सर्वेश्वर सदा ।
यथैव शब्दत्या स्फुरति प्राप्ता तामेव पश्यति ॥

(३।६७।२)

“वह सर्वेश्वर ब्रह्म समस्त शक्तियों में युक्त है। उगमे प्रत्येक शक्ति को अपनी इच्छानुसार प्रकट करने की क्षमता है।

सर्वशक्तिपर ब्रह्मा नित्यमपूर्णमव्ययम् ।
न वदस्ति न तस्मिन्यद्विद्यते विततात्मनि ॥

(३१००।५)

“बहु सर्व शक्तिमय ब्रह्मा नित्य, सर्वथा, पूर्ण और अव्यय है । ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो उस विस्तृत स्वस्थ पर्याय में अवस्थित न हो ।”

सर्वशक्तिर्हि भगवान्यैव तस्मै हि रोचते ।
शक्ति तामेव वितता प्रकाशयति सर्वग ॥

(३१००।६)

“भगवान् सब तरह की शक्तियों से सम्पन्न हैं और सभी व्यापों पर निवास करता है । वह जहाँ भी चाहे, शक्ति को वही प्रकट कर सकता है ।”

ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति कर्तृताऽकर्तृताऽपि च ।
इत्यादिकाना शक्तीनामन्तो नास्ति शिवात्मन ॥

(६-१।३७।१६)

“ज्ञान, क्रिया, कर्तृत्व और अकर्तृत्व आदि शक्तियों का उस शिवात्मा में कोई अन्त नहीं है ।”

ब्रह्मण् सर्वशक्तिर्हि दृश्यते दशदिग्गता ।
नाशशक्तिर्विनाशेषु शोकशक्तिश्च शोकिषु ॥

(३१००।६)

“ब्रह्म की चेतन शक्ति सभी दसों दिशाओं में, सब में साधारण शक्ति, नाशों में नाश शक्ति, शोक करने वालों में शोक शक्ति दृष्टिगोचर होती है ।”

आनन्दशक्तिमुदिते वीर्यशक्तिस्तथा भटे ।
सर्गेषु सर्गशक्तिश्च कल्पान्ते सर्वशक्तिः ॥

(३।१००।१०)

‘प्रसन्न चित्त वालो मे आनन्द शक्ति, वीर्य शक्ति, सृष्टि मे सृजन शक्ति और कल्पात मे समस्त शक्तियाँ उसीमे दिखाई दती हैं ।’

सर्वशक्तिमयो ह्यात्मा यद्यथा भावयत्यलम् ।
तत्था पश्यति तदा स्वसङ्कल्पविनृभितम् ॥

(६-१।२३।४१)

“प्रात्मा सब शक्तियो से सम्पन्न है, वह जहाँ जिस शक्ति की याचना करती है, वही अपनी सकल्प शक्ति द्वारा उसे प्रकट देखती है ।”

ब्रह्म की स्पन्द शक्ति से सृष्टि की रचना होती है । योग वासिष्ठ के अनुसार—

स्पन्दशक्तिस्तथेच्छेद दृश्याभास तनोति सा ।
साकारस्य नरस्येच्छा यथा वै कल्पनापुरम् ॥

(६।२।८४।६)

‘जैसे शरीर धारण करने वाले व्यक्ति की इच्छा कल्पना नगर के निर्माण की क्षमता रखती है, उसी तरह भगवान की स्पन्दशक्ति रूपी इच्छा इस दृश्य जगत का निर्माण करती है ।

सा राम प्रकृति प्रोक्ता शिवेच्छा पारमेश्वरी ।
जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिरकृत्रिमा ॥

(६-२५।१४)

“हे राम ! शिव की स्वाभाविक स्पन्दशक्ति की प्रकृति कहते हैं, वही जगत माता प्रादि नामो से विख्यात है ।”

इस महाशक्ति को दूसरे नामों से भी पुकारा जाता है जैसे दुर्गा, उषा, गौरी, भवानी, काला, सरस्वती, सावित्री, गायत्री, चण्डिका, अपराजिता, विजया, जयन्ती, सिद्धा, जाय, उत्तरला आंर शुभा आदि। इन सब के नाम विभिन्न तन्त्र ग्रन्थों में भी मिलते हैं।

प्रकृति व्रह्म के अतिरिक्त और कुछ वही है, वह तो उसी का एक रूप है—

ऊर्णताभाव्यथा तन्तुर्जायिते चेतनाजजड ।
नित्यात्प्रवृद्धात्पुरुषादव्रह्मण प्रकृतिस्तथा ॥
(३।६६।७१)

“जैसे चेतन मकड़ी से जड जाला उत्पन्न होता है, उसी तरह नित्य प्रवृद्ध पुरुष व्रह्म से प्रकृति उत्पन्न होती है।”

सूक्ष्मा मध्या तथा स्थूला चेते सा कल्प्यते त्रिधा ।
सत्त्व रजतम इति एवं व प्रकृति स्मृता ।

(६।१।६।५)

“उप प्रकृति के तीन रूप हैं—सूक्ष्म-मध्यम और स्थूल । इन्हों को सत, रज, तम कहा जाता है।”

शिव और शक्ति की श्रभिन्नता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है —

यथैक पवनस्पन्दमेकमौठण्यानलौ यथा ।
चिन्मात्र स्पन्दशक्तिश्च तथैवैकात्म सर्वदा ॥

(६-२।८।४।३)

“जैसे वायु और उसकी क्रियाशीलता, श्रगित और उसकी दाहिका शक्ति को एक माना जाता है उसी तरह से चिन्मात्र शिव और उसकी स्पन्द शक्ति एक ही है।”

अनन्या तस्य ता विद्धि सत्त्वशक्तिं मनोमयीम् ।

(६२ । ८४ । २)

मनोमयी सत्त्व शक्तिं उससे अन्य पदार्थं नहीं है ।

व्यावृत्येवं तथैवास्ते शिवं इत्युच्यते तदा ।

चित्तशक्ते क्रियादेव्या प्रतिस्थानं यदात्मनि ॥

(६२ । ८४ । २६)

“शिव-शक्ति की उस श्रवस्था का नाम है जब वह चित्त शक्ति क्रिया देवी, क्रिया करके अपने मूल स्थान आत्मा की लौटनी है और वहाँ पर शांत भाव से अवस्थित हो जाती है ।”

कथमास्ता वदं प्राज्ञं मरिचं तिक्ता विना ।

(६२ । ८२ । ७)

विना तिष्ठति माधुर्यं कथयेक्षुरसं कथम् ॥

(६२ । ८२ । ६)

‘जैसे तिक्तता के विना मिर्च और मधुरता के विना गन्ने का रस नहीं रहता, उसी तरह’ शक्ति के विना शिव नहीं रहता ।’

सविन्मात्रैकघामित्वात्काकतालीययोगत् ।

सवितुदेवो शिवं स्पृष्ट्वा प्रकृतित्वं समुज्भति ।

(६२ । ८५ । १८)

“सवित मात्र मत्ता से जब भी प्रकृति का तादात्म्य ही जाता है और देवयोग से पुरुष का स्पर्श हो जाता है, तब वह अपने प्रकृतित्व निवृत होकर पुरुष के माथ एवय स्वापित कर लेती है ।”

प्रकृति पुरुषं स्पृष्ट्वा तन्मयीवं भवत्यन्म् ।

तद्विन्द्रेकता गत्वा नदीहृष्मिवाणवे ॥

(६२ । ८५ । १९)

“समुद्र में नदी मिल कर जैसे अपना रूप छोड़ देती है और समुद्र का ही रूप धारण कर लेती है, उसी तरह प्रकृति पुरुष के माय मिलकर पुरुष रूप हो ही जाती है।”

प्रकृति जब पुरुष से मिलती है, उसीको निर्वाण पद कहा जाना है—

चित्तनिर्वाणरूप यत्प्रकृति परम पदम् ।

प्राप्य तत्त्वामवाप्नोति सरिदद्वाविवाहिताम् ॥

(६-२ ५५।२६)

प्रकृति, की ररमगनि सवित में निर्वाण प्राप्त करता है । जब वह इन म्यति में आ जाती है, तब ऐसे ही होती है जैसे नदी समुद्र में पड़ कर उनी का रूप धारण कर लेती है ।

यक्षि जगत को अपने में धारण करती है और विभिन्न रूपों में मर्वन्न व्याप्त है —

चित्स्पन्दोऽन्तर्जंगद्रुते कल्पनेव पुर हृदि ।

सब वा जगदित्येव कल्पनैव यथा पुरम् ॥

पवनस्य यथा स्पन्दस्तर्थैवेच्छ शिवस्य सा ।

यथा स्पन्दोऽनिलस्यान्त प्रशान्तेच्छस्तथा शिव ॥

अमूर्तो मूर्तमाकाशे शब्दाऽम्बरमानिल ।

यथा स्पन्दस्तनोत्येव शिवेच्छा कुरुते जगत् ॥

(योग व० ६ (२) ५५।४-६)

“वह चित्स्पन्दरूपी शक्ति जगत को अपने भीतर इस प्रकार प्रागण करती है जैसे कल्पना अपने भीतर कल्पित नगर को । प्रथवा यो कहना चाहिये कि जैसे कल्पना स्वय ही कल्पित नगर है वैसे ही वह शक्ति ही स्वय जगत है । वह शठिन शिव की इच्छा है और वायु के स्पन्दन की तरह शिव का ही स्पन्दन है । जैसे स्पन्दन के भीतर भी केन्द्र पर शान्ति रहती है उसी प्रकार महाशक्ति रूप स्पन्दन के भीतर भी केन्द्र में शान्त इच्छा वाला शिव वर्तमान में । यह शिव

की इच्छा अव्यक्त शिव में इस प्रकार जगत को प्रकट कर देती है जैसे कि अमूर्त आकाश में वायु का स्पन्दन मूर्त शब्द को प्रकट कर देता है।”

सा हि क्रिया भगवतो परिस्थन्देक रूपिणी ।

वितिशक्तिरनाछन्ता तथा भातात्मनात्मनि ॥

देव्यास्तथा हि या काल्पा नानाभिनय नर्तना ।

ता इमा ब्रह्मण् सर्ग जरामरणरीतय ॥

क्रियासौ ग्राम नगर द्वीप मण्डल भालिक ।

स्पन्दान् करोति घत्तेऽन्त कल्पितावयवर्त्तम् का ॥

काली कमलिनी काली क्रिया ब्रह्माण्डकालिका ।

घत्ते स्वावयवीयृता दृश्यलक्ष्मीमिमा हृदि ॥

(योग व ६(२) द४।१ २२)

“वह भगवती क्रिया, स्पन्दन ही जिसका स्वरूप है, अनादि और अनन्त चिति शक्ति, जगत रूप से अपने आप ही अपने भीतर प्रकट हुई है। उस देवी के सामयिक अभिनय और नर्तन ही ब्रह्म की सृष्टि वृद्धि और लय के नियम हैं। यही कल्पित अवयव वाली क्रिया देवो ग्राम, नगर, द्वीप, मण्डल आदि स्पन्दनों की माला रचती है और अपने भीतर धारण करती है। यह ब्रह्माण्ड रूप से स्पन्दन होने वाली काली क्रिया अपने अवयव रूप इस जगत को अपने भीतर इस प्रकार धारण करती है जैसे कि कमलिनी अपने भीतर पुष्प-लक्ष्मी को।”

चिच्छाक्षित ब्रह्मणो राम शरीरेभिदृश्यते ।

स्पन्द शक्तिश्च वातेषु जड शक्ति स्तथोपले ॥

अर्थात्—“ब्रह्म की चित्-शक्ति चंतन्य शरीर में, स्पन्दन-शक्ति वायु में और जड़-शक्ति पत्थर आदि में हिट गोचर होती है।

इस प्रकार मेरे योग-वासिष्ठकार ने शक्ति मिदान्त की स्पष्ट व्याख्या की है जो तत्र सिद्धान्त के अनुकूल है।

शक्ति और महाभारत

महाभारत में भगवती को परम पूज्या स्वीकार किया गया है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि महाभारत काल में शक्ति की उपासना प्रचलित थी। इस तथ्य स पुष्टि इसम होती है कि सग्राम के आरम्भ के पूर्व सौति ने दुर्गा की भक्ति की प्रेरणा की है। विराट पव में दुर्गा का स्तंभ उपलब्ध होता है। यहाँ इसे श्रीकृष्ण को बहिन, कस द्वारा पत्थर पर पक्षाढ़ी जाने वाली और यशादा के गर्भ से उत्पन्न बताया गया है।

भीष्म पर्व के ३३ वें अध्याय में वर्णित दुर्गा का स्तोत्र तो स्कन्द पुराण की ही तरह है। महाभारत युद्ध के समय जा भगवान् कृष्ण ने कोरब और पाण्डव दोनों सेनाओं को आपने सामने देखा तो अर्जुन को प्रेरणा दी कि विजय प्राप्ति के लिए तुम दुर्गा का स्तवन करो। अर्जुन ने कहा—हे आर्य! हे सिद्ध सेनानि! हे मन्दिर-पवत वासिनी देवि! मेरा प्रणाम स्वीकार करो। हे कुमारी, भद्रकाली, कपाली, कृष्ण पिंगले, महाकाली, चरिंड, चरण्डे तारणि, वरवणिनि, मेरा प्रणाम स्वीकार करो। हे कात्यायिनि, महाभागे, करालि, विजया, जया, मयूरपख छंजा बारिणी, महिषासुर-मर्दिनी, कोशिकी, नित्य पीन-वर्षिती, अदृश्यसकारिणी, चक्रसमान मुख धाली रणप्रिये, मेरा आपको नमस्कार है। हे उमे, शाकम्भरि, श्वेते, कृष्णे, कैटभ दीत्य-नाशिनी, हिरण्याक्षि, विश्वाक्षि, सुन्दर धूम्राक्षि, मेरा आपको प्रणाम है। हे ब्रह्मणे! भूतकालजा, जम्बुद्रोपवासिनी, वेद जिनकी महा-

पुरुषदायिनी महिमा का गान करते हैं, आपको मेरा प्रणाम है। हे स्वामि कात्तिक की माता, दुर्गे, भगवति, वनवासिनी, मेरा आपको प्रणाम है। आपही स्वाहाकार, स्वधा, कला, काष्ठा, सरम्बती, वेद माता सरम्बती और वेदान्त स्वरूपा हैं। हे महादेवी! मैंने पवित्र मनसे आपका स्तवन किया है, आपकी कृपा से युद्धक्षेत्र में मेरी विजय हो। जयनी, मौहिनी, माया, ही सत्त्वा, प्रभावती सावित्री और जननी आप ही हैं। आप ही तुष्टि, पुष्टि, घृति, सावित्री, चन्द्र और सूर्य की वृद्धि करने वाली हैं। आप ऐश्वर्यवानों का एश्वर्य है। युद्ध में सिद्ध और चारण आपका दर्शन करके बन्ध होते हैं।”

अर्जुन के पवित्र भाव से स्तुति करने पर देवी आकाश में प्रकट हुई और बोली ‘हे पाण्डव ! तुम कुछ ही समय में शत्रु पर विजय प्राप्त कर लोगे। यदि इन्द्र भी तुम्हारा विरोधी हो जाए, तब भी कोई शत्रु तुम्हें पराजित नहीं कर सकता।’

इस वर्णन से महाभारत काल में प्रचलित दुर्गा उपाउना पर प्रकाश पड़ता है। कृष्ण और अर्जुन इसको स्वीकार करते हैं।

शक्ति और वेदान्त-दर्शन

तत्र का मुख्य मिद्धान्त शक्ति की उपासना है। इसमें योगेश्वरी का ध्यान किया जाता है जबकि वेदान्त में योगेश्वर का ध्यान किया जाता है। वेदान्त ज्ञान का मार्ग है। योगेश्वर से अभिप्राय उस चिन्मय त्रुषुप से है जो जानने, देखने, आकर्षित करने और शासन करने की क्षमता रखता है। तत्र में यह गुण योगेश्वरी के पाये जाते हैं जो शक्ति रूपा, सकल्प रूपा, विश्व की अधिष्ठात्री, प्रकृति देवी हैं।

तत्र का मत है—

मनस्त्व व्योम त्व मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्व भूमिस्त्वयि परिणताया न हि परम् ।
स्वमेव स्वात्मान परिणमयितु विश्व वपुषा
चिदानन्दाकारं शिव युवति भावने विभृष ॥
(सौंदर्यलहरी ३५)

इससे अभिप्रेत है कि यह समस्त व्यक्त जगत् अर्थात् पचनत्वों का बना हुआ यह शरीर, इन्द्रियाँ, मन वृद्धि और अहङ्कार शिव की प्रधान अद्विज्ञानी भगवनी जगदम्बा के ही रूप है।

इसी प्रकार का सिद्धान्त वेदान्त का भी है छान्दोग्योपनिषद् ६।३।२, ३ में कहा है —

सेय देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्त्रो देवता अनेन
जोवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति ॥
ताना त्रिवृत् त्रिवृत्मेकं का करवाणीति सेय

देवतेमास्तिसो देवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य
नामरूपे व्याकरोत् ।

“तब उस सत रूप देवता ने सकल्प किया—“अब मैं इन तीनों
देवताओं में जीव रूप में प्रवेश कर जाऊँ और नाम तथा रूप को
स्पष्ट करूँ और उनमें से एक-एक को त्रिवृत्ति (तीन प्रकार का)
करूँ ।” ऐसा सकल्प करके उस देवता ने इन तीनों में प्रवेश करके नाम
रूप को स्पष्ट किया ।”

तैत्तिरीयोनिषद् २।६ में भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि की गई है—

सोऽकामयत । बहुस्या प्रजायेयेति । स तपोऽनप्यत ।

स तपस्तप्त्वा इद ७ सवमसृजत यदिं किं च ।

तत्सृष्ट्वा तदेवानुपाविशितु ।

तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् ।

निरुक्त चानिरुक्त च ।

निलयन चानिलयन च ।

विज्ञान चाविज्ञान च ।

सत्य चानृत च सत्यम भवत् ।

यदिद किं च । तत्सत्यमित्याचक्षते ।

तदप्येष इलोको भवित ।

“परमेश्वर ने प्रकट होने की इच्छा की, उसने तप किया और
तप से तेजस्वी होकर इस दृश्य जगत को रचा और उसी में प्रविष्ट
होगया । फिर वह साकार और माकार रहित हुआ । निरुक्त, अनिरुक्त
तथा आश्रय रूप एव अनाश्रय रूप हुआ । वही चैतन्य स्वरूप और
चेतनाहीन भी हुआ, वही सत्य स्वरूप हुआ । बुद्धिमानों का कहना है
कि जो कुछ देखा, सुना या प्रनुभव में ग्राप्ता, वही सत्य है । मिथ्या भी
वही हुआ (क्योंकि दिखाई न देने वे कारण उसके सम्बन्ध में शक्ता
उत्पन्न होती है ।

ऋग्वेद के नारदीय सूक्त में दर्शन का सुन्दर विवेचन किया गया है, उसको व्याख्या मस्तकी के प्रथम अध्याय में की गई है—

यच्च किञ्चिद् क्वचिद् वस्तु सदसद्वालिनात्मिके ।

तस्य सर्वस्य या गति सा स्वम् ॥३०॥

इसमें भगवती की ही सद और असद दोनों प्रकार की वस्तुओं के भीतर शक्ति के रूप में व्याख्या की गई है ।

वेदान्त में अद्वैत वाद का सुन्दर निर्दर्शन है । सप्तयती में अनेकों घटनों पर इन भावों की व्याख्या किया गया है । दसवें अध्याय में देवी कहती है —

एकंवाह जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।

‘इम विश्व मे मैं अकेली हूँ । मेरे अतिरिक्त और कौन है ?’

वेदान्त का दूसरा सूत्र है—

जन्माद्यक्ष्य यत ॥

सबके देखने, सुनने और अनुभव में आने वाले इसे अद्भुत विश्व का ही रचयिता जो परमात्मा इसका धारण पोपण करके अत मे सबको अपने मे ही लीन कर लेता है, वही ब्रह्म है ।

सप्तशती के प्रथम अध्याय मे यही बात ब्रह्मा जी के माध्यम से कहनाई गई है—

त्वयैतत् सृज्यते जगत् ।

त्वयैतत् पात्यते देवि त्वयैतत् सृज्यते जगत् ॥

‘हे देवी ! तू ही इस विश्व का सृजन करती है, तू ही इसकी पालन करती है और अन्त मे तू ही इस अपने मे लीन कर लेती है ।’

अद्वैतवाद तात्त्विक उपासना का भी प्रमुख सिद्धान्त है जहाँ उपासक का वृष्टिकोण रहता है—

देवी भूत्या प्रेष्ट रेष्मि ।

शर्वति "देव स्यग बन कर ही ऐय वा गजन करे ।" शाक्तार्थी भरते वा साधन पथ है । साधक इहता है—

अह देवी न चात्योऽस्मि प्रह्लौ वाहु न शोक भाक् ।

तच्चिदानन्द रूपीऽह नित्यमुक्त स्वभावयान् ॥

भर्ति—'मे देवी है और मन नहीं है । मे ही प्रह्लौ है और शोक को भजने वाला नहीं है । मैं सत्त्वियानन्द रूप वाला हूँ । मैं निर्मुक्त होने के स्वभाव वाला है ।'

सानिक भग्ना गोणी भ स्तुर राज ने प्रह्लौ और जगत् को एहता लो पतिपादित करते हुए १३ है—

वस्तुतस्तु जगतो ब्रह्मपणिप्रकल्प्य स्वीकुर्वतो तात्त्विकाणा मते जगत् सत्पत्वमेव मृदुधट्योरिव प्रह्लौजगतोरत्यन्ताभेदेन ब्रह्मणा स्त्यत्वेन जगतोपि सत्यत्वावश्यम्भावाद् भेदमाप्त्य मिथ्यात्वस्वीकारेणद्वैतपूतीजामजितानां निर्वाहु भेदरपि मिथ्यात्वादेव भेदधिताधाराधेयभावसम्बन्धोऽपि मिथेन ।"

—सौभाग्य भास्तुर पृ० १५१

षष्ठी—"प्रात्पव मे एव जगत् को प्रह्लौ का परिणामक मानने वाले तात्त्विकों के मत मे पह जगत् सत्ता ही है । मिथ्यो और घट को तरह प्रह्लौ और जगत् सा शब्दान्त अभेद होने से और प्रह्लौ की सत्पत्ता से एस जगत् की भी सत्पत्ता प्रवश्यम्भावी है । जो भेद है उसको मिथ्या मान सेने से समस्त भरते पतिपादन भूतियों का निर्वाह, हो जाता है । भेद के मिथ्या होने से ही भेद मे पटेत प्राप्तार और धारेय भाव सम्बन्ध भी मिथ्या ही होता है ।"

तत् और देवान् मे कुछ मतभेद भी है । देवान् जगत् को प्रह्लौ और मिथ्या पोषित करते है । उस तरफ़ उठिकौण दुसरा है ।

तब इस जगत मे रहने वाले जीवों की शिव की अनुभूति मानता है । जीव को भी वह मन और जग्गे मे विभूषित शिव ही स्वीकार करता है । इनके अनुमान शिव यदि चेतना का भव्यत्ता रूप है तो शक्ति उसका महिम्य रूप है । अन तब का मत है कि विश्व दिव्यरूप से सत्य है और इसमे निवास करने वाला हर जीव ईश्वर की सत्य सत्ता की आकृति है । यहाँ चारों ओर सत्य ही विखरा हुआ हृषिगोचर होता है । अन इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं है । इसमे रहकर यहाँ उत्पन्न वस्तुओं का अनिस्त भाव से उपयोग करन द्वारा सत्य सत्ता का अनुभव करना ही शक्तिदग्न का अभीष्ट है । इस मत से शक्तिवाद वेदान्त से भी उच्च और श्रेष्ठ सिद्ध होता है ।

शक्ति और सांख्य-दर्शन

सांख्य दर्शन भारतीय वर्णनो में सबसे प्राचीन माना जाता है। सांख्य सिद्धान्त का दर्जी तत्त्व ज्ञान की दृष्टि से बहुत ऊँचा है। प्राचीन काल से विद्वानो में यह कहावत चली आ रही है कि—

“नहि साख्य सम ज्ञान नहि योग सम वल ।”

वास्तव में सृष्टि के निर्माण में प्रकृति का विकास किस प्रकार हुआ और उसमें आत्मा का क्या स्थान है, इसका विवेचन कपिल ने जिस सूक्ष्म दृष्टि से किया है, वह सराहनीय है। साख्य दर्शन वास्तव में एक मनोवैज्ञानिक दर्शन है। भगवद्गीता में भी साख्य निष्ठा को बहुत महत्व दिया गया है और उसको ‘निष्ठाम कर्मयोग’ का पूरक ही माना है। इसी लिए गीताकार सांख्य और योग में भेदभाव करने वालों को अज्ञानी समझते हैं—

माख्य योगो प्रथऽवालं प्रवदन्ति न पडित ।

सृष्टि निर्माण के सम्बन्ध में साख्य की अलग धारणा है। सख्या-शास्त्र में यह समस्त विश्व २५ तत्त्वों का खेल माना गया है। इनके दो मुख्य विभाग हैं—पुरुष और प्रकृति। इनमें से ‘पुरुष’ प्रथवा आत्मा तो चेतन्य स्वरूप है, वह न किसी तत्त्व में बनता है और न उसमें कुछ बनता है। प्रकृति के आठ विभाग माने गए हैं और उसमें से सालह विकारो (विकृति) की उत्पत्ति कही गई है। आठ प्रकृतियाँ ये हैं—

१ मूल प्रकृति २ महत्तत्व (व्रुद्धि) ३ अहकार ४ यच्च
५ स्पश ६ ऋष ७ रम ८ गन्य ।

शब्द से लेकर रस तक पाँच तत्मात्राएँ कही जाती हैं। सांख्य में प्रकृति उसको कहते हैं जिससे आगे चल कर कोई अन्य तत्व उत्पन्न हो। इसलिए बुद्धि और अहकार के साथ पाँचों तत्मात्राओं को भी प्रकृति माना गया है योकि उनमें ही सोलह विकृतियों की उत्पत्ति होती है। सोलह विकृतियों इस प्रकार है—

पाँच स्थूलभूत, प्राकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, शोषण तत्त्वात्, नेत्र, रसना, घाण, पाँच कर्मेन्द्रियों, वाणी, हाथ, पौर, उपस्थि, गुदा और ग्यारहवाँ मन कहा गया है।

यह पाँच स्थूलभूत तथा मन सहित ग्यारह इन्द्रियों प्रत्यक्ष हैं और इनसे आगे चलकर किसी अन्य तत्व की उत्पत्ति तहीं होती, इसलिये इन्हें विकृति कहा गया है। यह ग्यारह जिन सूक्ष्म तत्मात्राओं से उत्पन्न होती है, वे अनुभवगम्य हैं। जब कोई साधक अन्तर्मुख होकर ध्यान करता है तो उसे सूक्ष्म और निर्मल शब्द, स्पर्श, रूप रस और गम्भ का ज्ञान होता है। जब इन पाँचों के भी मूल उदगम की खोज की जाती है तो 'अहवृत्ति' का साक्षात्कार होता है। 'अहकार' से भी ऊपर उठकर विचार करने से 'महत्त्व' अथवा 'अस्मितावत्ति' के दर्शन होते हैं। पर इसके ऊपर जब और किसी कारण का पता नहीं चलता तो अनुमान द्वारा 'महत्त्व' को उत्पन्न करने वाली शक्ति को मूल प्रकृति मान लिया जाता है जो कि अनादि है। इस प्रकार महविकपिल ने जडतत्व के जो चौबीस विभाग घटलाये हैं, वे प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य हैं, केवल तक द्वारा सिद्ध नहीं किये गए हैं। मह मूल प्रकृति ही तीन गुणों—सत्, रज और तम की न्यूनाधिकता के कारण जगन के विभिन्न तत्त्वों तथा नाम रूपों में प्रकट होकर विश्व की रचना करती रहती है।

तत्त्व का मत सांख्य से भिन्न है। तत्त्व दाशनिक विश्व को ३६ तत्त्वों से नियमित स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार सांख्य में पुरुष के

ऊपर पञ्च कञ्चुक अर्धांति पांच आवरण हैं—नियति, कान, राग, विद्या और कला। इन पांच आवरणों में से कना के ऊपर माया, शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, घन्कि और शिव हैं। इम तरह में २५ तत्त्वों के अतिरिक्त तन्त्र-मत में ११ तत्त्व और हैं। शिव तत्त्व को एक श्रलग तन्त्र माना जाता है। सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या को योग विद्या-तत्त्व कहलाता है। माया से लेकर नीचे वाले ३२ तत्त्वों को आत्म-तत्त्व कहा जाता है। इम तरह से तात्त्विक हृषि में दोनों दर्शनों में अन्तर है।

माँस्य में पुरुष तथा प्रकृति में द्वैत सिद्धान्त को माना गया है परन्तु तन्त्र श्रद्धैत मत का समवक है।

विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कारिका में लिखा है—
तस्मात्तत्सयोगादचेतन चेतनावदिव लिङ्गम् ।

गुणकर्तृत्वे च तथा कर्त्तव भवत्युदासीन ॥

इस तरह से पुरुष और प्रकृति के मिलने से इस चराचर विश्व की उत्पत्ति हुई।

साँख्य पुरुष और प्रकृति दोनों को अनादि मानता है—
प्रकृति पुरुष चंव विद्युयनादी उभावपि ।

श्री शकराचार्य ने इस श्लोक पर टिप्पणी करते हुए कहा कि ईश्वर सनातन प्रभु है, यह स्वीकार करना ठीक है कि उसकी दोनों प्रकृतियाँ—परा और अपरा भी सनातन और शाश्वत हैं। इस पर जकराचार्य का यह मत है कि यदि प्रकृति और पुरुष को सनातन, अनादि और म्बतन्त्र स्वीकार करले तो इस ईश्वर की प्रभुता कम हो जाती है।

वास्तव में साँख्य में जिम प्रकृति का वरण है वह भ्रत्यन्त ही स्थूल है। इसे अशुद्ध प्रकृति कहते हैं। तन्त्रोक्त प्रकृति माँस्य की तरह जड़ नहीं है। वह पूर्ण चैतन्यमयी है। मौन्दर्य लहरी के प्रसिद्ध टीकाकार लक्ष्मीदर ने (३४ श्लोक में) पारावार को प्रकृति कहा है। परा कहते हैं—मत् रज और तम की साम्यावस्था को। यह तीनों गुण ज्ञन, इच्छा और क्रिया के प्रतीक माने जाते हैं। इस परा को ही शुद्ध प्रकृति

माना जाता है ।

तन्त्र की प्रकृति निश्चल, परावाक् रूप प्रवणात्मक कुण्डलिनी शक्ति है । प्रपञ्चसार तन्त्र के अनुमार—

प्रकृति निश्चला परावाग्रूपिणी परप्रणवालिका
कुण्डलिनीशक्ति ।

अर्थात् प्रकृति निश्चला होती है तथा वह परावाक् रूप वाली है और पर प्रणव स्वरूप से युक्त कुण्डलिनी शक्ति है ।

अत्र मन्त्रदेन स्वसवेद्यस्वरूपा

सेत्युक्ता परा प्रकृति ग्रह्यते ।

(प्र० क्र० दी० पृ० ४००)

अर्थात्, यहाँ पर मन इम शब्द से अपने ही द्वारा वेदन करने के योग्य वह कही गई परा प्रकृति ग्रहण की जाती है ।

प्रकृतिरिहापरोपलक्षिता परा विवक्षिता ।

(प्र० क्र० दी० पृ० ४०३)

अर्थात्, यहाँ पर प्रकृति अपर से उपलक्षित परा कही गई है ।

प्रपञ्चसार तन्त्र में परा प्रकृति का चित्रण इम प्रकार किया गया है—

स्वामिन् प्रसीद विश्वेश केवय केन भाविता ।

किं मूला किं क्रिया, मर्वमस्मभ्य वक्तुमर्हसि । १६।

इति पृष्ठ पर ज्योतिरुचाच प्रमिताक्षरम् ।

यूयमक्षरसम्भूता सृष्टिस्थित्यन्तहेतव । १७।

तेरेव विकृति यातास्तेषु वी जायते लय ।

इति तस्य वच श्रुत्वा तमपृच्छत् सरोजभू, । १८।

अक्षर नाम किं नाय कुतो जात किमात्मकम् ।

इति पृष्ठो हरिस्तेन सरोजोदरयोनिना । १९।

मूलार्णमर्णविकृतीविकृतेविकृतीरपि ।
 तत्प्रभिन्नानि मन्त्राणि प्रयोगाश्च पृथग्विद्वान् ।२०।
 वैदिकास्तान्त्रिकाश्चापि सर्वानित्यमुवाच ह ।
 प्रकृतिः पुस्पश्चैव नित्यो कालश्च सत्तम् ।२१।
 अणोरणायसी स्थूलात् स्थूला व्याप्तचराचरा ।
 आदित्येन्द्रभिन्नतेजोमद यद्यत्तत्तनमयी विभु ।२२।
 न श्वेतरक्तपीतादिवर्णं निवर्यं चोच्यते ।
 गुणेषु न भूतेषु विशेषेण व्यवस्थिता ।२३।
 अन्तरान्तर्बाह्यश्चैव देहिना देहपृरणी ।
 स्वमवेद्यस्वरूपा सा दृश्य देशिकदर्शिते ।२४।
 यथाकाशस्तसो वापि लब्धा या नोपलभ्यते ।
 पुन्नु सकयोतुल्याप्यडग्नासु विशिष्यते ।२५।
 प्रधानमिति यामाहृयशक्तिरिति कथ्यते ।
 या युष्मानपि मा नित्यमवष्टभ्यातिवर्तते ।२६।
 साह यूय तथैवान्यद यद्वद्य तत्तु सा स्मृता ।
 प्रलये व्याप्यते तस्या चराचरमिद जगत् ।२७।
 संत्र स्वावेत्नपरमा तस्या नान्योस्ति वेदिता ।
 सा कालात्मना सम्यक् मर्येव ज्ञायते सदा ।२८।

(प्रथम पटल)

"हे स्वामिन ! आप प्रसन्न होइये । हे विश्वेश ! हूम कौन हैं,
 किसके द्वारा भावित हैं, क्या हमारा मूल है और क्या क्रिया है—यह
 सभी हमको आप बतलाइये । इस प्रकार से पूछो गई परम ज्योति
 प्रमित अक्षरो मे बोली—आप लोग अक्षर से समुत्पन्न हैं और सृजन,
 स्थिनि तथा सहार के हेतु हैं । उनके द्वारा ही विकृति को प्राप्त हुए हैं
 और उनमें ही लय को प्राप्त होते हैं । उसके इस वचन का अवण करके
 बह्या ने उनसे पूछा—हे नाथ ! अक्षर वाला क्या है ? वह कहाँ से
 उत्पन्न हुआ है और उसका क्या स्वरूप है ? । इस प्रकार कमलोद्भव के

द्वारा पूछने पर हरि ने कहा—मूलवर्ण विकृति है और विकृति की भी विकृति ये प्रभिज्ञ मन्त्र हैं और अनेक प्रकार के प्रयोग हैं, जो चाहे वैदिक हो अथवा तन्त्रोक्त हो। हे सत्तम ! प्रकृति और पुरुष नित्य हैं तथा काल नित्य है। अणु से मी अणु और स्थूल से भी स्थूल चराचर में व्याप्त है। सूर्य-चन्द्र अग्नि तेजयुक्त हैं और तन्म ही विभु है। उसका कोई भी स्वेत रक्त आदि वर्ण के द्वारा कथन नहीं किया जा सकता है। गुणों में और भूतों में विशेष रूप से व्यवस्थित नहीं है। अन्दर-बाहर देहघारियों के देह की पूति करने वाली है। आचार्यों के द्वारा वह स्वयंसवेद्य स्वरूप वाली है तथा दृश्यमान है। आकाश तथा तम में भी लव्य वह लभ्यमान नहीं होती है, पुरुष और नपु सक में वह समान है। अगमाग्नों में विशेषता वाली होती है। उसको प्रधान या शक्ति कहा जाता है। जो आप सबको और प्रभु को शब्द प्रसन्न करके अर्ति-वजित होती है। वही मैं हूँ और आप हैं तथा अन्य भी हैं जो वेद्य हैं, वह बताई गई है, प्रलय में यह चराचर जगत उसमें व्याप्त हो जाता है।

वही अपने आपको जानती है, वह परमा है और अन्य उसका जाता नहीं है। उसको काल के स्वरूप से ही सर्वहर मेरे द्वारा जानी जाती है।

शारदा तिलक तन्त्र में पराप्रकृति का वर्णन इस प्रकार —

नित्यानन्दवपुनिरन्तरगत्पञ्चाशदर्णी क्रमाद्
व्याप्त येन चराचरात्मकमिद शब्दार्थरूप जगत् ।

शब्दब्रह्म यदूचिरे सुकृतिनिश्चैतन्यमन्तर्गत
तद्वोऽव्यादनिश शशाङ्कसदन वाचामधीश मह ।१।

अर्थात्, नित्य आनन्द वपुवाली 'है और निरन्तर गलत् पचास वर्णों के द्वारा क्रम से जिसके द्वारा यह चराचर शब्दार्थ रूप जगत् व्याप्त हो रहा है। सुकृतीगण अन्तर्गत चैतन्य उमको शब्द ब्रह्म कहते हैं, वह वाणियोंका अधीश चन्द्रमे मदन वाला तेज आपकी निरन्तर रक्षा करें।

इस तरह साख्य दर्शन की विचार-धारा शक्ति दर्शन के सामने फीकी पड़ती दिखाई देती है। क्योंकि साख्य की प्रकृति स्थूल है और शक्तिवाद की सूक्ष्म है।

शक्ति और आरण्यक

आरण्यक में विपुरा का वर्णन आता है जिसे श्रीविद्या भी कहते हैं। यह धर्म, धर्थ और काम की देने वाली है। वहाँ इसकी सुभगा, अम्बिका, सुन्दरी की सज्जा भी दी गई है। सुभगा इसलिए कहा गया है कि यह श्री, यज्ञ, ऐश्वर्य, धर्म, ज्ञान और वैराग्य, इन स्तुति गुणों को देने वाली है।

तैत्तिरीय आरण्यक के १० वें प्रपाठक में वेद माता की स्तुति की कई है—

आयातु वरदा देवि अक्षर ब्रह्मसम्मितम् ।

हे देवि ! ब्रह्म के समान अक्षर अर्थात् नाश रहित और वरदान देने वाली आप आवें ।

भद्रकाली के स्तोन भी देव आरण्यक में हैं जो इसी प्रपाठक के आरम्भ में दिए हुए हैं—

भद्र शुद्धात्मविज्ञान भद्रलोकानरूप मङ्गलं
च वा कलयति जनयतीति भद्रकाली ।

भद्र अर्थात् परम विशुद्ध धात्म ज्ञान और भद्रलोक के अनुरूप मङ्गलका जो कलन करती है अर्थात् प्रजनन किया करती है वही भद्रकाला कही जाती है ।

भद्र कर्णोभि, शृणुयाम देवा

भद्र पश्येमाक्षिभर्यजत्रा ।

हे देववण ! हम कानो से भद्र श्रथर्ति मङ्गलमय श्रवण करें ।
हे यजत्र वृन्द ! हम नेत्रो से भद्र ही देखें ।

इस तरह से आरण्यक से शक्ति का सम्बन्ध स्थापित किया गया है ।

गीता में शब्दित तत्त्व

गीता का शक्ति तत्त्व से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शक्ति के पर्याय प्रकृति का अनेक स्थानों पर स्पष्टीकरण किया गया है।

गीता (६।१०) में कहा है—मैं अध्यक्ष होकर प्रकृति से सब चराचर सृष्टि उत्पन्न करवाता हूँ। हे कौन्तेय! इस कारण जगत् का यह बनना बिगड़ना हुआ करता है। प्रकृति और पुरुष, दोनों को ही अनादि समझकर विकार और गुणों की प्रकृतिसे उपजा हुआ जान जानो।' (१३।१६)। 'यद्योकि पुरुष प्रकृति में अविद्यित होकर प्रकृति के गुणों का उपयोग करता है और प्रकृति के गुणों का यह सयोग पुरुष को भली-बुरी योनियों में जन्म लेने के लिए कारण होता है।' (१३।२१)। 'हे भारत! महद् ब्रह्म अर्थात् प्रकृति मेरी हो योनि है। मैं उसमें गर्भ रखता हूँ। किं उससे समस्त भूत उत्पन्न होने लगते हैं।' (१४।३७)। हे कौन्तेय! पशु, पत्ती आदि सब योनियों में जो मूत्रियाँ जन्मती हैं, उनकी योनि महत् ब्रह्म है और मैं बीजदाता पिता हूँ।' (१४।४)। 'हे महाबाहु! प्रकृति मेरे उत्पन्न हुए भृत्य, रज और तम रूपों गुण देह मेरे रहने वाले अव्यय अर्थात् निर्विकार प्रात्मा को देह मेरी बाँध लेते हैं।' (१४।५)। और स्पष्ट शब्दों मेरी मगवासु ने कहा है, 'पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश, (यह पाँच सूक्ष्म मूत्र) मन, बुद्धि और अहकार इन आठ प्रकारों मेरी प्रकृति विभाजित है।' (६।४)। यह अपरा अर्थात् निम्न श्रणी की (प्रकृति) है। हे महाबाहु अजुन! यह जानो कि इससे भिन्न, जगत् को बारण करने वाली मेरी दूसरी प्रकृति है।' (७।५)।

‘समझ रखो कि इन्हीं दोनों से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं । सारे जगत् का प्रभव अर्थात् मूल और प्रलय भर्ति अन्त में ही हैं ।’ (७।६) ।

शक्ति-मन्त्र—

गीता में शक्ति तत्त्व का ऐसा सजीव व सक्रिय चित्रण व आवाहन है कि कायर से कायर पुरुष को भी अपनी सुस शक्तियों का आभास होने लगता है और वह यह सोचने के लिए बाध्य हो जाता है कि वह कठिनाइयों से घबरा कर, जीवन से निराश होकर प्रन्धकार में भटक रहा था, यह आशा की जीवन ज्योति पाकर तो मैं धन्य होगा । अर्जुन जैसे करोड़ ध्यक्ति मानसिक तिर्वलता से आक्रान्त होकर जीवन को भाग्य भरोसे ही छोड़ देते हैं परिस्थितियाँ जैसे भी मोड़ खाती रहे, उस पर सन्तोष कर लें हैं । उन्हें अपनी अन्तर्निहित शक्तियों पर विश्वास नहीं होता । वे वहीं जानते कि प्राणी की शक्ति पहाड़ों को चूर-चूर कर सकती है, समुद्रों को सोख सकती है, हवाओं के रुख मोड़ सकती है, राक्षसी शक्तियों का दलन करने की क्षमता रखती है, प्राकृतिक शक्तियों पर मपना भाष्मिपत्य स्थापित करके अपनी इच्छानुसार कार्य करा सकती है उसे उहज मे यह विश्वास नहीं होता कि मानव शक्ति का आगार है, उसके अग-अग मे शक्ति के खजाने भरे पड़े हैं । उसकी नस नस से शक्ति की ध्वनि आती है परन्तु स्वेद है कि भोग-विलास के इस भौतिक वासनामय जीवन मे फौम कर वह अपने को क्षुद्र समझने लगता है । दुर्वलता के साधनों को अपनाना ही उसके जीवन का स्वभाव बन जाता है । चारों ओर उसे अपने शत्रु दिखाई देने लगते हैं । घन, वैभव आदि की सुरक्षा के लिए उमे भय सताने लगता है । सामाजिक वाधाएँ उसे रुलाती हैं और दिन-दिन कायर, बुजदिल और निर्वल बनाती चलती हैं । अर्जुन की भी यही स्थिति थी । उसके मन में भी निर्वलता ने स्थान बना लिया था । अब वह युद्ध से कतरा कर बहाने बनाने लगा था और नाना प्रकार के बक्क-वित्कं अपमिथुर करते

लगा था । तभी भगवान् ने शक्ति मन्त्र को फूँका और स्पष्ट कहा—

क्लंब्य मा स्म गम पार्थं नैतत्त्वयुपपद्यते ।

क्षुद्रं हृदयोदबल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥

(गीता २।३)

'हे श्रजुन ! कायर मत बन, यह तेरे लिए उचित नहीं है । हृदय की तुच्छ-सी निर्वलता को त्याग और युद्ध के लिए उठ खड़ा हो ।'

जीवन सघष का दूसरा नाम है । पग-पग पर हमें विभिन्न प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है । यदि हमने बाधाओं के समक्ष अपने अस्त्र-शस्त्र समर्पित कर दिए तो हमें जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि सघर्ष करके जीवन को विरुद्धित करने के लिए तो हमें यह सौभग्य मिला है । यदि इसका उचित उपयोग न किया तो दुर्भाग्य में परिवर्तित होने में देर न लगेगी क्योंकि कायर ही दुखी, दरिद्र और क्षुद्र होते हैं । वीर और साहसी, पुण्यार्थी का इन क्षुद्र वृत्तियों से क्या सम्बन्ध ? भगवान् ने उपदेश दिया कि हे श्रजुन ! तुम्हें यह निर्वलता शोभा नहीं देती । शक्तिहीन का कहीं सम्मान नहीं होता । उठो ! अपने अस्त्रों को सम्मालो और हृदय को निर्वल करने वाली आमुरी शक्तियों का विनाश करो ।

गीता का यह शक्ति मन्त्र कायरों को भी वीर सेनानी बनाने की क्षमता रखता है वयोंकि वह शरीर से सम्बन्धित क्षुद्र वासनाओं तक ही सीमित नहीं रहने देता वरन् वस्तुस्थिति से परिचय कराता है । गीता का स्पष्ट उपदेश है कि तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो । शरीर के स्वभावगत गुणों का विश्लेषण करते हुए कहा है कि इसकी उत्पत्ति होती है और नाश होता है, यह अनित्य और नाशवान् है । इसलिए शरीर के नाश से शोक करना व्यर्थ है ।

मात्रास्पर्शस्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुखदा ।

आगभापायिनोऽनित्यास्तोऽस्तिक्षस्व भारत

(गीता २।१४)

. अनशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥

(गीता २।१५)

भगवान् ने कहा कि जब तुम शरीर नहीं हो तो उसका शोक क्यों करते हो ? तुम तो आत्मा हो जो जन्म-मरण आदि व्याधियों से रहित है । यह तो नित्य अविनाशी और अचिन्त्य है ।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ता शरीरिण ।

(गीता १।१६)

वास्तव मे यह न तो मरता है, न मारा ही जाता है ।

उभौ तौ न विजानीतो नाय हन्ति न हन्यते ॥

यह तो सर्वथा अवध्य है—

देहो नित्यमवध्योऽय देहे सर्वस्य भारत ।

(गीता २।३०)

इसे शस्त्र मार नहीं सकते अग्नि जला नहीं सकती, जल भिगो अथवा गला नहीं सकता, वायु सुखा नहीं सकती—

तैन छिन्दन्ति शस्त्राणि तैन दहति पावक ।

न चैन कलेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत ॥

(गीता २।२३)

'अत' यह अटल सत्य है कि न मरने वाला, न जलने वाला, न भीगने वाला और न सूखने वाला यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और चिरन्तन है—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमकलेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्य रवंगत् स्थणुरचलोद्य सनातन ॥

(गीता २।२४)

जो इस आत्म ज्ञान की ध्यवहारिक रूप देकर शारीरिक सुख और दुःख को समान समझ कर उसकी व्यथा से प्रभावित नहीं होता । वही अमृतत्व का अधिकारी होता है—

य हि न व्यथयन्तयेते पुरुष पुरुषर्पर्भ ।

समुद् खसुख धीर सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥

(गीता २।१५)

जिस व्यवित का आत्म तत्त्व से परिचय हो जाना है, वह एटम् वस्त्रो के भोपण प्रहारो से भी भयभीन नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि नाश तो शरीर का स्वभाव है, वही जन्म लेता है, उसी की मृत्यु होती है (गीता २।२७), आत्मा न जन्म लेता है और न उसकी मृत्यु होती है । वह तो पुराने वस्त्रो के बदलने को भाँति पुराने जीर्ण शरीर को छोड़ कर नए धारण करता रहता है ।

वासासि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि ग्रहणाति नरोऽप-राणि ।

तथा शरीरऽणि विहाय जीर्णान्यन्यानि

सयाति नवा निदेही । (गीता २।२२)

अत शरीर के विनाश से भय क्यो ? वह तो नए जीवन का सन्देश है ।

'गीता' का यह शक्ति-मन्त्र पहिले से अधिक शक्तिशाली है । यह विश्वास दिलाता है कि हम इतनी महान शक्तियों के पुञ्ज हैं कि विश्व की भीषणतम शक्ति भी हमारा कुछ नहीं विगाड सकती । उनके प्रहार हमारे बाह्य जगत को ही प्रभावित कर सकते हैं, अन्तर्जगत में उनका प्रवेश सम्भव नहीं है । यह शक्ति मन्त्र हमें जगत की समस्त व्याविधियों से सुरक्षित रखने की क्षमता रखता है ।

शक्ति विकास के दो साधन—यज्ञ और योग

१—यज्ञ —

आत्म विकास के लिए भगवान ने दो प्रमुख साधनों का निर्देश किया है। वे हैं—यज्ञ और योग। यह दोनों शक्ति विकास के श्रेष्ठ साधन हैं। यज्ञ का अर्थ है त्याग, बलिदान, परोपकार, नि स्वार्थ सेवा। यह भोगवाद का विरोधी है। यज्ञ यह जीवन भोगवाद का समर्थन नहीं करता क्योंकि भोगो से शक्ति विकास का व्यय होता है। इस शक्ति विकास को रोकने के लिए स्पेष्टनम कर्म-यज्ञ का सद्गुरा लेना पड़ा है। वहाँ शत्रु-मित्र का कोई भेद भाव नहीं सब अपने ही अपने दिखाई देते हैं, यज्ञकर्ता चारों ओर अपने आत्मीयजनों के ही दर्शन करता है। तभी भगवान ने स्वयं यज्ञ रूप होने की घोषणा की—

अह क्रतुरह यज्ञ स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहममेवाज्यमहमग्निरह हृतम् ॥ (६११६)

अर्थ—(भगवान कहते हैं) “श्रीत कर्म में हू, यज्ञ में हू, स्वधा में हू श्रौतधि में हू, मन्त्र में हू, आज्य (धृत) में हू अग्नि में हू और हवन रूपी क्रिया भी मैं ही हूं।”

तभी यज्ञ को ब्रह्ममय व्यक्ति किया गया है—

ब्रह्मार्पण ब्रह्म ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हृतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्य ब्रह्म कर्म समाविना ॥ (६१२४)

अर्थ—“अर्पण [श्रुवादिक] भी ब्रह्म है, हवि भी ब्रह्म है, ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्म इपकर्ता के द्वारा जो हवन किया गया है तथा ब्रह्मरूप कर्म में समाविस्थ हुए उस पुरुष के द्वारा जो प्राप्त होने योग्य है, वह भी ब्रह्म ही है।”

जब चारों ओर ब्रह्म का ही विस्तार है तब अपने को शेष विश्व से अलग मान कर स्वार्थपरता की भावना में लिप्त रहना और वैसा कर्म करना क्षुद्रता और अज्ञानता का चिह्न है। इसे भगवान् ने चोर की सज्जा दी है और अकेले खाने को पाप भक्षण रहा है—

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविता
तैदत्तान् प्रदायैम्यो यो भु क्ते स्तेन एव स (३१२)

अर्थ—यज्ञभाविता, देवगण तुम लोगों को इष्ट भोग प्रदान करेंगे। उनके द्वारा दिये हुए भोगों को जो पुरुष उनको अपेण किये बिना भोग करता है, वह निश्चय ही चोर है।”

यज्ञ शिष्टाश्विन सन्तोमुच्यन्तेसवंकित्विष्टं ।

भु जते ते त्वघ पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ (३१३)

अर्थ—“यज्ञ से बचे हुए धन्त को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से छूटते हैं और जो पापी लोग अपने ही शरीर-पोषण के लिए पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।”

यज्ञ की यह एवय भावना मुक्ति के द्वार खोलती है क्योंकि जब तक द्वैत में स्थिति रहती है, तब तक बन्धन रहता है, अद्वैत में प्रवेश करने पर स्वतन्त्रता के दर्शन होने लगते हैं। उभी भगवान् ने कहा है—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽय कर्म बन्धन ।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्त सग समाचर ॥ (३१४)

अर्थ—“यज्ञ के निमित्त किये गये काम के सिवाय दूसरे काम को करने से यह मनुष्य कर्मबन्धन में बैधता है, इसलिए है अर्जुन ! मुक्त संग रह कर तदर्थं कर्म को ही भली भाँति आचरण कर ।”

यज्ञ को इस श्रेष्ठता के कारण भगवान् ने इसे प्रहरण करने की प्रेरणा की है —

यज्ञ दानं तपं कर्म न त्याज्य कार्यं मेवतत् ।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ (१८।५)

अर्थ—“यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं। वरन् वह कर्म तो करने ही योग्य हैं, करना कर्त्तव्य ही है। यज्ञ दान और तप, यह तीनों तो मनीषियों को पवित्र करने वाले हैं।”

वेद में यज्ञ के लाभों पर विशिष्ट रूप से प्रकाश डाना गया है ऋग्वेद में इहा है —

“यज्ञ से ज्ञान बुद्धि और बल की वृद्धि होती है (१।१३।३)

यज्ञ सुखों की वर्षा करने वाला है (१।१६।१।१) --- यज्ञ से सब तरह का कल्याण होता है (४।४।७) जो यज्ञ करता है। वह धन ऐश्वर्य से, तेज से तथा यश और कीर्ति से मनुष्यों में चमकता है और अन्त में आत्मज्ञानी होकर अमर हो जाता है। (६।५।५५)----- हे वेद पाठ के देवता उठो देवतापो को यज्ञ का सन्देश सुनाओ। आयु, प्राण, प्रजा, पशु और कीर्ति बढ़ाओ। यज्ञकर्ता को हर प्रकार से बदाओ। (१०।१६।४।२)” यजुर्वेद में यज्ञ पर प्रकाश डालते हुए इहा गया है—

‘यज्ञ से अशुद्ध तत्वों का नाश होता है (१।१३) यज्ञ से आरोग्यता प्राप्त होती है। (१।१४।४।१५) .. यज्ञ से दिव्य वातावरण की चतुर्पक्षि होती है। (१।१५) यज्ञ से आन्तरिक शबुपो का नाश होता है। (१।१७) यज्ञ नेत्र रक्षक है। (२।१६) यज्ञ से असुरों का नाश होता है। (२।३०) यज्ञ सुखों का सचय करने वाला है। (३।४६,४।६) यज्ञ निश्चय से कल्याणकारी है। वह दीघ आयु उत्तम, अन्त, ऐश्वर्य समृद्धि, सुसरति व बल पराक्रम

प्रदान करता है। (३।६३) यज्ञ वीरना दायक और कायरता विनाशक है। (४।३७) यज्ञ ऋषियों के हृदय को पवित्र करने वाला है। (३।४) यज्ञ वर्त्यन का साधन है। (५।३०) मुक्ति का देवताओं मनुष्यों पितृजनों और अपने प्रति किए गए, जाने या अनजाने किए गए पापों से बचाने वाला है। (८।१३) —— यज्ञ करने वाले के लिए वायु और नदियाँ मधुर रस वहाती हैं (१३।२७) —— यज्ञ से आत्म बन की वृद्धि होती है। (१७।६५) “मन, आत्मा, वाणी, प्राण, ज्ञान ज्योति, श्री, वेद आयु, नेत्र, यज्ञ से सम्पन्न होते हैं (१।२८) ”— यज्ञ से क्रह्य वर्चस को प्राप्ति होती है। (१६।१६) — यज्ञ से सद्वृद्धि की प्राप्ति होती है। (२०।८५) — यज्ञ से तीनों छन्दों (तीनों लोकों) जगती, त्रिष्टुत और गायत्री में कल्याण होता है। (२।२५, ५।१३।१८) ”

यजुर्वेद के प्रठारहृते श्रव्याय में यज्ञ से अनन्त लाभों का प्रार्थना के रूप में इस प्रकार वर्णित है “मेरा अन्त, ऐश्वर्य, प्रथत्त, ध्यान, प्रजा, स्वर, प्रशसा, कीर्ति, ज्ञान, सुख, प्राण, चित्त विचार, वाणी, मन, चक्षु, चातुर्य, बल-ओज, साहस स्वामित्व, मानसकोप, क्रोध, चह्वेग, सौम्यमाव उशर भाव, दीर्घ जीवन, लोक, धनधान्य, वृद्धि, समृद्धि, सत्य, श्रद्धा, तेज व्यवहार हर्ष, सुन्दर वचन, श्रेष्ठ कर्म, दान, अमर स्वरूप, आरोग्य, स्वास्थ्य, शत्रु रहित्य, निर्भयता, सयम शक्ति, धारण शक्ति, धैर्य, प्रेरणा, कल्याण, कामना, प्रसन्नता, भूत भविष्य, सुमार्ग और सुपथ समय और शक्ति उद्देश्य यज्ञ से सुप्रसन्न हों।”

“यदि रोगी अपनी जीवनी-शक्ति को खो भी चुका हो निराशा जनक स्थिति को पहुँच गया हो, मरण काल भी सर्वाप शा पहुँचा हो तो भी यज्ञ उसे मृत्यु के चारून से बचा लेता है। और सो वर्ष जीवति रहने के लिये पुन बलवान कर देना है (ग्रन्व वेद ३।११।२)

इसमें स्पष्ट है कि गीता में निर्देशित यज्ञ क्रिया शक्ति का महान स्रोत है, इससे भौतिक और आध्यात्मिक—दोनों प्रकार की शक्तियों का विकास होता है।

योग—

शवित्-विकास का दूसरा साधन योग को बनाया गया है। तभी योगी बनने की प्रेरणा देते हुए भगवान् ने कहा है—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिश्योऽपि मतोऽधिक ।

कर्मिभ्यश्चाधिक्षी योगी तस्मद्यागी भवार्जुन ॥

अथत्—योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है और शास्त्र के ज्ञान वालों से भी श्रेष्ठ है तथा सकाम र्म (कमकारण धूपजा-पाठ आदि) करने वालों से भी श्रेष्ठ है, इससे है अर्जुन तू योगी बन।

वास्तव में भगवत्तगीता को यदि योग का एक प्रमुख ग्रन्थ कहा जाय तो उसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है। गीता में 'योग' 'योगी' और 'योग युक्त' का शब्द जितना अविक्ष आया है, उतना किसी बड़े ग्रन्थ में भी कदाचित् ही मिलेगा। गीता के प्रत्येक अध्याय का नाम किसी प्रकार के योग मार्ग पर ही है जैसे दूसरा अध्याय सार्वय योग, तीसरा कर्म योग, चौथा ज्ञान-कर्म सन्यास याग, पाँचवा कर्म सन्यास योग, छठा धात्म-प्रयम योग, सातवाँ ज्ञान-विज्ञान योग आदि। प्रत्येक अध्याय के श्रन्त में 'इति श्रीमद्भगवत्तगीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्याया योगशास्त्रे' ये शब्द भी लिखे जाते हैं। इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि गीता का मुख्य उद्देश्य मनुष्यों को ऐसा योगयुक्त जीवन व्यक्ति करने की शिक्षा देना ही है जिससे इहलोकिक जीवन में सफल मनोरथ होकर परमात्मा का मान्निध्य प्राप्त कर सकें। यह सत्य है कि गीता में सबसे अधिक प्रधानता 'निष्काम कर्मयोग' को दी गई है और योग की सबसे श्रेष्ठ व्याख्या 'योग. कर्मसुकौशलम्' बतलाई गई है, किर भी उसमें

पतञ्जल योगदर्शन में वर्णित प्रष्टाङ्ग-योग की विधि का भी सर्वथा अभाव नहीं है। गीता में प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया गया है और छठे अध्याय में तो पतञ्जल योग-दर्शन में दी गई योग विधि का यथातथ्य वर्णन पाया जाता है।

इस प्रकार के योग का फल भी महान् कहा गया है। ऐसे योगाभ्यासी को ससार के दुख, क्लेश, चढ़ाव उतार, विघ्न-वाधायें किसी भी समय व्यथित या ध्याकुल नहीं कर सकती। वह प्रत्येक अवस्था में पूर्ण शान्त, सतुष्ट और निश्चल रहता है। इसका वर्णन करते हुए कहा गया है—

— यथा दीपो निवातस्यो नेऽज्ज्ञते सोपमा स्मृता ।

योगिनो यतचित्तस्य युज्ज्ञतो योग मात्मन् । १६।

यत्रोपरमते चित्त निरुद्ध योग सेवया ।

यत्र चैवात्मनात्मान पश्यन्तात्मनि तुष्यति । २०।

त विद्याद् दुख सयोगवियोग योगसज्जितम् ।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिविष्णु चेतसा । २३।

अर्थात्—जिस प्रकार वायु रहित स्थान में रखा हुआ दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही अवस्था परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की होती है। जिस अवस्था में योग के अभ्यास से निरुद्ध हुआ चित्त उपराम हो जाता है और जिस अवस्था में परमेश्वर के ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म वृद्धि द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार होने लगता है तो वह योगी सच्चादानन्द परमात्मा में ही सतुष्ट होता है। जो दुख रूप ससार के सयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है उसी को जानना चाहिए। वह योग विना उकताये हुए अर्थात् तत्पर हुए चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है।

गीता में जो योग प्रतिपादित किया गया है, वह अधिकाश

वेदान्तियों के सिद्धान्त को तरह शुङ्ख प्रयत्ना वर्तमान समय के भक्तों की तरह अपने ही उद्घार की प्राकौक्षा रखने वाला नहीं है, वरन् उसका मुख्य आधार सर्वव्यापी प्रेम है जो अपने साथ सब जीवों के उद्घार की कामना करता है। यही भाव निम्न श्लोक में स्पष्ट व्यक्त होता है—

आत्मौपन्थेन सर्वत्र सम पश्यति योऽजुन ।

मुख वा यदि दुख म योगो परमो मत ॥(६-३२)

अथात्—जो दूसरों को आत्मवत् समझकर उनके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझता है, वही परम योगी है। यही बात गीता के इस श्लोक में कही गई है—

सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि ।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदशन ॥

—भगवद्गीता ६-२६

अथात्—“योगयुक्त धूरुष सब पदार्थों में आत्मा का निवास देखता है। इस प्रकार उसे सासार की वास्तविक एकता का ज्ञान हो जाता है और वह समदर्शी बन जाना है।”

समता का व्यवहारिक रूप और उमके ग्राहिक लाभ का बरण करते हुए गीता ५-१८, १६ में कहा गया है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणो गवि हस्तिनि ।

शुनि चंवश्वपाके च पण्डितो समदर्शिन ॥

इहैव तर्जित सर्गो येपा साम्ये स्थित मन ।

निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

अर्थात्—“ज्ञानियों की दृष्टि में विद्या विनय युक्त ब्राह्मण, गाय, द्वाषी, कुत्ता, चारेडाल समान रहते हैं। जिन साधकों का मन साम्यावस्था में स्थिरता को प्राप्त हो जाता है वे इसी जीवन में मृत्यु लोक पर विजय प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है। अत मृत्यु की प्रतीक्षा न करके वे यहीं ब्रह्मभूत हो जाते हैं।”

यही वात गीता १८।५४ मे कही गई है कि समस्त प्राणीमात्र मे समहोकर वह मेरी परम भक्ति की प्राप्ति कर लेता है—

सम, सर्वेषु भूतेषु मदभक्ति लभते पराम् ।

यह गीता का साम्ययोग है। यही प्रोग का वास्तविक लाभ है। सासार मे मनुष्य को जो कुछ भय, विरक्ति व दुःख का अनुभव होता है, उसका एक मात्र कारण भिन्नता प्रथवा परायीपन का बोत्र ही होता है। दो भिन्न पदार्थों प्रथवा व्यक्तियों मे ही प्रतियोगिता भथवा सधर्प हो सकता है। पर जब प्रथकता की भावना को मिटाकर मनुष्य सासार मे सर्वत्र एक ही सत्ता, एक ही तत्व का अनुभव करने लगेगा तो न तो वह किरी से भयभीत हो सकता है, न धृणा कर सकता है, न क्रोध कर सकता है। ऐसा व्यक्ति ही पूर्ण निभय, निदृन्द हो सच्ची शान्ति और सुख का उपभोग कर सकता है।

अपने समस्त साधनों को भगवान के अपण करने पर गीता मे विशेष बल दिया गया है। यथा—

यत्करोषि यदभनासि यज्जुहोषि ददासि यद् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ (१।२७)

अर्थात्— हे कौन्तेय ! तू जो कुछ काम करता है, आहार ग्रहण करता है यज्ञ करता है, दान अथवा तप करता है, वह सब मुझे ही समर्पित कर।

फिर कहा है—

मन्मना भव मदभक्तो मद्याजी मा नमङ्कुरु ।

मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मान मत्परायण ॥ (१।३४)

अर्थात् “मुझमे मन लगा, मेरी भक्ति करो, मेरी उपासना करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस तरह से मत्परायण होकर योगाभ्यास करने पर तुझे मेरी प्राप्ति होगी।”

यही बात २८वें इनोक में कही गई है —

युभाद्युभफलंरेव मोक्षसे कमवन्वनै ।

सन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपेष्यसि ॥

अर्थात् “इन प्रकार कर्म करके कर्मों के शुभ शुभ परिणाम के वन्वन में तुमें मुक्ति मिलेगी । और इस कर्मफल के सन्यास से युक्तात्मा होकर तू मुक्त हो जायेगा और मुझसे एकात्मता प्राप्त कर लेगा ।”

इस योग की विवेचना एक विद्वान ने इस प्रकार की है —

“गीता के योग का मार भगवान ने अठारहवें अव्याय के ६५वें इनोक में कह दिया है कि ‘मेरे (भगवान के) मन में अपना मन मिलादो, मेरे भक्त हो जाओ, मेरा भजन करो, मुझे प्रणाम करो । मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि तुम मुझसे ही प्राप्त होंगे, क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो ।’” यह तत्त्व गीता का हृदय है । जैसा हम नमस्क सकते हैं, यह वह योग है जो मानव प्रकृति के सब प्रङ्गों को एक नूत्र में ले आता है । इसके विना योग क्या है ? ऐसा विकास किस काम का जिसमें सब अङ्गों का मामञ्जस्य न हो ? सभी अश शुद्ध, पवित्र और दिव्य न बनें ? यदि कोई कहे कि यह बड़ा कठिन और दुगम मार्ग है तो उत्तर यही है कि इसके निवा और कोई रास्ता नहीं है । यदि अधोगति से वाहर निकलना है, तो अन्त में इसी को अ गीकार करना पड़ेगा । भगवान कृष्ण ने स्वय कह दिया है कि ‘अनेक जन्मों के पश्चात ज्ञानी पुरुष मेरे पास आता है । अभी या पीछे सभी को इसी दुर्गम मार्ग या ‘लुरस्य वारा’ (तल-वार की वार) पर चलना होगा । चलते हुए चाहे पावो ऐ कितना ही रक्त निकले और हृदय का नाहन ढूढ़े पर इसमें सुदेह नहीं कि भगवान नदा हमारे गार्थ में नहैते हैं, एक लण के लिए भी अकेना नहीं छोड़ते ।

योग की जितनी भी प्रणालियों का वर्णन नीता में किया गया है, उन नव का आश्रय एक ही है—शक्तिहोनता अर्थात् वन्नन का निवारण शक्ति-नम्पन्नता अर्थात् स्वतत्त्वता—मोक्ष की ओर बढ़ना ।

माया-प्रकृति-शक्ति

गीता (४-६) में माया शब्द आधा है जहाँ भगवान् ने कहा है अपनी ही प्रकृति में अधिष्ठित होकर मैं अपनी माया से जन्म लिया करता हूँ। भगवान् शङ्कराचाय इस माया को शक्ति रूपिणी कहा है—

अव्यक्ततनाम्नी परमेश्वशक्ति-

रनाद्विविद्या त्रिगुणात्मिका परा ।

कायनुमेया सुधियेव माया

यया जगत्सवमिद् प्रसूयते ॥

अर्थात् “परमेश्वर की अव्यक्ततनाम्नी शक्ति जिसने इस सारे जगत् को रचा है प्रनादि श्रविद्या, त्रिगुणात्मिका और सप्तर रूपों कार्य के परे है। कार्य रूपी विश्व को हृषि में रख कर ही शक्ति रूपी माया की सिद्धि होती है।”

गीता (६-१४) में भगवान् के कहा है कि मेरी यह गृणात्मक और दिव्य माया बही दुस्तर है।

दैवोह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

फिर वहा है—

नाह प्रकाश सर्वस्य योगमायासमावृत् ।

“अपनी योगमाया से निहित मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता।”

भगवान् ने चेतावनी देते हुए कहा है—

न मा दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराघम ।

माययापहृतज्ञाना आसुर भावमाश्रिता ॥

(गीता ७-१५)

“माया ने जिनके ज्ञान को विनष्ट कर दिया है, ऐसे मूढ़ और दुष्कर्मी नराघम आसुरों द्वाद्वि में पड़कर मेरी शरण में नहीं आते।”

अपनी शरण में आने का भगवान् ने माया को पार करने का उपाय गीता में बताया है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेता तरन्ति ते । (७ १४)

श्रूति ते कहा है कि त्रिगुणमयी माया मे स्थित यह मारा चरा-
चर जगत् ईश्वर से अपास है ।

ईशावाम्यमिद सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

(ईशीपनिषद् १)

इवेताऽवशरेपनिषद् ४-१० मे प्रकृति को माया और माया
के अविविति को परमेश्वर कहा है—

‘माया तु प्रकृति विद्यान्मायिन तु महेश्वरम् ।’

इस प्रकृति को गोता १३।१६ मे अतादि कहा है और विकार
व गुणों को इसी से उपजा हुप्रा माना है । गीता (१४-३) मे सृष्टि की
स्वत्तति प्रकृति और पुरुष के संयोग मे ही मानी है—

मम योनिर्महद्व्रह्मा तस्मिन् गभ दधाम्यहम् ।

सभव सर्वभूताना ततो भवति भारत ॥

अर्थात् ‘ हे भारत । मेरी महद्व्रह्मा रूपी प्रकृति सम्पूर्णं भूतो
की योनि है और मैं उस योनि मे चेतन रूप वीज वी प्राप्ति करता
हूँ । उस जड चेतन के सहयोग से ही समस्त भूतों की सृष्टि होती है । ’

विद्या एव मुनि न इष्का कारण वताने ह्यए कहा है—

न केवल ब्रह्मैव जगत्कारण निविकारत्वात् । नापि
केवल जर्ति कारण स्वातन्त्र्यमावात् । तस्मादुभय मिलित्वैव
जगत्कारणं भवति ।

“निविकार” होने के कारण केवल ब्रह्म जगत् का कारण नहीं है ।
केवल शक्ति को भी कारण नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसमे भी
स्वतन्त्रता का धराव है । इस निए ब्रह्म और शक्ति दोनों के संयोग मे
ही विश्व की स्वत्तति होती है । ”

गीता (३-२७) मे प्रकृति के गुणों-नत, रज और रम से ही
समर्पण की स्वत्तति मानी है—

प्रकृते क्रियमाणानि गुणे कर्माणि सर्वश ।

गीता (१३-२०) से काय और कारण(शरीर और इन्द्रियों) के कार्यों के लिए प्रकृति को ही कारण माना है—

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतु प्रकृतिरुच्यते ।

गीता (१४) में सत्, रज और तम को भी प्रकृति के ही कारण माना है—

सत्त्र रजस्तम इति खुणा, प्रकृतिसम्भवा ।

यही निविकार आत्मा को शरीर से बाहरते हैं—

निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमवयम् । (गीता १४-५)

इस पृथ्वी, आकाश अथवा देवलोक में ऐपा कोई पदाथ नहीं जो प्रकृति के इन गुणों से मुक्त हो ।

न तदस्ति प्रथिव्या वा दिवि देवेषु वा पुनः ।

सत्व प्रकृयिज्यमुक्त यदेभि स्यात्त्रिभिर्गुणे ॥

(गीता १८-४०)

यह प्रकृति आठ प्रकार की है—गीता ६-४५ के अनुसार—
भूमिरापोऽनलो वायु ख मनो बुद्धिरेव च ।

अहकार इतोय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टवा ॥

अपरेयमितस्त्वन्या प्रकृदि विद्धि मे पराम् ।

जीवभूता महाबाहो यगद धायते जगत् ।

पाँच सूक्ष्म भूत-पृथ्वी, जन, अग्नि, वायु, आकाश और मन, बुद्धि, अहकार यह आठ प्रकार की मेरी प्रकृति है। इसे अपरा प्रकृति कहते हैं जो निम्न श्रेणी की है। दूसरी प्रकृति है—परा जो उच्च श्रेणी की है जो जगत को को धारण करती है।

मगवात ने कहा है जो इस रहस्य को नहीं जानता, वह अह-से मोहित होकर अपने को ही कर्ता मानने लगता है वह अज्ञाती है—

अहकार विमूढात्मा कर्त्तहिमिति मन्यते ।

गीता १३ २६ मे कहा है—

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वं ।

य पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥

अथत् “जिसने यह समझ लिया कि सब कर्म सब तरह से प्रकृति से ही क्रियान्वित होने हैं और आत्मा अकर्ता है, समझना चाहिए कि उपने वास्तविक तत्त्व को जान लिया ।”

इसी प्रकृति को शक्ति के नाम से अभिहित किया गया है। गीता का यह स्थिरान्त शक्ति-मिद्धान्त से मिलता जुलता है। गीता मे शक्ति-सिद्धान्त बड़े ही सशब्दत रूप मे वर्णित किया गया से। चौथे अध्याय के इलोक ६ से ६ मे जहाँ अवतारवाद का विवेचन किया गया है, यह सिद्धान्त और निखर कर आया है। गीता मे इदित के ऊँचे से ऊँचे स्वरूप का वर्णन है। उसके स्तर को क्रमश बढ़ाया गया है। शक्ति की स्वतत्र सत्ता भी बताई गई है। उसे ईश्वर के आधीन भी बताया गया है —

प्रकृति स्वामवष्टम्य विसृजामि पुन धुन् ।

भूतग्राममिम कृतस्तमवश प्रवृत्तेर्वशात् ॥ (गीता ६-८)

‘मैं अपनी प्रकृति को अपने हाथ मे लेकर भूतो के इस समग्र समुदाय को बार-बार उत्तर न करता हूँ’ गीता मे शक्ति और पुरुष की अभिन्नता वा भी पिछान्त स्वीकार किया गया है—

मया तत्मिद सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वं भूतान न चाह तेष्ववस्थित ॥ (६४)

“मैंने अपने अव्यक्त रूप से इस सारे दिश को विस्तृत और व्यापक किया। सारे भूत मुझमे हैं।”

यथाकाशस्थितो नित्यम् वायु सवत्रगो महान् ।

तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥

“सब और प्रकाशित होने वाली महान वायु जिस तरह सब और आकाश मे रहती है, उसी तरह मब भूतो को मुझ मे जान ।”

गीता के शक्तिवाद की यह महान विवेचना है जिसे तत्र और वैद मुख्य रूप से स्वीकार करते हैं।

दुर्गि सप्तशती और गीता में अनुकूलता।

दुर्गि सप्तशती गीता की परवर्ती मानी जाती है। यौँ कहना चाहिए कि भगवद्गोता की आधारशिला पर ही सप्तशती की रचना हुई है। दोनों का व्याध्ययन विषयों में साम्य प्रदर्शित करता है।

गीता में ७०० इलोक हैं। सप्तशती में ५३५ इलोक १०८ अर्ध इलोक और ५७ 'उचाच' है। उनका योग ७०० होता है।

गीता महाभारत का एक शाखा है। महाभारत के रचियता महर्षि व्यास हैं। अत गीता व्यास की ही रचना है। सप्तशती मार्कण्डेय पुराण का एक भाग है। पुराणों के रचियता भी व्यासजी ही माने जाते हैं। अत सप्तशती के लेखक भी व्यास ही मिथ्या होते हैं।

गीता में ज्ञान के उपदेष्टा स्वयं भगवान कृष्ण हैं और श्रोता हैं अर्जुन। सप्तशती के उपदेशक हैं—मेघा मूर्खि और श्रोता हैं—सुरथ—क्षत्रिय राजा और समाधि वैद्य। मेघा का अर्थ है—आत्म ज्ञान। शस्त्ररभाष्य गीता (१८।१०) में कहा है—

मेघ्या आत्मज्ञान लक्षणया प्रज्ञपा।

सुरथ का अर्थ करते हुए कहा गया है—

सुष्ठु रस्यतेऽन् इति सुरथ।

यहाँ सत्य प्रवृत्ति-मार्ग के पथिक को सुरथ कहा है। दुर्गा ११४ में भी कहा है—

स्वारोचिवेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवसशमुद्भव ।

सुरथो नाम राजाभूत् समस्ते क्षितिमण्डले ॥

अर्थात् ‘पहले स्वारोचिप मन्वन्तर से चैत्र के वश में उत्पन्न होने वाला सुरथ नाम का राजा इम समस्त भूमङ्गल पर हुआ था ।’

दुर्गा सप्तशती (शान्तनवी टीका) के अनुसार —

“रमन्तेऽस्मिन् इति रथ । शोभनो रथो यस्य स सुरथ ।”

अर्थात् “जिसमें देवता रमण किया करते हैं वह रथ है। अथवा शोभन त्रिमका रथ है वह सुरथ है ।

समाधि का अभिप्राय निवृतिमाग के पथिक साधक से है ।

समाधि,— समाधीयने सर्वमस्मिन् ।

अर्थात्—जिसमें सभी कुछ का समाधान किया है उसे समाधि कहा जाता है ।

समावोयतेऽस्मिन् पुरुषोपभोगाय सर्वमिति समाधि ।

अर्थात् ‘जिसमें पुरुष के उपभोग के लिए सब का समाधान किया जाता है । भली भाति ग्रहण करने को समाधान कहा जाता है ।’

अर्जुन ज्ञानी था परन्तु जब मिथ्या अज्ञान ने उसे आ देरा तब उसे ज्ञानयोग के उपदेश की आवश्यकता हुई । अविवेक से ही अज्ञान की उत्पत्ति होती है । इस महारोग की रामवाण मोपधि विवेक ही हो सकती है । इसलिए भगवान ने अर्जुन को बुद्धि की शरण में जाने का

“बुद्धौ शरणमन्विच्छ” (गीता, २।४६)

मेघा शूष्यि भी इसी तत्व के प्रतीक हैं । सुरथ और समाधि को जब जीवन-माग में वादा और विपत्ति भाती है और चारों ओर निराशा ही निराशा दिखाई देती है तो बुद्धि की शरण में जाने के भ्रतिरिक्त और कोनम । माग हो सकता है ? वाघाए आने पर चिंता मग्न रहना, अपने भाग्य और उसके निर्माता को कोसना, जिनसे प्रत्यक्ष रूप से कष्ट हो

रहा है, उन पर प्रारोप प्रतिरोप लगाना ही कायरता और अज्ञानता के

Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MA

चिह्न हैं। इसका उपाग ही ऐवल बुद्धि के निर्देशन में चलता है। वही सप्तशती के दोनों पाठों ने किया है।

प्रज्ञान को शास्त्रीय भाषा में प्रगुर रहते हैं और ज्ञान को देव। मानव मन में दोनों विद्यमान रहते हैं। उसकी प्रकृति में लीन गुण हैं—सत्, रज और तम। जब रज और तम गिलकर सत् को दया लेते हैं अर्थात् जब मनुष्य भोग ऐश्वर्यों में लिप्त होकर घपने सत् तत्त्व को निर्बंध कर देता है, तो उसे असुरता का देयत्व पर माधिपत्य होना कहते हैं।

आसुरी बुद्धि की परिभाषा करते हुए गीता (१७।५।६) में कहा गया है—

अशास्त्रविहित धोर तप्यन्ते ये तपो जन। ।

दम्भाहकारसयुक्ता कामरागबलान्विता॥

पथयन्त शरीरस्थ भूतग्राममचेतस ।

मा चैवान्तः शरीरस्थ तान्विद्युयासुरनिश्चयान् ॥

'पथात्' जो व्यक्ति दम्भ और अहकार के यशीभूत होकर काम और मासकि की पूति में शास्त्र विद्या रायों में लीन रहते हैं, और जो न ऐवल देव के पचमद्वागृहों को ही बलिक उसमें नियास करने वाले गुभको भी कष्ट दिया करते हैं, उन मवियें ही जनों को आसुरी बुद्धि का मानो।"

प्रमुख प्रसुरो का यर्णन सप्तशती में आता है। उन्हीं का वप देवी का उद्देश्य था। वे प्रसुर हैं—मणि, कंटभ, महिपासुर शुभ, निशुभ, धूमलोचन, रक्षादीज, चण्ड मुण्ड, सुशीष।

मणुकंटभ का माध्यास्मिन्द्र पर्ण है—राग और हेष, महिपरसुर तामस् प्रह्लाद है, शुभ का पर्ण है—अहकार और निशुभ का पर्ण है ममकार, धूमलोचन लोग है। रक्षादीज का मविप्राय है—विषरागिलास। शुभ मौर निशुभ के भूत्य है—चण्ड और मुण्ड प्रथात् काम और

क्रोध । नुग्रीव इनका काम करता है, वह परिग्रह का प्रतीक है । सप्तशती (५।११४) मे कहा है—

परमेश्वरपत्रुल प्राप्त्यपे मत्परिग्रहात् ।
एतद्वुद्धया समालोच्य मत्परिग्रहता ब्रज ॥

भर्ति 'मेरा परिग्रह प्राप्त करने मे पर्यात् मेरी प्रपत्ति मे प्राप्त हो जान पर अत्यविक एव अमीमित वंभव की प्राप्ति कर लेणा । इमको अपनी दुष्टि मे भलीभांति विचार करके मेरी परिग्रहता को ग्रहण करो ।'

गीता मे भी कहा है कि जो व्यक्ति काम, क्रोध, घहङ्कार, बल, दर्प को आवार मानकर अपने प्रीर पन्थ शरीरो मे निवास करने वाले मुझ को द्वेष करते हैं प्रीर सन्मार्ग के पथिकों की निन्दा करते हैं । वे असुर हैं, अशान्त रहते हैं । शान्त अवस्था प्राप्त करने के लिए इस आमुरी सम्पत्ति का त्याग करना होगा । (१६।१८) काम-क्रोध प्रीर लोभ को नरक का द्वार कहा गया है जो हमारा नाश करते हैं । इसलिए इनके त्याग की प्रेरणा दी गई है—

त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन ।
काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्वयत्यजेत् ॥

(गीता १६।२१)

अनेक प्रकार की कल्पनामो मे अमित, मोहक चंगुल मे केषे प्रीर विषय वासनामो मे आसक्त असुर अपवित्र नरको मे जाते हैं—

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृया ।
प्रपत्ता, कामभोगपु पतन्ति नरकेऽशुचो ॥

(गीता १६।१६)

भगवान कहते हैं कि अशुभ काम करने वाले इन द्वेषी प्रीर क्रूर भयम व्यक्तियों को सदैव पाप योनियो मे पटका जाता है—

तानह द्विषत क्रूराम्सस। रेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीप्वेवरयीनिषु ॥

(गीता १६।१६)

गीता (३।३६) में भी काम और क्रोध को मानव का शत्रु कहा है । ३।३८ में काम को कभी भी तृप्त न होने वाली अग्नि कहा है । इस पर ज्ञातको ढकने का आरोप लगाया गया है । (३।४०।४३) में इस काम रूपी शत्रु को मार डालने की प्रेरणा दी गई है । सप्तशती में भी देवता देवी से यही प्रार्थना करते हैं ।

अमुर विनाश का उद्देश्य सप्तशती और गीता दोनों में है । गीता में इसके माध्यम अर्जुन बनते हैं परन्तु प्रोत्साहन मिलता है भगवान कृष्ण से । अर्जुन तो केवल श्रीजार मात्र बनते हैं । दोनों के सम्मिलित प्रयत्न का उद्देश्य है समाज में व्यापक रूप से फैले हुए आसुरी भाव को दूर करना । सप्तशती में भी भगवती का यही उद्देश्य है परन्तु इस कार्य की वह स्वय करती है और रण में असुरों को ललकार कर एक-एक करके उनका वध करती है ।

दोनों ग्रन्थों की उपासना पढ़ति में कुछ अन्तर प्रतीत होता है । जहाँ सप्तशती में सकाम उपासना पर बल दिया गया है और कहा गया है “रूप देह, जय देहि, वशो देहि, द्विषो देहि” वहाँ गीता में निष्काम कर्मयोग की शिक्षा दी गई है और कहा गया है कि काम करते जाओ परन्तु फल की इच्छा मत करो ।

गीता में भगवान ने अपने अवतार का उद्देश्य बताते हुए कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिभवति भारत ।

अम्युत्थानमधमस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूना विनोशाय च दुष्कृताम् ।

धमस्थापनार्थ्यि सम्भवामि युगे युगे ॥

अर्थात् 'हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म प्रबल हो जाता है तब मैं स्वयं प्रवर्णार लिया करना हूँ । सावुप्रो के सरक्षण और दुष्टों के विनाश के लिए, युग युग में धर्म की स्थापना के लिए मैं जन्म लिया करता हूँ ।

सप्तशती के अनुसार जब देवता भीगो मे लिप्त होते हैं तो उनकी क्षीण होती है नभो उनके अदिकार छीन लिए जाते हैं, परन्तु जब वे भगवान का स्मरण करते हैं और भगवती के दर्शन करते हैं तो उनका सरक्षण होता है और असुरों का नाश होता है । दोनों का मूल उद्देश्य एक ही है ।

सप्तशती मे जब देवता असुरों से पराजित होते हैं तो वह भगवती की शरण मे जाते हैं और शुभ, निशुभ, रक्तबीज, घूम्रलोचन, चण्ड मुण्ड और सुग्रीव सात असुरों के विनाश की प्रार्थना करते हैं । सप्तशती के असुर अलक्ष्मीरिक रूप से वर्णित किए गये हैं परन्तु गीता का स्पष्ट प्रतिपादन है—वे हैं अहकार, ममत्व, काम, क्रोध, बल, दर्प और परिग्रह । गीता के अनुसार जो व्यक्ति इन्हें आश्रय देत है वह भगवान से द्वेष करते हैं और उनकी आज्ञा का उल्लंघन करते हैं । इसके विपरीत जो इन आसुरी प्रवृत्तियों का त्याग करते हैं, वह परमात्मा को प्राप्त होते हैं ।

सप्तशती में देवताप्रो ने “या देवी सर्वभूतेषु” आदि स्तुति की है । इसमे भगवती के अवश्यक अविनाशी वसु का वर्णन है । इस स्तुति मे सात्त्विक ज्ञान की झलक मिलती है । गीता मे सात्त्विक ज्ञान का स्पृश्यतरण करते हुए कहा गया है—

सर्वभूतेषु येनेक भावमव्ययमीक्षते ।

अविभवत विभवतेषु तज्ज्ञान विद्धि सात्त्विकम् ॥

(गीता १८।२०)

अर्थात् “जिस ज्ञान से यह प्रतीत हो कि भिन्न-भिन्न प्राणियों

में एक ही अविभक्त भाव और अव्यय भाव है, वह मात्रिक ज्ञान है।”

सप्तशती में देवता भगवती की इस प्रकार स्तुति करते हैं—

देव्या यया तत्मिद जगदात्मशक्त्या,

पर्यात् जिस जगजननी देवी ने यह समूर्णं जगत् अपनी शक्ति
के द्वारा विस्तार वाला निर्मित किया है।

यस्या प्रभावमतुल भगवाननन्नो

ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमल बल च ।

अर्थात् जिस महामाया के इस असोम प्रभाव को साक्षात् अनन्त
भगवान्-ब्रह्मा और शिव भी बनलाने की क्षमता नहीं रखते हैं और
देवी के बल विक्रम को भी जो कि अनुन है वे नहीं कह सकते हैं।

‘हेतु समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषं न जायसे’

“सत्त्व -रज-तम इन तीन गुणों वाली आप हैं और समस्त
लोकों के सृजन का कारण भी हैं किन्तु दोषों से आपका स्वरूप जाना
नहीं जाता है

‘स्वग प्रकाति च तदो भवतोप्रसादा-

ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ।

“फिर हे देवि ! आपके प्रसाद से स्वर्ग की प्राप्ति किया करता
है। इससे आप तीनों लोकों में फल प्रदान करने वाली हैं—इसमें कोई
सन्देह नहीं है।

इसका अभिप्राय यह है कि जब देवताओं में दोष उत्पन्न हो
जाते हैं तब वह भगवती को भूल जाते हैं। उनकी निवृत्ति होते पर ही
उसका स्मरण होता है।

इन भावों को गीता में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

इच्छाद्वेषमुथेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।

सवभूतानि सम्मोह सर्ग यान्ति परन्तप ॥ (७१२७)

अर्थात् “हे भारत ! इच्छा और द्वेष से उपजने वाले द्वन्दो के मोह से इस सृष्टि में समस्त प्राणी भ्रम में फँस जाते हैं ।”

सप्तशती के ११वें अध्याय के आठवें श्लोक से २३ वें श्लोक तक नारायणी स्तुति है । यहाँ देवी के विभिन्न रूपों का वर्णन है । उसे विश्व का उपसहार करने वाली (६), कल्याण दायिनी शरणागतवत्सला (१०), सृष्टि, पालन और सहार की शक्तिभूता (११) बताया गया है । ऋद्धाणी, माहेश्वरी, कोमारी, वैज्ञावी, वाराही, नारसिंही, शिवदूती, मुण्डमदिनी चामुण्डा, सभी रूप उसी देवी के हैं और सहस्र नेत्रों वाली (१३-२१), लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, (२२) मेघा, सरस्वती, श्रेष्ठा, ऐश्वर्यरूपा सयम परायणा, और सबकी अधि-श्वरी वही है (२३) वह सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी और सब प्रकारकी शक्तियों से सम्पन्न है (२४), जो साधक भगवती के इस तत्व ज्ञान को जानता है, वही उसे पाने का अधिकारी है ।

गीता ७।१६ में भी यही भाव है—

बहुना जन्मनाम ते ज्ञानवान्मा प्रपद्यते ।
वासुदेवं सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ ॥

अर्थात् ‘अनेक जन्मों के बाद जब यह ज्ञान हो जाए कि जो कुछ है वह सब वासुदेव ही है’, ज्ञानवान् मुझे पा लेता है, ऐसा महात्मा दुलभ है ।’

दोनों के भावों में अनुकूलता है ।

सप्तशती के मध्यम चरित्र के अनुसार जब महिषासुर ने देवताओं को पराजित किया और इन्द्रामन का अधिकारी हो गया तो देवता ऋद्धा को लेकर विष्णु और शिव के पास गए । हरि-हर को देवताओं पर दया ग्राई । उनके मुख से तेज निकला । अन्य देवताओं ने भी अपने तेज को इसमें सम्प्रसिलित कर दिया । और वह तेज-पञ्ज देवी के रूप में

परिणित हुआ । इस देवी ने महिषासुर का वध किया और देवी की इच्छा पूर्ण हुई । हरि-हर की शरण में जाने से निश्चित रूप से यही परिणाम होता है ।

गीता का १४ में भी यही भाव ध्यक्त किया गया है—

अनन्यचेता सतर्तं यो मा स्मरति नित्यश ।

तस्याह सुलभं पार्थं नित्ययुक्तस्य योगिन ॥

अर्थात् ‘हे पार्थ ! अनन्य भाव से जो नित्य मेरा स्मरण करता है, उस नित्य युक्त योगी को मेरी प्राप्ति सुविधापूर्वक होती है ।

देवी के मध्यम चरित्र के भनुमार जब निशुभ्म मारा गया तब शुभ्म ने दुर्गा से कहा कि तू तो व्यर्थ ही विजय का घमण्ड कर रही है, तू तो दूसरी स्त्रियों के बल पर युद्ध कर रही है (१०.३) । इस पर देवी ने उत्तर दिया—

एकेवाह जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा !

पश्येता दुष्टं मय्येव विशन्त्योमद्विभूतय (१०.५)

‘मैं अकेली ही हूँ । इस जगत मेरे अतिरिक्त और कोन है ? देखो यह मेरी ही विभूतिया मुझ मे ही विलुप्त हो रही है ।’

तत् समस्तातता देव्यो ब्रह्माणोप्रमुखा लयम् ।

तस्या देव्यास्तनौ जगमुरेकेवासीत्तदाम्बिका (१०.६)

इसके बाद ब्रह्माणी आदि समस्त देवियाँ अम्बिका देवी के शरीर मे प्रविष्ट हो गईं । उस समय केवल अम्बिका देवी ही शेष रह गई ।’

फिर देवी ने कहा—

अह विभूत्या बहुभिरहि रूपेर्यदास्थिता ।

तत्सहृत मयेकेव तिष्ठाम्याजो स्थिरो भव । (१०.८)

‘मैं अपनी विभूति से विभिन्न रूपों मे यही प्रस्तुत हुई नी, उहे

मैंने समेट लिया । अब अरेली ही युद्ध मे स्थित हूँ । तुम भी स्थित हो जाओ । ”

उपरोक्त इनोंमे देवी ने प्रद्वैत भावना को व्यक्त किया है ।

नान्तोऽस्ति मम दिव्याना विभूतीना परन्तप । (१०।४०)

‘मेरी दिव्य विभूतियो का इन नहीं हैं ।’

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्व श्रीमद्भूजियमेव वा
तत्तदेवावगच्छ त्व मम तेजोऽशसम्भवम् (१०।६१)

वह सभी वस्तुएँ मेरे ही तेज से उपजी हुई समझो जो वैभव,
लक्षणी या प्रभाव से युक्त हैं ।”

भगवान ने अपनी विभूतियो का वर्णन करते हुए कहा है कि
मेरुद्रो में शकुर यज्ञ और राक्षसा मे कुवर वसुओ मे पात्रक, पर्वतो मे
मेह (१०।२३) पुरोहितो मे वृहस्पति, सेनापतियो मे स्कन्द जलाशयो
मे समुद्र (२४), महर्षियो मे भृगु, वाणीपे ऊँकार यज्ञोमें जपयज्ञ स्थावर
पदार्थों मे हिमालय, (२५), वृक्षो मे पीपल, देवर्षियो मे नारद, मिठ्ठो
मे कपिल, (२६) घोडो मे उच्चे श्रवा, गजेन्द्रो मे एरावत, मनुष्यो
मे राजा (२७) आपुओ मे वज्र, गीत्रो मे कामधेनु, सर्पों मे वामुकि
(२८), नागो मे अनन्त, जनचर प्राणियो मे वरण, पितृगो मे अर्थमा
और नियमन करने वालो मे यम हूँ (२९), दैत्यो मे प्रह्लाद ग्रसने
वालो मे काल पशुप्रो मे बिहू, पक्षियो मे गरुड, वेग वालो मे वायु,
पास्त्र वारियो मे राम, मद्दलियो मे मगर, नदियो मे भागीरथी (३१)
विद्याप्रो मे आत्म विद्या, (३२) वैदिक स्तोत्रो मे वृहत्साम, छन्दो, मे
गायत्री, मासो मे मार्गशीष, ऋतुप्रो मे वसन्त (३५) यादवो में
वसुदेव, पाण्डवो मे धनञ्जय, मुनियो मे व्यास और कवियो मे शुक्रा-
चाय (३६) में हैं । अन्त मे भगवान कहते हैं कि मत्र भूतों का जो

कुछ बीज है, मैं हूँ, ऐसा कोई चर अचर भूत नहीं जो मुझे छोड़ दे (३८) ।

भगवान् ने सभी भूतों और प्राणियों के साथ अपना एकत्व प्रदर्शित किया है ।

सप्तशती और गीता के ढग अलग-अलग हैं, अद्वैत भावना को व्यवत करने का भावना दोनों की एक ही है ।

सप्तशती के तीनों चरित्रों में ब्रह्म विद्या का चित्रण किया गया है । प्रथम अध्याय के श्लोक ५४-५८ तक महामाया भगवती (ब्रह्म विद्या) का विवेचन है । सूत सहिता में भी पार्वती को परम विद्या और ब्रह्म विद्या प्रदान करने वाली कहा है ।

“पार्वती परमा विद्या ब्रह्म विद्या प्रदायिनी”

गीता का भी विषय ब्रह्म विद्या है, इसके तो प्रत्येक अध्याय के अन्त में ‘ब्रह्म विद्याया योग शास्त्रे’ लिखा है, इससे दोनों का प्रतिपाद्य विषय एक ही प्रतीत होता है ।

सप्तशती के प्रथम चरित्र की कथा के अनुसार जब मधु और कैटभ नामक दैत्यों ने ब्रह्मा को ग्रसने का प्रयत्न किया तो ब्रह्मा ने परमा-शक्ति से रक्षा की प्रार्थना की इसका । अभिप्राय है कि ब्रह्मा को परमा शक्ति का ज्ञान था जो गुणशय से परे परम भाव की प्रतीक है ।

इस भाव का, प्रतिपादन गीता १४।१४ में इस प्रकार है—

नात्य गुरोभ्य कर्त्तर यदा द्रष्टानुपश्यति ।

गुरोभ्यश्च पर वेत्ति मद्भाव सोऽधिगच्छति ॥

‘द्रष्टा जब यह समझ जाता है कि (‘प्रकृति’) गुणों के सिवाय और कोई कर्ता नहीं है और जब तीनों गुणों से परे तत्त्व को भली प्रकार जान लेता है, तो वह मुझमे मिल जाता है ।

यही बात गीता ३।२७ में कही गई है—

प्रकृते क्रियमाणानि गुणं कर्माणि सर्वंश ।
अहकार विमूढात्मा कर्त्त्वाहिमिति मन्यते ॥

“प्रकृति के सत्त्व-रज-त्त्व गुणों से ही सब काम होते हैं, पर अहकार से मोहित अज्ञानी अपने को कर्ता समझता है।”

ब्रह्मा सृष्टि के रचयिता है परन्तु उनमें अहकार नहीं था, इसी तरह जो साधक प्रकृति का कर्ता मान कर अपने को निरहङ्कार स्थिति में रखते हैं, उन्हे ही परम ज्ञान हो पाता है।

इस तरह से दुर्गा सप्तशती और गीता के विचारों में अनुकूलता सिद्ध होती है।

दुर्गाउपासना का बौद्धिक अध्ययन

परिभाषा

दुर्गा-दुर्गतिनाशिनी है। दुर्गोग्रा हाने के कारण दुर्गा प्रकृति की दुर्गा कहा जाता है। दुर्गा में 'दु' अक्षर, दारिद्र, दुख दुर्भिक्ष, दुर्व्यसन आदि दैत्य के नाश का प्रतीक है 'रेफ' रोगधन है, गणा पापधन और अगर अन्याय अत्याचार अधर्म, अनेकता, आलस्यदि असुरों प्रकृतियों के नाश वाचक है।

प्राचीनता

भारत में प्राचीन काल से दुर्गा की उपासना इमी उद्देश्य के लिए चली आ रही है। महाभारत के समम भगवान् कृष्ण ने विजय श्री प्राप्त करने के लिए दुर्गा की पूजा करन की प्रेरणा की थी। महाभारतलीन कि गोपों ने अम्बिका की पूजा की थी। भगवान के अनुसार गोपियों ने 'कात्यायनी' देवी की आराधन की थी। यादवों ने दुर्गा की साधना को अपनाया गा—'दुर्गा क्ररण्पलब्ध्ये' (भगवान)। रुक्मिणी जी ने अम्बिका की उपासना की थी।

नमस्ये त्वन्विकेऽभीक्षण स्वसन्तमयुता शिनाम्'

अवतार का उद्देश्य

दुर्गा सघ शक्ति की प्रतीक है क्योंकि उनका आर्विभाव ही देवताओं की सगठन शक्ति से हुआ है। यमिरड के पुराण में इसका रोचक वरण मिलता है जो इस प्रकार है —

“क्रोध मे युक्त विष्णु भगवान् शिवजी एव ब्रह्मा जी के मुखों
मे एक विस्तृत तेज प्रकट हुया। इसी प्रकार इन्द्र और दूसरे देवताओं
के मुखों मे भी तेज निकला अन्यत निकला हुआ समस्त तेज मिल कर
एक ही गया इसके पश्चात् मिल कर एक हुए उम अत्यन्त तेज पुञ्ज
को जिसकी ज्वालाएँ मम्पूर्ण दिखायी मे फैन गई पर्वत के तुल्य जबते
हुए देखा। फिर वह एकत्रित विमुक्ति का अपनी आभा से प्रकाशित
करने वाला तेज-पुञ्ज भी रूप मे परिवर्तित होने लगा। शिव जी
के मुख से प्रकट हुए तेज मे उसका मुख, रास के तेज मे केश तथा
विष्णु, के तेज मे उसकी दो भुजाएँ बन गई। चन्द्र के तेज मे दोनों
मन इन्द्र के तेज से मध्य प्रदश, वरुण के तेज मे जघा, और अरु
पृथ्वी के नेज मे निनम्ब, ब्रह्मा के तेज से चरण, सूर्य के तेज से चरणों
की अगुलिया वसुगणों के तेज से हाथों की अगुलियाँ, कुवेर के तेज
मे नामिका, प्रजापति के तेज से दन्तावलि, अग्नि के तेज मे त्रिनेत्र,
दोनों मध्याश्रो के तेज म सृकुटि पवन के तेज मे दो कान बन गये एव
अन्य दूसरे देवताओं विश्वकर्मी श्रादि के तेज मे भी उमके अन्य मम्पूर्ण
होकर उम मङ्गलकारी देवी ने जन्म लिया फिर नभी देवताओं ने उन्हे
प्रपने-प्रपन युद्धास्व प्रदान किये। उमके पश्चात् शिव जी ने अपने घूल
म श्ल उत्पन्न करके उन्हे प्रदान किया विष्णु भगवन् ने अपने चक्र
म चक्र उत्पन्न करक दिया, वरुण ने उन्हे शब, हृताशन ने शक्ति एव
पवन ने उन्हे वनुप व वाणि प्रदान किये।

सहस्राज्ञ अमरेजवर इन्द्र ने अपन वज्र से वज्र उत्पन्न करक
दिया और ऐगवत हाथों का धण्डा खोलकर दिया। यमराज ने काल-
दण्ड ने एक दण्ड उत्पन्न करने उन्हे प्रदान किया। वरुण ने पाणि,
दग्ध, प्रजापति ने ग्रन्थमाला एव ब्रह्मा जी ने उन्हे कमण्डन, प्रदान
किया, दिनकर ने उन कल्याणी देवी के समस्त रोम-रोम को अपनी

क्षीरोद समुद्र ने भी पूर्ण उज्ज्वल मोनियो का हार, दो स्वस्थ वस्त्र सुन्दर चूडामाणी, दिव्य कुराडल और कगन प्रदान किये। अद्वैचन्द्र ने भी सुन्दर पायल, दोनों बाहुओं में बाजूबन्द, कन्ठ के लिए सुन्दर आभूषण एवं समस्त श्रगुलियों में अनुपम श्रगूठियाँ दी। विश्वकर्मा जो ने अनुपम परशु और अकाट्य कवच उन्हे प्रदान किया। समुद्र ने खिले हुए कमल पुष्पों की शोभायमान मालाएं छण्ठ एवं सिर पर धारण करने के लिए दी। हिमालय ने देवी को सवारी के लिए मिह और विभिन्न रत्न प्रदान किये। पृथ्वी के आवार अनन्त नागेश ने देवी जी को महामणि युक्त नागहार प्रदान किया। अन्य दूसरे देवताओं ने भी उन्हे विभिन्न प्रकार के श्रस्त्र एवं आभूषण प्रदान किये।

दुर्गा प्रेरित करती हैं कि जब भी आमुरी तत्व सर उठाए और उनके विनाश की आवश्यकता पड़े तो इसका केवल मात्र उपाय यही है कि देव तत्व आपस में संगठित हो जाएँ। इस एकत्रित शक्ति पुञ्ज से ही उन्हे परास्त करना सभाव होगा; यह शक्ति ही विश्व कल्याण का हेतु ही सकती है।

दुर्गा के श्रवतारण का उद्देश्य समाज की शब्दवस्थित करने वाली आमुरी शक्तिओं का दमन है। भगवान् कृष्ण ने गीता में प्रतिज्ञा की है कि जब-जब धर्म की हानि होती है, तब तब वे धर्म को विनाश से बचाने और उसकी स्थापना के लिए मनुष्य रूप में श्रवतार धारण करते हैं। दुर्गा भी मार्कंगडेय में पुराण में ऐसी ही प्रतिज्ञा करती है। दुर्गा चरित्र से विदित होता है कि उन्हीं ने अपनी प्रतिज्ञा की निभाया है और अनचार, अन्याय, अत्याचार की प्रतीक आमुरी शक्तियों का विनाश किया है।

विभिन्न नाम

दुर्गा सप्तशती में दुर्गा के १०८ नामों का इस प्रकार वर्णन आता है।

१ ऊं सनी, २, साध्वी, ३, भवगीता, ४, भवानी, ५, भव-
मोचनी, ६, आर्या, ७, दुर्गा, ८, जया, ९, आद्या, १०, त्रिनेत्रा, ११,
शूलवारिणी, १२, पिताक वारिणी, १३, चिवा, १४ चण्डघण्ठा
१५ महातमा, १६ मन १७ बुद्धि, १८ अहकारा, १९ चित्तरूपा,
२० चिता, २१ चिति, २२ सर्व मन्त्रमयी, २३ सता २४ सत्यानन्द
स्वरूपिणी, २५ अनन्ता, २६ भाविनी, २७ भाव्या, २८ भव्या,
२९ अभव्या, ३० सदागति, ३१ शाम्भवी, ३२ देवमाता ३३
चिन्ना, ३४ रत्नप्रिया, ३५ सर्व विद्या, ३६- दक्षकन्या ३७ दक्षयज्ञ
विनाशिनी, ३८, अपर्णा, ३९, अनेकवण्णा, ४० पाटला ४१ पाटलावती
४२, पट्टाम्बरपरीवाना, ४३ कनञ्जीररञ्जिनी ४४ अमेयविक्रमा,
४५ क्रूरा, ४६ मुन्दरी, ४७ मुरसुन्दरी ४८- मातङ्गी, ५० मतेङ्ग-
मुनिपूजिता, ५१ ब्राह्मी, ५२ माहेश्वरी, ५३ ऐन्द्री, ५४ कौमारी,
५५ वैष्णवी, ५६ चामुण्डा ५७ वाराही, ५८ लक्ष्मी, ५९ पुरुषा-
कृति,, ६० विमला, ६१ उत्कीपणी, ६२ ज्ञाना, ६३ क्रिया, ६४
नित्या, ६५ बुद्धिदा, ६६ बहूना, ६७ बहूला ब्रेमा, ६८ सर्व वाहन
वाहना, ६९ निशुमधुमधहननी, ७० महियासुरमर्दिनी ७१, मधुकेटम-
हन्त्री, ७२ चण्डमुण्ड विनाशिनी, ७३ सर्वामुर विनाशा, ७४
सर्वदानवधातिनी, ७५ सर्वशास्त्रमयी, ७६, सत्या, ७७ सर्वस्त्र-
वारिणी ७८ अनेकशस्त्रद्रुता, ७९ अतेकात्मवधारिणी, ८० कुमारी
८१ एक कन्या, ८२ कंशो नी, ८३, युवती, ८४ यति ८५, अप्रोढा
८६, प्रोढा, ८७ वृद्धमाता, ८८, वलप्रदा, ८९ महोदरी ९० मुक्तकेशी,
९१ घोरस्पा, ९२ महावला, ९३ अग्निज्वाला, ९४ रोद्रमुखी,
९५ कालरात्रि ९६ तपस्त्रिनी, ९७ नारायणी, ९८- भद्रकाली
९९ विष्णुमाया, १०० जलोदरी, १०१ शिवदूती, १०२ कराली
१०३ अनन्ता, १०४ परमेश्वरी १०५, कात्यायनी १०६ सावित्री,
१०७ प्रत्यक्षा, १०८ ब्रह्मवादिनी ।

दुर्गा ने ३२ नामों का नाम भी प्रमाण लाया है, जो इस प्रकार
है—

१. दर्शि दुर्विकामी, २. दर्शिति दुर्विकामी, ३. दर्शि दुर्विति,
४. दुर्विकामी, ५. दुर्विति, ६. दुर्विकामी, ७. दुर्विति, ८.
दुर्विकामी, ९०, दुर्विकामी, ११, दुर्विकामी, १२.
दुर्विकामी, १३. दुर्विकामी, १४. दुर्विकामी, १५. दुर्विकामी
पदा, १६. दुर्विकामी, १७. दुर्विकामी, १८. दुर्विकामी, १९.
दुर्विकामी, २०. दुर्विकामी, २१. दुर्विकामी, २२. दुर्विकामी
पदा, २३. दुर्विकामी, २४. दुर्विकामी, २५. दुर्विकामी, २६.
दुर्विकामी, २७. दुर्विकामी, २८. दुर्विकामी, २९. दुर्विकामी, ३०.
दुर्विकामी, ३१. दुर्विकामी, ३२. दुर्विकामी।

मार्कंडेय दुर्विकामी के दुर्विकामी इस पकार भावे में है—

पायती जो के देवकोरा से उत्पन्न होने के बारण एवं 'प्रदा-
पोदितो' नाम से प्रसिद्ध हैं। ऐसी ने विवजो का दीर्घायमें में स्थान
नियुक्त किया, इस लिए उन्हें 'प्रदपदिती' कहा गया। गारायलि, गो-
द्वचरी और धौलारी नाम भी आये हैं। ऐसा, सरस्वती, शूति, धारभारी,
प्रायसि भाद्र नाम से भी उन्हें साधोदित किया गया है। गारायलि
नाम से परिच्छ द्वितीय भद्रकामी भौरधारित्वके हृषि में उन्हें भासा से रक्षा
की पार्थिता की गई है। ऐसी ने स्थान कहा है कि यह देखो को गदाय
करते हुए गेरी दत्त-मुख्यामती कुम्हार के समान पाल रख की हो जागी
जा सर्वों 'रक्ष-द्वारका' प्रसिद्ध हैं। 'शतावरी' नाम का शो शाय
स्पष्टीकरण करते हुए कहा जाता है कि जब री धर्मे तक भर्ता न होने के कारण
सूरा पठने गेयी और ये बिना मातृज्य शोषि के जन्म रही तो उस
साथ गेरी जो जेध होगे जिनसे मुक्तियों को देती ही और मुक्तिमण्ड मुक्ति
'शतावरी' कहु कर कीर्तन करेंगे।

कुछ और नामों के सम्बन्ध में येदी विवर हैं—

अपने घरीं में प्राण को धारण करके 'शाको' को उत्पन्न करके लोकों का पालन देहगी। इसलिए 'शाकाभर्गी' कहलाऊँगी। हुर्गम देत्य का वव करने के कारण 'दुर्गा' नाम होगा। भीमब्य ग्रहण करके हिमाचल के नाशों का वव कर्वने, इसलिए 'भीमा' कहलाऊँगी। अनग्नामुर को मारने वे निए भ्रम स्वयं धारण कर्वने इसलिए 'न्नामरी' नाम होगा।

अर्जुन ने जो दुर्गा पूजन किया था, उस मूलि में उपा, काली, करारी, कर्षिता, कीषकी, चण्डी कात्यायनी, भद्रकाली और महाकाली नाम प्रयुक्त किये गये हैं। कालीदास ने पार्वती का तीत नामोभवानी, गीरी और चण्डी से सबोधित किया है। महाभाग्नि में विद्यवामिनी का नाम आया है। कुमार सम्बव में वे नरस्या और कल्याण की प्रतिमा दिखाई देती हैं। शपर्गा, उपा और पार्वती विशिष्ट गुणों को प्रदर्शित करते हैं। याज्ञवल्क्य ने प्रमित्रका का विनायक की माता स्त्रीकार किया है। भवानी नाम कुमार सम्बव में आया है जहाँ पर शङ्खर के साथ सम्बन्धित है।

दुर्गा नामग्रहण का उद्देश्य नाशुनरों की रक्षा और पापियों का नाश करना है। अन, देवी के युद्धकानीन रूप का नाम दुर्गा है। वही मूल-गति है, जो विभिन्न रूप वारण करती है। युद्ध के समय वह दुर्गा बनती है, क्राघ में वह काढ़ी रूप वारण करती है, रहस्य में वह नवानी है और पुरुष में विष्णु उभो का रूप है। तेत्रीय आग्नेयक मनस्वती से सम्बन्धित है, जहाँ विद्या, महादेवी, सन्देवा, वरदा प्रादि नाम आये हैं। मुरुडकोपनिषद् में नात जिह्वाओं वालों श्रन्ति का नामग्रहण कालो-काली के रूप में किया गया है। यह नाम दुर्गा के वरित्रगत नक्षण है।

नहिसा

मार्कंण्डेय पुराण में दुर्गा की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है —

दुर्गा के ३२ नामों का और भी वर्णन आता है, जो इस प्रकार है—

१ दुर्गा दुर्गतिशमनी, ३ दुर्गपिंडि निवारिणी, ४ दुर्गमच्छेदिनी,
 ५ दुर्गसाधिनी, ६ दुर्गनाशिनी, ७ दुर्गतोद्धारणी, ८ दुर्गनिहन्त्री,
 ९. दुर्गमापहा, १०, दुर्गमज्ञानदा, ११, दुर्गदैत्यलोकदवानन्दा, १२
 दुर्गमा, १३. दुर्गमालोका, १४ दुर्गमत्स्वरूपिणी, १५ दुर्गमागं-
 प्रदा, १६ दुर्गमविद्या, १७ दुर्गमाश्रिता, १८ दुर्गम ज्ञान सस्थाना,
 १९ दुर्गमज्ञानभासिनी २० दुर्गमोहा, २१ दुर्गमगा, २२ दुर्गमा-
 यस्वरूपिणी, २३ दुर्गमासुराहन्त्री, २४ दुर्गमायुव्रधारिणी, २५
 दुर्गमाङ्गी, २६ दुर्गमता, २७ दुर्गम्या, २८ दुर्गमेश्वरी, २९
 दुर्गभीमा, ३० दुर्गभासा, ३१ दुर्गभ, ३२, दुर्गदीरणी।

मार्कंण्डेय पुराण में दुर्गा के कुछ नाम इस प्रकार आये हैं,—

पावती जी के देहकोश से उत्पन्न होने के कारण वह ‘शिवा-कोशिका’ नाम से प्रसिद्ध हुई। देवी ने शिवजी का दौत्यकर्म में स्वयं नियुक्त किया, इस लिए उन्हे ‘शिवदती’ कहा गया। नारायण, माहेश्वरी और कौमारी नाम भी आये हैं। मेवा, सरस्वती, भूति, व्राभवी, तामसि आदि नाम से भी उन्हे सम्बोधित किया गया है। कात्यायनि नाम तो प्रसिद्ध है ही भद्रकाली और चण्डिके रूप में उनसे भव से रक्षा की प्रार्थना की गई है। देवी ने स्वयं कहा है कि जब देत्यों को भक्षण करते हुए मेरी दत्त-मुक्तनावलों कुसुम के समान लाल रंग की हो जायेगी ता। सर्वत्र ‘रक्त-दन्तिका’ प्रसिद्ध हूँगी। ‘शताधी’ नाम का भी स्वयं अष्टीकरण करते हुए कहा कि जब सी वर्ष तक वर्षा न होने के कारण सूखा पड़ने लगेगी और मैं विना मनुष्य योनि के जन्म लूँगी तो उम समय मेरे सी नेत्र होंगे जिनसे मुनियों को देखूँगी और मुनिगण मुझे ‘शताधी’ कह कर कीर्तन करेंगे।

कुछ और नामों के सम्बन्ध में देवी कहती है —

अपने शरीर से प्राण को धारण करके 'शाको' को उत्पन्न करके लोकों का पालन करेंगी। इसलिए 'शाकमभरे' कहलाऊँगी। दुर्गम दंत्य का वध करने के कारण 'दुर्गा' नाम होगा। भीमरूप ग्रहण करके हिमाचल के राक्षसों का वध करेंगी। इसलिए 'भीमा' कहलाऊँगी। अरुणासुर को मारने के लिए भ्रमर रूप धारण करेंगी, इसलिए 'आमरी' नाम होगा।

अर्जुन ने जो दुर्गा पूजन किया था, उस स्तुति में उमा, काली, काली, कपिना, कोषकी, चण्डो कात्यायनी, भद्राली और महाकाली नाम प्रयुक्त किये गये हैं। कालीदास ने पार्वती को, तीन नामो-भवानी, गौरी और चण्डो से सम्बोधित किया है। महाभारत में विन्ध्यवासिनी का नाम आया है। कुमार सम्भव में वे तत्पत्त्या और कल्याण की प्रतिमा दिखाई देती हैं। शपर्णा, उमा और पार्वती विशिष्ट गुणों को प्रदर्शित करते हैं। याज्ञवल्क्य ने अम्बिका को विनायक की माना श्वीकार किया है। भवानी नाम कुमार सम्भव में आया है जहाँ पर शङ्कर के साथ सम्बन्धित है।

दुर्गा नामकरण का उद्देश्य माधुजनों की रक्षा और पापियों का नाश करना है। अत, देवी के युद्धकालीन रूप का नाम दुर्गा है। वही मूल-नक्ति है, जो विभिन्न रूप वारण करती है। युद्ध के समय वह दुर्गा बनती है, क्रोध में वह कानी रूप वारण करती है, ग्रहस्य में वह भवानी है और पुरुष में विजय उमी का रूप है। तैत्तिरीय आरण्यक में सरस्वती से सम्बद्धित है, जहाँ विद्या, महादेवी, सन्ध्या, वरदा प्रादि नाम आये हैं। मुण्डकोपनिषद् में सात जिह्वाओं वाली अग्नि का नामकरण काली-कराली के रूप में किया गया है। यह नाम दुर्गा के चरित्रात् लक्षण है।

महिमा

मार्कंडेय पुराण में दुर्गा की महिमा का वर्णन करते हुए कहा

यथा त्वया जगत्स्वष्टा जगत्पाताऽति यो जगत् ।

सोऽपि निद्रावश नोत कस्त्वा स्तोतुमिहेश्वर ॥

विष्णु शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।

कारितास्ते यतोऽनस्त्वा क. स्तोतु शक्तिमान भवेत् ? ॥

'विश्व की सृष्टि, रक्षा और नाश करने वाले नारायण हरि को भी जो निद्रा के अधीन लाने की क्षमता रखता है, त्रिदेव-त्रहां, विष्णु और शिव जिनकी इच्छा से शरीर धारण करते हैं, उन महान महिमा वाली की स्तुति कौन कर सकता है ? '

इसी प्रकार से द१वे घण्याय में फिर कहा में—

ज्ञानिनामपि चेतासि देवी भगवती हि सा ।

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥

तथा विसृज्यते विश्व जगदेतच्चराचरम् ।

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणा भवति मुक्तये ।

ससारबन्धहेतुश्च सेव सर्वेश्वरेश्वरी ॥

अर्थात्—वह भगवती देवी ज्ञानियों के चित्तों को भी बलपूर्वक आकर्षित करके महामाया, मोह समुत्पन्न कर देती है। उसी के हाथ यह सम्पूर्ण चराचर जगत् विश्व विसृष्ट होता है अर्थात् विश्व का सृजन होता है। वह देवी प्रसन्न हो जाती है तो सनुष्यों को वरदान देने वाली होती है और मुक्ति प्रदान कर देती है। वह परमाविद्या और मुक्ति की हेतु है। वह समानवी है वह सब ईश्वरों की भी स्वामिनी ससार के बन्ध की हेतु भी है।

भागवत में दुर्गा पूजा का स्पष्ट आदेश है—

'दुर्गा विनायक व्यासम्'

अर्थात् "दुर्गा तथा गणेश और वास का भी नाम है।"

स्वरूप

दुर्गा का स्वरूप शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है—

देवताओं के पूछने पर देवी ने उत्तर दिया कि मैं व्रह्म हूँ । मुझ से ही प्रकृति पुरुषात्मक विश्व की मृष्टि होती है । स्कन्द पुराण में देवी को जगत का अविष्ट्राता स्वीकार किया गया है । भावोपनिषद् में वह व्रह्मविष्णु कही गई है । अत्य उपानिषदो—श्रिपुर, तापनीय, सुन्दरी में भी यही भाव व्यक्त किए गए हैं । देवी भागवत में सगुण और निर्गुण दोनों रूप दिखाए गए हैं । कूर्म पुराण में वह अनन्त, अच्छुत, निविकार और निर्गुण व्रह्म स्वीकार की गई है ।

दुर्गा तत्व का विश्लेषण इम प्रकार किया है —

ययेद भ्राम्यते विश्व योगिभिर्या विचिन्त्यते ।

यद्भासा भासते विश्व सैका दुर्गा जगन्मयी ॥

अर्थात् “जिसके द्वारा यह ससार चक्र चलता रहता है, योगी-जन जिसका सदैव चिन्तन करते हैं, जिसके प्रकाश से यह सम्भव जगत प्रकाशित हो रहा है, वही जगत्ध्यापी दुर्गा तत्व है ।”

नारद पाञ्चरात्र में दुर्गा तत्व की व्याख्या करते हुए कहा गया है—

जानात्येका परा कान्त सैव दुर्गा तदात्मिका ।

या परा परमा जर्त्तिर्हाविष्णुस्वरूपिणी ॥

यस्या विज्ञानमात्रेण पराणा परमात्मन ।

मुहूर्तादिदेवदेवस्य प्राप्तिर्भवति नान्यथा ॥

एकेय प्रेमसर्वस्वस्वभावा श्री कुलेश्वरी ।

अनया सुलभो ज्ञेय आदिदेवोऽखिलेश्वर ॥

अस्या आवरिका शक्तिमहामायाऽखिलेश्वरी ।

यया मुख्य जगत्सर्व सर्व देहाभिमानिन ॥

एक ही पराशक्ति कान्त भगवान् कृष्ण से परिचित है क्योंकि यह उसी का रूप है । यही परा परमशक्ति ही दुर्गा है । यह महाविराट का रूप है । इसके ज्ञानमार्ग से परमात्मा की उपलब्धि होती है यह एक सी प्रेम

सर्वप्रव के स्वभाव वाली श्री कुरेश्वरी है। इष्टके माध्यम से आदि देव अखिलेश्वर की प्राप्ति सुलभ हो जानी है। महामाया अखिलेश्वरी इसकी आवारिका शक्ति है। इष्ट ने सर्व जगत और उसके समस्त देहाभिमानियों को मुग्ध कर रखा है।”

सप्तशती महिमा

दुर्गा की अपूर्व महिमा का वर्णन मार्करेडेय पुराण के छन्न-र्गत ७३ से ८५ अध्याय में किया है। इसमें ७०० श्लोक हैं। इसीलिए इसका ‘दुर्गा सप्तशती’ नाम पड़ा। यह कितने ही म्यानों में थोड़े बहुत अन्तर के साथ कहा गया है। इस कथा को मनघडन्त कहकर बीद्विक वर्ग में इसकी उपेक्षा कर दी जाती। परन्तु यदि हम इसका गम्भीरता पूर्वक अनुशीलन करें और इसके पात्रों का प्रतीकात्मक अध्ययन करें तो प्रतीत होगा कि यह हर व्यक्ति के जीवन की अपनी कहानी है। हर व्यक्ति के जीवन में कभी ऐसे क्षण आते हैं जब चारों ओर से निराशा और और विपत्तियों के बादल उमड़ रहे होते हैं परन्तु कुछ भी सूझ नहीं पड़ता। उस समय यह कथा एक अच्छे दिवेशक और पथ प्रदर्शक का काम करती है। इसीलिए कहा गया है कि दुर्गा दुख व विपत्ति नाशिनी है। लाखों भक्त इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दुर्गा की आराधना करते हैं। हम कथा का वर्णन करके उसके बीद्विक स्वरूप का अध्ययन करेंगे।

सप्तशती कथा

कथा कुछ नाटकीय ढंग से कही गई है। इसके लिए किसी सुरक्ष नामक राजा का उपाख्यान दिया गया है कि उसके राज्य को शत्रुओं ने पड़यन्त्र करके छीन लिया और उसे विदश होकर सब कुछ छोड़ कर बन में चला जाना पड़ा। पर वही भी उसका ध्यान अपन महल, कोशागार, नगर हाथी, घोड़ों में लगा रहा और वह उनके विषय में विना करता हुआ दुखी रहने लगा। वही उसकी भेट समाधि नामक

हरण करके घर से निकाल दिया था और जो ग्रन्थ वनवामियों के साथ रहकर जीवन निर्वाह कर रहा था। अब भी उनका वर ममत्वी मोह छूटा नहीं था और वह घर वालों के हानि-नाभ मुख दुख की बात मोचते हुए व्यस्त रहा करता था। इन दोनों ने उपी अरण्य में श्रावण वना कर रहने वाले मेवा श्रृंगि में अपनी दुदगा और मनोन्यता के विषय में प्रश्न किया। श्रृंगि ने उनको मोह जनित भ्रम का गृहस्थ ममभाया और माथ ही दबी की महिमा तथा उपानिषद की कथा भी सुनाई जिसके द्वारा वे अपनी विपत्ति से छुटकारा पा सकते थे।

इस महाशक्ति का प्रथम आविर्भाव मृष्टि के आरम्भ होने से भी पूर्व उम ममय हृशा जब जगत्कर्ता भगवान् विष्णु जो रहे थे और उनकी नाभि से सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी। उप ममय विष्णु के कान के मैल से मधु और कैटम नाम के दो दैन्य उत्पन्न हुए और ब्रह्मा जो को मारन के लिए दोडे। ब्रह्मा उनका सामना करने में श्रममर्थ थे, परत उन्होंने परब्रह्म की आदि शक्ति महामाया की स्तुनि की। इसमें सतुष्ट होकर देवी प्रकट दुई और उसने विष्णु को जगाकर मधु और कैटम के कुट्टत्य का उनको ज्ञान करा दिया। विष्णु उन असुरों म पांच हजार वप तक युद्ध करते रहे पर उनका विनाश न कर सक। तब महामाया ने उनको माहित करके कहलवाया कि “हे विष्णु हम तुम्हारे साथ युद्ध करके मनुष्ट हुए हैं, हमसे कोई वर मागो।” विष्णु न कहा ‘तुम मेरे वन्य हो, यही वर मैं मागता हूँ।’ वचन बद्ध होने से उन्हे वर दता पड़ा और तब विष्णु ने चक्र में उनका मस्तक काट लिया।

जब देवलोक का अविपत्ति इन्द्र को बनाया गया तो महिष नाथ के असुर ने उनका विरोध किया और अपनी विशाल मेना के द्वारा उनको हरा कर देवलोक पर अविकार कर लिया। इन्द्र और अन्य देव-गण ब्रह्मा जो को नाथ लेकर विष्णु और महादेव की शरण में गये और महिषासुर के अत्याचारों की कथा उनको सुनाई। उसे सुनकर वे वहे

क्रोधित हुए और उनके मुखो से निकले हुए तेज से देवी का आविर्भाव हुआ। वह देवी जब युद्ध के लिए प्रस्तुत होकर गर्जने लगी तो उस महाशब्द से तीनों लोक कापने लगे। उमे मुनकर महिषासुर भी अपनी सेना को सजा कर दौड़ा और दोनों पक्षों में घार सग्राम होने लगा। आरम्भ में महिषासुर के चिक्खुर, चामर, उदय, महाहनु, असिलोमा, वाष्कल और विडालक्ष सेनापतियों से सामना हुआ और एक एक करके वे सब मारे गये। फिर दुर्धंक और दुमुँख आदि महिषासुर के पराक्रमी सहयोगी रणभूमि में उतरे पर देवी के सामने वे भी अधिक देर तक न ठहर मके और सेना सहित मारे गये।

अपनी सेना और साधियों को इस तरह नष्ट होता देख कर महिषासुर अत्यन्त क्रोधित होकर मामन आया और अपने ममस्त अद्भुत साधनों से भयच्छुर सग्राम करने लगा। वह कभी महिष, कभी सिंह और कभी हाथी का रूप धारण करके लड़ता था। कभी भूमि पर और कभी प्राकाश में जाकर शस्त्र वर्षा करता था। उसके भनच्छुर सग्राम से तीनों लोक ध्वनि हो गये। तब देवी अपने सिंह से उतर कर महिषासुर के ऊपर कूद पड़ी और उसे पैर से दबा कर तलवार से उसका मस्तक काट डाला। उसका वध होते ही सर्वत्र हृष की लहर दौड़ गई और समस्त देवता देवी की जय-जयकार करने लगे। इस श्रव-सर पर देवगणों ने देवी की जो स्तुति की, वह वडी अर्थपूरण है। इसमें कहा गया है कि देवी ने अपनी शक्ति का ममस्त विश्व में विस्तार कर रखा है और ब्रह्मा, विष्णु महेश भी उसके रहस्य को ज्ञात नहीं कर सकते। वही जगत् का कारण, अव्याकृता प्रकृति, देवताओं, पितरों की स्वाहा और स्वघातया मोक्षाभिलापियों को मोक्ष प्रदान करने वाली परविद्या है। देवी ही तीनों वेदों की शब्दमयी मूर्ति, सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाली, ममस्त शास्त्रों का रहस्य प्रकट करने वाली सरस्वती, व सकृद से उद्धार करने वाली दुर्गा, विष्णु के हृदय में निवाम करने वाली

लक्ष्मी और शिव के मिर पर विराजने वाली गौरी है । उसकी शक्ति और बल अपार है ।

तीमरी वार जब शुभ्म और निशुभ्म नामक असुरों ने देवनायों को हराकर भगा दिया तो वे फिर देवी की शरण में पहुँचे । उस समय पार्वती को देह से अम्बिका प्रकट होकर देवताओं की रक्षा के लिए अपुरो से युद्ध करने को अग्रसर हुई । उनकी अनुग्रह सुन्दरता का वर्णन सुनकर पहले शुभ्म ने अपना दूत भेज कर अपना प्रणाय मदेश कहन-वाया । पर देवी ने उत्तर दिया कि मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि "जो मुझे युद्ध में जीत सकेगा वही मेरा भर्ता हो सकेगा ।" इस पर शुभ्म ने क्रोधित होकर अपने सेनापति घूम्रनोचन को एक बड़ी सेना के साथ देवी को पकड़ कर ले आने का आदेश दिया । इस आसुरी सेना के साथ देवी का विकट सग्राम हुआ और अन्त में सब असुर मारे गये । फिर चरण-मुराड नामक महावीर असुर लड़ने को आये पर वे भी काली हारा मार डाले गये, जिससे काली का, नाम चामुराडा पड़ गया ।

इसके पश्चात् रक्तबीज नामक असुर रणभूमि में आया । इसमें यह विशेषता थी कि उसके रक्त की जितनी वूँदें पृथ्वी पर गिरती थी उतनेही नये असुर और पैदा हो जाते थे और उनका नाश अम्भव प्रतीत होता था । तब देवी ने काली से कहा कि जब मैं रक्तबीज पर अस्त्र से प्रहार करूँ तो तुम उसके रक्त को पी जाना, एक भी वूँद को पृथ्वी पर मत आने देना । काली ने ऐसा ही किया और तब उम महा असुर का वध किया जा सका ।

रक्तबीज के मारे जाने पर स्वयं शुभ्म और निशुभ्म सपूर्ण सेना सहित रणक्षेत्र में उपस्थित हुए । पहले निशुभ्म का देवी के साथ धीर सग्राम हुआ और वह मारा गया । फिर शुभ्म सामने आया और उपने देवी की सहायक सप्तमातृका शक्तियों ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी वैष्णवी, वाराही, नारदिही और ऐन्द्री की ओर सकेत करके कहा "तुम

दूसरो का आश्रय लेहर युद्ध करती हो और याने पराक्रम का भूँठमूँठ अभिमान करती हों। इस पर देवी ने मातो को अपने भीतर समेट लिया और कहा कि “ये सब मेरो विभिन्न शक्तिर्थ हैं जो मेरी इच्छा ने प्रकट होती रहनी हैं। अब देख मैं अकेनो हो तेरा बध करती हूँ।” इस के पश्चात् असुर सेना से देवी का सब से बड़ा सम्राम हुआ और शुभ तथा उसके समरत सहयोगी अमुरो का पूर्णतया बध कर दिया गया। इस महान् विजय के पश्चात् देवताओं ने निर्भय और प्रसन्न होकर देवी की जो स्तुति की, उसमें उनको ही सृष्टि का कारण बतलाया है। देवताओं ने कहा—

महामाया ही विपत्ति मे पढे जनो का कष्ट दूर करती है। वही जगत् की माता और चराचर विश्व की ईश्वरी है। सम्पूर्ण विचार और समस्त देवी शक्तिर्थ उही के रूप है। जगत् की उत्पत्ति स्थिति और महार उनकी इच्छा से होती है।”

स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने देवताओं को वरदान देते हुए अश्वासन दिया कि “पृथ्वी पर जब-जब अमुरो का उपात बढ़ेता मैं विभिन्न रूपों में अवतीर्ण होकर उनका नाश और तुम्हारी रक्षा करूँगी।”

‘देवी मन्त्रशती’ का यह उपाख्यान ‘म कं एडेम पुराण’ का एक महत्वपूर्ण और प्रमिद्र था शा है और नव रात्रियों के अवसर पर लालो भक्त इसका पाठ करते हुए देवी से अपने कल्याण की याचना करते हैं। एक धार्मिक कथा के रूप में निस्मन्देह यह रचना बड़ी प्रभावशाली और रोचक है। इसके आध्यात्मिक और आधिदेविक अर्थ इससे भी अधिक शिक्षाप्रद है।

कथा का आधिभौतिक अर्थ—

आधिभौतिक रूप मे तो इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि मसार में देवी शक्तिर्थों के साथ आमूर्ती घवितया का प्रादुर्भाव तथा सघप

मदेव होना है। असुर या दुष्ट म्बभाव के व्यक्ति आधिक उग्र, आक्रमण-कारी और वृत्त होने ई और इस कारण प्राय आरम्भ में देव शक्तियों को दवा लेते हैं, उनको पीड़ित करते हैं। पर जब कष्ट मिलने में देव-गण माववान होते हैं, अपनी शक्तियों को एकत्रित और मगटिन करते हैं तब वे असुरों के लिए भजेय बन जाते हैं। असुरों का मगठन, अहंकार म्बायंपन्ता दूसरों के उत्पीड़न की भावना पर आधारित होता है जबकि देवताओं (मज्जों) के मगठन में त्याग, तपस्या, परोपकार, विश्व-कल्याण जैसी उच्च भावनाएं भी निहित रहती हैं। इसलिए मध्यमे असुरगण चाहे जैसी माया, छल-बन से काम ले, अन्त में उन्हें परास्त होना ही पड़ता है।

कथा का आधिदैविक अर्थ—

आधिदैविक दृष्टि से 'देवी सप्तशती' की जया का आशय मृष्टि के विकास के आरम्भके परिवर्तनों में है। जैसा हमें मालुम है हमारी जानों हृदई चरावर मृष्टि का मूल आवार सूर्य है। उसके प्रकाश और उषण्ठा के कारण ही ईन्द्रिय ज्ञानयुक्त जीवों की उत्पत्ति और वृद्धि हो सकी है। पर सृष्टि के आरम्भ में जब सूर्य का आविर्भाव हुआ तब वहूंन समय तक उस का आवरण इसके प्रकाश को रोके रहा। जो पदार्थ या शक्ति प्रकाश (देव-भाव) के फैलने में वाधक होती है, उसे सृष्टि त्रिज्ञान के ज्ञाना ऋषियों ने 'असुर' के नाम से पुण्यारा है। प्रकाश की तरह प्राण तत्त्व या गति तत्त्व या गति-रत्त्व भी देव-भाव का मूलक है, क्योंकि उसी में प्राणी-जगत् का विकास और उत्थान होता है। जब तक सूर्य के तेज का परिपाक नहीं होता और उसके द्वारा प्राण-शक्ति कार्य-शीर नहीं होती तब तक कि उस के आवरण युक्त अवस्था को वृत्र श्रयवा महिषासुर का आधिपत्य कहा जाता है। उस समय तक सूर्य की शक्ति का परिपाक हो जाता है और सूर तेज सबत्र व्याप्त होकर मृष्टि मृष्टि-रचना के काय को अग्रसर करते हैं तो वही वृत्र या महिष का

बध हो जाता है। यह कार्य देव भाव की शक्ति का सम्रह होने से ही होता है, इसलिये उसे शक्ति या देवी द्वारा सम्पन्न होना कहा जाना ठीक ही है। यह सृष्टि विकास और रचना के परिवर्तन करोड़ों वर्षों में होते हैं। अतएव 'देवासुर सग्राम' उतने समय तक चलना ही रहता है। यह सब वर्णन वेदों में स्थान-स्थान पर पाया जाता है और पुराणकारों ने भी उसे उपाख्यान का रूप देकर अपेक्षाकृत सरल भाषा में लिख दिया है। इस विषय पर प्रकाश ढालते हुए एक विद्वान् ने देवासुर सग्राम का इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

"देवों के अधिपति पुरन्दर या इन्द्र का आशय सौर-प्राण से है सूर्य में जागरण-भाव ही है। सूर्य के भीतर सोना (निद्रा) नहीं है। आसुरी-भाव परिधि पर आक्रमण करते हैं, पर सूर्य मण्डल के भीतर वे प्रवेश नहीं कर पाते। केन्द्र पर देवताओं का ही अविकार रहता है। असुर केन्द्र तक कभी नहीं पहुँच पाये। इसीलिये 'शतपथ ब्राह्मण' में इन्द्र के देवासुर सग्राम को बनावटी कहा है—

न त्व युयुत्से कतमच्चनाहर्न
तेऽमित्रोमघवन् कश्चनास्ति,
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहु-
नर्दि शत्रु ननु पुरायुयुत्सु ॥

अर्थात्—'हे इन्द्र! तुम कभी लड़े नहीं, न कोई तुम्हारा शत्रु है। तुम्हारे युद्धों का सब वर्णन माया या बनावटी है। न आज तुम्हारा शत्रु है और न पहले तुमसे लड़ने वाला कोई था।'

वेदों में इन्द्र और वृश्चिक के युद्धों का विशद् वर्णन है। वृश्चिक मारने से इन्द्र 'अमर्त्य' (विना शत्रु के) हो गया। वही भाषा माकण्डेय पुराण में महिषासुर के लिये प्रयुक्त की गई है—'इन्द्रोऽभूत्महिषासुर' (७५-२) महिषासुर ने इन्द्र को स्वर्ग के सिंहासन से पदच्युत कर दिया और स्वयं इन्द्र बन बैठा। पुनः इन्द्र (सूर्य मण्डल का अधिपति देवता)

देव भाव की दृष्टि मे या देवी की सहायता से शक्तिशाली हुए और महिमुर मारा गया । जो आवश्य करने वाला भाव है, जो अपने उम से सौर तेज को ढक देता है, वही वृत्र या महिष है । सृष्टि काल के हिसाब मे परमेष्ठी को सूर्य भाव आने के लिये समय लगा होगा । सूर्य के जन्म मे लेकर उनके तेज का पूर्ण परिपाक होने तक महिषासुर ही शक्तिशाली रहा होगा । अन्त मे जब इन्द्र पुनः प्रवन्न हुए तब वही महिष वध हुआ ।"

कथा के आध्यात्मिक अर्थ—

आध्यात्मिक दृष्टि से इस कथा का अथ मनुष्य के भीतर होने वाली सद् और असद् वृत्तियों के सधर्ष और मानसिक हलचल से है । भौतिक लाभ और सुखों को प्रधानता देना और उनके लिये अनुचित ढांगों का अपनाना बहुमरुणक मनुष्यों का स्वभाव होता है । वे इस जीवन का अस्तित्व देह तक ही समझते हैं और उनकी यह धारणा होती है कि हम अपने अन्तकाल तक जो कुछ ऐश्वर्य, वैभव प्राप्त कर लेंगे और उसके द्वारा जितना विषय-सुख भोग लेंगे, वही सार है, क्योंकि देहत्याग के बाद कोई निश्चय नहीं कि क्या हो ? इस प्रकार के निकृष्ट विचरण मनुष्य मे स्वार्य परता के भावों को भड़काते हैं जिससे वह अन्य व्यक्तियों को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाने मे सक्षीव नहीं करता ।

यह एक प्रकार का तामसी अहभाव होता है जिससे मनुष्य के अन्तर के सद्विचार क्षीण हो जाते हैं और वह समाज था समाज के लिए भ्रष्टाचारी तथा ध्वसकारों शत्रु का रूप धारण कर लेना है । ऐसे तामसी और स्वार्थन्धन के विचारों का नाम ही महिषासुर है जो आत्मा की सद्वृत्तियों को दबा कर दूषित भावनाओं का राज्य स्थापित कर देता है । इस दूषित अहभाव से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य को बड़ा प्रयास और तैयारी करनी पड़ती है । उसके निए समस्त देव

शक्तियो—शेष मनोवृत्तियो को जाग्रत करके एक लक्ष्य पर एकत्रित करना पड़ता है। तब वह शक्तिरूपा देवी एक-एक करके दुर्विचारो क सेना का सहार करती है। अन्त में दूषित अहभाव विभिन्न रूपों में उसके सामने आता है पर मद्विचारो की पंची तलवार से उसको निर्जिव कर दिया जाता है।

आचार्य बद्री नाथ शुक्ल ने कथा का आध्यात्मिक स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—

‘समस्त कार्यं प्रपञ्च के परम भारणे में लग होने का नाम है जगत् का एकाग्रं वीभाव। विष्णु शब्द का अर्थ है व्यापक चैतन्य। शेष शब्द का अर्थ है विनश्वर श्रेणी का होते हुए भी एवं महाविनाश की सामग्री का मन्त्रिपात होने पर भी वच जाने वाला पदार्थ, वह है जगत् का बोजभूत कर्म तथा ज्ञान जनित जीव का सम्प्रकार। उस जगद्वीज सम्प्रकार-रूप क्षेपशय्या हर व्यापक चैतन्य रूप विष्णु का निष्ठिक्य अर्थोत् जगत् के व्यापार से हीन ही अवस्थित रहने का नाम है विष्णु की निद्रा। व्यापक चैतन्याकाश हो विष्णु-करण है। चैतन्य का त्रिगुणात्मक अविद्या रूप आवरण ही विष्णु-करण का भल है। इस मल से उद्भूत होने वाला अहम्बोध और वहुभवन की इच्छा ही मधु, कैटभ नाम के असर है। इनके द्वारा मन को समारोहमुख बनाने का उपक्रम ही ग्रह्या को सारने के लिये मधु, कैटभ का उद्यत होना है। इस रूपकट की स्थिति में मन रूप ग्रह्या चिन्मयी महामाया की यदि पुकार करता है तो वे प्रसन्न हो चैतन्यात्मक विष्णु की आवरण रूप निद्रा को भग कर देतो है। फिर अतावृत चैतन्य रूप प्रत्युद विष्णु अहम्बोध तथा वहुभवनाभिलाय-रूप मधु, कैटभ का वध करते हैं और तब मन का मार्ग निष्कण्टक हो जाता है। वह समाग्रेमुखना को त्याग ग्रह्यात्म के रन्तुम ही अपनी नफल यात्रा में समर्थ होता है।’

देवी-चरित्र की बौद्धिक व्याख्या—

इसकी व्याख्या और ढग से भी की जा सकती है। मधु और कैटभ राग और द्वेष के प्रतीक हैं। यह निन्द्रित अवस्था में पड़े विष्णु के कान के मैल से उत्पन्न होते हैं। जीव को ही विष्णु समझता चाहिए और जिस शेष पर वह सोए है, वह उस जीव के शुभाशुभ कर्म है। जब जीव को विवेक नहीं होना तो वह जगत और उसकी वस्तुओं में आसत्त हो जाता है। इसी मोट निद्रा को विष्णु का शयन और निद्रा की सज्जा दी है। मधु और कैटभ प्रह्लाद को मारने के लिए दौड़ते हैं। प्रह्लाद मन का द्योतक है। राग और द्वेष मन को दूषित करने का प्रयत्न करते हैं। प्रह्लाद भगवती की शरण जाते हैं तो वह विष्णु को निद्रा से उठते हैं और विष्णु दैत्यों पे युद्ध करते हैं और उन्हे परास्त करते हैं। देवी बुद्धि का रूप है। मन यदि बुद्धि का महारा ले तो जाव को मोह-निद्रा से जगा सकता है। तब जीवन ग्रकल्पणाकानी आमुरी शक्तियों से संघर्ष करके उनका दमन कर सकता है। बुद्धि से विवेक जाग्रत होता है। विवेक के सामने राग द्वेष रूरी अमुर ठहर नहीं सकते। हर जीव पर मधु-कैटभ का आकरण होता है। कथा कहती है कि हमें इनका सामना करने के लिये दुर्गा—बुद्धि का महारा लेना होगा। प्रत्यया उनमें प्रमाविन हीकर हम इन्हीं का रूप मो जाएँगे और किर दैत्य सज्जा से उठकर देवत्व का विकास एक विकट समस्या हो जायगी। अत मधु-कैटभ के वर के लिए दुर्गा की आवश्यकता वाली है।

सप्तशती के ५ से १० अध्याय तक शुभ और निशुभ से द्वीप के संघर्ष और परिणाम स्वरूप इन अमुरों के वर का वर्णन है। इस प्रतीकात्मक कथा का घट्टीकरण इस प्रकार है—

शुभ अहकार का और निशुभ अभिमान का द्योतक है। सासारिक वैभव और सम्मान से अहकार की उत्कत्ति होती है। जब अहकार का साम्राज्य होता है तो बुद्धि पर अध्यकार छा जाता है।

वह वास्तविकता को भूल जाता है, शारीरिक शक्तियों को ही सर्वस्व मानने लगता है। निरातर नाश होना ही जिसका स्वभाव है, जिस तामसिक बुद्धि के प्राणिन् श्रहकार ना पोषण होना है, उसी के महयोग से ममत्वाभिमान का विकास होता है। तभी यह दोनों भाई कहे गये हैं। आत्म परायण बुद्धि की प्रणीत देवी है। उसके क्षेत्र में शुम्न और निशुम्न रूपी श्रहकार और ममकार का पनपना सम्भव नहीं है। यह दोनों आध्यात्मिक रोग बुद्धि को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। वह कीटाणु रूपी अपनी सेना भेजते हैं। देवी उनका विनाश करती है। तब धूम्रलोचन को आदेश मिलता है कि वह इवी को परास्त करक पकड़ लावे। यह धूम्रलोचन लोभ है। विवेक रूप लोचन पर यह धुँए का-सा काम करता है इसलिए इसकी सज्जा धूम्रलोचन है। लोभ हर प्रकार के अनेतिक उपायों से भोगितक जीवन में विकाश का प्रयत्न करता है। अत यह सात्त्विक बुद्धि पर घात-प्रविधात करता है। विरले बीर हो इसके अचूक निशाने से बच पाते हैं। यह मानव को कुपथग मी बनाता है। जो इसके आभिपत्थ में आ जाता है, उसका जीवन, मुख और शान्ति नष्ट हो जाती है। परन्तु जिसके पास विवेक की शक्ति है, उसका धूम्रलोचन कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इस धूम्रलोचन का आक्रमण हर मानव पर होता है और अधिकाश इसके चंगुल में फँसे हुए है। आत्मरूप्याण के पथ का अधिकारी वही हो सकता है जो इसके आक्रमण को निष्फल करके अपने बुद्धि तत्व को पवित्र रखता है।

धूम्रलोचन के वध से शान्ति नहीं मिलती। अभी अन्य सेनापतियों से भी जूझना पड़ेगा। चरण और मुराड भी शक्तिशाली शत्रु हैं। इनका आशय काम और क्रोध से है। जिस तरह से एक डायन बच्चों का खून पीती है, उसी तरह से यह काम हमारे जीवन-उस का प्यासा रहता है और हमारी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों को खोलता बना देता है। जहाँ ग्रहद्वार है, वहाँ क्रोध का होना स्वाभाविक है। क्रोध से नसें रमतमारी हैं। यह शक्ति के हान का चिन्ह है। क्रोध

मेरे अन्धा होकर मानव सभी प्रकार के अनुचित काम कर वैठना है। यह प्रबल मानसिक शत्रु माने जाते हैं। इनकी पराजय के बिना आत्म-विकाम मेरा बाधा पड़ती है। इनको नियन्त्रण मेरा रखना आवश्यक है। जब यह देवी से युद्ध करते हैं तो वह अपनी चमकती तलवार से इनके सर काट ले जी है। आत्मपरायण बुद्धि तीरण तलवार का रूप है जो अपने राज्य मेरे धुसे आसुरी तत्वों का सर काटती रहती है।

चरण मुण्ड के बाद देवी का युद्ध रक्त-बीज के साथ हुआ। इसमे देवी को बड़ी सावधानी बरतनी पड़ी क्योंकि रक्त बीज का यह गुण था कि उसकी जितनी बूँदे पृथ्वी पर गिरेगी, तत्क्षण उतने ही राक्षस उत्पन्न हो जाएँगे। इसलिए यह अत्यन्त दुर्जय जत्रु था। इस कार्य के लिये देवी ने काली भी सहायता ली। देवी के शस्त्र प्रहार करने पर जो रक्त वारा वहे उसे उसी समय पी जाने वा कार्य काली को दिया गया त। कि एक बूँद रक्त भूमि पर न गिरे।

रक्त बीज से अभिप्राय विषय लोलुपता से है। विषयों का जितना उपयोग किया जाता है तभी ही उनके प्रति लिरप्सा बढ़ती ही रहती है। यही एहत्व द गिरने से एक राक्षस की उत्पत्ति का अर्थ है। रक्त-बीज का वध एक गमीर ममस्या है क्योंकि शरीर का अस्तित्व ही इसी के सहारे स्थिर रह पाता है। इन्द्रिय भगवान ने उपभोग के लिए बनाई हैं, इनके उपयोग को बद नहीं किया जा सकता। किंतु तो जीवन सकट मेरा जाएगा और आत्म कल्याण की सभी योजनाएँ छवस्त हो जाएगी। इसके लिए तो ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे विषयों का उपभोग भी होता रहे और लोनुपना न बढ़े। इस मिद्दान्त को अध्यात्म में भोगमें त्याग की सज्जा दी गई है। भोग करना तो चाहिए परन्तु त्याग भावना मे। भोग के प्रति आसक्ति बुद्धि है। भोग तो आवश्यक है इसके लिए काली तत्व का विकाम करना होगा। काली विषय मेरे असौन्दर्य, हीनत्व और अप्रियत्वक प्रतीक हैं। वह विषयासुक्ति को पीती रहती है। इनी योजना से नित्य व्यवहार मे भोग वाले रवत बीज का वध भी सम्भव है।

रक्तबीज का वध होने पर नियुष्म मामने प्राप्ता है। नियुष्म ममता की शूनि है। यदि ममता को वृक्ष माने तो 'मैं' को उसका आकुर और 'मेरे' को उसका तना मानना होगा। वन मम्पति पते, पुत्रादि पत्लव, पुण्य पाप फूल, मुख दुख फल, इच्छाएँ-भ्रमर, चित्त-भूमि है। ममता के वशीभूत होकर अनुचित कार्यों के करने को प्रेरणा मिलती है। ममता से आसक्ति बढ़ती है और आसक्ति पापों की जड़ है। पाप पतन की राहे बनाते हैं। अत, पतन की राहों से बचन के लिए आवश्यक है कि ममत्व स बचे। इससे दूर रहना ही नियुष्म वध है।

नियुष्म वा भी वव होन पर अन्त मे शुभ्म ईवय युद्ध-स्थल पर उत्तरता है और विविध रूपों म उगम्बिन हाफर देवी पर आक्रमण करता है पर तु आत्मपरायण वुद्धि पर अहकार का क्या प्रभाव पड़ सकतो है? क्योंकि उसका आलम्बन विकृति है। शुभ्म शंगीर भावना पर खड़ा है, वही उसका वाहन है, दुरुण और दुविचार उसके अस्त्र-शस्त्र है। देवी का—आत्म परायण वुद्धि का आलम्बन—वाहन मिह है—पशुपति है, पशुओं का राजा है—परमात्मा है। उसके अस्त्र-शस्त्र—सद्गुण और सद्दीवचार है। यह देवासुर सग्राम हर युग मे, हर काल मे और हर मानव के मन मे होता रहता है। श्रसुर शक्तिशाली शत्रु हैं परन्तु अन्त मे देवत्व की ही विजय होती है। शत यह है कि वुद्धि मे आत्म-परायणता लाई जाए। यही देवी सप्तशतों की क्या का साराश है।

भ्रान्तियों का निवारण—

दुर्गा के अनेक विगेपण हैं। उनमे एक दिगम्बर भी है। ईश्वर सवव्यापक है, अत सभी दिशाओं मे उनका निवास है। यह दिशाएँ उनके वस्त्र कह जाते हैं। दुर्गा मे भी अभिमान का प्रभाव है जो सप्तशतों की कथा से स्पष्ट है। अहङ्कार रूपी शुभ्म ने जव सर उठाया, उन्होंने उसका सर काट दिया। अत दुर्गा मे शक्ति तत्त्व होने मे क्या मन्देह हो सकता है? जड़ और चेतन सभी मे इसका निवास है। काई दिशा ऐसी

नहीं है जिवर इनका प्रभाव न हो। दिशाओं को वस्त्रों के अलङ्कारिक रूप में वर्णन करने के कारण दुर्गा को दिगम्बर कहा जाता है।

दुर्गा के सम्बन्ध में अनेकों भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। उनमें एक यह भी है कि वह युद्ध-ध्येय में मर्द का पान करती थी। ऐसा मार्कंगडेय पुराण में उल्लेख है। यहाँ मर्द से अभिप्राय अहंकार से है। अभिमान-शून्य होकर ही उन्होंने असुरों से युद्ध किया और विजय प्राप्त की। योग वशिष्ठ की कथा में एक शक्तिशाली दैय का वर्णन है जो देवताओं के लिए अजेय होगया था उसकी यह विशेषता थी युद्ध करते मरमय उसे यह भान हो नहीं होता था, कि वह लड़ रहा है। ब्रह्मा ने देवताओं को कीपरामर्ज दिया कि उमेर यह अनुभव करा दो कि वह देवताओं से लड़ रहा है और उन्हें मार-काट रहा है तो उसके मन में अभिमान जाप्त होगा इसी से उसकी शक्ति का ह्रास होना शुरु होगा और देवताओं की विजय के चिन्ह दिखाई देने लगेंगे। देवताओं ने इसी उपाय को अपना कर असुरों को परास्त किया। अभिमान से शक्ति क्षीण होती है और इसका जिनना अभाव होता है, उनना ही शक्ति का विकास होता है। शुभ रूपी अहंकार ने सर उठाया परन्तु वह युद्धध्येय में दुर्गा के समक्ष धराशायी होगए। दुर्गा के मरणान का अर्थ उनकी अभिमान-शून्यता ही है।

दुर्गा का निवास इमशान कहा जाता है। जब शिव वहाँ रहते हैं तो उनको पत्नी का वहीं निवास स्वामाविक है। यहाँ इमशान से अभिप्राय प्रलयकाल से है, जब सारे ब्रह्माण्ड की यहीं दशा होती है, जहाँ चारों ओर जीवोंके रुण-मुण्ड ही दृष्टिगोचर होते हैं। प्रलय काल में केवल शिव और पार्वती (दुर्गा) ही रह जाते हैं। ब्रह्माण्ड की इस स्थिति में उनकी सत्ता को सिद्ध करने के लिए ही उन्हें इमशान वासी और रुण-मुण्ड धारी कहा गया है।

उनके हायों में त्रिशूल त्रिगोपी को दूर करने की सूत्रता देना है।

दुर्गा कथा से प्रदूषित तत्त्व का बोध होता है क्योंकि जब शुभ्म कहता है कि तुम तो मन्य देवियों के सहयोग से युद्ध कर रही हो तो देखते ही देखते दुर्गा के शरीर में सभी ऋण्याणी, इन्द्राणी, वैष्णवी आदि देवियाँ समा गईं। तब दुर्गा ने कहा—

एकैवाहं जगत्यज द्वितीया का ममापरा ।

“इम जगत मे, मैं अकेली हूँ। मेरे अतिरिक्त और कोई दूसरा नहीं है।”

दुर्गा के चत्तिर से यह प्रेरणा मिलती है कि पापी के पाप से घृणा करनी चहिए न कि उसके व्यक्तित्व से। जब महिषासुर का वध हो चुका तो देवताओं ने कहा कि इसे तो आप वैसे भी भस्म कर सकती थी। इन पर शस्त्र व्यों चलाया? इसका उत्तर उन्हीं के शब्दों मे यो है कि यदि यह विना युद्ध करते मरते तो नरक मे जाते। अब यह वीर गति को प्राप्त करके स्वर्ग जाएँगे। आपका उद्देश्य तो यह था कि इसके नाश से विश्व का कल्याण हो और साथ ही साथ इनका भी कल्याण हो।

शक्ति की प्रतिमा—

दुर्गा की उपासना मे शक्ति की प्रधानता है। देवताओं की शक्ति से उनका जन्म हुआ है। महिषासुर का वध करके शक्ति का ही उन्होंने प्रदर्शन किया। वह शक्ति की प्रतिमा है। शक्तिं उपार्जन के लिए ही दुर्गा की आगाधना की जाती है। बल की तो वह प्रतीक मानी जाती है।

दुर्गा की नस-नस मे शक्ति के खजाने हैं, उसका अङ्ग-प्रङ्ग शक्ति से फड़कना है। उसके रक्त में शक्ति उच्चलती है, उसके मुख पर शक्ति चमकती है, उसके शरीर पर शक्ति का लेप है। उसके प्राणों में शक्ति के बीजों के भरण्डार हैं। उसका सारा सासार ही शक्तिमय है। उसकी रचना शक्ति से हुई। इसलिये उसका शक्ति-पुञ्ज बनना स्वाभाविक ही था। वह अपने शक्ति के सूक्ष्म भरण्डारों से से जितना भी बाटती रहती है, वह उतना ही बढ़ता रहता है।

दुर्गा की अनन्दारिक रचना हमारे ऋषियों ने वुद्धिशाल का श्रेष्ठ नमूना है, उनकी कल्पना शक्ति की महान कलाकृति है, जोवन के उच्चतम उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये साधन का सबैत किया है, भव रोग की रामबाण दशा का भविर्भव कर दिया है, लौकिक या पारलौकिक अभिवृद्धि के शास्त्रों का निचोड़ एक प्रतिमा में गठित कर दिया है।

समार में जहाँ भी प्रगति के चिन्ह दिखाई देते हैं, वहाँ दुर्गा की छाप समझनी चाहिये क्योंकि दुर्गा अर्थात् शक्ति के प्रकाश हुये बिना एक पग भी चलना अमम्भव जान पड़ना है। आवृत्तिक विज्ञान के विकसित होने का श्रेय दुर्गा की वुद्धि शक्ति को ही है। यही कारण है कि भारत में कोई ऐसा स्थान न होगा जहाँ दुर्गा की पूजा उपासना न होती हो। भक्तों का विश्वास है कि वह निद्वि दाता है और उनकी समस्त कामनाओं को पूर्ण करती है। विश्वास के आधार पर जब कभी उनकी इच्छा पूरी हो जाती है तो उनका विश्वाम अडिग हो जाना है। इस माग का भवलभ्वन केवल भ्रम मत्र है। दुर्गा तो शक्ति की प्रतिमा है। वह अपने पुत्र सौभाग्य के लिये शक्ति प्राप्त करने की प्रेरणा मात्र देती है। उसकी पूजा करते हुए अपने भन्दर शक्ति के सवार की भावना करनी चाहिये। जिस क्षेत्र में हम भिड़ चाहते हैं, उसमें अपनी शक्तियों को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये, उसके उपायों पर विचार करना चाहिये, उन विचारों को कार्यान्वयन करने के आधारों को अपनाना चाहिये, उसमें एकाग्रता पूर्वक दिन रात एक करके तप परिश्रम जगना चाहिए। तभी दुर्गा भवानी प्रभन्न होकर वरदान देती है। यह वरदान ही साधक की सफलता का कारण बनता है। दुर्गा की इस प्रकार से की गई उपासना ही मात्र ह का उचित मार्गदर्शन करती है।

आठ भुजाएँ—आठ शक्तियों की प्रतीक

आठ भुजाएँ अठ महत्वपूर्ण शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है।

इन शक्तियों के विकास के अभाव में मनुष्य की साँसारिक व पारलोकिक प्रगति रुकी रहती है। इसलिए जिसे अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति करनी हो, उसे दुर्गा के चित्र में प्रदर्शित आठ भुजाओं के प्रतीक आठ बलों की वृद्धि की ओर ध्यान देना चाहिये। यदि क्रियात्मक कदम न उठाकर हम सभी कुछ दुर्गा से माँगते रहेंगे तो हमें निराशा ही होगी। वह आठ शक्तियों इस प्रकार हैं —

(१) स्वास्थ्य

हर क्षेत्र में प्रगति का यही आधार है। इसको प्राप्त किये बिना उन्नति असम्भव है। स्वस्थ मनुष्य में ही स्वस्थ मस्तिष्क होता है। अच्छे मस्तिष्क से ही कल्याणकारी योजनाओं का जन्म होता है, विचार व विवेक शक्ति का उदय होता है। सुख व शान्ति का उदगम यही है। अस्वस्थ व्यक्ति तो परिवार व समाज पर एक बोझ होता है। स्वस्थ व्यक्ति हजारों के दुखों को दूर करने की क्षमता रखता है। परिवार का पालन-पोषण, घनोपार्जन, सामाजिक कार्यों में योगदान तभी दिया जा सकता है जब मनुष्य शारीरिक व मानसिक दोनों दृष्टियों से स्वस्थ हो। स्वस्थता प्राप्त करने के लिए उसके मूल सिद्धान्तों पर ध्यान देकर उन्हे क्रियात्मक रूप से अपने जीवन में व्यवहार में लाना होगा। उनकी जानकारी तो हर व्यक्ति को है परन्तु बहुत कम लोग उन्हे अपना पाते हैं। रात्रि को जल्दी सोना और प्रात कान जल्दी उठना, शरीर को रगड़-रगड़ कर स्नान करना तेल की मालिश करना, सूर्य स्नान, सूर्य नमस्कार आसन प्राणायाम, दण्ड वैठक, धूपना, दीडना आदि व्यायाम, जल्दी पचने वाले सात्विक आहार को ही प्रहण करना, उसे इतना चाहना कि उसकी सारी लार ही बन जाये, विटामिन-युक्त फलों का सेवन, बीडी-सियारेट, शराब, मास आदि व्यंगनों का त्याग, अश्वील फिल्मों और साहित्य से बचना, वीर्य रक्षा, ईमानदारी से घनोपार्जन करना, मानसिक सन्तुलन बनाने रखना, चटारेपन, कृत्रिमता और आठम्बर से दूर रहना-

ये कुछ ऐसे सूत्र हैं, जिन्हें व्यवहार में लाने से ही एक स्वस्य मनुष्य का ढाँचा बनता है। तभी दुर्गा की एक भुजा का अनुग्रह प्राप्त होता है।

२—विद्या

इसके दो पथ हैं। एक शिक्षा, दूसरी विद्या। शिक्षा में सभी प्रकार की मामारिक ज्ञानकारी जैसे—भूगोल, खगोल, साहित्य चिकित्सा गणित, इतिहास, कला, मन्त्रीन, शिल्प, विज्ञान राजनीति, न्याय, भाषा आदि आते हैं। विद्या का अर्थ जीवन निर्माण है। सत्य, प्रेम, दया, न्याय, सेवा, परमार्थ, कर्तव्य परायगता, ईमानदारी, सयम, पुण्य, त्याग आदि गुम्भ-वृत्तिया विद्या के अन्नगत आती हैं। शिक्षा मामारिक जीवन के उत्तरप में महायक होनी है। विद्या आत्मिक उत्थान का सम्बन्ध है। ज्ञान-वर्द्धन, जीवकोपाजन के लिए उत्तम शिक्षा आवश्यक है, परन्तु विद्या की प्राप्ति के बिना मनुष्य में मनुष्यता के अनुष्टुप् गुणों को ग्रहण करना असम्भव है। विद्या मायक के जीवन निर्माण की आधार शिला है। इस पर विजेत रूप में व्यान तना चाहिए तभी दुर्गा अपना दूसरा हाथ उठा कर प्रसन्न मुख से आशीर्वाद देती हैं।

३—धन

परिवार के मञ्चालन शिक्षा प्राप्ति, सामाजिक कार्यों में योगदान देने के लिये धन आवश्यक है। इसके बिना समार का कोई भी काय भली प्रकार सम्पादन नहीं होता। परन्तु, परिश्रम और ईमानदारी से धन कमाना ही समाज में व्यवस्था बनाये रखने का आदश माध्यन है। इसलिए लोभवश होकर बेईमानी, ठगी, जब छतरी, घोड़े, फरेवा, चालाकी, मिलावट आदि के माध्यम पे धन कमाना कुछ ऐसे साधन हैं जिनमें समाज में खिन्नता उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जिस समाज में ऐसी प्रवृत्तियां उत्थान हो जाती हैं, वहाँ वन की वर्षा होते हुए भी दुख, कलह, लड़ाई, झगड़े, ईर्ष्या, द्वेष, चोरी, लूट, हत्या आदि के कारण सर्वत्र देखे जाते हैं। जो समाज धन को अपने शरीर की रक्षा का

साधन न मानकर सर्वम्ब मानकर चलता है और उसके उपार्जन में विचार, विवेक और सद्गुद्धि का उपयोग नहीं करता, वह समाज दिन दिन गिरता ही जाएगा। इसलिए दुर्गा का आदेश है कि घन को ईमान-दारी से कमाओ। वेईमाती के एक अन्न के दाने को भी अपने घर में प्रवेश मत होने दो। जो व्यक्ति ऐसे साधन अपने ते हैं, उनके घर का अन्न खाना छोड़ दो। सात्त्विक साधनों से घन व मांगो और उसका उत्तम कार्यों में प्रयोग करना सीखो।

४-व्यवस्था

प्रत्येक कार्य की सफलता में व्यवस्था का होना आवश्यक है। बड़े-बड़े कार्य अव्यवस्था के कारण असकन होते देखे गये हैं। सौमित्र साधनों से छोटे कार्य भी बड़े हो जाते हैं। एक उत्तम व्यवस्थापक में पाच गुणों का समावेश होना चाहिए। (म) इसमें दूसरों पर प्रभाव डालने की क्षमता होना चाहिए। (ब) उपयोगी व्यक्तियों को ध्यानपाते रहना और निरन्तर उनका महायोग प्राप्त करते रहना। (स) समस्त कार्यों को योजना बढ़ करना। (य) कार्य प्रणाली में नियमितता को उच्च स्थान देना। (ह) मार्ग की रुकावटों को दूर करते रहना। मीठा बोलना और अच्छा व्यवहार करना, दूसरों को अपनी और आकृष्टि करते हैं। इसलिए लौकिक व पारलौकिक सभी कार्यों में व्यवस्था की शक्ति का विकास व उपयोग करना चाहिए।

५-सगठन

शास्त्रों ने “सघ शक्ति कलौयुगे” के सूत्र का उद्घोष किया है। सृष्टि की रचना इसी शक्ति पर आधारित है। शरीर का सञ्चालन इसी के सहारे चल रहा है। परिवार की सुख, शान्ति इसी पर अवलम्बित रहती है। समाज का विकास इसी पर निभर करता है। राष्ट्र की एकता का सम्बल यही है। यह समस्त प्रकार की शक्तियों के विकास का मूलाधार है। इसी लिये धार्मिक साजिक और राष्ट्रीय सङ्गठन

बनाने चाहिये तभी दुर्गा की प्रसन्नता प्राप्त होगी।

६—यश

त्याग, मेवा, परमार्थ, ति स्वार्पता से समाज बल्याण वी योजनाओं मे योग देना ही यश प्राप्त करने का उपाय है। यह शीर ता अभ्याई है, परन्तु आदर्श कार्यों की न्मृति समाज के हृदय पर धुगो तक दती रहती है। इसलिये दुर्गा अपने उपासक को मावदान करती है कि उसे कोई ऐसा कार्य नहीं करता चाहिये जिसमे ग्रपयश के क्लक्क वा टीका उसके माये पर लग जाए जो बोए न खुने।

७—शौर्य

शौय वा अर्थ है माहम, बड़ादुरी निर्भीकता। कायर व उपोक होना निर्वलता के चिन्ह हैं। ऐसे व्यक्ति हर समय माय का रोना रोने रहते हैं। योड़ी भी कठिनाई व विपत्ति आने पर उत्ता दम निर्वलन जगता है। माहमी व्यक्ति निरन्तर आगे बढ़ने रहते हैं। विपत्तियों क पहाड़ उनके कन्वों पर रख दिये जाते हैं, परन्तु वह हँसते-हँसते उन्हे इश्वर-इश्वर फेंते हुए इठलाते हुए आगे बढ़ते जाते हैं साहस पहाड़ों को चीरता है, समुद्रों को पार करता है। आवश की गहराइयों को नापता है। साहस के विना सफनना अमम्भव है।

८—सत्य

सत्य ही ईश्वर है, ईश्वर ही सत्य है। सत्य को अपनाना ईश्वर की समस्त शक्तियों का आङ्खान है। सत्य मे विचलित होना ईश्वर का खुला विरोध है। सत्य का पक्ष लेना ईश्वर का सहयोग प्राप्त करना है। सत्य विवार व सत्य व्यवहार शक्ति के खजानों के खुले ढार है। जिनके शीर पर यह आवण चढ़े हैं, वह निश्चय रूप से शक्तिवान हैं। लोकिक व पारलोकिक मिद्दियाँ विना बुलाये उनके पास आती हैं। यह समाज की सभी शक्तियों का मिरमीर है। दुर्गा की प्रेरणा है कि मेरे उपासक की नस-नस मे इस शक्ति की ध्वनि सुनाई देती हो उसके रक्त के प्रवाह मे इसी का जप होता हो, उसकी मास पेशियों मे यही शब्द खुदा हो, उसके प्रस्तिष्ठक के ज्ञान तन्त्र इमी से निपित हों, उसके पग पग मे इसी की छाप पृथ्वी पर पड़ती हो।

जो साधक उपरोक्त आठ शक्तियों को विकसित करने का प्रयत्न करता है, दुर्गा की आठ भुजाये एक साथ उठ कर प्रसन्न मुद्रा में उसे सफलता का आशीर्वाद देती है।

अधिकार

दुर्गा ने एक महान सांस्कृतिक यज्ञ का सम्पादन किया है। दुर्गा विश्व माता है”। वे किमी जाति विभेषण तक सीमित नहीं हैं। उनकी पूजा पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। सभी जातियों और वर्गों को इसका अधिकार है। हरिवश पुराण के अनुपार जगनी जानियों भी दुर्गा-पासना करती थी महाभारत में भी विभिन्न जानियों द्वारा दुर्गा पूजा का वर्णन है, हेमाद्रि में भी ऐसा ही उल्लेख है। दुर्गा के द्वार सब के लिए खुले हुए हैं तभी तो व्यापक रूप में फैलने से सफल हुई। उनके व्यापक विस्तार के सारे राष्ट्र की एक मूर्त्ति में बाध दिया। मन्त्र श्रवनेको विषयों में मतभेद हो सकते हैं परन्तु इस सम्बन्ध में सारा राष्ट्र एक मत था। दुर्गा महानतम की यह सहायक सफलता कही जा सकती है।

दुर्गा-पूजन विधि

पंत्र—

इसका मन्त्रोद्घार इस तरह मे है—

मायाद्रिकणविन्द्वाढग्रो भूयोऽनो रागवान् भवेत् ।

पञ्चान्तक प्रतिष्ठावान् मारुतो भौतिकासन ।

तारादि हृश्यान्ताऽप्य मन्त्रा वस्वक्षरात्मक ॥

माया (हो) + प्रहि (द) + कण (उ) → विन्दु (पनुप्त्वा १)
=डु, पुन यह बर्ण विसर्ण युक्त (३) पञ्चनक (ग), प्रतिष्ठा (आ),
मारुत (य), भौतिक (ए)=दुर्गायै और इनके आदि मे तार (ॐ) तथा
अन्न मे हृश्य (नप.) अर्थात् 'ॐ हो दु दुर्गायै नम' यह आठ प्रकार
वाला दुर्गा का मन्त्र है ।

पद्धति—

ॐ शृणु पार्वति । वक्षामि पद्धतिं गद्यल्पिणीम् ।

यस्या श्रवणमात्रेण कोटियज्ञफलं लभेत् ॥

ॐ ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय ब्रद्वग्नासन स्वशिरस्यसहस्राधो
मुख रूपलक्षणीकान्तर्गां । निजगुह श्वेतब्रह्मं श्वेतालं कारलकृष्ण
द्विभुज स्वशक्त या श्वेताम्बरभूषितया वामेऽङ्गे सहिन ध्यात्वा
मान संरूपचारे सम्पूज्य दण्डवत् प्रणमेत् ।

अखण्डमण्डनाकर व्याप्त येन चराचरम् ।

तत्पद दर्शित येन तस्मै श्रीगुरवे नम ॥

इति ध्यात्वा तदाज्ञा गृहीत्वा बहिरागत्य मलमूत्रादि सन्त्यज्य वर्णोक्त शौचमादाय नश्चादौ गत्वा स्वकूर्च द्वादशाङ् गुलम् ॐ कली कामदेवाय सर्वजनमनोहरोय नम ॥ इति दन्तान् विशोध्य चाकिकबीजेन गण्डूषषट्क विधाय प्रणवेन मुखं त्रि प्रोक्षय । ॐ ही मणिघरि वज्रिणि शिखापरिसरे रक्ष २ हू फट् स्वाहेति शिखा बद्ध्वा तत्त्वत्रयेणाचम्य मूलेन प्राणायाम विधाय मलाप-कर्षण स्नानं कुर्यात् । ततो मूलेन मृदमानीय जलं प्रोक्षयेत् । मन्त्रमृदा सूर्यमण्डलं विचिन्त्य ।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्सन्तिधि कुरु ॥

इति तीर्थन्यावाह्य ॥ जले यात्र तिभाव्य सनीलकण्ठां दुगमावाहयेत् । तत्र षडङ्ग विधाय देवी सशिवा ध्यात्वा मूल यथाशक्ति जप्त्वा उन्मज्जेत् ॥ तत्र कुम्भमुद्रा बद्ध्वा स्वमूर्द्धिं देवदेव्यौ जलेन स्नापयित्वा ॥

ॐ ह्ला ह्ली स मातंण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय एष तेऽर्थो नम इति सूर्याधर्त्रय दत्त्वा वासं परिघाय तत्त्वत्रयेणाचम्य त्रि प्राणायाम विधाय पूर्वसन्ध्या कृत्वा पडङ्गं कृत्वा चुलुकेन जलमादाय तत्त्वमुद्रायाच्छाद्य । हयवरल इति त्रिरभिमन्त्र्य मूलमुच्चरस्तदगलितोदकविन्दुभि सप्तधा स्वशिरस्यभ्युक्ष्य । मव्यहस्ते शेषमुदक धृत्वा इडयान्तर्नीत्वा देहान्तपापं प्रक्षाल्य पिङ्गलया विरेच्य । पुर कल्पितवज्रशिलाया वासे फडिति निक्षिपेत् । इत्यघमर्षणं विधाय पूर्ववदाचम्य जले यन्त्रं ध्यात्वा मूल यथाशक्ति जप्त्वा । मूलविद्यान्ते सायुधे सवाहने सपरिच्छदे श्रीनीलकण्ठसहिते मात्रदुर्गं तृप्यताम् इत्यष्टवार सन्तर्प्य । नीलकण्ठं त्रि सन्तर्प्य ।

एकं काञ्जलिना परिवारदेवता सन्तर्प्य ॥ देवदेवी हृदि ध्यात्वा जले चतुरस्र विधाय । तत्रेगानादिकमेण गुरुपर्क्षिणी सन्तर्प्य देवी गायत्री जपेत् ॥ ४५ हीं दुर्गायै त्रिदमहे अष्टाक्षगयं वीमहि तन्मो चण्डि प्रचोदयात् । इति यथाशक्ति प्रजप्य गायत्र्यानया देवदेवीरघं त्रय दत्त्वा । जप समर्प्य यागमण्डामागच्छेर् । इति विधि ।

ततो गृहमागम्य पादी प्रक्षालय द्वागदेवी, । ४६ गाँ गुँ गणगाय नम पूव । ४७ क्षा क्षो हीं वटुकाय नम दक्षिणे । ४८ क्षा क्षे द्वेत्रपालय नम पश्चिमे । ओ या यू योगिनाम्यो नम उत्तरे गाङ्गायै नमो देहत्याम् । य यमुनायै नम अध ॥ ४९ स सरस्वत्य नम मध्ये इति सम्पूज्य । गृहान्त प्रविश्य । यथोपचितमासन शोधयेत् ५० आ आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठञ्चूषि सुनल छन्द, कूर्मो देवता आसनशोधने विनियोग ५१ पृष्ठिव्रै नम ।

महि । त्वया धृता लोका देवि । त्व विष्णुना धृता ।

त्व च वारय मा देवि । पवित्र कुरु चासनम् ।

५२ आ शक्तये नम मूलप्रकृत्यै नम । श्र अनन्ताय नम ।

पदमाय नम पदमतानय नम, । तत्रोपविश्य तालत्रय कुर्यात् ।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि सस्थिता ।

ये भूता विष्णकतरिस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

इति तालत्रय दत्त्वा वामगाण्डिवातत्रयेण विष्णानुत्सार्य

नाराचमुद्रा प्रदश्य गुरु प्रणमेत् ।

श्रखण्डमण्डलाकार व्याप्त येन चराचरम् ।

तत्पद दर्शित येन तस्मै श्रीगुरवे नम ॥

५३ स्वगुरुभ्यो नम । परमगुरुभ्यो नम परापरगुरुभ्यो नम । परमेष्ठिगुरुभ्यो नम । इति गन्वाक्षत्रैरम्प्रचयै न्यासपूर्व सङ्घल्प कुर्यात् ।

अस्य श्रीदुर्गामित्रस्य महेश्वर ऋषि, अनुष्टुप्छन्द श्रीदुर्गा-
देवता दु बीज ही शक्ति ओ कीलक नम इति दिग्दन्ध घर्मथ-
काममोक्षार्थे दुर्गपूजाया विनियोग ।

न्यास

अथान्तरमातृका न्यास मन्त्रस्य ब्रह्मऋषि -

गायत्रीछन्द, मातृकासरसरस्वतीदेवता हलो बीजानि -
स्वरा शक्तय क्ष कीलक अखिलाप्तये न्यासे विनियोग ।

इति जल भूमौ निक्षिप्य प्राणायाम कुर्यात् । तथा च इहां ॥

अ इ उ ऋ ए ऐ ओ ओ अ ए एभि स्वरै पूरयेत् ।

पुन कु चु दु तु पु इति पचवर्गकेन कु भयेत् ॥

पुन य र ल व श ष स ह एभिरष्टवण्णं रेचयेत् ।

इति प्राणायाम कृत्वा ऋष्यादि न्यास कुर्यात् । तथा च ॥

ॐ अ ब्रह्मणोऽर्घये नम आशिरसि ।

ॐ इ गायत्री छांदसे नम ई मुखे ॥

ॐ ऊं सरस्वती देवतायै नम ऊ हृदये ॥

ॐ ए हलम्यो बीजेभ्यो नम ए गुह्ये ।

ॐ ओ स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नम औं पादयो ॥

ॐ अ क्ष कीलकाय नम अ सवर्ज्जे ।

इति ऋष्यादि न्यास,, ॐ अ क ख ग घ ङ आं अ गुष्ठाभ्या
नम ॥

ओ इ च छ ज भ ऊ ई तजनीभ्या नम ।

ओ उ ट ठ ड ढ ण मध्याभ्या नम ॥

ओ ए त थ द ध न एं अनामिकाभ्या ।

ओ ओ प फ व भ म औं लनिष्टकाभ्या नम ॥

ओ अ य र ल व श प स ह क्ष अ करतल कर पृष्ठाम्भ्या
नम ।

इति करन्यास एव हृदयादि,, ओ अ क ५ आ हृदयाय
नम ॥

ओ ड च ५ डं शिरसे स्वाहा ।

ओ उ ट ५ ऊ शिखायैवपट् ॥

ओ ए त ५ एँ कवचाय है ॥

ओ ओ प ५ औ नेत्रवत्रयवौपट् ॥

ओ अ य र न व श प म ह ले क्ष अ अस्त्रायफट् ॥
इति हृदयादि न्यास ॥ तत कण्ठम्भ पोडप दल पद्मे (ओ अ
नम एव क्रमेण सर्वत्र) ओ आ डं डं ऊ ऊ शू लू लू एँ ए
ओ औ अ अ इति पोडपम्बरान्यसेत् ॥ पुन हृदिस्थ द्वादशदले
ओ क नम, एव ख ग घ ड च छ ज झ झ ट ठ नम । इतिद्वादश
वर्णानि विन्यसेत् ॥ तथा नाभी दशदले-ओ ड नम इति एव ड रा
त थ द घ न प फ नम इति दशवर्णा न्यसेत् तद्वोलिगे पड़दिले-
ओ व नम एव ओ भ म य र ल इति पड़वर्णानित् ॥ आधारे
चतुर्दले—ओ व नम एव श प स इति चतुर्वर्णान्य- सेत् ॥
पुन, ललाटे द्विदले ओ ह नम, ओ क्ष नम । द्वौवर्णान्यसेत् ॥
इति न्यास कृत्वा ध्यायेत् ॥ आधारेत् । लिगनाभी प्रकटित
ताजुम्लेनलाटे द्वे पत्रे पोडगारे द्विदश दले द्वादशाद्वचतुष्के ॥
वायन्तेवाल-मध्ये डफक्कर सहिते कठदेशम्बरार्णा हसतत्वर्थं युक्त
मक्कल दलगत वरण्णप नमामि ॥ इत्यत्तर्मातृका न्यास ॥

अथ वहिर्मातृका न्यास ॥

जयार्थं सर्वदेवाना विन्यासे च लिपेविना ।

कृतेतद्विफल विद्यात्तदादोनु लिपिन्सेत् ॥

ओ अस्यश्री बहिर्मतृकान्यास मत्रस्य ऋह्या ऋषि गायत्री
छन्द मातृका सरस्वतो देवीदेवता हलोबीजानि स्वरा शक्तय
कीलक श्रखिलाप्तये न्यासे विनियोग । प्राणायाम कुर्याद् ॥
तथा च इडया अ इ उ ऋ लू ए ओ अ अ एभि स्वरै पूरयेत् ॥

पुन् कु चु डु तु पु एभि पचवगनि कुर्याद् ॥

पुन अष्टभि । य र ल व श ष स ह प्रादिना रेचयेत् ।

इति प्राणायाम कृत्वा ऋष्यादिन्यास कुर्यात् ॥

तथा च ओ अ ऋह्यणे ऋषये नम आ शिरसि ॥

ओ इ गायत्रो छन्दसे नम ई मुखे ॥

ओ उ सरस्वती देवताये नम ऊ हृदि ॥

ओ ए हलभ्यो वीजेभ्यो नम् ऐ गुह्यो ॥

ओ स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नम औ पादयो ॥

ओ अ क्ष कीलकाय नम अ सर्वगे ॥

इति ऋष्यादि न्यास ॥

ओ अ क ५ आ अगुष्ठाभ्या नम हृदयाय ।

ओ इ च ५ ई तर्जनीभ्या शिरसे स्वाहा ॥

ओ उ ट ५ ऊ मध्यमाभ्या शिखायैवषट् ॥

ओ ए त ५ ऐ श्रनामिका कवचायहु ॥

ओ प ५ श्री कनिष्ठकाभ्या नेत्रन्त्रयाय वीपट् ॥

ओ अ य र ल व श ष स ह लं थ अ. करतल कर गृष्माभ्या
अस्त्रायफट् ॥

मृगवाल वर विद्यामक्ष सूत्र दधात् करे ॥

माला-विद्या लमद्व स्ता वहन् धयेय शिवो गिर ॥

तत — बहिर्मतृकान्यास कुर्यात् ॥ अ नम् शिरसि ॥

ओ आ नम् मुखे । ओ इ नम् दक्षिण नेत्रे ॥

श्रो ई नम वामनेत्रे । श्रो उ नम दक्षिण कर्णे ॥
 श्रो नम वामकर्णे । श्रो ऋ नम दक्षिणनासा पुटे ॥
 श्रो ऋ नम वाम नासा पुटे । श्रो लृ नम दक्षिण कपोले ॥
 श्रो लृ नम वामकपोले श्रो ए नम , श्रो ए नम अवरोष्ठे ॥
 श्रो वम ऊर्ध्वंदन्तं पक्षती । श्रो नम अधोदत पक्षती ॥
 श्रो अ नम मूर्द्धि न । श्रो श्रो नम मुखवृत्ते ॥
 श्रो क नम दक्षिण वाहुमूले । श्रो ख नम द० कूपरे ॥
 श्रो श्रो ग नम द० मणिवधे । श्रो घ नम, द० हस्तागुलिमूले ।
 श्रो ड नम द० हस्तागुल्यग्रे श्रो च नम वाम वाहु मूले ।
 श्रो छ नम वा० कूपरे । श्रो ज नम वा० मणिवधे ॥
 श्रो भ नम वा० हस्तागुलिभूले ।
 श्रो झ नम वाम हस्तागुल्यग्रे । श्रो ट नम दक्षिणपाद मूले ।
 श्रो ठ नम, द० जानुनि । श्रो ड नम द० गुल्फे ॥
 श्रो ण नम द० पादागुल्यग्रे ॥
 श्रो त नम वाम पाद मूले । श्रो थ नम, वाम जानुनि ॥
 श्रो द नम, वाम गुल्फे । श्रो घ नम वा० पादागुलिमूले ॥
 श्रो न वा० पादागुल्यग्रे । श्रो प नम दक्षिण पाश्वे ॥
 श्रो फ नम वाम पाश्वे । श्रो व नम पृष्ठे ॥
 श्रो भ नम नाभी । श्रो म नम उदरे ॥
 श्रो य त्वगात्मते नम हृदि । श्रो र असृगात्मने नम दक्षामे ।
 श्रो ल सामात्मनेनम ककुदि । श्रो व मेदात्मने नम वामासे
 श्रो श अस्थ्यात्मने नम, हृदयादि दक्ष हस्तोत्तम् ॥
 श्रो प भज्जात्मनेनम हृदयादि वाम हस्तात्मम् ॥
 श्रो सशुकात्मनेनम हृदयादि वाम पादान्तम् ॥
 श्रो त ग्रात्जने नम, हृदयादि वाम पादान्तम् ॥
 श्रो ल परामात्मने नम जठरे ॥

ओ क्ष प्राणात्मने नम मुखे, इति विनयस्य !!

अथ पृष्ठिन्याम क्रम

तत्र तु विमर्शन्त्रिन प्रणश्युटिनो वा माया लक्ष्मी
वीजपूटितो वा वाभवाद्योवा न्यस्तब्ध ध्यानम् !!
पञ्चाशदर्शेर विताङ्ग भाग धृतेन्दु खण्डा कुमुदावदाताम् !!
वराभये पुस्तकमक्षसूत्र भजेगिर सद्धती त्रिनेत्राम् ।१।
तत्र वाभवाद्यो यथा ऐ अ नम ललाटे ।
ऐ आ नम मुखवृत्ते ऐ इ नम दक्ष नेत्रे ।
ऐ ई नम वाम नेत्रे !! ऐ उ नम दक्ष कर्णे !!
ऐ ऊ नम वाम कर्णे !! ऐ ऋ नम दक्ष नासाया !!
ऐ ऋ नम वाम नासाया !!
ऐ लृ नम दक्ष गडे !! ऐ लृ नम वाम गडे !!
ऐ ए नम ऊर्ध्वोष्ठे !! ऐ ऐ नम अघरोष्ठे !!
ऐ ओ नम ऊर्ध्वदन्तपक्तो !!
ऐ औ नम अघोदन्त पक्तो !!
ऐ अ नम मूढिन !! ऐ अ नम मुखे !!
ऐ क नम द० वा० मूने !! ऐ ख नम द० कूर्पे !!
ऐ ग नम द० मणिवन्धे !! ऐ घ नम द० हस्तागुणि मूने !!
ऐ ड नम द० हस्ता गुल्यग्रे !! ऐ च नम वाम वाहु मूने !!
ऐ झ नम वाम कूपरे !! ऐ ज नम वाम मणिवन्धे !!
ऐ ऐ छ नम वाम कूर्परे !! ऐ ज नम वाम मणिवन्धे !!
ऐ झै नम वाम हस्ता गुलि मूले !!
ऐ झ नम वाम हस्तांगुल्यग्रे !!
ऐ ट नम दक्षिणपाद मूने !! ऐ ठ नम दक्षिण जानुनि !!
ऐ ड नम दक्षिण गुन्के !! ऐ ढ नम द० पा० गुणि मूने !!

ऐ गु नम्. द० पा० गुल्यग्रे ॥ ऐं त नम् वाम पाद मूले ॥
 ऐं थ वाम जानुनि । ऐं द नम् वाम गुल्फे ।
 ऐं श्वं नम्. वाम पा० गु० मूले । ऐं न वाम पादागुल्यग्रे ।
 ए प नम् दक्षिण पाश्वे । ऐं फ नम् वाम पाश्वे ।
 ऐ व नम् पृष्ठे । ऐं भ नम् नाभी ।
 ऐ म नम् उड्डे । ऐ य त्वगात्मने नम् हृदि ।
 ऐ र असृगात्मने नम् दक्षा से ।
 ऐ ल मासात्मने नम् ककुदि ।
 ऐ व मेदात्मने नम् वामासे ।
 ऐ ग अस्थ्रात्मने नम् हृदयादि दक्ष भुजान्तम् ।
 ऐ प मज्जात्मने नम् हृदयादि वाम भुजान्तम् ।
 ऐ स शुक्रात्मने नम् हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।
 ऐ ह आत्मने नम् हृदयादि वाम पादान्तम् ।
 ऐ आत्मने नम् हृदयादि वाम पादान्तम् ।
 ऐ ल परमात्मने नम् हृदयादि भस्तकान्तम् ।

इति सृष्टिक्रम न्यास ।

अथ स्थिति न्यास । ऋषिश्छन्द पूर्ववत् ।

व्यानम् । सिदूर कान्ति मसिताभगणा त्रिनेत्रा विद्याक्षमूर्त
 मृत्योनवरश्वानां । पार्वत्स्थितारामगवोमरि क्रीविरागा व्यापे
 कराङ्गवृत्त पुस्तक वर्णमालाम् ।

ओ ट ट ड नम् ललाटे ।

ओ ठ ठ ड नम् मुख वृत्ते ।

ओ ट ठ ड नम् दक्ष नेत्रे ।

आ ट ठ ड नम् वाम नेत्रे ।

श्रो ट ठ ड नम्, दक्षिण कर्णे ।
 श्रो ट ठ ड नम् वाम कर्णे ।
 श्रो ट ठ ड नम् दक्षतासाया ।
 श्रो ट ठ ड वाम नासाया नम् ।
 श्रो ट ठ ड नम् दक्षिणगन्डे ।
 श्रो ट ठ ड नम् वाम गण्डे ।
 श्रो ट ठ ड नम् ऊर्ध्वोप्ते ।
 श्रो ट ठ ड नम् अघरोष्ठे ।
 श्रो ट ठ ड नम् ऊर्ध्व दन्त पक्तो ।
 श्रो ट ठ ड नम् अघो दन्त पक्तो ।
 श्रो ट ठ ड नम् शिरसि ।
 श्रो ट ठ ड नम् मुखे ।
 श्रो ट ठ ड नम् जिह्वाग्रे ।
 श्रो ट ठ ड कण्ठ देशे ।
 श्रो ट ठ ड नम् दक्ष वाहु मूले ।
 श्रो ट ठ ड नम् दक्ष कूर्परे ।
 श्रो ट ठ ड नम् दक्षिण मणिवन्धे ।
 श्रो ट ठ ड नम् दक्षिण हस्तेगुल्य मूले ।
 श्रो ट ठ ड नम् दक्षिण हस्तेगुल्यग्रे ।
 श्रो ट ठ ड नम् वाहु मूले ।
 श्रो ट ठ ड नम् कूपरे ।
 श्रो ट ठ ड नम्, वाम मणि वन्धे ।
 श्रो ट ठ ड नम् वाम हस्ता गुल्यग्रे ।
 श्रो ट ठ ड नम् दक्ष पाद मूले ।
 - श्रो ट ठ ड नम्, दक्ष जानुनि ।

श्रो ट ठ ड नम दक्ष गुल्फे ।
 श्रो ट ठ ड नम दक्ष पादागुलि मूले ।
 श्रो ट ठ ड नम पादागुल्प्रे ।
 श्रो ट ठ ड नम वाम पाद मूले ।
 श्रो ट ठ ड नम वाम जानुनि ।
 श्रो ट ठ ड नम वाम गुल्फे ।
 श्रो ट ठ ड नम वाम पाशगुलि मूले ।
 श्रो ट ठ ड नम बाम पां गुल्प्रे ।
 श्रो ट ठ ड नस दक्ष पाश्वे ।
 श्रो ट ठ ड नम पृष्ठे ।
 श्रो ट ठ ड नम हृदये ।
 श्रो ट ठ ड नम दक्षासे ।
 श्रो ट ठ ड नम ककुदि ।
 श्रो ट ठ ड नम वामासे ।
 श्रो ट ठ ड नम हृदयादि दक्षहस्तानम् ।
 श्रो ट ठ ड नम हृदयादि वाम हस्तामम् ।
 श्रो ट ठ ड नम ॐ हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।
 श्रो ट ठ ड नम हृदयादि वाम पादान्तम् ।
 श्रो ट ठ ड नम हृदयादि मस्तकान्तम् ।

इति स्थिति क्रम

अथ संहार क्रम न्यासः ।

ध्यानम् । अक्षस्त्रज हरिणपोतमुदग्रटक विद्याकरै-
 रविरतघती त्रिनेत्रा ।
 अद्भुत्तुमौलिभरणामरविन्दवासा वर्णेश्वरी च
 प्रणुम स्तनभारखिन्नाम् ।

पूर्वोक्त स्थानेषु विलोम मातृकान्यसेत् ।
 श्रो क्षा नम, ललाटे ।
 श्रो ह नमं मुखवृत्ते । स नम दक्ष नेत्रे ।
 श्रो ष नम वाम नेत्रे ।
 श्रो श नम दक्ष कण्ठे ।
 श्रो व नम वाम कण्ठे ।
 श्रो ल नम दक्ष नासाया ।
 श्रो र नम वाम नासाया ।
 श्रो य नम, दक्ष गडे ।
 श्रो म नम वाम गडे ।
 श्रो भ नम ऊर्ध्वोष्ठे ।
 श्रो ब नम अधरोष्ठे ।
 श्रो फ नम ऊर्ध्व दन्त पक्ती ।
 श्रो प नम। अधो दन्त पक्ती ।
 श्रो न नमं मूर्द्धिन ।
 श्रो घ नमं मुखवृत्ते ।
 श्रो द नम दक्ष बाहु मूले ।
 श्रो य नम दक्ष कूर्परे ।
 श्रो त नम दक्ष मणिबन्धे ।
 श्रो ण नमं दक्ष हस्तागुलि मूले ।
 श्रो ढ नम दक्ष हस्तागुल्यग्रे ।
 श्रो ड नम वाम बाहु मूले ।
 श्रो ठ नम। वाम कूर्परे ।
 श्रो ट नम. वाम मणिबन्धे ।
 श्रो झ नम वाम हस्तागुलि मूले ।
 श्रो भ नम वाम हस्तागुल्यग्रे ।
 श्रो ज नम दक्ष पाद मूले ।

ओ छ नम दक्ष जानुनि ।

ओ च नम दक्ष गुल्फे ।

ओ ढ नम, दक्ष पादागुलि मूले ।

ओ घ नम दक्ष पादागुल्यग्रे ।

ओ ग नम, वाम पाद मूले ।

ओ ख नम वाम जानुनि ।

ओ क नम वाम गुल्फे ।

ओ अ नम वाम पादागुलि मूले ।

ओ अ नम वाम पादागुल्यग्रे ।,

ओ अँ नम दक्षिण पाश्वे ।

ॐ ओ नम वाम पाश्वे ।

ॐ ऐ नम पृष्ठे ।

ॐ ए नम नाभो ।

ॐ लृ नम, उदरे ।

ॐ लृ त्वगात्मने नम हृदि ।

ॐ ऋ असृगात्मने नम दक्षासे ।

ॐ ऋ मासात्मने नम ककुदि ।

ॐ ऊ मेदात्मने नम वामासे ।

ॐ उ अस्थ्यात्मने नम हृदयादि दक्ष हस्तान्तम् ।

ॐ ई मज्जात्मने नम हृदयादि वाम हस्तान्तम् ॥

ॐ इ शुक्रात्मने नम हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।

ॐ आ श्रात्मने नम हृदयादि वाम पादान्तम् ।

ॐ अ परमान्मने नम हृदयादि मस्तकान्तम् ।

॥ इति संहार क्रम न्यास कृत्वा ॥

अथ शक्ति कला न्यासः ।

अस्य श्री शक्तिकला मातृका न्यासस्य प्रजापति ऋषि
गायत्री छन्दं श्री मातृका शारदा देवता हलोबोजानिस्वरा
शक्तय सप्तशती पाठाङ्ग त्वेन मातृका न्यसे विनियोग ।

ओ प्रजापति ऋषये नम शिरसि,

ओ गायत्री छन्दसे नम मुखे ।

ओ श्री मातृका शारदा देवताये नम हृदि,

ओ हलभ्योबोजेभ्यो नम गुह्ये ।

ओ स्वरेभ्योशक्तिभ्यो नम पादयो ।

ओ विनियोगाय नम सर्वगे ।

॥ कर न्यास ॥

उो अ उो आ अगुष्ठाभ्या नम (हृदयाय नम)

उो इ उो ईं तर्जनोभ्या नम (शिरसे स्वाहा)

उो उ उो ऊ मध्यमाभ्या नम, (शिखायेवषट्)

उो ए उो एं अनामिकाभ्या नम (कवचायहुँ)

उो ओ उो श्री कनिष्ठका नम (नेत्र त्रयाय वौपट्)

उो अ उो अ करतल करपृष्ठाभ्या नम (अस्त्रायफट्)

॥ अथ हृदयादि न्यासः ॥

ॐ हृसा अङ्गुष्ठाभ्या नम, । हृदयाय नम ।

ॐ हृभी तर्जनोभ्या नम, । शिरसे स्वाहा ।

ॐ हृसू मध्यमाभ्या नम । शिखायेवपट् ।

ॐ हृसे अनामिकाभ्या नम, । कवचाय हृम् ।

ॐ हृसी कनिष्ठकाभ्या नम, । त्रयायवौपट् ।

ॐ हृप करतल करपृष्ठाभ्या नम, । अस्त्रायफट् ॥

षोडान्यास प्रकारः

तत्र प्रथम शुद्ध मातृका न्यास
 अ आ इ इं उ ऊ ऋ ऋ लृ नमो हृदि ।
 ए ऐ ओ औ अ अ, क ख ग घ नमो दक्ष भुजे ।
 ड च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ नमो वाम भुजे ।
 ण त थ द ध न प फ ब भ नमो दक्ष पादे ।
 म य र ल व श प स ह ल क्ष नमो वाम पादे ।
 इति शुद्ध मातृका न्यास प्रथम ।

अथ द्वितीय न्यासः

श्री अ श्री अ श्री अ नमो ललाटे ।
 श्री आ श्री आ श्री आ नमो मुख वृत्ते ।
 श्री इ श्री इ श्री इ नमो दक्ष नेत्रे ।
 श्री इं श्री ई श्री इं नमो वाम नेत्रे ।
 श्री उ श्री उ श्री उ नमो दक्ष कण्ठे ।
 श्री ऊ श्री ऊ श्री ऊ नमो वाम कण्ठे ।
 श्री शृ श्री शृ श्री शृ दक्ष नासायां ।
 श्री ऋ श्री ऋ श्री ऋ नमो वाम नासायां ॥
 श्री लृ श्री लृ श्री लृ नमो दक्ष कपोले ।
 श्री लृ श्री लृ श्री लृ नमो वाम कपोले ।
 श्री ए श्री ए श्री ए नमो उद्धर्वोष्ठे ।
 श्री एँ श्री एँ श्री एँ नमो अधरोष्ठे ।
 श्री ओ श्री ओ श्री ओ नमो ऊद्धर्व दन्त पक्तौ ।
 श्री औं श्री औं श्री औं नमो अघ दन्त पक्तौ ।
 श्री अ श्री अ श्री अ नमो मूढ्हिनि ।
 श्री अ श्री अ श्री अ नम. मुखे ।

श्री क श्री क श्री क नमो दक्षिण बाहु मूले ।
 श्री ख श्री खं श्री ख नमो दक्षिण कपूरे ।
 श्री ग श्री ग श्री ग नमो दक्षिण मणि बन्धे ।
 श्री घ श्री घ श्री घ नमो दक्षिण हस्तागुलि मूले ।
 श्री ङ श्री ङ श्री ङ नमो दक्षिण हस्तागुल्यग्रे ।
 श्री च श्री च श्री च नमो वाम बाहु मूले ।
 श्री छ श्री छ श्री छ नमो वाम कूर्परे ।
 श्री ज श्री ज श्री ज नमो वाम मणि बन्धे ।
 श्री झ श्री झ श्री झ नमो वाम हस्तागुलि मूले ।
 श्री र्ज श्री र्ज श्री र्ज नमो वाम हस्तागुल्यग्रे ।
 श्री ट श्री ट श्री ट नमो दक्षिण पाद मूले ।
 श्री ठ श्री ठ श्री ठ नमो दक्ष जानुनि ।
 श्री ड श्री ड श्री ड नमो दक्ष गुल्फे ।
 श्री ढ श्री ढ श्री ढ नमो दक्ष पादाङ्गुलि मूले ।
 श्री ण श्री ण श्री ण नमो दक्ष पादाङ्गुल्यग्रे ।
 श्री न श्री त श्री तं नमो वाम पाद मूले ।
 श्री थ श्री थ श्री थ नमो वाम जानुनि ।
 श्री द श्री द श्री द नमो वाम गुरुं के
 श्री ध श्री ध श्री ध नमो वाम पादागुलि मूले ।
 श्री न श्री न श्री न नमो वाम पादागुल्यग्रे ।
 श्री प श्री प श्री प नमो दक्ष पाश्वे ।
 श्री फ श्री फ श्री फ नमो वाम पाश्वे ।
 श्री व श्री व श्री व नमो पृष्ठे ।
 श्री भ श्री भ श्री भ नमो नाभी ।
 श्री म श्री म श्री म नमो उदरे ।
 श्री य श्री य श्री य त्वगात्मने नम, हृदि ।
 श्री र श्री र श्री र अमृगात्मने नम दक्षासे ।

श्री ल श्री ल श्री ल मासात्मने नम्, ककुदि ।

श्री ब श्री ब श्री ब मेदात्मने नम् वामासे ।

श्री श श्री श श्री श अस्थात्मने नम् हृदयादि दक्ष हस्तान्तम्।

श्री ष श्री ष श्री ष मज्जात्मने नम् हृदयादि वाम हस्तान्तम्।

श्री स श्री स श्री स शुक्रात्मने नम् हृदयादि दक्ष पादान्तम्।

श्री ह श्री ह श्री ह आत्मने नम् हृदयादि वाम पादात्मम् ।

श्री ल श्री ल श्री ल परमात्मने नम् जठरे ।

श्री क्ष श्री क्ष श्री क्ष प्राणात्मने नम् हृदयादि मस्तकात्मम् ।

॥ इति द्वितीय न्यास ॥

॥ अथ तृतीय न्यासः ॥

बली श्री बली श्री बली श्री नमो ललाटे ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो मुख वृत्ते ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो दक्ष नेत्रे ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो वाम नेत्रे ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो दक्ष कण्ठे ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो वाम कण्ठे ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो दक्ष नासायाम् ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो वाम नासायाम् ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो दक्ष कपोले ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो वाम कपोले ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो ऊर्ध्वोष्ठे ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो अवरोष्ठे ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो ऊर्ध्व दन्त पक्तो ।

बली श्री बली श्री बली श्री अघो दन्त पक्तो ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो मूर्ढ्द्वन् ।

बली श्री बली श्री बली श्री नमो मुखे ।

कली श्री कली श्री कली श्री नमो दक्षिणा बाहु मूले ।
 कलीं श्री कली श्री कली श्री नमो दक्ष कूर्परे ॥
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो दक्ष मणि बन्धे ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो दक्ष हस्तागुलि मूले ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो दक्ष हस्तागुल्यग्रे ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो वाम बाहु मूले ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो वाम कूर्परे ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो वाम मणि बन्धे ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो वाम हस्तागुलि मूले ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो वाम हस्तागुल्यग्रे ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो दक्षिणा पाद मूले ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो दक्ष जानुनि ।
 कली श्री कली श्री कली श्री दक्ष गुल्फे ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो पादागुलि मूले ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो पादागुल्यग्रे ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो वाम पाद मूले ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो वाम जानृनि
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो वाम गुल्फे ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो वाम पादागुलिमूले ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो वाम पादागुल्यग्रे ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो वाम दक्ष पाश्वे ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो वाम पाश्वे ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो पृष्ठे
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो नाभौ ।
 कली श्री कली श्री कली श्री नमो उदरे ।
 कली श्री कली श्री कली श्री त्वगात्मने नम हृदि

कनी श्री कली श्री कनी श्री अपृगात्मने नम दक्षासे ।
 कर्ली श्री कली श्री कली श्री मासात्मने नम ककुदि ।
 कली श्री कली श्री कली श्री मेदात्मने नम वामासे ॥
 कनी श्री कली श्री कली श्री अस्यथात्मने नम, हृदयादि
 दक्ष हस्तान्तम् ।

कनी श्री कली श्री कनी श्री मज्जात्मने नम हृदयादि
 वाम हस्तान्तम् ।

कली श्री कली श्री कली श्री शुक्रात्मने नम हृदयादि
 दक्ष पादान्तम् ॥

कली श्री कली श्री कनी श्री आत्मने नम हृदयादि वाम
 पादान्तम् ।

कली श्री कली श्री कनी श्री परमात्मने नम, जठरे ॥

कनी श्री कली श्री कली श्री हृदयादि मस्तकान्तम् ।

॥ इति तृतीय न्यास ॥

अथ चतुर्थ न्यास

ही श्री ही श्री ही श्री नम ललाटे ।

सृष्टि न्यास के अनुसार स्थानों पर पचम न्यास तथा मुद्रा
 भी वही ।

पंचमः

ए ही कली चामुन्डायै विच्चे हा हा ऋ शू ल्कू नम
 ललाटे ।

सृष्टि न्यास के अनुसार तथा मुद्रा भी वही

षष्ठ अनुलोमः

ऐ ह्री कली चामुण्डायै विच्चे नम ललाटे ।
उन्ही स्थान तथा मुद्रा से

विलोम न्यासः

ऐ ह्री कली चामुण्डायै विच्चे नम हृदयादि मस्तकान्तम् ।
पूर्व लिखे हुए सहार न्यास के अनुसार होगा मुद्रा सहित ।

तत्त्वन्यासः

ऐ ह्री कली श्रात्म तत्त्वाय नम पादादि नाभिपर्यन्तम् ।
चामुण्डायै विद्यातत्त्वाय नम नाभ्यादि हृदय पर्यन्तम् ।
विच्चे शिव तत्त्वाय नम हृदयादि शिर पर्यन्तम् ।

अक्षर न्यास

ऐ नम ब्रह्मरध्रे । ह्री नम भ्रुवोर्मध्ये ।
कली नम ललाटे चा नम हृदि । मुन्नमोकुक्षौ ।
डा नम नाभौ । यै नम लिंगे । विनमो गुह्ये ।
च्चेनमोवक्ते । इति

ऐ ह्री कली चामुण्डायै विच्चे ॥

ततो नवधा सप्तधा पञ्चधा वा मूल मुच्चरन् व्यत्य
हस्ताभ्या व्यापक न्यास विधाय ।

ततो यथोक्त विधिना बिन्दु त्रिकोण षट् कोण अष्ट दल-
चतुर्विंशति दल भूपरयुत यत्रनिर्माण पीठे धृत्वा ।

पीठ न्यास कुर्यात् ।

ओ आधार शक्त्यै नम ।

ओ प्रकृत्यै नम ।

ओ कूर्माय नम ।

ओ सुधा बुधये नम ।
 ओ मणिद्वीपाय नम ।
 ओ चिन्तामणि गृहाय नम ।
 ओ शमशानाय नम ।
 ओ पारिजाताय नम ।
 ओ तन्मूले । ओ रत्नवेदिकायै नम
 ओ मणिपीठाय नम । एतावद्वदि न्यसेत् । चतुर्दिक्ष ॥
 ओ नाना मुनिस्थो नम ।
 ओ नाना देवेभ्यो नम ।
 ओ शवेभ्यो नम ।
 ओ शनमुण्डे भ्योनमः
 ओ वहुमासास्थि मोदमान शवेभ्यो नम ।
 ओ धर्माय नम, दक्षासे ।
 ओ ज्ञानाय नम वामासे ।
 ओ वैराग्याय नम वामोरी ।
 ओ ऐश्वर्याय नम दक्षोरी ।
 ओ अग्नानाय नमो वाम पाश्वे ।
 ओ अवैराग्याय नम नाभी ।
 ओ अनश्वर्याय नम दक्षिणपाश्वे । ततो हृदि ॥
 ओ आनन्द कन्दाय नम.
 ओ सविज्ञालय नम
 ओ सर्वं तत्वात्मक पद्माय नम
 ओ प्रकृतिमय पत्रेभ्यो नम ।
 ओ विकार मय केसरेभ्यो नम
 ओ पञ्चाशद्वीजाद्य कर्णिकायै नम
 ओ अद्वादश कलात्मने सूर्य मण्डलाय नम

श्रो पोडश कलात्मने सोममण्डलाय नम ।
 श्रो मन्दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नम ।
 श्रो म सत्त्वायनमः ।
 श्रो र रजसे नम ।
 श्रो तम् तमसे नम ।
 श्रो आ आत्मने नम ।
 श्रो अ अन्तरात्मने नम ।
 श्रो प परमात्मने नम ।
 श्रो हो ज्ञानात्मने नम । अष्टदिक्षु ।
 श्रोइ इच्छायै नम
 श्रो जा ज्ञानायै नम ।
 श्रो कि क्रियायै नम ।
 श्रो का कामिन्यै नम ।
 श्रो का काभदायिन्यै नम ।
 श्रो र रत्यै नम ।
 श्रो र रति प्रियायै नम ।
 श्रो आ आनन्दायै नम । मध्ये ।
 श्रो म मनोन्मन्यै नम ।
 श्रो एं परायै नम ।
 श्रो प परायण्ये नम ।
 श्रो हस्तो, ब्रह्मा विष्णु रुद्र महाप्रेत पदमासनाय नमः ।
 इति पीठ न्यास कत्वा तत्र दुर्गा ध्यायेत् ।
 उ शख चक गदा बाणान् चाप परिध शूलके ।
 भुशुण्डो च शिर, खड्ग दघती दश वक्त्रकाम ॥१॥
 तामसों श्यामला नौमि महाकाली दशाघ्रिकाम् ।
 मालाच्च परशु बाणान् गदा कुलिशमेवच ॥२॥

पदम् धनु कुण्डिका च दण्ड शक्तिमसि तथा ।

खेट कजलज घणटा सुरापात्र च शूलकम् ॥३॥

पाश सुदर्शनं चैव दधती लोहित प्रभाम् ।

पदमे स्थिता महालक्ष्मी भजे महिप मदिनीम् ॥४॥

घटा शूल हल शख मुसलारिघनु शरोन् ।

दधतीमुजवला नौमि देवी गौरी समुद्धवाम् ॥५॥

इति ध्यात्वा मानसे रूप चारैरभ्यच्य प्रणमेत् ।

ध्यान—सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्या चतुर्भिर्भजे शख चक्र-
धनु शरश्च दधती नेत्रैस्त्रिभि शोभिता । आमुकाङ्गद-
हारकङ्गगारणाटकाञ्चीकवणान्तपुरा दुर्गा दुर्गति हारिणो
भवतु वो रत्नोहलसत्कृण्डला ।

अथ देव्या. कवचम्

ॐ श्री चण्डीकवचस्य व्रह्मा ऋषि, अनुष्टुप्छब्द, चामुण्डा
देवता, अङ्गन्यामोक्तमातरो वीजम्' दिग्बन्धदेवनास्तत्त्वम्, श्रीजगद्भावा-
प्रीत्यर्थं सप्तशती पाठाङ्गत्वेन जपे विनियोग

ओ नमश्चण्डिकार्यं ।

मार्कण्डेय उवाच—ओ यदगुह्या परम लोके सर्वरक्षाकर नृणाम् ।

यन्न कस्यचिदाख्यात तन्मे व्रूहि पितामह ॥१॥ ।

व्रह्मोवाच—अस्ति गुह्यतम विप्र सर्वभूतोपकारकम् ।

देव्या स्तू कवच पुण्य तच्छ्रुणुप्व महामुने ॥२॥

प्रथम शैलपुत्री च द्वितीय व्रह्माचारिणी ।

तृतीय चन्द्रघणटेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥३॥

पञ्चम स्कन्दमातेति पष्ठं कात्यायनीति च ।

सप्तम कालरात्रीति महागौरीति चाष्टकम् ॥४॥

नवम सिद्धिदात्री च नवदुर्गा प्रकीर्तिता ।

उक्तान्येतानि नामानि व्रह्मागेव महात्मना ॥५॥

अग्निना दह्यमानस्तु शश्रुमध्ये गतो रणे ।

विपमे दुर्गमे चैव भायर्ता शरण गता ॥६॥

न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रणसक्टे ।
 नापद तस्य पश्यामि शोकदुखभयं न हि ॥७॥
 येस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषा वृद्धिं प्रजायते ।
 ये त्वा स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न सशय ॥८॥
 प्रेतसस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना ।
 ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥९॥
 माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ।
 लक्ष्मी पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥१०॥
 श्वेतरूपधरा, देवी ईश्वरी वृषवाहना ।
 ब्राह्मी हसममारूढा सर्वामरणभूषिता ॥११॥
 इत्येता मातर सर्वा रार्वयोगसमन्विता ।
 नानाभरणशोभाद्या नानारत्नोपशोभिता ॥१२॥
 दृश्यन्ते रथमारूढा देव्य क्रोधसमाकुला ।
 शख चक्रं गदा शक्ति हलं च मुसलायुधम् ॥१३॥
 खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।
 कुन्तायुधं त्रिशूलं च शाङ्कं मायुधमुत्तमम् ॥१४॥
 देत्याना देहनाशाय भक्तानामभयाय च ।
 घारयन्त्यायुधानीतर्थं देवाना च हिताय वै ॥१५॥
 नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाधोरपराक्रमे ।
 महाबले महोत्साहे महाभयबिनाशिनि ॥१६॥
 आहि मा देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूं एा भयवर्द्धिनि ।
 प्राच्या रक्षतु मामेन्द्री आरनेय्यामभिन्देवता ॥१७॥
 दक्षिणोऽवतु वाराही नैऋत्यां खज्जघारिणी ।
 प्रतीच्या वारुणी रक्षेद् वायव्या मृगवाहिनी ॥१८॥
 उदीच्या पातु कौमारी ऐशान्या शूलघारिणी ।
 ऊच्वं व्रह्माणि मे रक्षेदघस्ताद् वैष्णवी तथा ॥१९॥

एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना ।
जया मे चाग्रत पातु विजया पातु पृष्ठत ॥२०॥
अजिता वासपाश्वे तु दक्षिणो चापराजिता ।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्छित व्यवस्थिता ॥२१॥
मालाघरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद यशस्तिवती ।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघरटा च नासिके ॥२२॥
शह्निनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोद्धारवासिनी ।
कपोली कालिका रक्षेत्करणमूले तु शाङ्करी ॥२३॥
नासिकाया मुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चचिका ।
अधरे चामृतकला जिह्वाया च सरस्वती ॥२४॥
दन्तान् रक्षतु कौमारी वण्ठदेशे तु चरिङ्का ।
घण्टिका विन्नघरटा च महामाया च तालुके ॥२५॥
कामाक्षी चिबुक रक्षेद वाच मे सर्वमङ्गला ।
ग्रीवाया भद्रकालो च पृष्ठवशे धनुर्धरी ॥२६॥
नीलग्रोवा वहि करठे नलिका नलकूबरी ।
स्कन्धयो खर्ज्जनी रक्षेद बाहू मे वज्रघारिणी ॥२७॥
हस्तयोदर्णिण्डनी रक्षेदम्बिका चामुलीषु च ।
नखाञ्चूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षी रक्षेत्कुलेश्वरी ॥२८॥
स्तनो रक्षेन्महादेवी मन शोकविनाशिनी ।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलघारिणी ॥२९॥
नाभो च कामिनी रक्षेद गुह्या गुह्येश्वरी तथा ।
पूतना कामिका मेदू गुदे महिषवाहिनी ॥३०॥
कट्टा भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी ।
जह्नु महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी ॥३१॥
गुल्फयोर्नरसिही च पादपृष्ठे तु तंजसी ।
पादागुलीषु श्री रक्षेत्पादाघस्तलवासिनी ॥३२॥

नखान् दण्टाकराली च केशाश्चैवोद्धर्वकेगिनी ।
 रोमकूपेषु कौवेरी त्वच वागीश्वरी तथा ।३३।
 रक्तमज्जावसामासान्यस्थिमेदासि पावती ।
 अन्न त्राणि कालरात्रिश्च पित्त च मुकुटेश्वरी ।३४।
 पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा ।
 ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ॥३५॥
 शुक्र त्रह्याणि मे रक्षेच्छाया छवेश्वरी तथा ।
 अहकार मनो वुद्धि रक्षेन्मे धर्मधारिणी ॥३६॥
 प्राणापानो तथा व्यानमुदान च समानकम् ।
 वज्रहस्ता च मे रक्षेत्राणकल्याण शोभना ॥३७॥
 रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी ।
 सत्त्व रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ।३८।
 आयू रक्षतु वाराही धर्म रक्षतु वैष्णवी ।
 यश कीर्ति च लक्ष्मी च धन विद्या च चक्रिणी ।३९।
 गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशुन्मे रक्ष चण्डिके ।
 पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भयी रक्षतु भरवी ।४०।
 पन्थान सुपथा रशेन्मार्ग क्षेमकरी तथा ।
 राजद्वारे महालक्ष्मीविजया सर्वंत स्थिता ।४१।
 रक्षाहीन तु यत्स्थान वजिन कवचेन तु ।
 तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ॥४२॥
 पदमेक न गच्छेत् यदीच्छेच्छुभमात्मन ।
 कवचेनावृतो नित्य यत्र यत्रैव गच्छति ।४३।
 तत्र तत्रार्थलाभश्च विजय सावंकामिका ।
 य य चिन्तयते काम त त प्राप्नोति निश्चितम् ।
 परमेश्वरमतुल प्राप्त्यते भूतले पुमान् ।४४।
 निर्भयो जायते मर्त्यं सम्रामेष्वपराजित ।

त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्य कवचेनावृतः पुमान् । ४५।।
 इदं तु देव्याः कवच देवानामपि दुर्लभम् ।
 य पठेत्प्रयतो नित्य श्रिसन्ध्य श्रद्धयान्वित । ४६।
 दंवी कला भवेत्स्य त्रैलोक्येष्वपराजित ।
 जीवेद् वर्षशत साग्रमपमृत्युविर्जित । ४७।
 दश्यन्ति व्याघ्रय, सर्वे लूताविस्फोटकादय ।
 स्थावर जङ्घम चर्व कृत्रिम चापि यद्विषम् । ४८।
 अभिचारणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।
 भूचरा खेचराश्चैव जलजाश्रोपदेशिका । ४९।
 सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।
 अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महावला । ५०।
 ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसा ।
 त्रह्यराक्षसवेताला कूष्माएडा भैरवादय । ५१।
 दश्यन्ति दर्शनात्स्य कवचे हृदि सस्थिते ।
 मानोन्नतिर्भवेद् राजस्नेजोवृद्धिकर परम् । ५२।
 दश्यन्ति दर्शनात्स्य कवचे हृदि सस्थिते ।
 यशसा वद्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ।
 जपेत्समशती चण्डी कृत्वा तु कवच पुरा । ५३।
 योवदभमण्डल धत्ते सर्वलवनकाननम् ।
 तावत्तिष्ठति मेदिन्या सन्तति पुत्रपौत्रिकी ॥ ५४॥।
 देहान्ते परम स्थान यत्सुररपि दुर्लभम् ।
 प्राप्नोति पुरुषो नित्य महामायाप्रसादत । ५५।
 लभते परम रूप शिवेन सह मोदते ॥ ५६ ॥ ५६॥।

देवी सूक्तम्

नमो देव्ये महादेव्ये शिवायं सततं नम ।
 नम, प्रकृत्ये भद्रायं नियता प्रणता स्मरताम् । १।

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमोनम ।
 ज्योत्स्नायै चेन्दु रूपिण्यै सुखार्यै सतत नम ॥२॥
 कल्याण्यै प्रणता वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नम ।
 नैऋत्यै भूमृता लक्ष्मी शवरिण्यै ते नमो नमा ॥३॥
 दुर्गायै दुर्गपारायै सरायै सर्वकारिण्यै ।
 स्थ त्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सतत नम ॥४॥
 अति सौम्यातिरोद्रायै नतास्तस्यै नमो नम ।
 नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नम ॥५॥
 या देवा सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥६॥
 या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिघीयते ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥७॥
 या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥८॥
 या देवी सर्वभूतेषु निद्रा रूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥९॥
 या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१०॥
 या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥११॥
 या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१२॥
 या देवी सर्वभूतेषु वृष्णारूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम, ॥१३॥
 या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥१४॥

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।१५।
 या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।१६।
 या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।१७।
 या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण सस्थिता
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।१८।
 या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।१९।
 या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।२०।
 या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।२१।
 या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।२२।
 या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।२३।
 या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण मरिथता ।
 नमरतस्यै नमरतस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।२४।
 या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण सस्थिता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।२५।
 या देवी सर्वभूतेषु भ्रातिरूपेण मरिथता ।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।२६।
 इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूताना चाखिलेषु या ।
 भूतेषु सतत तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नम ।२७।

चितिरूपेण या कृत्स्नभेतद्वयाप्य स्थिता जगत् ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२६॥

स्तुता सुरै पूर्वमभीष्टसश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण ।

दिनेषु सेविता । करोतुं सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि
भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥२६॥ यो साप्रत चोद्धतदेत्यता-
पितैरस्माभिरीशाच सुर्वैर्मस्य ते । य च स्मृता तत्क्षणमेव
हन्ति न सर्वपिदो भक्ति विनम्रमूर्तिभि ॥३०॥

॥ इति देवीसूक्त ॥

आठ लाख मन्त्र जप से इस मन्त्र का पुरश्चरण होता है । जप
के बाद त्रिमधु युक्त तिल अथवा दूध मिले श्रन्ति से आठ हजार आहुतियो
का हवन करना चाहिए । इसमें दशाश हवन का नियम नहीं है ।



त्रिशक्ति-रहस्य

स्पष्टीकरण

‘शक्ति’ की पूजा अक्षर (निराकार) रूप में नहीं, की जा सकती इसलिए उसके प्रत्यक्ष स्वरूप की कल्पना उत्पत्ति, स्थिति और लय के आधार पर करनी पड़ती है, इन तीनों शक्तियों का नाम क्रम से सरस्वती, लक्ष्मी और काली रख दिया गया है, वस्तुतः ये तीन भिन्न-भिन्न देवियाँ नहीं हैं, वरन् एक ही निराकार देवी की पूजा के लिए तीन स्वरूप हैं। इन शक्तियों के अनुरूप देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी इसी प्रकार तीन ग्रलग-ग्रलग देव नहीं हैं, वरन् एक ही निराकार परमात्मा के तीन रूप कल्पित किये गये हैं, नवरात्रि के उत्सव में जगत की इन तीन शक्तियों महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती की पूजा ही की जाती है।

महा सरस्वती, महाकाली और महालक्ष्मी का शत्रयोक्त त्रिख्या शक्ति कहते हैं। इनका मूल नियम [वेताश्वररोपनिद (४१५) के मन्त्र में है।

अजमेका लोहितशुक्लकृष्ण

बह्वी प्रजा सृजमाना सरूपा ।

अजो ह्ये को जपुमारणेऽनुशेते

जहात्येना भुक्तभोगामजोऽन्य ।

अथर्वा अपने समान रूप वाली, असर्व प्राणियों को रचने

वाली, लाल, इवेत, काली, एवं अजन्मा प्रकृति को ही एक अजन्मा अज्ञानी प्राणी मोहयुक्त होकर भोगता है, परन्तु दूसरा ज्ञानी पुरुष इस भोगी हुई प्रकृति का त्याग कर देता है।

इवेत वर्ण प्रतीक महासरस्वती, काले वर्ण का महाकाली और रक्त वर्ण का महालक्ष्मी है। महामरस्वती सत्त्व गुण प्रधान है, महाकाली तमो गुण प्रधान है, महालक्ष्मी रजोगुण प्रधान है। यौं भी कह सकते हैं कि महासरस्वती काल है। महाकाली-प्रलय काल है और महालक्ष्मी सृष्टि काल है। यह परम प्रकृति की तीन विकृतियाँ हैं जिनके न्याय-शास्त्र के अनुमार आध्यात्मिक नाम-ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति हैं। सारुण्य योग के अनुमार यह सत् रज और तम है। पारमार्थिक वेदान्तोक्त नाम-चित् आनन्द और सत् हैं तात्त्विक ऐं क्ली हीं (श्री) हैं।

ज्ञानेच्छाक्रियाणां तिमृणा व्यष्टीना महासरस्वतीमहाकाली
महालक्ष्मीरित प्रवृत्तिनिमित्तवलक्षण्येन नामरूपान्तरणि
सच्चिदान्दात्मकपरब्रह्मर्मत्वादेव शक्तेरपि त्रिरूपत्वम् ।

महासरस्वति चिते महालक्ष्मि सदात्मिको ।

महाकाल्यानन्दरूपे त्वत्तत्वज्ञनसिद्धये ।

अनुसदधमहे चण्ड वय त्वा हृदयाम्बुजे ॥

महालक्ष्मीब्रह्मत्व महाकाली रुद्रात्म

महासरस्वती विष्ट्युत्व प्रपेदे ।

(सप्तशती की गुप्तवती टीका)

शर्थात् “ज्ञान-इच्छा और क्रियाओं की तीन प्रकृति हैं महा सरस्वती, महाकाली, महालक्ष्मी। प्रवृत्ति और निवृत्ति की विलक्षणता से नाम और रूपों में अंतर होते हैं।

सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म के घम होने से ही शक्ति के भी तीन रूप हैं। महासरस्वती चित्ररूपा है—महालक्ष्मी सत्रूपा है और

महाकाली आनन्द रूपिणी है । आपके तत्व का ज्ञान की सिद्धि के लिये ही है । हे च पड़ ? हम हृदय कमल में प्रापका अनुमध्यान करते हैं ।

रजोगुणाधिको ब्रह्मा विष्णु सत्त्वाधिको भवेत् ।

तमोगुणाधिको रुद्र सब कारण रूपधृक् ॥

स्थूलदेहो भवेद् ब्रह्मा लिङ्गदेहो हरि, स्मृत ।

रुद्रस्तु कारणे देहस्तुरीयस्त्वहमेव हि ॥

(द० भा० १२०७-७२०७३)

अथति—ब्रह्मा रजोगुण की अधिकता वाले हैं—विष्णु में सत्त्व गुण की अधिकता है और रुद्र तमोगुण की अधिकता से युक्त हैं और सब कारण के रूप को बारण करने वाले हैं । ब्रह्मा स्थूल देह वाले हैं—हरिलिंग देह से युक्त है और रुद्र कारण देह वाले हैं, तुरीय देह तो मैं ही ? ।

याऽस्य प्रथमा रेखा त्या गार्ह पत्यश्चाकारो रज स्वात्मा
कियाशक्तिऋरवेद प्रात सवन महेश्वरो देवतेति । ६।

याऽस्य द्वितीया रेखा सा दक्षिणाग्निरुकार सत्त्वमन्तरात्मा
केच्छाशक्तिर्यजुर्वेदः माध्यदिन सवन सदाशिवो देवतेति । ७।

याऽस्य तृतीया रेखा साऽहवनोयो मकार स्तम् परमात्मा
ज्ञानशक्ति सामवेदस्तृतोयसवन महादेवो देवतेति । ८।

(कालाग्नि रुद्रोपनिषद्)

अथति—“तीन रेखाओं में से प्रथम रेखा तो गर्हरूप, ग्रन्ति-रूप ‘अ’ कार रूप, रजोगुण रूप, भूलोक रूप, स्वात्मक रूप, क्रिया शक्ति रूप, ऋग्वेद रूप, प्रात सवन रूप, और महेश्वर देव के रूप की है । दूसरी रेखा दक्षिणाग्नि रूप, ‘उ’कार रूप, स्वत्व रूप, अन्तरिक्ष रूप, इच्छा शक्ति रूप, यजुर्वेद रूप, माध्यदिन सवन रूप, और सदा-शिव के रूप की है । तीसरी रेखा आहवनोय रूप, तमरूप, शौलेकरूप

परमात्मा रूप, ज्ञान शक्ति रूप, सामवेद रूप, तृतीय सवन रूप और महादेव रूप की है।

शक्ति स्वभाविको तस्य विद्या विश्वविलक्षणा ।
एकानेकस्वरूपेण भाति भानोरिव प्रभा ॥
अनन्ता शक्तयस्तस्य इच्छाज्ञानक्रियादय ।
इच्छाशक्तिमहेशस्य नित्या कार्यनियामिका ॥
ज्ञानशक्तिस्तु तत्कार्यं कारण करण तथा ।
प्रयोजनं च तत्त्वेन बुद्धिरूपाध्यवस्थति ॥
यथेप्सित क्रियाशक्तिर्थाध्यवसित जगत् ।
कल्पयत्यखिल कार्यं क्षणात् सकल्परूपिणी ॥

। (शिवपुराण, वायुसहिता, उत्तरखण्ड, अ० ७ अ० ८)

अर्थात्—उसकी शक्ति तो स्वाभाविकी है और विद्या विश्व विलक्षणा है। वह एक ही प्रनेक स्वरूप से सूर्य की प्रभा की भाँति प्रतीत होती है। उसकी इच्छा-ज्ञान क्रिया आदि अनन्त शक्तियाँ हैं। महेश की इच्छा शक्ति कार्य की नियामिका और नित्य है। ज्ञान शक्ति उसका कार्य है तथा कारण है। तत्व से प्रयोजन बुद्धि रूपा होकर अध्यवसित होता है। क्रिया शक्ति ईप्सित के अनुरूप है और जगत् यथाध्यवसित होता है। एक ध्यान मात्र में सकल्प रूप वाली सम्पूर्ण कार्य को सम्पदि कर देती है।”

शास्त्रकारों का मत है कि परमात्मा अपनी योग माया के सह-योग से सृष्टि की यथादा इच्छा के लिए युग युग में अवतार ग्रहण किया करते हैं। जब पुरपरूप में अवर्तारण होते हैं तो ब्रह्मा विष्णु महेश कहे जाते हैं। उनकी तीन शक्तियों के नाम महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली हो जाते हैं। यह परमात्मा की चित्तशक्ति के रूप है; जिस प्रकार यह तीन देवता प्रकृति के ३ गुणों के प्रतीक हैं, उसी तरह यह तीन शक्तियाँ भी त्रिगुणा हैं। सत्त्व प्रवान वैष्णव रूप को महालक्ष्मी

रजप्रधान वाली शक्ति को महासरस्वती और तम प्रधान रोद्र-रूप वाली को महाकाली कहते हैं।

सार यह कि परमात्मा निरञ्जन, निराकार निरुण, निष्क्रम और निलिपि है। वह अपनी माया शक्तिपे सृष्टि, पालन और सहार करता है। कार्य भेद से उभी के तीन नाम ब्रह्मा, विष्णु और महेश हो जाते हैं। जिन शक्तियों के सहयोग से यह महान कार्य सम्पन्न हो पाते हैं, उनका नाम करण महामरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली किया गया।

यौगिक रूप

त्रिशक्ति—महाकाली, महालक्ष्मी और महामरस्वती पिण्ड मे तीन वन्धन ऋत्थियो-रुद्र-ग्रन्थि, विष्णु-ग्रन्थि और ब्रह्म-ग्रन्थि की प्रतीक हैं।

साधक की जब विज्ञानमय कोश मे स्थिति होती है तो उसे ऐसा अनुभव होता है मानो उसके भीतर तीन कठोर, गठीली चमकदार हलचल करती हुई, हनकी गाँठे हैं। इनमे से एक गाँठ मूत्राशयके समीप, दूसरी आमाशय के ऊपर्व भाग मे और तीसरी मस्तिष्क के मध्य केन्द्र मे विदित होती है, इन गाठो मे से मूत्राशय वाली ग्रन्थि को रुद्र-ग्रन्थि, आमाशय वाली को विष्णु ग्रन्थि और शिर वाली को ब्रह्म-ग्रन्थि कहते हैं।

इन तीन महाग्रन्थियों की दो-दो सहायक ग्रन्थियाँ भी हैं जो मेरुदण्ड स्थिन सुपुम्ना नाड़ी के मध्य मे रहने वाली ब्रह्मा-नाड़ी के भीतर रहती है। इन्हे ही चक्र भी कहते हैं। रुद्र ग्रन्थि की शाखा ग्रन्थिर्याँ मूत्राधार चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र कहलाती हैं। विष्णु ग्रन्थि की दो शाखाये मणिपुर चक्र और मनाहृत चक्र है। मस्तिष्क मे निवास करने वाली ब्रह्म प्रथि के सहायक ग्रन्थि चक्रों को विशुद्ध-चक्र और आज्ञा चक्र कहा जाता है। हठ योग की विधि से इन पट् चक्रों का वेघन किया जाता है।

रुद्र-ग्रन्थि का आकार वेर के समान ऊपर को नुकीला नीचे को भारी, पेंदे में गड्ढा लिए होता है। इसका वर्ण कालापन मिला हुआ लाल होता है। इस ग्रन्थि के दो भाग हैं, दक्षिण भाग को रुद्र और वाम भाग को काली कहते हैं। दक्षिण भाग के अन्तर्गत गह्यर में प्रवेश करके जब उसकी झाँकी की जाती है तो ऊध्व भाग में श्वेत रङ्ग की छोटी-सी नाड़ी हलकासा श्वेत रस प्रवाहित करती है, एक तन्तु तिरछा पीत वरण की ज्योति-मा चमकता है। मध्य भाग में एक काले वर्ण की नाड़ी सांप की तरह मूलाधार से लिपटी हुई है। प्राण वायु का जब उस भाग से सम्पर्क होता है तो डिम-डिम जैसी ध्वनि उसमें से निकलती है। रुद्र ग्रन्थि की आन्तरिक स्थिति की झाँकी करके शृणियों ने रुद्र का सुन्दर चित्र अद्वित किया है। मस्तक पर गङ्गा की धारा, जटा में चन्द्रमा, गलेमें सप, डमरु की डिम डिम ध्वनि, ऊर्ध्व भाग में नुकीलापन त्रिशूल के रूप में अद्वित करके भगवान शकर का एक व्यान करने लायक सुन्दर चित्र बना दिया। उस चित्र में ग्रलङ्घारिक रूप से रुद्र ग्रन्थि की वास्तविकतायें ही भरी गई हैं। उस ग्रन्थि का वाम भाग जिस स्थिति में है, उसकी वायु शृङ्खलायें, कोण, स्फुलिंग, तरण, नाहिया जिस स्थिति में है, उसी के ग्रनुरूप काली का सुन्दर चित्र सूक्ष्मदर्शी आध्यात्मिक चित्रकारों ने अद्वित कर दिया है।

विष्णु ग्रन्थि किस वर्ण की, किस गुण की, किस आकार की, किस आन्तरिक स्थिति की, किम ध्वनि की, किस आकृति की है, यह सब हमें विष्णु के चित्र से सहज ही प्रतीत होता है। नील वरण, गोल आकार, शङ्ख ध्वनि, कोस्तुभ मणि, वनमाला यह चित्र उस मध्य-ग्रन्थि का सहज प्रतिविम्ब है।

वह्यग्रन्थि मध्य मस्तिष्क में है। इससे ऊपर सहस्र शतदल कमल है, यह ग्रन्थि ऊपर से चतुर्कोण और नीचे से फैली हुई है। इसका नोचे का एक तन्तु व्रह्य रथ से जुड़ा हुआ है। इसी को सहस्र मुख वाले

शेष नाम की शथ्या पर लेटे हुए भगवान् के नाभि कमल से उत्पन्न चार मुख वाला अहा चित्रित किया गया है। वास भाग में यही ग्रन्थि चतुर्भुजी सरस्वती है। वीणा भद्रार से श्रोकार ध्वनि का यहाँ निरन्तर गुच्छार होता है।

यह तीनों ग्रन्थिया जब तक सुप्रभाव से रहती है, वैधी हृदय रहती है, तब तक जीव सामारणी दीन-हीन दशा में पढ़ा रहता है, अशक्ति, प्रभाव और अज्ञान उमे नाना प्रकार से दुख देते हैं। पर जब इनका खुलना आरम्भ होता है तो उनका वैभव विखर पड़ता है। मुँह बन्द कली में न जप है, न सौन्दर्य, न गन्ध है, न आकर्षण पर जब वह कली खिल पड़ती है और पुष्प के रूप में प्रकट होती है तो एक सुन्दर हृष्य उपस्थित हो जाता है। जब तक खजाने का ताला लगा हुआ है, थैली का मुह बन्द है तब तक दण्डिता दूर नहीं हो सकती, पर जैसे ही रत्न-गशि का भण्डार खुल जाता है वैसे ही अनुलित वैभव का स्वामित्व प्राप्त हो जाता है।

अब इन तीनों का अलग-अलग विवेचन किया जाता है।

महासरस्वती

सरस्वती का माशय भौतिक वुद्धि, सवेदना और ज्ञान से है। प्रति सरस्वती की पूजा अविभौतिक वुद्धि, विवेक का उदय, विवार शक्ति तथा ज्ञान (आत्म प्रकाश) के लिए है।

महासरस्वती का स्वरूप और ध्वनि इस प्रकार है—

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्र घनु सायक
हस्ताब्जीर्दघती घनान्तविलसच्छीताशु तुल्यप्रभाम् ।
गोरीदेहसमुद्ध्रवा त्रिनयनामाधारभूता महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुभ्मादिदैत्यादिनोम् ॥

अर्थात्— ‘जो अपने हस्तकमल में घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मूसल, चक्र, धनुष और वाणि धारण करती है, और देह से उत्पन्न, त्रिनेत्रा, मेघा स्थित चन्द्रमा के समान जिनकी मनोहर कान्ति है, त्रिजगत की आधार भूता, शुभ्मादि देत्यों का मदन करने वाली, उस महासरस्वती को हम नमस्कार करते हैं।

महासरस्वती की उत्पत्ति की कथा मार्कंण्डेय पुराण में इस प्रकार वर्णित है —

प्राचीन काल में जब शुभ्म और निशुभ्म ने इन्द्र का आसन व समस्त अधिकार छीन लिए तो देवताओं ने अपने अविज्ञारों की प्राप्ति के लिए देवी से प्रार्थना की। उन्हे पार्वती के दर्शन हुए जिसके शरीर में ‘शिव’ का आविर्भाव हुआ। सरस्वती देवी का पार्वती के शरीर कोष से प्रकट होने के कारण ‘कौशिकी’ नाम हुआ। कौशिकी के रूप लावण्य की देख कर शुभ्म और निशुभ्म के दूतों—चण्ड और मुरण ने उन्हें सूचिन किया कि इस परम सुन्दरी कन्या का प्राप्त करना दानवपति के लिए महान गौरव भी बात होगी। प्रणय प्रस्ताव लेकर सुयोव नामक दूत गया। देवी ने अपनी प्रतिज्ञा सुनाई कि जो युद्ध ऐश्र में भुझ पर विजय प्राप्त कर के मेरे दर्प को दूर करेगा, वही मेरा पति होने का अधिकारी है। शुभ्म निशुभ्म की क्रोध भाया और सेना पति धूम्र लोचन की युद्ध के लिए भेजा। वह देवी से मारा गया। चण्ड और मुरण भी परलोक पहुँचा दिए गए। तब शुभ्म निशुभ्म अपनी मारी सेना सहित आए और देवी को चारों दिशाओं से घेर लिया। तभी देवी ने घण्टा नाद किया, देवता और उनकी शक्तिया उपस्थित हो गई। उस समय देवी के शरीर से चण्डका का प्राकट्य हुआ। दोनों और से युद्ध आरम्भ हो गया। जब देवी को शक्तियों के भीषण प्रहारों से देत्यों की सेना कटने लगी तो रक्त बीज मैदान में भाया। उसकी विशेषता यह थी कि उसकी जितनी बूँदें रक्त की भूमि पर गिरती थीं, उनमें ही देत्यों की

रत्पत्ति हो जानी थी और वह भी युद्ध करने लगते थे । रक्त बीज के आक्रमणों से देव सेना में भय छा गया । तब चण्डिका ने उसकी इस प्रकार व्यवस्था की कि काली को आदेश दिया कि उसके रक्तकी एक वूँद भी भूमि पर न गिरन पाए । उसका सारा रक्त वह पीती जाए । इस योजना से देव-पक्ष में शक्ति आई और रक्त बीज मारा गया । महासरस्वती का यह रूप दैत्य विनाशक है । ज्ञान और विद्या को उज्ज्वल बर्ण होना ही है ।

मजान और ग्रविवेक रूपी ग्रन्थकार को नष्ट करना ही उसका मात्र उद्देश्य होता है । उसी का प्रतीक यह महासरस्वती है ।

सरस्वती रहस्योपनिषद् में महासरस्वती की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया—

ऋपयो ह वै भगवन्तमाश्वलायन सपूज्यप्रच्छु-
केनोपायेन तज्ज्ञान तत्पदार्थविभासकम् ।

यदुपासनया तत्व जानासि भगवन् वद ॥

सरस्वतीदशश्लोकया सऋचा बीजमिश्रया ।

स्तुत्वा जप्त्वा परा सिद्धमलभ मुनिपु गता ॥

अर्थात् “एक समय की बात है—भगवान् आश्वलायन के निकट ऋषिगण गये और उनकी विविवत् पूजा कर प्रश्न किया—भगवन् ! जिस ज्ञान के द्वारा ‘तत्’ पदात्मक परमेश्वर का स्पष्ट बोध होता है, उम्ह ज्ञान की प्राप्ति किम प्रकार हो ? आपको जिस देवता की उपासना द्वारा तत्वज्ञान की प्राप्ति हुई है, इसके सम्बन्ध में बताने की कृपा करें ।”

भगवान् आश्वलायन ने कहा—‘ऋषियो । मैंने बीज मन्त्र सहित दस ऋषियों वाली सरस्वती दशश्लोकी के द्वारा उपासना करते हुए परामिद्धि को प्राप्त किया है ।

इस श्लोकी सरस्वती का विवरण इन प्रकार है—

प्रथम इलोक

या वेदात् यर्तत्वं कस्वरूपा परमेश्वरी ।

नामरूपात्मना व्यक्ता सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् “जिस सरस्वती का स्वरूप वेदान्त का सारभूत प्रह्लानत्व ही है और जो विभिन्न नाम रूपों में प्रकट है, वे सरस्वती मेरी रक्षिका हो ।”

द्वितीय इलोक

या सगोपागवेदेषु चतुष्वकेव गीयते ।

अद्वैता ब्रह्मण शक्ति सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् “वेदों और उनके अङ्ग उपाङ्गों में जिन एकदेव की स्तुति की जाती है तथा जो परमब्रह्म की अद्वैत शक्ति है, वे भगवती सरस्वती हमारी रक्षिका हो ।”

तृतीय इलोक

या वणपदवाक्यार्थस्वरूपेणव वर्तते ।

अनादिनिधनाऽनन्ता सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् “जो वण, पद, वाक्य में अर्थों सहित मर्वश व्याप्त है, जो मादि अन्त से परे एव मनन्त रूप वाली है वे देवी सरस्वती मेरी रक्षा करने वाली हो ।

चतुर्थ इलोक

अध्यात्ममधिदेव च देवाना सम्यगीश्वर ।

प्रत्यगास्ते वदती या सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् “जो सरस्वती देवताओं की प्रेरणात्मिका शक्ति, अधिदेवरूपिणी एव हमारे भीतर वाणी रूप में प्रतिष्ठित हैं, वे भगवती मेरी रक्षिका हो ।”

पंचम इलोक

अन्तर्याम्यात्मना विश्व त्रैलीवय या नियच्छ्रुति ।
रुद्रादित्यादिस्तुपरथा सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् “जो सरस्वती अन्तर्यामी रूप से लोकत्रय का नियन्त्रण करने वाली है तथा जो रुद्र-आदित्य प्रादि अनेक देवताओं के रूप में अवस्थित हैं, वे हमारी रक्षिका हों ।”

षष्ठि इलोक

या प्रत्यग्टुष्टिभिर्जीविव्यज्यमानाऽनुभूयते ।
व्याप्तिनी ज्ञसिल्हरैका सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् ‘जो सरस्वती देवी अन्तहृग वाले जीवों के समक्ष विभिन्न रूपों में प्रकट होती तथा जो ज्ञसि रूप से व्याप्त हैं, वे सरस्वती मेरी रक्षिका बनें ।’

सप्तम इलोक

नामजात्यदिभिर्भैरवृधा या विकल्पिता ।
निर्विकल्पात्मना-व्यक्ता सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् “जो देवी सरस्वती नाम-रूप के द्वारा प्रष्टधा बनी हुई तथा निर्विकल्प रूप में भी प्रकट हैं, वे भगवती मेरी रक्षा करने वाली हों ।

श्वेष्ठम इलोक

व्यक्ताव्यक्तिगिर सर्वे वेदाद्या व्याहरन्ति याम ।
सर्वकामदुधा धेनुः सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् “अयक्त अव्यक्त शब्दात्मक वेदादि शास्त्र जिसके स्वरूप का गुणगान करते हैं, जिसके वृहद् रूप का प्रतिपादन करते हैं, वे सर्वकाम दुधा धेनु रूप सरस्वती हमारा पानन करे ।”

मन्त्रम् श्लोक

या विदित्वाऽखिल बन्ध निर्मर्था खिलवर्त्मना ।

योगीयाति पर स्थान सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् “जिन सरस्वती को ब्रह्म विद्या रूप से जान लेने पर योगीराज सभी बन्धनों को काट डालते हैं, जिससे पूर्ण मार्ग द्वारा उन्हें परमपद की प्राप्ति होती है, वे देवी मेरी रक्षा करने वाली हो ।”

दशम् श्लोक

नामरूपात्मक सर्वं यस्यामावेश्यता पुन ।

ध्यायन्ति ब्रह्मरूपैका सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् ‘हे सरस्वते ! तुम देवियों में, नदियों में और मातामो में भी सर्वं श्रेष्ठ हो । हम धन के अभाव से निन्दा को प्राप्त हुए के समान हो रहे हैं - तुम हमें धन रूप में समृद्धि दो ।’

इन दश श्लोकों की सरस्वती-उपासना में दसर्वांश्लोक प्रत्यन्त महत्वपूर्ण है, उसमें सब का सार आ गया है, यही सरस्वती तत्त्व है । इसमें सरस्वती की विभिन्न सज्जाओं का दिग्दर्शन कराया गया है । वे सज्जाएँ हैं—अभितमा, नदीतमा और देवीतमा ।

अभितमा में शब्द ‘अभ्या’ का मर्यादा है । अभितमा का अर्थ है—मारुतमा । उसका भाव यह है कि अखिल ब्रह्माएड में जितनी मातृ शक्तिया काम करती हैं, तुम उन सब का नेतृत्व करती ही उन सबमें वही हो । ज्ञान का महत्व सब से अधिक है ही । जो ज्ञान का मूल स्रोत है, उससे श्रेष्ठ और कौन हो सकता है ? अज्ञानान्धकार को दूर करने से श्रेष्ठ और कल्याणकारी कार्यं और कौनसा हो सकता है ? जिसे तुम्हारे ऊपर दुर्भ के पर्याप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हो वह मपने जीवन को धन्य मानता है, ऐसी हैं हमारी ‘अभ्या’ सरस्वती ।

‘नदितमे’ का अर्थ है—समस्त नदियों में श्रेष्ठ हों। ‘नद, घातु का अर्थ है—वन्व करना। शब्द के मूल मे गति, क्रिया शीतल रहती है। नदी उसे कहते हैं जो पर्वतादि से निकल कर शब्द करती हुई किसी बड़े नद या समुद्र में जा मिलती है। नदी को तो समुद्र मे मिलना ही है, अत जो उपका आश्रय ग्रहण करेगा। वह भी समुद्र ही निश्चय हो जाएगा। नदी का विशेषण—शब्द-गति है। अत जो शब्द क्रहु का आश्रय ग्रहण करता है, उसका अन्तिम लय स्थल ईश्वर ही है। यह सरस्वती के आध्यात्मिक भाव से भी लक्षित होता है। बाह्य इष्ट से तो हम इसके दर्शन प्रथाग मे करते हैं जहाँ गगा, यमुना मिलती है। इन तीनों के मिलन की सङ्गम कहा जाता है। योग की भाषा मे यह संगम मूलाधार मे इडा पिङ्गला के साथ सुषुप्तिणा का होने पर होता है। इस त्रिवेणी मे जो स्नान करते का सौभाग्य प्राप्त करता, है वह ति सन्देह मोक्ष को प्राप्त करता है। नदीतये का आध्यात्मिक भाव यही है।

‘देवितमे’ में ‘दिव’ घातु का अर्थ है दीप्ति, प्रकाश और ज्योति, अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करके ज्ञान की ज्योति और प्रकाश देने वाली जितनी भी शक्तियाँ विश्व में विद्यमान हैं, उन सब से तुम श्रेष्ठ हो।

तभी तो वेद—(ज्ञान) की उत्पत्ति सरस्वती से बताई गई है।

आत्मन आकाशो भवति, आकाशाद्वायुर्भवति,
वायोरग्निर्भवति, अग्नेरोक्तारो भवति, ओकारद्
व्याहृतिर्भवति, व्याहृतितो गायत्री भवति, गायत्र्या
सावित्री भवति, सावित्र्या सरस्वती भवति
सरस्वत्या वेदा भवन्ति, वेदेभ्यो लोका:

(गायत्री हृदय)

“आत्मा रूपी क्रहु से आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से

वायु होती है, वायु से अग्नि और प्रग्नि से ओकार होता है। ओकार से व्याहृतियाँ होती हैं। व्याहृतियों से गायत्री, गायत्री, से सावित्री, सावित्री से सरस्वती और सरस्वती से वेदों की उत्पत्ति कही गई है। वेदों से समस्त लोकों का प्राविभाव होता है।”

सरस्वती की श्रेष्ठता का रहस्य तो उसके मर्थ में निहित है। सरस्वति शब्द—‘सृ’ धातु के आगे असुर प्रत्यय लगाने से ‘सरस्’ पद सिद्ध होता है। सृ धातु का अर्थ है गति, प्रसारण, विज्ञान भी इस तथ्य की स्वीकार करता है और कहता है—“Ether at rest is darkness ether in motion is light” गति से ही प्रकाश बना रहता है। जहाँ गति का अवरोध होता है, वही अन्धकार और सङ्कोच आ जाता है, वही ज्ञान और विद्या बन का अभाव हो जाता है। घन की प्रचुरता के लिए आवश्यक है कि गति निरतर बनी रहे। सरस्वती से घन सम्पत्ति पाँगने का अभिप्राय यही है कि हमारी गति में कोई बाधा उपस्थित न ‘हो। गति बनी रही तो आविभौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रशार की सम्पत्तियों का बाटूल्य भी बना रहेगा। गति के अभाव में अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देगा।

सरिता के जल में गति रहती है, तभी वह पवित्र व स्वच्छ रह पाता है, गति रुकने पर तो वह सड़ने लगता है। भृत जो प्राणियों के हृदय को ‘सरस्’- जल की तरह पवित्र व स्वच्छ बनाती है। वह सरस्वती है। सरस्वती पवित्रता की प्रतीक है।

सरस्वती का वरण इवेत है। इवेत वरणं मोक्ष का, सात्त्विकता का प्रतीक है ज्ञान और प्रकाश का प्रतिनिधित्व करता है। इवेत वरणं में स्वाभाविकता है। इस पर सभी रग सुविधापूर्वक चढ़ाए जा सकते हैं, उतारने पर वही शेष रह जाता है। इवेत रग ईश्वर की सत्ता है। यही प्राणी का मन्त्रिम लक्ष्य है। इवेत वरणं मद्देत के निए प्रेरित

करता है। इवेत रग की उत्पत्ति तब हो पाती है, जब सारे रग क्रियाशील रहते हैं। जब वह मूर्छित रूप में एक स्थान पर पड़े रहते हैं, तो वह अपने-अपने वास्तविक रूप में ही दिखाई देते हैं। वे एकता से ही इवेत बनते हैं। जगत का भेद ग्रस्वाभाविक है। अभेद स्वाभाविक है। द्वैत में ग्रज्ञानता है। ग्रद्वैत में ज्ञान और प्रकाश है। यही सरस्वती के इवेत वर्ण की प्रेरणा और अभिप्राय है।

महासरस्वती पूजन विधि

सरस्वती रहस्योयनिषद् से सरस्वती की दशश्लोकी उपासना का वर्णन है। भगवान ग्रांवलायन से ऋषियों ने पूछा तो उन्होंने भगवती मरस्वती की उपासना विधि का वर्णन किया। महर्षि ग्रांवलायन ने कहा—

इम श्री सरस्वती दशश्लोकी महामन्त्र का ऋषि में ही हूँ। इसका छन्द अनुष्टुप, देवता वागीश्वरी और बीज यद्वाग है। शक्ति 'देवी वाच कीलक 'प्रणो देवी' है। इसका विनियोग श्री वागीश्वरी देवता के प्रीत्यथ है। ग्रगन्यास थद्वा, मेघा, प्रज्ञा, धा-ण, वाग्देवता और महासरस्वती इन नाम मन्त्रों से किया जाता है।

जप से पहिले इस श्लोक के उच्चारण से प्रणाम किया जाता है।

नीहारहारघनसारसुधाकराभा
कल्याणादा कनकचम्पकदामभूपाम् ।
उत्तुगपीनकुचकुम्भमनोहरागी
वाणी नमामि मनसा वचसा विभूत्ये ॥

"कल्याण प्रदायिनी हिम, क्षपूर मुक्ता ग्रयवा चन्द्रप्रभा के समान शुभ्र काञ्चित्वती, सुवर्ण के समान, पीले चम्पक पुष्पों की माना से प्रलकृत, उन्नत सुष्पष्ट वक्ष सहित सुन्दर ग्रज्ञवाली वागेश्वरी को

मन मो- बाली द्वारा दिद्धि की जिद्दि के निमित्त नमस्कार करता है ।

‘ओ प्रभो देवो’ मन्त्र के शूद्रिना-द्वाज, छन्द गायत्री प्रीर देवता मनस्वनी की है । ओ नम वीज, शक्ति को ही भी, चाय ही जीनक सी है । एसोष्ट जायं की निष्ठि के निमित्त उपजा विनियोग और मन्त्र के द्वारा अङ्गन्दास किया जाता है ।

प्रथम मंत्र

ओ प्रस्तो देवो नमस्वनी बालेभिर्गीजनो वनो ।

वो नाम विश्ववतु ।

जो दानादि तुल च युक्त है जो अनन्दाकी है, जो अस्ते शरणागत उपासका की ज्ञाना अनेकानी है, वे मनस्वनी देवी हमारे निष्ठे तृतीय प्रदान करें ।

‘मा नो दिवा’ इस मन्त्र के शूद्रिनि प्रति, छन्द शिष्टुद्द मोर देवता उरस्वती है । ही वीज, शक्ति और जीनक है । इच्छान जायं की निष्ठि के निए इष्वका विनियोग उपाय इसी मन्त्र द्वारा नाम किंग जाता है । द्वितीय मन्त्र

ही आनी दिवो वृहत् पर्वताचा सरस्वती वजता गन्तुश्वस्म ।

हव देवी जुञ्जुपाणा वृत्ताचो धरमा नो वाचमुशनो वणोन् ॥

जगन्माता इद्युहपिणी, चिद्वपा चुवंध्यापिनी है और हमारे निए श्रवन्मा है । मा की अवश्यक प्रवस्थाएँ भी हमारे निये अर्नीभगम्य हैं । मा हमारे ऊपर हृषा करके अपनी अव्यक्त वृक्षमात्रम्य से हमारे यज्ञ (प्रजा) की भिष्ठि के निये आविशून हाँवे । वही यज्ञ की प्रवतिका है । हमारी इस त्रुटि को वे सादर प्रहण करें ।

‘पावकान’ इस मन्त्र के अृष्टि सवुच्छदा, छन्द गायत्रो, देवता मनस्वनी है । वीज, शक्ति प्रीर जीनक ‘री’ है । इसपा विनियोग

कामना सिद्धि के निषिद्ध है उथा इसी मन्त्र द्वारा श्रगन्धासु करने का विवान है।

तृतीय मन्त्र

श्री पावकान् सरम्बतो वार्जभिर्वाजितीवती ।
यज्ञवर्णु धिया वन् ।

सरम्बतो देवी हमारी यज्ञ-कामना करें प्रचुर अन्त और घन के लिये। वे अन्त-यज्ञ की आविश्यकी हैं। उनकी दृष्टि से हम कर्म करके वन प्राप्त करें।

‘चोदयत्री०’ इस मन्त्र के ऋषि मयुन्ठन्दा, छन्द गायत्री देवना परम्परों हैं। वीज, शक्ति और कीलक ‘ब्लू’ तथा कार्य पूर्णिके लिए इसका विनियोग एवं मन्त्र द्वारा ही श्रगन्धासु किया जाता है।

चतुर्थ मन्त्र

ब्लू चोदयत्री मूनृनाना चेत्ती सुमति नाम् ।
यज्ञ दधे सरम्बती ।

जो हमें मूनृन वाक्यों का प्रयोग करने प्रवृत्ति देनी है, तथा जो सुमति प्रोर चेतना प्रदान करती है, वही सरम्बती है हम। सरम्बतो का करेंगे और सरम्बती ही दज्ज करावेंगी।

‘महोग्रण’ इस भव के ऋषि मयुन्ठान्दा, छन्द गायत्री, और देवता नरस्वती हैं। वीज, शक्ति और कीलक ‘सो’ है। इसमें मन्त्र के द्वारा ही न्यास किया जाता है।

पंचम मन्त्र

सी महो ग्रणं सरम्बती प्रचेनयति केतुना ।
वियो विश्वा विशजति ॥

जो सरस्वती उम मद्मागुणव रुप नमन विश्व का मन्त्रालय करनी है, जो विश्व की जान शक्ति मूल्य है, वे हम पर कृपा करें ।

चत्वारि वाक्० ऋषि उच्चाय-पुत्र दीर्घेतमा, उद्द विष्टुप, देवता मरम्भनी, वीज, शक्ति, कीलक 'ए' । मन्त्र द्वारा ग्रहन्याम किया जाता है ।

षष्ठि मन्त्र

ऐं चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि
विदुद्वाक्षणा ये मनीपिण । गुहा ओग्गि निहिता
नेह्नयन्ति तुरोय वाचो मनुष्या वदन्ति ॥

वाक् की जो चार ग्रवस्याये यरना, पश्चन्नी मध्यमा और वैवरी है, इनमें से तीन ग्रवस्याये गुहानिहित (प्रप्रत्यक्ष) ही जान पक्ते हैं जो मनीपी हैं, योगी हैं वे दिव्य इष्ट द्वारा उन ग्रवस्यायों को प्रत्यक्ष करते हैं । मनुष्य जिस वाक् का प्रयोग करते हैं वह चतुर्थ (वैवरी) ग्रवस्था है । ”

‘युद्धाग्वदन्तिं० ऋषि मार्गव, उन्द विष्टुप, देवता यरम्भती है । वीज, शक्ति कीलक ‘कली’ है । मन्त्र द्वारा ही न्याम होता है ।

सप्तम मन्त्र

कल यद्वाग्वदन्त्य विचेननानि
राष्ट्री देवाना निपसाद मन्द्रा ।
चतुर्व लज्जं दुदुरे पयासि
ब्रह्म लिवदस्या, परम जगाम ॥

“वाक् विश्ववशापिती है । और उमके द्वारा ममन भूत ध्यास है । जो अल्प चैतन्य है, वे मी वाक् (बोली) का ध्यवहार करते हैं । देवतामों की मी वही मचानिका है । मा, तुम्हारी परमारम्भा को हम

कव जान सकेंगे और कव तुम्हारे पयोधरो से शक्ति चतुष्टय रूपी दूध की प्राप्ति कर सकेंगे ।

‘देवी वाच, ऋषि मार्गव, छन्द त्रिष्टुप् देवता सरस्वती । बीज, शक्ति कीलक ‘सौ, है । मन्त्र द्वारा ही न्यास करना चाहिये ।

अष्टम मन्त्र

सो देवी वाचमजनयन्त देवा -
स्ताविश्वरूपा पश्चो वदन्ति ।
सा नो मन्त्रेष मूर्ज दुहाना
घेतुवर्गास्मानुपमुष्टुते तु ॥

‘देवगण जिस मध्यमा वाक् सब प्राणियों के अन्दर उत्पन्न करते हैं, जो क्रमशः वेखरी अवस्था में परिणति होती है, वह सरस्वती देवी हमें तृप्ति करे । मनुष्य जिस प्रकार गौ को दुह कर कृताथ हो जाते हैं, उसी प्रकार हे माता हम तुम्हें दुहकर कृतार्थ हो ।

‘रत त्व० ऋषि वृहस्पनि, छन्द त्रिष्टुप्, देवता सरस्वती । बीज शक्ति और कीलक ‘स’ । मन्त्र द्वारा ही न्यास करना चाहिये ।

स उत्त्व पश्यन्न ददर्शवाचमुनत्त गृवन्न शृणोत्येनाम्
उतो त्वस्मै तन्वा विसले जाये पत्खव उशती सुवासा ॥

“माता ! तुम्हारी कृपा से ही सब बातें करते हैं, तुम्हारी कृपा से ही विचार करते हैं, तुम्हारी कृपा से ही तुम्हे प्रसर्त सिद्ध करते हैं, परन्तु कोई तुम्हें जान नहीं सकता । तुम्हे देखते हुए भी देख नहीं पाता । जिस पर तुम्हारी कृपा होती है वही तुम को देख पाता है ।”

‘अभ्यन्त मे’ श्रुष्टि गृत्ममद, छ द अनुष्टुप् देवता, सरस्वती, बीज, शक्ति कीलक ए । मन्त्र द्वारा न्यास करे ।

दशम मन्त्र

अप्रशंसा इव समसि प्रशस्तिमम्ब नस्कुधि ॥

"मानुगणो मे श्रेष्ठ, नदेशो मे श्रेष्ठ, दिवियो मे श्रेष्ठ महा सरस्वती । हम प्रशंसा के समान प्रयत्नि पुनाभाव मे प्रममृदान् ही रहे हैं । अनएव है माना । हमे प्रशस्ति प्रयत्नि वन सम्पति—महानरा प्रदान करो ।"

महालक्ष्मी

लक्ष्मी का आशय केवन धन-घान्य की वृद्धि ही नहीं है वरन् हर प्रकार की उन्नति, सम्मान, बड़पन, प्रानन्द, ऐश्वर्य का समावेश लक्ष्मी के स्वरूप में ही हो जाता है । अप्यय दीक्षित ने तो अन्तिम मुक्ति को भी 'मोक्ष साम्राज्य लक्ष्मी' कहा है । इसलिए लक्ष्मी पूजा का अर्थ है जगत की स्थिति की केन्द्र रूपी देवी-शक्ति की पूजा ।

शास्त्रो का विश्व स है कि शक्ति हो सब कुछ है, वे ही महान् शक्तिशालिनी हैं, इनके बिना क्रह्य भी कुछ कार्य नहीं कर सकते, निष्क्रिय रहते हैं । इस महान् शक्ति की सज्जा 'महालक्ष्मी' है । देवी-माहात्म्य मे महालक्ष्मी से ही समस्त देवी-देवताओं की उत्पत्ति का वर्णन उल्लिख होता है । क्रम इस प्रकार से है—महालक्ष्मी से सरस्वती, लक्ष्मी और महाकाली । सरस्वती से गौरी और विष्णु, लक्ष्मी से लिङ्गी और हिंरण्यगर्भ, महाकाली से सरस्वती और श्वर मादि ।

महालक्ष्मी का स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

ओ अक्षसक्परशु गदेषुकुलिष पदम घनुष्कुण्डिका
दण्ड शक्तिमसि च चर्म जलज घण्टा सुराभाजनम् ।
शूल पश्चसुदर्शने च दधनी हस्तै प्रक्ष त्वाँ
ते सैरिभ्यमर्दिनीमिह गच्छलक्ष्मी ॥—१०—११८

मर्दिनी महालक्ष्मी का ध्यान करता हूँ जो स्वहस्त में अक्षमाला, परशु, गदा, वाणि, वज्र, कमल, घनुप, कुणिड़का, दड़, शक्ति, खञ्ज, चर्म, ढाल, शङ्ख, घटा, मवुपात्र, घूल, पाश और सुर्दर्जन चक्र धारण करती है ।”

महालक्ष्मी की उत्पत्ति शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित की गई है —

देव और दानवों में सी वर्पं तक युद्ध होने पर देवता पराजित हुए । दानवों का नेता महिषामुर इन्द्र बना । देवनाभों का प्रतिनिधि-मडल ब्रह्माजी के नेतृत्व में भगवान् विष्णु और शिव के पास गया । इनके शरीर से एक तेजपुञ्ज निकला जिसने नारी का शरीर धारण कर लिया । मसी देवताओं ने अपने अस्त्र शस्त्र इसे समर्पित किए । देवी का महिषामुर से युद्ध हुमा और वह अन्त में मारा गया । इस देवी को महालक्ष्मी नाम दिया गया ।

महालक्ष्मी की महिमा शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है —

मत्प्राप्ति प्रति जन्तुना ससारे पततामय ।

लक्ष्मी परूषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्पिभि ।

ममापि च मत त्येतन्नान्वया लक्षण भवेत् ॥

(पांचरात्रागण)

“भगवान् कहते हैं कि ससार में जो प्राणी मेरा कृपा पात्र बनना चाहते हैं, महर्पियों ने सिद्ध किया है कि उनके लिए लक्ष्मी (शक्ति) ही पुरुषकारभूता है । मेरा भी ऐसा ही मत है ।”

अह मत्प्राप्त्युपायो वै साक्षाल्लक्ष्मीपति स्त्रयम् ।

लक्ष्मी पुरुषकारेण वल्लभा प्राप्ति योगिनी ।

एतस्याच्च विशेषोऽयं निगमात्तेषु क्षव्यते ॥

(पांचरात्रागण)

“मैं स्वयम् लक्ष्मीपति ही सत्य हूँ । मेरी पत्नी पुरुषकार देवी है । मैं उपाय हूँ वह पुरुषकार है ।”

मिद्विद्विप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।
 मन्त्रमूर्ते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तुते ॥
 आश्चर्तरहिते देवि आदिशक्ते महेश्वरि ।
 योगजे योगसभूते महालक्ष्मि नमोऽस्तुते ॥

अर्थात् ‘हे देवि । प्राप मिदि और बुद्धि दोनों के प्रदान करने वाली हैं तथा सामारिक मुखों के उपभोग और आवागमन रहित परमार्थ मोक्ष उन दोनों को देने वाली हैं । हे देवि । प्राप मन्त्र की मूर्ति वाली हैं । हे महालक्ष्मि । प्रापके लिए नमस्कार है । हे देवि । प्राप आदि और अन्त इन दोनों से रहित हैं । प्राप आदि शक्ति और महेश्वरी हैं । योग से समुत्पन्न योग को ज म देने वाली हैं । हे महलक्ष्मि । आपको मेरा नमस्कार है ।’

या थी स्वय सुकृतिना भवनेष्वलक्ष्मी
 पापात्मना कृतधिया हृदयेषु बुद्धि ।
 श्रद्धा सता कुलजनप्रभवस्य लज्जा
 ता त्वा नता स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥

अर्थात् “जो थी अर्थात् महालक्ष्मी स्वय पुण्यात्माओं के यहाँ अलक्ष्मी बन कर रहती है, वापियों के हृदय में बुद्धि रूप में, सत्पुरुषों के हृदय में श्रद्धा, और कुलीनों के हृदय में लज्जा (पुण्यापुण्य विवेक) रूप से रहती है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ । हे देवी ! तू विश्व का पालन कर ।”

लक्ष्मी तत्त्व (भ-१२) में महालक्ष्मी के पाँच कार्यों का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है —

शक्तिरायणस्याह नित्या देवी सदीदिता ।
 तस्या मे पञ्च कर्माणि नित्यानि त्रिदशोश्वर ॥
 तिरोभावस्तथा सृष्टिस्थितिस्सहृतिरेव च ।

अनुग्रह इति प्रोक्त मदीय कर्मपञ्चवकम् ॥

अर्थात् “हे त्रिदणेश्वर ! मैं नारायण की शक्ति है । मैं निष्ठा और मदा ही उदिन रहती हूँ । उम्मे मेरे नित्य पांच कर्म मोते हैं । निर्गो-भाव—मृत्यु—स्थिति—महार और अनुग्रह —ये ही मेरे पांच कर्म कहे गये हैं ।

इसी तन्त्र के (अ ३-१) में उनके वास्तविक स्वरूप का स्पष्टीकरण किया गया है—

नित्यनिर्दोषनिष्ठमीमकलयाणगुणशालिनी ।

अह नारायणी नाम सासत्ता वज्ञानी परा ॥

यहाँ महानक्षमी स्वयम् कहती है कि मैं नित्य, निर्दोष, अमीम, कल्पण गुणशालिनी नारायणी नाम को पग मत्ता हूँ ।

इस तन्त्र के (अ २११-१२) में महानक्षमी को विष्णु की अहता नाम की शक्ति कहा गया है—

तस्य वा परमा शक्तिज्योत्स्नेव हिमदीविते ।

सर्वावस्था गता देवी स्वात्मभूतानपायिनी ।

अहन्ता ब्रह्मणस्तस्य माहमस्मि सनातनी ॥

यहाँ महालक्ष्मी इन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहती है कि उम परब्रह्म की जो चन्द्र की चाँदनी के समान समस्त प्रवस्थाएँ में भाय रहने वाली देवी स्वात्मभूता अनपायिनी अहता नाम की पराशक्ति है, वह ननातनी शक्ति मैं ही हूँ ।

लद्या सहृदीकेशो देव्या कारुण्यस्तया ।

रक्षकस्सवमिद्वान्ते वेदान्तेषु च नीयते ।

पर्यात् ‘भगवान् हृषीकेश करुणा के स्वरूप वाली देवी लक्ष्मी के साथ ही रक्षक होते हैं—ऐसा यह सबका मिद्वान्त है प्रीत वेदान्त में भी यही गाया जाता है ।

अणिमादिक सिद्धीश्च पाताल गुटिकाङ्गजता ।
चतुष्क दिव्य वेताल प्राप्नुयात् कमलार्चनात् ॥

मर्यादि “केवल लक्ष्मी जी की आराधना से हा मणिमादि सिद्धि, पाताल सिद्धि, गुटिका मिद्दि, वेताल सिद्धि और अजनादि मिद्दि उपलब्ध होती हैं ।

ठीक भी है ज्ञान, प्रेम, वैराग्य, भक्ति उसी की शक्तियाँ हैं । देवी सम्पत्ति, पद् सम्पत्ति, मर्याद सम्पत्ति सब उन्हीं के चमत्कार हैं । लेखन, वक्तृत्व, प्रजापालन और राजशक्ति की नीव में वे ही निहित हैं, वीरता, उदारता, प्रेम, वात्सल्य, साधुता, चतुरता, त्याग, सयम, तप, ब्रह्मतेज में वही विद्यमान हैं, सूर्य, चन्द्र, ग्रनित, वायु जल की शक्तियाँ उसी में उद्भूत होती हैं । श्रद्धा, भवित, दया, क्षमा, शान्ति, कान्ति उसी के विशेषण हैं । राधा, सीता, सती, दुर्गा, गायत्री, सरस्वती, सावित्री, वाणी आदि उसी के नाम हैं ।

महालक्ष्मी का ध्यान रक्त वण से किया जाना है । रक्त वर्ण रजोगुण का सूचक है । इसीलिए साधारणत महालक्ष्मी को वैभव और सम्पत्ति की भविष्ठात्री देवी के नाम से मम्बोधित किया जाता है । लक्ष्मी का वाहन उलूक है जो शोव का प्रतीक माना जाता है । कहा भी है ‘उद्योगिन पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मी’ मर्यादि परिश्रमी व्यक्ति को ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, मालसी को नहीं । इसलिए महालक्ष्मी अपने उपासकों को कर्मयोगी और व्यवहार कुशल देखना चाहती है ।

महालक्ष्मी कमल के प्राप्ति पर स्थित रहती है । कमल की विशेषता यह है कि वह कीचड़ में उत्पन्न होता है, उसके चारों ओर कीचड़ और गन्दा पानी रहता है परन्तु फिर भी वह निर्मल और पवित्र बना रहता है । चारों ओर के गोदले वानावरण में रह कर भी हम गोदले न हो, गृहस्थ और जगत् में रह कर हम उसमें आपक्त और लिप्त न हो, यही कमलासना महालक्ष्मी की प्रेयणा है ।

महालक्ष्मी पूजन विधि

‘सौभाग्यलक्ष्मयुपनिषद्’ में श्री सूक्त को ऋचाश्रो द्वारा उपासना का इस प्रकार निर्देश दिया गया है—

उन पञ्चह ऋचाश्रों के ऋषि इन्दिरा, आनन्द, कदम और चिवलीत हैं। प्रथम मन्त्र की ऋषि इन्द्रा, शेष मन्त्रों के ऋषि पुत्र हैं। प्रथम तीन ऋचाश्रों का छन्द अनुष्टुप् चौथी का वृहती, पाँचवीं-छठवीं का त्रिष्टुप्, सातवीं से चौदहवीं तक का अनुष्टुप् और प्रस्तार पवित्र हैं। देवता श्री और अग्नि, बीज ‘हिरण्यवर्णम्’ शक्ति ‘का सोस्त्रिभ्’ है। हिरण्यमयी, चन्द्रा, रजनस्त्रजा, हिरण्यस्त्र जो हिरण्या, हिरण्यवर्ण इन नामों को चतुर्थी विभक्तिमें रख कर घोकार से आरम्भ कर अन्त में तम उच्चारण करता हुआ न्यास करे।

फिर श्री सूक्त के मन्त्रों से अङ्ग न्यास करे। मन्त्र इस प्रकार हैं—

ओ हिरण्यवर्णीं सुवर्णरजतस्त्रजाम् ।

चन्द्रा हिरण्यमयी लक्ष्मी जातवेदो मग्रावह ।१।

ओ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।

यस्या हिरण्य विन्देय गामश्व पुरुपानहम् ।२।

ओ अश्वपूर्वीं रथमध्या हरितनादप्रमोदनीम् ।

श्रिय देवी मुपह्वये श्री मदिवी जुंपताम् ।३।

ओ कासोस्त्रिता हिरण्यप्रकारा

माद्रा ज्वलन्ती तृप्ता तर्पयन्तीम् ॥

पद्मे स्थिता पद्मवर्णीं तामिहोपह्वये श्रियम् ।४।

ओ चन्द्रा प्रभासा यशसा ज्वलन्ती

ता पद्मनेमि शरणमह प्रपद्ये
 अलक्ष्मी मे नश्यता त्वा वृणोमि ।५।
 ४० आदित्यवर्णं तपसोधिजातो
 वनस्पति स्तववृक्षोय विल्व ॥
 तस्य फलानि तपसा नुदतु
 मायातरा याश्च वाह्या अलक्ष्मी ।६।
 श्रो उर्पतु मा देवसख कीर्तिश्च मणिना सह ॥
 प्रादु भूतोस्मि राष्ट्रेस्मि कीर्तिवृद्धि ददाते मे ।७।
 श्रो क्षुत्पिपासामला ऊर्येष्ठा मलक्ष्मी नाशयाम्यहम् ॥
 अभूतिमसमृद्धि च सर्वा निर्णुद मे गृहात ।८।
 गन्धद्वारा दुराघषीं नित्यपुष्टां करीषिणीम् ॥
 ईश्वरी सर्वभूताना तामिहोपह्वये श्रियम् ।९।
 मनस काममाकृति वाच सत्यमशीमहि ॥
 पशुना रूपमन्नस्य मयि श्री, श्रयताप्रश ।१०।
 श्रो कर्दमेन प्रजाभूता मयी सम्भ्रमकदम् ॥
 श्रिय वासय मे कुले मातर पदममालिनीम् ।११।
 श्रो आपः जन्तु स्तिर्ग्रानि चिल्कीत वश मे गृहे ॥
 नीचदेवी मातर श्रिय वासय मे कुले ।१२।
 श्राद्र्मी पुष्करिणी पुष्टि पिङ्गला पदममालिनीम् ।
 चद्रा हिरण्यमयी लक्ष्मी जातवेदो मआवह ।१३।
 ४० श्राद्र्मी पुष्करिणी पुष्टि सुवाणी हेममलिनीम् ।
 मूर्यी हिरण्यमयी लक्ष्मी जातवेदी मआवह ।१४।
 ४१ ताम्म श्रावह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ॥
 यस्या हिरण्य प्रभूत गावो दास्यो ।
 ईश्वान् विदेयपुरुपानहम् ।१५।

ओ य शुचि॒ प्रयतो भूत्वा जुहुयादा॒ ज्यमन्वहम् ॥
थ्रिय पञ्चदर्शी॑ च श्रीकाम सतत जपेत् ।१६।

इसके पश्चात् निम्न मत्र से ध्यान करे—

अमलकमलसस्था तद्रजं पुञ्जवर्णा
करकमल घृधतेष्वा भोतियुग्माम्बुजा च ।
मणिकटक विचित्रालकृताकल्पजालै
सकल भुवनमाता सतत श्री श्रिये न ॥

“अरुण वर्ण के कमलदल पर विराजमान, कमल-पराग की राशि के समान पीले रंग वाली, वर-मुद्रा, अभय-मुद्रा और दो हाथों में कमल-पुष्प-धारिणी, मणिमय कङ्कणों से अलकृत, सब लोकों की माता श्रीमहालक्ष्मी हमें निरन्तर श्री से सम्पन्न बनावें।

इसके बाद ‘सोभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्’ में विवि का निर्देश इस प्रकार है—

तत्पीठम् । कणिकाया ससाध्य श्रीबीजम् ।

वस्वादित्यकलापद्मेषु श्रीसूक्तगताधर्धर्धर्धर्वा॑ तद्वहिर्यं
शुचिरिति मातृकया च थ्रिय यन्त्राञ्जदशश च विलिस्य
थ्रियमावाहयेत् ।५।

अञ्जं प्रथमाऽवृति । पदमादिभिर्द्वितीया । लोकेशैर्मृतोया ।
तदायुधैस्तुरीयाऽवृतिर्भवति । श्रीसूक्तंरावाहनादि । पोऽश
सहस्रज प ।६।

सीभाग्यरमेकाक्षर्या॑ भृगुनृचदगायत्री॒ थ्रिय ऋष्यादय ।

षमिति बीजशक्ति॑ श्रामित्यादि षड्जम् ।७।

ययोदमयो द्विपदमा भयवरदकरा तप्तकार्तस्वरा भा
शुभाभ्राभ्रामेभयूरमहृषकरधृतकुम्भादभिरासिच्चमाना ।
रत्नोदावद्वमोलिंविमलतरदुकूनावानलेपनाढ्वा

पदमाक्षो पदमनाभोरसि कृतवसति पदमगा श्री थिये न ।

“पाठ काणिका के भीन्नर साध्य कार्यं श्रीबीज लिखे फिर ग्रष्ट-दल, द्वादशदल और पोडशदल वाले पद्मो पर भूबृतो के मध्य में श्रीसूक्ता की प्राधी-प्रावी ऋचा लिखे । फिर निभूंवृत्त में फलथ्रुतिरूप ऋचा लिख कर पोडशार के बीच में और ऊपर 'अ' से 'स' कार तक मातृका वर्णों का लेगन करे । सबसे ऊपर निभूंवृत्त में वयड् सम्पन्न त्वरिता बीज के सहित श्रीबीज का लेसन करे । इस प्रकार दश अग्नि वाला श्रीचक्र बनावे । अँग मन्त्रो के द्वारा प्रथम आवरण पूजा की जाती है । पद्म निधियों के द्वारा दूसरी बार आवरण पूजा की जाती है । लोकपालों के द्वारा तृतीय आवरण-पूजा हाती है । वज्ञादि आयुधों के द्वारा चतुर्थ आवरण पूजा का क्रम है । श्रीसूक्त की ऋचाश्रो से आवाहनादि कार्यं किये जाते हैं । इतना करने के पश्चात् पुरश्चरण के लिये सोलह हजार मन्त्र-जप का विवान है ।”

‘एकाधार सीभाग्यलक्ष्मी मन्त्र के शृृणि भृगु, छन्द नीनृद गायत्री और देवता श्री है । बीज ‘धी’ और अग्न्यास ‘था’ इत्यादि के द्वारा होता है ।’

“जिन श्रीदेवी ने अपने दो हाथों में कमल तथा दो में वर मुद्रा और अभय मुद्रा ग्रहण की हुई हैं, जिनके देह की कान्ति स्वर्ण के समान है, जो शुभ मेघ के समान आभा वाले दो हाथियों की सूँडों में धारण किये कलशों के जल से अभिप्रिक्त हो रही हैं, जिन के सिर पर लाल वर्ण के रत्नों का मुकुट सुशोभित है, जिनके अगराग लिपे हुए हैं, जो स्वच्छ वस्त्र वाली हैं, कमल के समान नेत्र वाली, पश्चनाभ निवासिनी, कमलासना, श्रीदेवी हमारे निमित्त परम ऐश्वर्य प्रदान करावे ।”५-८।

तत्पीठम् । अष्टपत्र वृत्तवय द्वादशराशिखण्ड चतुरथ्र रमापीठ भवति । काणिकाया ससाध्य श्रीबीजम् । विभत्तिरूपति

कान्ति सृष्टि कीनि सन्नतिवर्यरिष्टहत्कृष्टि ऋद्विरिति
प्रणवादिनमोऽन्तेश्चतुर्थ्यन्तैनैवशक्ति वजेत् ।६।

अङ्गे प्रथमाऽवृत्ति । वासुदेवादिद्वितीया । वालवधादि-
स्तृतीय । इन्द्रादिभिश्चतुर्थी भवति । द्वादशलक्षजप ।१०।
श्रीलक्ष्मीर्वरदा विष्णुपतिं वसुप्रदा हिरण्यरूपा स्वर्णा-
मालिनी रजतस्त्रजा स्वर्णप्रभा स्वरं प्रकारा पद्मवसिनी
पद्महस्ता पद्मप्रिया मुक्तालङ्कारा चन्द्रा सूर्या विलक्ष्मिया
ईश्वरी भुक्तिमुक्तिविभूतिऋद्वि समृद्धि कृष्टि पुष्टिरूपा
धनेश्वरी श्रद्धा भोगिनी भोगदा वात्री विधात्रीत्यादिप्रणवा-
दिनमोऽन्ताश्चतुर्थ्यन्ता मत्र । एकाक्षरवदङ्गादिपोठम् ।
लक्षजप । दशाश तपंणम् । शताश हवनम् । सहस्राश
द्विजतृप्ति ।११। निष्कामानामेव श्रीविद्यामिद्धि । नम
न कदाऽपि सकामानामिति ।१२।

“तीन वृतो से युक्त रमारीड यन्त्र प्रद्विन करे । प्रष्टइल कण्ठिका
मे साध्य रहित श्रीबीज निष्ठे । प्रारम्भ से प्रोक्तार प्रौर अन्त मे नम के
योग सहित प्रत्येक नाम के साथ चतुर्थी विभक्ति के प्रयोग द्वारा नौ
शक्तियो की पूजा करे । विभूति, उन्नति, कान्ति, सृष्टि, कीति, सन्तति,
छयुष्टि, सत्कृष्टि एव ऋद्वि यही नौ शक्तिगाहे । श्रीग-न्यास द्वारा प्रथम
प्रावरण की पूजा करें । वासुदेव, सङ्करण, प्रघुम्नि प्रौर अनिरुद्ध का
क्रमशः पूजन करें । इस प्रकार द्वितीय प्रावरण पूजा होती है । फिर
वालकी धादि की पूजा द्वारा तृतीय प्रावरण को पूजे । फिर इन्द्रादि देवो
और उनके आयुर्वों के द्वारा चतुर्थ प्रावरण की पूजा करे । पुरक्षवरण
के निमित्त द्वादश लक्ष मन्त्र जप का विधान है ।”

श्यक्षरी विद्या के पूजन में धादि में ध्रोकार और अन्त मे नम
लगा कर प्रत्येक नाम का चतुर्थी विभक्ति सहित प्रयोग होता है । श्रीनक्षमी
वरदा, विष्णुप्रिया, हिरण्यरूपा, वसुप्रदा, रजतस्त्रजा, स्वर्णमालिनी,

स्वर्णप्रभा, स्वर्णप्रिक्षाश, पद्मवासिनी, पद्महस्ता, पद्मप्रिया, विल्वप्रिया, चन्द्रसूर्यी, मुक्तालङ्घार, ईश्वरी भुक्ति, मुक्ति, विभूति, ऋषि, समृद्धि, कृष्ण, पुष्टि, धनदा, धनेश्वरी, श्रद्धा, सावित्री, भोगिनी, भोगदा, धान्त्री, विधान्त्री, प्रभृति नामों के द्वारा शक्ति-पूजन करे। एकाक्षर मन्त्र के समान ही पीठ-पूजा की जाती है पुरश्चरण के निमित्त एक लक्ष मन्त्र-जप करना चाहिये। जप का दसवां भाग तर्पण, तर्पण का दसवां भाग हवन और हवन का दसवां भाग ब्राह्मण भोजन करना चाहिये। इस श्रीविद्या की प्राप्ति उन्हीं को होती है जो कामना रहित भाव से उपासना करते हैं। कामना सहित उपासना करने वालों को इसकी सिद्धि नहीं होती।' १६-१२।

लक्ष्मी का दूसरा मन्त्र है—‘ऐ ही श्री लक्ष्मी’ इसकी विविध एकाक्षर मन्त्र की तरह है। केवल ध्यान में अन्तर है। इस मन्त्र का ध्यान इस प्रकार है—

माणिक्यप्रतिप्रभा- हिमनिर्भैस्तुङ्गैश्चर्मिर्गजै
हैस्तग्राहितरत्नकुम्भसलिलैर्णसच्यमाना मुदा ।

हैस्ताङ्गेवरदानमम्बुजयुगा भीतीर्दधाना हरे
काताकाक्षितपारिजातलतिका वदे सरोजासनाम् ॥

इसका पुरश्चरण १२ लाख जप का है। दशाश हवन करना होता है जो लाल कमलों से सम्पन्न होता है।

निबन्ध ग्रथ के अनुसार लक्ष्मी का दशाक्षर मन्त्र है—

“नम कमलवासिन्य स्वाहा”

इसकी पूजन-विधि में पहिले पीठ न्यास और किर ऋष्यादि न्यास करे।

शिरसि दक्षऋषये नम । मुखे विराट्छन्दसे नमः ।
हृदि श्रिये देवतायै नम ।

कराङ्गन्यास—

ओ देव्ये नमोऽङ्गुष्ठाम्या नम ।
 ओ पद्मिन्ये नमस्तजनीम्या स्वाहा ।
 ओ विष्णुपत्न्ये नमो मध्यमाम्या वपट् ।
 ओ वरदा॑ नमोऽनमिकाम्या हुै ।
 ओ कमलहपाये नम कनिष्ठाम्या फट् ।

इसके बाद निम्न ध्यान करे—

आमीना मरसीरहे स्मितमुखी हस्ताम्बुजैर्विभ्रन्ती,
 दान पद्मयूगाभये च वपुषा सौदामिनीसन्तिभा॑ ।
 मुक्ताहारविगाजमानपृथुलोत्तुङ्गस्तनोदभासिनी
 पायाद्व कमला क्रटाक्षविभवैरानन्दयन्ती हरिम् ॥

फिर मानसोपचारे द्वारा पूजन और शब्द स्थापन होना है ।
 किर पीठ पूजा करके निम्न प्रश्नार पूजा करे—

अणिमादिक सिद्धदीश्च पाताल गुटिकाङ्गना
 चातुष्क दिव्य वेनाल प्राप्नुयात् कमलार्चनात्
 कमला च भवेहेवी कमला सर्व देवना॑ ।
 कमला पार्वती साक्षात् कमला सर्व कारणम् ॥
 यम्या पूजनमात्रेण त्रैलोक्य पूजन भवेत् ।
 कमला च महादेवी त्रिवामूलि व्यस्थिता॑ ।
 परा चंवापराचैव नृतीया च परापरा ॥
 कमला पूजनाच्चैव कोटि पूजफल लभेत् ।
 हन्ति विघ्नान्पूजिता स तथा गत्रु महोत्कटम् ।
 व्याघय, सर्वारिष्टानि फलायन्ते न सशय ।

आवाहनं

महालक्ष्मि समागच्छ पद्ममनाभ पदादिह ।

पूजामि मा गृहण त्वा त्वं देवि सभृता ॥

(स्थिर प्रतिमा मे आवाहन तथा विनर्जन नहीं होता है)

आसनं

आलयस्तेहिकथित कमल कमलालये ।
कमलेकमलेह्यस्मिन् स्थिर्ति मत्कुपथाकुरु ॥

पादः

गगादि सलिलाधार तीर्थ मनाभिमत्रिनम् ।
दूरयात्राश्रमहर पाद मे प्रतिग्रह्यता ॥

अर्धर्थम्

तीर्थोदकैर्महापुण्ये कल्पित पापहारकं ।
गृहणार्थं महालक्ष्म भक्तानामुपकारिणि ॥

आचमनं

कर्पूरागुरु समिश्र शीतल जलमुत्तम ।
लोकमातगृहणोद दत्तमाचमन मया ॥

स्नान

स्नानायते महालक्ष्म कर्पूरागुरुवासित ।
श्राहृत सर्वं तीर्थेभ्यं सलिल प्रतिगृह्यता ॥

पंचामृत स्नानम्

पयो दधि घृत देवि मधु शर्करया युतम् ।
पञ्चामृत मया दत्त स्नानार्थं प्रतिगृह्यनाम् ।

शुद्धोदक स्नानम्

ज्ञानमूर्ते भद्रकालि दिव्यमूर्ते सुरेश्वरि ।
शुद्धस्नान गृहाणोद नारायणि नमोस्तुते ।

वस्त्रम्

तन्तुसन्तानसयुक्त कलाकौशल कल्पित ।
सर्वांगाभरण श्रेष्ठ वसन परिधीयता ॥
(श्रघोवस्त्रम्, कचुक उपवस्त्रञ्च समर्पणादि)

चन्दनम्

मलथाचलसम्पन्न नानापन्नगरक्षित ।
शीतल वहुलामोद चन्दन प्रतिगृह्यता ॥

अक्षतान्

अक्षताश्चसुर श्रेष्ठे कु कमाक्तान् सुशोभनान् ।
मया निवेदितान् भक्तया गृह्णापरमेश्वरि ॥

सौभाग्य द्रव्यम्

तालपत्र मयानीत हरिद्रा कु कमाञ्जन ।
सिन्दूरालक्तक दास्ये सौभाग्य द्रव्यमीश्वरि ।

श्रलङ्घारान्

रत्नकङ्कणकेयूरकाचीकुण्डलनूपुर ।
मुक्ताहारं किरीटञ्च गृहाणाभरणानि मे ॥

पुष्पाणि

मिलित्परिमलामोद मत्तालि कुलसकुल ।
गृहाणा नन्दनोत्पन्न पद्मे कृसुम सञ्चय ॥

धूपं

गन्धसभारसन्नद्व नाना द्रुमरसोदभव ।
सुरासुरनरानन्द धूप देवि गृहाण मे ॥

द्वूर्वा

विष्णवादि सर्वं देवाना प्रिया सर्वं सुशोभना ।
क्षीर सागर सम्भूते द्वूर्वा स्वीकुरु सर्वदा ॥

दीपं

मात्तण्ड मण्डला खण्ड चन्द्र विश्वामित तेजसा ।
निदान देवि दीपोऽय क्लिपतस्तवभक्तिं ॥

नैवेद्यं

देवतालयपाताल भूतलाधारधान्यज ।
षोडशाकार सभार नैवेद्य प्रतिगृह्यताम् ॥

फलं

इद फल मया देवि स्थापित पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेऽजन्मनि ॥

ताम्बूलं

पातालतलसम्भूत वदनाभोजभूषण ।
नानागुण समायुक्त ताम्बूल देवि गृह्यताम् ॥

दक्षिणां

हिरण्यगर्भगर्भस्य हेमबीज विभावसो ।
अनन्त पुण्यफलदमत शान्ति प्रयच्छ मे ॥

महानीराजनं

चक्रुर्द सर्वलोकामा तिमिरस्य निवारण ।
आर्तिक्य कल्पित भक्त या गृहाण परमेश्वरि ॥

नमस्कारं

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सतत नमः ।
नम प्रकृत्यै भद्रायै नियता प्रणता, स्मताम् ॥

प्रदक्षिणा

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्वन्ति प्रदक्षिण पदे पदे ॥

पुष्पांजलि

नाना सुगन्धि पुष्पैश्च देशकालोऽद्वैयुर्तम् ।
पुष्पांजलि मया दत्त गृहाण हरिवल्जभे ॥

प्रार्थना

कमला चपला लक्ष्मीश्लाभूतिर्हरिप्रिया
पद्मा पद्मालया सपदुच्चै श्री. पद्मधारिणी
नमस्ते स १ देवाना वरदासि हरिप्रिये
या गतिरवत्व प्रपन्नाना सामे भूयात्त्वदर्चनात्
या देवी सर्व भूतेषु लक्ष्मी रूपेण स्थिता
नमस्तस्ये नमस्तस्ये नमस्तस्ये नमो नम ॥

फिर आवरण-पूजन करे । चारों दिशाओ, मध्य में पौर चारों
कोणों में इन भव्यों से पूजन करता चाहिये--

‘ओ’ देव्ये नमो हृदयाय नम । ओ पञ्चिभ्ये नम गिरसे

धूपं

गन्धमभारसन्नद्व नाना द्रुमरसोद्भव ।
सुरासुरनराजन्द धूप देवि गृहाण मे ॥

दूर्वा

विष्णवादि सर्वं देवाना प्रिया सर्वं सुशोभना ।
क्षोर सागर सम्भूते दूर्वा स्वीकुरु मर्वदा ॥

दीपं

मात्तण्ड मण्डला खण्ड चन्द्र विवाहित तेजसा ।
निदान देवि दीपोऽय क्लिपतस्तवभक्तिः ॥

नैवेद्यं

देवतालयपाताल भूतलाधारघात्यज ।
पोडशाकार सभार नैवेद्य प्रतिगृह्यताम् ॥

फलं

इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेत्जन्मनि ॥

ताम्बूलं

पातालतलसम्भूतं वदनाभोजभूषण ।
नानागुणं समायुक्तं ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ॥

दक्षिणां

हिरण्यगर्भगर्भस्य हेमबीजं विभावसो ।
अनन्तं पुण्यफलदमतं शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

महानीराजनं

चक्षुर्द सर्वलोकामा तिमिरस्य निवारण ।
आर्तिवय कल्पित भक्त या गृहाण परमेश्वरि ॥

नमस्कारं

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सतत नमः ।
नम प्रकृत्यै भद्रायै नियता प्रणता, स्मनाम् ॥

प्रदक्षिणा

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणा पदे पदे ॥

पुष्पांजलि

नाना सुगन्धि पुष्पैऽच देवकालोङ्कवेयुंतम् ।
पुष्पांजलि मया दत्त गृहाण हरिवल्लभे ॥

प्रार्थना

कमला चपला लक्ष्मीश्लाभूतिहरिप्रिया
पद्मा पद्मालया सपदुच्चै श्री. पद्मधारिणी
नमस्ते स ४ देवाना वरदासि हरिप्रिये
या गतिरवत्व प्रपन्नाना सामे भूयात्वदर्चनात्
या देवी सर्व भूनेषु लक्ष्मी रूपेण सस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

फिर आवरण-पूजन करे । चारों दिशाओ, मध्य मे प्रोर चारों
कोणों में इन मन्त्रों से पूजन करता चाहिये—

‘ओ’ देव्यै नमो हृदयाय नम । ओ पञ्चिन्यै नम, शिरसे

स्वाहा । ओ महालक्ष्मे नम शिखायै वषट् । ओ वरदायै नम कवचाय हूँ । ओ कमलारूपायै नमोऽस्त्राय फट् ।

इसका पुरश्चरण दस लाख मन्त्र जप का है । एव्वो मे धी, शहद और शवकर मिला कर १० हजार आहुतियों का हवन करना चाहिये ।

४— महालक्ष्मी का द्वादशाक्षर मन्त्र है—“ओ ऐं ह्ली श्री कली हसौ जगत्प्रसूत्यै नमः ।”

पीठ-न्यास तक पूर्व विधि है । ऋष्यादिन्यास इस प्रकार है—

शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नम
मुखे गायत्री छन्दमे नम
हृदि महालक्ष्म्यै देवतायै नम ।

‘च बीजो का न्यास—

अगुण्ठे ईं ए नम्
तज्जन्या ओ ह्ली नम
मध्यमाया ओ श्री नम
अनामिका या ओ कली नम
कनिष्ठाया ओ हसौ नम
करतले ओ जगत्प्रसूत्यै नम

मूल मन्त्र से ध्यापक न्यास करके फिर मन्त्रन्यासादि न्यास करना चाहिये—

मस्तके ओ नमः, मुखे ह्ली नम, हृदये श्री नमः, गुह्ये कली नम, पदे हसौ नम, त्वाक्‌मासरक्तमेदास्थिमञ्जाशुक्रा-दिसप्तघातुषु जगत्प्रसूत्यै नम ।

कराङ्गन्यास

ऐं ज्ञानाय अगुष्ठाभ्या नम । ह्ली ऐश्वर्याय तज्जनीभ्या

स्वाहा । श्रीशक्तये मद्यमाभ्या वगट् । कली बनाव श्रतामिकाभ्या हु । हसी वीर्ययि कनिष्ठाभ्या वेषट् । जगत्प्रसूत्ये नमस्तेजमे करतलपृष्ठाभ्या फट् ।

हृष्यादि पञ्चज्ञन्यास करके निम्न ध्यान करे—

बालार्कद्युतिमिन्दुरखण्डविलसत्कोटीरहारोऽजजवला
रत्नाकल्पविभूषिता कुचनता गाले करैर्मञ्जरीम् ।
पद्म कौस्तुभरत्नमध्यविरत सविभ्रनी सस्मिता
फुल्लां भोज विलोचनवययुताध्यायेन् परामम्बिका

ध्यान के बाद की पूजन पद्धति पूर्वोक्त है । फिर प्रावरण-पूजा इस प्रकार है—

श्रो शङ्करनन्दनाम नम (दक्षिण भाग मे)

श्रो पुरुषवन्वने नम (वाम भाग मे)

ऐ ज्ञानाय नम

ह्ली ऐश्वर्ययि नम.

श्री शक्तये नम.

कली बलाय नम

हसी वीर्ययि नम

श्रो जगत्प्रसूत्ये नम,

श्रो तेजसे नम.

इसका पुरावचरण १२ लाख है । दशोंज हवन श्रीफन या पञ्च द्वारा और २० हजार तर्पण करना चाहिए ।

५—महालक्ष्मी का प्रादि भस्त्र है— श्रो श्री ह्ली कमले कमला-स्थे प्रसीद प्रसीद श्री ह्ली श्री महालक्ष्मी नम ”

ऋष्यादि न्यास तरु की विधि पूर्वोक्त है । कराङ्गन्यास इस प्रकार है—

श्री ही श्री कमले श्री ही श्री अगुष्ठाभ्या नम । श्री ही श्री कमतालये श्री ही श्री तर्जनीभ्या स्वाहा । श्री ही श्री प्रसीद श्री ही श्री मध्यमाभ्या वषट् श्री ही श्री प्रसीद श्री ही श्री अनामिका भ्या हु । श्री ही श्री महालक्ष्मि श्री ही श्री कनिष्ठाभ्या वौषट् । श्री ही श्री नम महालक्ष्मि श्री ही श्री अस्वाय फट् ।

हृदयादि पठङ्गान्यास के बाद ध्यान करना चाहिए—

सिन्दूरारुणकान्तिमव्यजवसर्ति सौन्दर्यवारा निधि,
कोटीराङ्गदहारकुण्डलकटीसूक्तादिभिर्भूपिताम् ।
हस्तब्जैर्वंसुपात्रमव्ययुगलादशौं वहन्ती परा
मावीता परिचारिकाभिरनिशध्यायेत् प्रिया शाङ्गण

आवरण पूजा से वहिले की विधि पूर्वोक्त है । आवरण पूजन इस प्रकार करे—

अग्न्यादि कोणो, मध्य और चारो दिशाओ में इस प्रकार अङ्ग पूजन करना चाहिए—

श्री ही श्री कमले श्री ही श्री हृदयाय नम । श्री ही श्री कमलायये श्री ही श्री शिरसे स्वाह । श्री ही श्री प्रसीद श्री ही श्री शिखाय वषट् । श्री ही श्री प्रसीद श्री कवचाय हुँ । श्री ही श्री महालक्ष्मि श्री ही श्री नेत्रवायाय वौषट् । श्री ही श्री महालक्ष्मि श्री ही श्री अस्त्राय फट् ।

इसका पुरवचरण एक लाख जप का है । विल्वफल में धी, शक्ति, और शहद मिलाकर हवन करना चाहिये ।

लक्ष्मी-कवच

लक्ष्मीमें चाप्रता पातु कमला पातु पृष्ठतः
नारायणी शीर्षदे शैसर्वाङ्गि श्री स्वरूपिणी

लक्ष्मी मेरे अग्रभाग की, कमला मेरे पृष्ठ भाग की, नारायणी
मेरे शिर की और श्रीस्वरूपा भगवती मेरे सर्वांग की रक्षा करे । १।

रामपत्नी प्रत्य गे तु सदावतु रमेश्वरी ।

विशालाक्षी योगमाया कीमारी चक्रिणी तथा ॥

जयदात्री धनदात्री पाशाक्षमालिनी शुभा ।

हरिप्रिया हरिरामा जयंकरी महोदरी ॥

कृष्णपरायणा देवी श्रीकृष्णामनोमोहिनी ।

जय करी महारीद्री सिद्धिदात्री शुभकरी ॥

सुखदा मेथदा देवी चित्रकूटनिवासिनी ।

भय हेरत्सदा पायाद् भवदन्वाद्विमोचयेत् ॥

“भगवान् गम की धर्मपत्नी, विशाल नद्यन वानी योगमाया
कुमारी और चक्रधारिणी लक्ष्मी मेरे सर्वांग की रक्षा करें । वही विजय
प्राप्त करने वाली, धन देने वाली, पाशाक्ष मालिनी, कल्याणी, हरिप्रिया,
महारीद्री, सिद्धिदात्री, शुभदायिनी, सुखदायिनी, मोक्षदायिनी, चित्रकूट-
वासिनी लक्ष्मी मेरे भय को दूर करती हुई सदा रक्षा करे और ससार
सागर की पाश को काट डालें । २।

कवचन्तु महापुण्य य पटेत् भक्तिसयुत, ।

त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यम्बा [मुच्यते सर्वसकटात् ॥

तीनो समय अथवा एक समय ही जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस
महापुण्यमय कवच का पाठ करते हैं, वे सभी सङ्कृटों से मुक्त होते हैं । ३

पठन कवचस्यास्य पुत्रघनविवर्द्धनम् ।

भीतिविनाशनञ्चैव त्रिपु लोकेषु कीर्तितम् ॥

इस कवच का पाठ करने से पुत्र और घन आदि की वृद्धि होती
है तथा भय दूर हो जाता है । तीनों जोको मे इस कवच की महिमा
गाई जाती है । ४।

भूजर्जपत्रे समालिख्य रोचनाकु कुमेन तु ।
धारणाद् गलदेशे च सर्वंसिद्धिभविष्यति ॥

रोचन प्रौर कु कुप से हमे भोजपत्र पर लिख कर करठ में धारण
करे तो सर्वं सिद्धियो की प्राप्ति होती है । ५।

अपुत्रा लभते पुत्र धनार्थी लभते धनम् ।

मोक्षार्थो मोक्षमाप्नोति कवचस्य प्रसादतः ॥

इस कवच के प्रभाव से पुत्रहीन को पुत्र, धनहीन को धन प्रौर
मोक्ष की कामना करने वाले को मोक्ष की प्राप्ति होती है । ६।

गर्भिणी लभते पुत्र बन्ध्या च गर्भिणी भवेत ।

धारयेद्यदि कण्ठे च अथवा वामबाहुके ॥

करठ अथवा नौए हाथ मे इस कवच को गर्भिणी ल्ली धारण
करे तो श्रेष्ठ पुत्र को प्राप्ति होती है प्रौर बन्ध्या ल्ली पुत्रवनी होती है । ७।

य पठेन्तियतो भक्तया स एव विष्णुवद्भवेत ।

मृत्युव्याघिभय तस्य नास्ति किञ्चिचन्महोतले ॥

भक्तिपूर्वक इस कवच का पाठ करने वाले मनुष्य विष्णु के समान,
समर्थ होते हैं, मृत्यु प्रौर रोग आदि उनको ध्यात नहीं होते । ८।

पठेद्वा पाठयेद्वापि शृणु याच्छावयेदपि ।

सर्वपापविमुक्तस्तु लभते परमा गतिम् ॥

इस कवच को पढ़ने, पढ़ाने और सुनने वाले मनुष्य सब पापों से
मुक्त होकर परमगति लाभ करते हैं । ९।

विपदि सकटे घोरे तथा च गहने वने ।

राजद्वारे च नौकाया तथा च रणमध्यतः ॥

पठनाद्वारणादस्य जयमाप्नोति निश्चितम् ॥

विपत्ति काल में, घोर सकट के समय, भीपण जगल में, राजद्वार

या नौकारोहण में, युद्धक्षेत्र में ग्रथवा ग्रन्थ कही भी इम कवच को धारण
करने वाले मनुष्य निश्चय ही विजयी होते हैं । १०

अपुत्रा च तथा वध्या त्रिपक्ष शृणुयादपि ।
सुपुत्र लभेत् सा तु दीर्घयुष्क यशम्बिनम् ॥

वध्या या पुत्रहीना नारी टेढ़ मास तक यदि इम कवच को
श्रवण करे तो वह महातेजस्वी और दीर्घयुष्य पुत्र प्राप्त करती है । ११

शृणुयाद्य शुद्धवुद्धया द्वौ मासौ विप्रवक्तत ।
सर्वान्कामानवाप्नोति सर्ववन्धाद्विमुच्यते ॥

पवित्र मन से दो मास पर्यन्त जो मनुष्य विद्वान् ब्राह्मण से इम
कवच को सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं और वह सभी
प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है । १२

मृतवत्सा जीववत्मा त्रिमास शृणुयाद्यदि ।
रोगी रोगाद्विमुच्येत् पठनान्मासमध्यत् ॥

जिम नारी के मरा हुआ बालक होता हो ग्रथवा जिसके हो हो
कर मर जाय, वह तीन महीने तक इम कवच को श्रवण करे ग्रथवा
जो रोगी पुरुष इसका पाठ करे वह सभी रोगों से छूट जाते हैं । १३

लिखित्वा भूर्जपत्रे च ह्यथवा ताडपत्रके ।
स्यापयेन्नियत् गेहे नागिनचौरभय कवचित् ॥

भोजपत्र या ताडपत्र पर इस कवच को लिख कर जो अपने घर
ग्रथापित करे, उसके लिए ग्रन्थि या चौर धादि का भय नहीं रहता । १४

शृणुयाद्वारयेद्वापि पठेद्वा पाठयेदपि ।
य पुमान्सतत तस्मिन्प्रसन्ना सर्वदेवत ।

नित्यप्रति जो इस कवच को सुनता, पढ़ता, दूसरे को पढ़ाता
ग्रथवा इसे धारण करता है, उस पर देवता प्रसन्न रहते हैं । १५

बहुता किनिहोक्तेन सर्वजीवेश्वरेश्वरी ।
आद्या शक्ति, सदा लक्ष्मीर्भक्तानु गृहकारिणी ।
धारके पाठके चैव निश्चला निवसेद् ध्रुवम् ॥

इस श्वच का पाठ करने और धारण करने वाले पुरुषों पर, भक्तों पर अनुग्रह करने वाली आद्या शक्ति लक्ष्मी कृपा करती और उनके पर में निवास करती है । १६।

महाकाली

महाकाली का आशय है देवी स्वरूपाभ्यर शक्ति जो कि प्रतेक को एक स्थान में कर देती है ।

महाकाली का स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

खड्ग चक्रादेषु चापपरिधावदुन् भुशुण्डी शिरः
शङ्खं सदधर्ती करैस्त्रिनयना सर्वज्ञं भूष्यावृताम् ।
नीलाशमद्युतिमास्वपाददशका सेवे महाकालिका
यामस्तीत्स्वपिते हरी कमला हनु मधु केटभम् ॥

अथवा “मृपने दस हाथों में खंग, चक्र, गदा धनुष, बाण, परिधि, शूल, भुशुण्ड, कपाल और शख की धारण करने वाली, समस्त शर्णों में दिव्य भाभूषणी से सुसज्जित, नीलमणि के समान शरीर कान्ति वाली, दस मुख और दस पैर वाली महाकाली का मैं ध्यान करता हूँ, जिसका स्तवन भगवान् विष्णु के सो जाने पर मधु और केटम की माररे के लिए क्रत्याजी ने किया था ।

शास्त्रों में महाकाली की उत्पत्ति इस प्रकार वर्णित की गई है—

प्रलय कान में भगवान् विष्णु योग-निन्द्रा में लीन थे कि उत्तरे

कानो से मवु और कैटभ नाम के दो राक्षस उत्पन्न हुए जो ब्रह्मा को मारने के लिए दीडे। ब्रह्मा ने भगवान् की योग-निद्रा भा करने के लिए भगवान् के नेत्र कमल स्थित योग निद्रा का स्तवन किया। भगवान् विष्णु के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु और हृदय से बाहर निकल कर भगवती उपस्थित हो गई। भगवान् की योग निद्रा भी समाप्त हुई। ब्रह्मा की बचाने के लिए भगवान् राक्षसों से युद्ध करने लगे। यह युद्ध पांच हजार वर्षों के चलता रहा परन्तु राक्षस न मारे गए। घन्त में भगवती ने उन राक्षसों की त्रुट्टि में मोह उत्पन्न किया, जिससे अभिमान का उदय हुआ और वे भगवान् ने वह माँगने की शेखी वधारने लगे। भगवान् ने श्रवसर का लाभ उठाया और प्रपने हाथों उनके मारे जाने का वरदान माँगा जो दे दिया गया। भगवान् ने चक्र से उनका मर काट डाला। इस प्रकार ब्रह्मा की रक्षा के लिए भगवती ने काली का रूप घारण किया।

देवी का कलिका नाम क्यों पड़ा? इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि पार्वती के शरीर-कोष में से एक शिवा निकली जिसके कारण देवी कृष्ण वर्ण ही गई और कालिका नाम पड़ा।

तस्या विनिर्गताया तु कृप्याभूत् सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमालयकृताश्रवा ॥

काली के प्राविर्भवि के उद्देश्य का प्रतिपादन करते हुए मार्क-ऐडेय पुस्ताण में कहा गया है कि देवी नित्य हैं परन्तु देवताओं की कार्य-मिद्दि के लिए विशेष रूप ग्रहण करके इस लोक में प्रवतीर्ण होती हैं।

देवाना कायंसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याष्वभिवीयते ॥

(सप्तशती १६६)

इनका मात्राशक्ति महामाया के नाम से गुण-गान किया जाता

है। दश महाविद्याओं में सबसे पहला नाम काली का ही आता है। शिव की तरह काली की मूर्तियों के भी आठ भेद हैं परन्तु 'दक्षिणा' अधिक प्रसिद्ध है।

काली का रूप अत्यन्त भयच्छक है। उसके हाथों में खड़ा और नृमुण्ड हैं। रक्त धारा का प्रवाह, इमशान में निवास, जलती चिता, शवासना—यह सभी काली के भयच्छर रूप ही प्रदर्शित करते हैं। उसकी बाह्याङ्गति में ध्वस और द्रलय के दर्शन होते हैं। यह उनके 'इमशानाजयवासिनी, शवाशना, शवरूप आदि नामों से ही विदित होता है। मुण्डकोपनिषद् (१।२।४) में भी लिखा है—

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवरणा ।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जित्वा ॥

अर्थात् “काली अत्यन्त उग्र मन के समान चचल, लाली युक्त, घूर्म वर्ण, चिंगारियों से युक्त, देदीप्यमान विश्वरुचि—यह लपलपाती सात जित्वा एं अग्नि की हैं।

काली का तत्त्वज्ञान जानने के लिए यह रूप आवश्यक है वयोंकि काली का सम्बन्ध काल से है। काली वह है जो काल पर प्रतिष्ठित है। काल उस पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की क्षमता नहीं रखता बल्कि उसका सहारा ग्रहण करता है। शास्त्र भी इसका अनुमोदन करत हुए कहता है—

कालो हि जगदाधार ।

“वह काल जगत का आधार है”

काल का दूसरा नाम रुद्र प्रथवा सदाचिव है। रुद्र उग्रता के प्रतीक और ध्वस के देवता है।

भगवान शङ्खर का निवास स्थान इमशान है । वे गले में मुण्ड-माला धारण करते हैं । मृत्यु के काल-पाश—महामर्प उनके कण्ठ में भूजाओं में, यज्ञोपवीत में लिपटे हुए हैं । तीष्ण श्रिघून उनका शस्त्र है । जब वे तीसरा नेत्र खोलते हैं तब चारों ओर आग वरमती है । कुपित होकर वे तीसरे नेत्र से जिसे भी देखते हैं वह जल-बल कर भस्म हो जाता है । कामदेव की मृग मरीचिका को एक बार उनने पलक मारते-मारते जलाकर भस्म कर दिया था । उनके वीरभद्र, भैरव एवं नन्दीगण किनने विकराल हैं इसकी क्लवना करने मात्र से रोमांच हो उठते हैं । जब प्रलय की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है तब वे ताण्डव नृत्य करने खडे हो जाते हैं । उनके चरणों की यिरकन जैमे-जैमे गतिशील होती चलती है, वैसे ही जराजर रूप कूड़ा करकट प्रभून दावानल में जल-जल कर अनन्त अन्तरिक्ष में विलय होता चला जाता है । पाप-पुरुष उनके चरणों से भा गिरता है । शिव-ताण्डव-नृत्य के चित्रों में एक उकड़ उलटे मु ह पड़ा हुआ भयभीत जीव दिखाई पड़ता है । उस की पीठ पर नटराज के चरणों की यिरकन गतिशील होती है । यह पाप-पुरुष मानव अन्न करण में निवास करने वाले पशु ही हैं, इसी की समय-समय पर अप्सुर घाव्द से भर्त्सना की जाती रहती है । ताण्डव नृत्य का प्रयोग इम पाप पुरुष को परामर्श करना, उसकी माया मरीचिका को निरस्त करना ही है ।

रुद्र का भासुधण नरं सहारक शक्ति है । वह कान का प्रतीक है । काल किमी को नहीं छोड़ता । इस जगत में उत्पन्न हर वस्तु उसके गले के नीचे उतर जाती है । सर्व क्रोध का भी प्रतीक है । क्वीर ने क्रोध को भी काल की सज्जा दी है ।

रुद्र को वेदों में अरिन का प्रतीक माना गया है । अरिन का कार्य भस्म करना है और जलाना है । इसलिए भस्म को शिव का चिन्ह माना गया है । मूर्तियों ओर चित्रों में वह भस्म विमूर्पित दिखाए गए हैं ।

और शक्ति की गतिशीलता पूजी जाती है। महाकाल भी द्वाती पर घटे होकर महाकाली का षट्हास करना हसी तथ्य का अनकारिक चित्रण है।

शिव के हाथों में त्रिशूल अवश्य है, वे उसका अतिवार्यं परिस्थितियों में प्रयोग भी करते हैं पर हृदय में उनके सृजन की असीम कारण ही भरी रहती है। सृजन की दबी काली उनकी हृदयेश्वरी है। उसे वे सदा घपने हृदय में स्थान दिये रहते हैं प्रावश्कतानुमार वह मूर्तिमान गतिशील और प्रखर हो रठती है। ध्वस के अवसर पर तो उसकी आवश्यकता और भ्रष्टिक हो उटती है। आपरेशन के समय डाक्टर को चाकू केची, आरी, सुई आदि तीक्षण घार वाले शस्त्रों की भी जहरत पड़ती है, पर उसमें भी प्रविक्त सामिग्री मरहमपट्टी की जुटानी पड़ती है। आपरेशन के समय किये गये धाव को भरा कैसे जाय? इसकी आवश्यकता भी डाक्टर समझते हैं अतएव वे रुद्धि, गोज, मरहम पट्टी दवायें आदि भी बड़ी मात्रा में पास रख लेते हैं। ध्वम प्रक्रिया आपरेशन है तो निर्माण मरहम पट्टी। भगवान् को ध्वस करना पड़ता है पर मूल में ग्रभितव सृजन की आकांक्षा ही रहती है। क्रंर कर्म में भी घनात करणा ही छिपी रहती है। महाकाल की आन्तरिक इच्छा सृजनात्मक ही है, यही उनकी हृदयगत आकांक्षा है। अस्तु शक्ति को शिव के हृदय स्थान पर इस प्रकार अवस्थित दिखाया गया है मानो वह हृदय से ही निकल कर मूर्तिमान हो रही हो।

इस चित्रण का एक और भी उद्देश्य है कि विनाश के उपरान्त होने वाले पुनर्निर्माण में मातृ शक्ति का ही प्रमुख हाथ रहता है। बाप द्वारा प्रताङ्गना दिये जाने पर बच्चा मा के पास ही दौड़ता है और तब वहीं उसे घपने अच्छल में छिपाती, छाती से लगाती, पुच्छारती और दुलारती है। मातृ-शक्ति करणा की ल्लोत है। अस्पतालों में नर्सका काम महिलायें जैसा अच्छी तरह कर सकती हैं उतना पुरुष नहीं, छोटे बालकों

भस्म नाश और सहार का चिन्ह है व्योकि जलने के बाद का यह अन्तिम रूप है। रुद्र को इमशान प्रिय है, वे प्रलय का साकार रूप हैं। इसलिए शास्त्रों ने काल की परिभाषा करते हुए कहा है—

कलनात्सर्वभूतानाम् ।

जो सर्वभूतों का नाश करता है, वहु काल कहलाता है। यह काल ही नहीं महाकाल कहलाता है। काली तत्व का विवेचन करते हुए बताया गया है कि वह काल तत्व पर प्रतिष्ठित रहती है।

महाकाली को पुराणों में इस प्रकार चित्रित किया गया है कि महाकाल भूमि पर लेटे हुए हैं और वे उनकी छाती पर खड़ी अट्टहास कर रही हैं। यो पति की छाती पर पूत्ती था खड़ा होना अटपटा-सा लगता है। पर पहेलियों में यह अटपटापन जहाँ फौतूहल वर्धक एवं मनो-रजक होता है वहाँ ज्ञान वधक भी। कबीर की उत्तार्वासी और खुसरी की 'मुकरनी', पहेलियों के रूप में सामने आती हैं और अपना रहस्य जानने के लिए बुद्धिमत्ता को चुनौती देती है। भूमि पर लेटे हुए शिव की छाती पर काली का खड़े होकर अट्टहास करना, घटना वे रूप में घटित हुआ था या नहीं इस झटके में पड़ने की अपेक्षा हमें उसमें सन्दिहित मर्म और तथ्य को समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

ध्वस एक आपत्ति धम है—सृजन सनातन प्रक्रिया। इसलिए ध्वस को रुकना पड़ता है, घक कर लेट जाना और सो जाना पड़ता है। तब सृजन को दुहरा काम करना पड़ता है। एक तो स्वाभाविक सृष्टि सचालन की रचनात्मक प्रक्रिया का सचालन-दूसरे ध्वस के कारण हुई विशेष क्षति की विशेष पूति का आयोजन। इस दुहरी उपयोगिता के कारण ध्वस के देवता महाकाल की अपेक्षा स्वभावत सृजन की देवी महाकाली का महत्व बहुत मधिक बढ़ जाता है। शिव जब पड़े होते हैं। तब शक्ति खड़ी है। शिव पीछे पड़ जाते हैं यक्ति आगे आती हैं। शिव सोने जौते हैं और शक्ति जागृत रहती है। शिव का महत्व घट जाता है।

और शक्ति की गतिशीलता पूजी जाती है। महाकाल की छाती पर खड़े होकर महाकाली का षट्पूरुष करना इसी तथ्य का भलकारिक चित्रण है।

शिव के हाथों में त्रिशूल श्रवश्य है, वे उसका अनिवार्य परिस्थितियों में प्रयोग भी करते हैं पर हृदय में उनके सृजन की असीम कारण ही भी रहती है। सृजन की दबी काली उनकी हृदयेश्वरी है। उसे वे सदा अपने हृदय में स्थान दिये रहते हैं प्रावश्कतान् सार वह मूर्तिमान गतिशील और प्रखर हो रहती है। ध्वस के भवसर पर तो उसकी आवश्यकता और भी अधिक हो उठती है। आपरेशन के समय डाक्टर को चाकू केची, आरी, सुई आदि तीक्ष्ण घार वाले शस्त्रों की भी जहरत पड़ती है, पर उसमें भी प्रविक्ष सामिग्री मरहमपट्टी की जुटानी पड़ती है। आपरेशन के समय किये गये घाव को भरा कैसे जाय? इसकी आवश्यकता भी डाक्टर समझते हैं प्रतएव वे हई, गोज, मरहम पट्टी दबायें आदि भी बड़ी मात्रा में पास रख लेते हैं। ध्वम प्रक्रिया आपरेशन है तो निर्माण मरहम पट्टी। भगवान् को ध्वस करना पड़ता है पर मूल में अभिनव सृजन की आकृक्षा ही रहती है। क्रंर कर्म में भी उन तकरुणा ही छिपी रहती है। महाकाल की आन्तरिक इच्छा सृजनात्मक ही है, यही उनकी हृदयगत आकृक्षा है। अस्तु शक्ति को शिव के हृदय स्थान पर इस प्रकार अवस्थित दिखाया गया है मानो वह हृदय से ही निकल कर मूर्तिमान हो रही हो।

इस चित्रण का एक और भी उद्देश्य है कि विनाश के उपरान्त होने वाले पुनर्निर्माण में मातृ शक्ति का ही प्रमुख हाथ रहता है। बाप द्वारा प्रताङ्गना दिये जाने पर बच्चा मा के पास ही दौड़ता है और तब वहीं उसे अपने अङ्गकल में छिपाती, छाती से लगाती, पुच्छारती और ढुलारती है। मातृ-शक्ति करुणा की क्षोत्र है। अस्पतालों में नर्सका काम यहिनायें जैसा अच्छी तरह कर सकती हैं उतना पुरुष नहीं, जोटे बालकों

की शिक्षा देने वाले बाल मन्दिर—शिशु सदनों में महिलाओं द्वारा जैसी अच्छी तरह शिक्षण दिया जा सकता है, उतना पुरुषों द्वारा नहीं। कारण कि उनके भन्दर स्वभावतः जिस करुणा, दया, ममता, सेवा, सौजन्य एवं सहदयता का बाहुल्य रहता है, उतना पुरुषमें नहीं पाया जाता पुरुष प्रकृति कठोर है और नारी कोमल है। दोनों का सम्मिलित होने से एक सतुलित स्थिति बनती है अन्यथा एकाकी रहने वाले पुरुष सेना जैसे कठोर कायों के लिये ही उपयुक्त सिद्ध हो सकते हैं।

यदि वतंपान अवाद्धनीय परिस्थितियों की जिम्मेदारी नर-नारी में से किसकी कितनी है इसका विश्लेषण किया जाय तो यही निष्कर्प निकलेगा कि ६० प्रतिशत उद्धनता पुरुषों द्वारा बरती गई है, क्रूर कर्मों और दुर्भाविताशों के अभिवर्णन में उन्हीं का प्रमुख हाथ है। अपराधी, दुष्ट, दुरात्मा और दडभोक्ता घ्यकितयों में पुरुषों की ही सम्या ६० प्रतिशत होती है। वतंपान उद्धनता की जिम्मेदारी प्रधानतया पुरुषों की होने के कारण दड भाग की उन्हीं के हिस्से में आयेगा। भावी विनाश में प्रताडना उन्हीं के हिस्से में अधिक आने वाली है। नारी क्रूर कर्मों से बची रहती है उनमें उमका योगदान नगरण होता है इसलिये वह अपनी आध्यात्मिक गरिमा के कारण पुरुष का अपेक्षा कही अधिक पवित्र, उज्ज्वल, मीम्य, रहने के कारण दुर्देव की कोपभाजन नहीं बनती, शिव को छाती पर शक्ति के खड़े होने का तात्पर्य यह भी है कि आत्मिक श्रेष्ठता की कमीटी पर कसे जाने पर नारी की गरिमा ही अधिक भारी बैठती है। वही ऊपर रहती है। पुस्त्य इस दृष्टि से जब कि गिरा हुआ सिद्ध होता है नव नारी अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित करती हुई गर्वोन्नत प्रसन्न वदन खड़ी होती है।

भावी नव निर्माण में, इमारतों, मड़कों, कल कारखानों सेना अथवा शास्त्रों का अभिवर्णन प्रधान नहीं, वरन् भावनात्मक निर्माण की प्रधानता रहेगी। इस क्षेत्र में नारी का ज्ञान, अनुभव तथा अधिकार

असदिग्द है। इस लिये स्वभावत जो जिसका अधिकारी है वही इस उत्तरदायित्व को बहन करेगा। भावी पुनरुत्थान में प्रधान भूमिका भर की नहीं नारी की होगी। चिनाश की भूमिका का सरजाम जटाने में पुरुष आगे रहेगा, क्रूर कर्मों में उसी की दुद्धि आगे चलती है। सामाज्य जीवन आनन्द की हत्या उसी ने की है। विश्व-शान्ति पर आक्रमण उसी ने किया है। अब अपनी दुष्टता की पूर्णाहुति में भी घपनी कला के दो-दो हाथ दिखावे तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। लेकिन भावनात्मक नवनिर्माण की, इसवे तुन्नत बाद ही जिस पुनरुत्थान की आवश्यकता पड़ेगी उसे वह पूरा न कर सकेगा। यह कार्य नारीको करना है। इसी स्थिय को प्रतिपादित करती हुई महाकाल के थक जाने पर उसकी छाती पर महाकाली का हासविलास होता चित्रित किया गया है।

पुरुष में अन्य विशेषताएँ कितनी ही वयों न हो, भावनात्मक शेष थे, आध्यात्मिक क्षेत्र में—नारी से वह बहुत पीछे है। यही कारण है कि साधना क्षेत्र में नारी ने जब भी प्रवेश किया है। वह पुरुष की तुलना में सो गुनी तीक्ष्ण गति से आग बढ़ी है। उसे इस दिशा में अधिक शीघ्र और अधिक महत्वपूर्ण सफलताएँ मिलती हैं। माता को कन्याय अधिक प्रिय होती हैं, उन्हें वे दुलार भी अधिक करती हैं और अनुग्रह भी। अध्यात्म की अधिष्ठात्री महाशक्ति का अवतरण अनुग्रह यदि नारी साधकों पर अधिक सरलता से, अधिक मात्रा में होता है तो यह उचित ही है। भावों नव निर्माण में जिस स्तर की क्षमता, योग्यता, पूँजी एवं तत्परता की प्रावश्यकता होगी वह स्वभावत नारीमें ही प्रचुर तापूर्वक मिलेगी। इसलिये समर्हित पुरुष को कमक कराह के साथ विश्राम करते देकर नारी ही आगे दौड़ेगी और वही पुनरुत्थान की परिस्थितियों का सृजन करेगी। समय-समय पर ऐसा होता भी आया है। पुरुष अध्यात्मवादियों की सफलताओं में प्रवान भूमिका नारी की रही है। वह सहयोग, स्थानि प्राप्त भले ही न कर सकी हो, पर तथ्य की दृष्टि से यही सुनिश्चित है कि आत्म बल के उपार्जन में किसी भी पुरुष का प्रदभूत आसाधारण सहयोग किन्हीं नारियों का ही रहा है।

राम की महिमा का श्रेय सीता और कौशिल्या को कम नहीं है। कौशिल्या के प्रशिक्षण तथा सीता के सहयोग को यदि हटा दिया जाय तो राम का वर्चंध्व फिर कहाँ रह जायगा? सीता के बिना राम का चरित्र ही क्या रह जाता है। उनकी सारी गतिविविधों के पीछे सीता ही आच्छादिन है। कृष्ण को बांसुरी में राघा ही रहनी थी। देवकी और यशोदा का वात्सल्य, कुन्तीका प्रोत्साहन और माशीर्वाद, द्रोपदीकी अद्भा, गोपियों का इन सब तत्त्वों ने मिल कर कृष्ण के कृष्णत्व की पूर्ति की थी, इन उपलब्धियों के अभाव में बेचारे कृष्ण कुछ कर पाते या नहीं इसमें सन्देह ही रहता।

बुद्ध का आध्यात्मिक प्रशिक्षण उनकी मीसी द्वारा सम्पन्न हुआ था। तपस्था के बाद लौटे तो उनकी पत्नी यशोधरा भी मनुष्यामिनी होकर आई। अम्बपाली के आत्म-समर्पण के उभरान्त तो भगवान् का प्रयोजन हजार गुनी गति से तीव्र हुआ। प्रतिभाशाली व्यक्ति जहाँ प्राप्त है वहाँ किसी भी दिशा में अभिवृद्धि होती है प एडवों की महान् भूमिका में द्रोपदी का 'रील' अत्यन्त प्रभावी है। एक नारी द्वारा पांच नर-रत्नों को प्रचुर बल प्रदान किया गया, यह नारी-शक्ति भागडागार का चिन्ह है। मदालसा ने अपने सभी पुत्रों को अमीट शिक्षा से सुसम्पन्न किया था। एक नारी अमर्य मानव प्रणियों को नर से नारायण बनाने में समर्थ हो सकती है। उसकी भावनात्मक सृष्टि इतनी परिपूर्ण है कि कृष्ण का सामयिक प्रस्तुत्त्व न होने पर भी मीरा ने उहे पति रूप में साथ रहने और नाचने के लिए मूर्तिमान कर लिया था।

प्राचीन काल के तपस्वी तत्त्वदर्शी एवं महामनीपी ऋषियों में से प्रत्येक सप्तनीक था। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देवनाश्रों का पतिया, मरणवनी लक्ष्मी काली उनके वर्चंध्व को स्थिर रखनेमें प्राधार-स्तम्भ की तरह हैं। नारी के रमणी रूप की ही भूमिना की गई है औन्यथा उसकी ममग्र पत्ता, गङ्गा की तरह पवित्र, प्रोत्साहन की तरह

प्रखर है। पिंडने दिनों भारतीय राजनीतिक क्रांति का नेतृत्व करने में ऐसी वेमेन्ट की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लक्ष्मीबाई सराजिनी नायदू आदि कितनी ही महिलाएँ इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम कर चुकी हैं। इस क्रांति युग की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में जिन महामानवों ने गुप्त किन्तु अद्भुत पुरुषाश्र किया है उनमें रामकृष्ण परमहंस और योगी अरविन्द मूर्धन्य हैं। दोनों को नारी का शक्ति-मानिध्य प्राप्त था। परमहंस के साथ महा योगिनी—भैरवी तथा पत्नी शारदामणि और अरविन्द के साथ मानाजी का जो ग्रनुपम सहयोग हुम्हा उनी के बल-वृत्ते पर वे लोग अपनी महान् भूमिका सम्पादित कर मर्के। एमे ग्रमरुद्ध उदाहरण भारत व विदेशोंमें विद्यमान हैं जिनसे स्पष्ट है कि आध्यात्मिक क्षेत्र में, भावनात्मक उपनिदिग्यों में नारी का वर्चस्व प्रधान है और इसी के महयोग से नर का इस दिशा में महान् सफलता मिली है। गिरि की छानी पर शक्ति का खड़े होना इसी तथ्य का उदाहारण करता है कि अन्य क्षेत्रों में न सही कम से कम आत्मबन की हृषिट में तो नारी की गरिमा ग्रमदिग्द है ही।

भावी नव निर्माण निकट है। उम्ही भूमिका में नारी का योगदान प्रधान रहेगा। अगले ही दिनों कितनी ही तेजवान् नारियाँ अपनी महान् महिमा के माध्य वर्तमान केंचूल को उतार कर मार्वजिनक क्षेत्र में प्रवेश करणी और उनके द्वारा नव निर्माण अभियान का सफल सचालन सम्भव होगा। भावी समार में, नये युग में, हर क्षेत्र का नेतृत्व नारी करेगी। पुरुष ने सहस्रादिग्यों तक विश्व नेतृत्व अपने हाथ में रख कर अपनी अयोग्यता प्रमाणित कर दी। उसकी क्षमता विकासोन्मुख नहीं विनाशोन्मुख ही सिद्ध हुई। अब वह नेतृत्व उमके हाथ में छिन कर नारी के हाथ जा रहा है। हमें उममे बाधक नहीं सहायक बनना चाहिए। खिल्न नहीं प्रमुख होना चाहिए। विरोध नहीं स्वागत करना चाहिये। भावी एरिस्थितियों के ग्रनुकून हमें टलना चाहिये। इसी का

सकेत उस चित्रण मे सन्निहित है जिसमे महाकाल की छाती पर महाकाली को प्रतिष्ठापना प्रदर्शित की गई है ।

काली का श्याम वर्ण क्यो ? श्याम वर्ण उसोगुण का प्रतीक है । व्वस के सभी चिन्ह उसमे दिखाई देते हैं । मृत्यु का रङ्ग भी काला दिखाया जाना है । मृत्यु के देवता यमराज का शरीर भी श्याम वर्ण से चिन्तित किया जाता है । काले रग की यह विशेषता है कि उस पर कोई भी दूसरा रग नहीं चढ़ सकता और जब काला रग किसी वस्तु पर चढ़ जाता है तो वह उत्तरता भी नहीं । इसमें सभी तरह के रग समा जाते हैं और यह सभी पर अपना प्रभुत्व रखता है । प्रलय की स्थिति मे सारा जगत उसमें समा जाता है परन्तु उसमे कोई परिवर्तन नहीं होता ।

ऋग्वेद १।१६।४।४७ मे सूर्य को कृष्ण कहा गया है । ऋग्वेद १।३५।२ मे पृथ्वी को भी कृष्ण कहा है । वेदो मे आकर्षण शक्ति से मुक्त वस्तु को भी कृष्ण कहा गया है । ससार मे सबसे अधिक आकर्षक शक्ति सूर्य मे होती है । इस लिए उसे कृष्ण कहा गया है ।

जिन ग्रहों को सूर्य सञ्चलित करते हैं, उनको भी कृष्ण कहा गया है, क्योंकि उनमें भी आकर्षण शक्ति होती है । यदि उनमे यह शक्ति न होती तो वह नियमबद्ध रूप से सूर्य के चारों ओर न घूमते रहते । सूर्य उहें अपनी ओर खी च लेता और भस्म कर देता । इसीलिए पृथ्वी को भी कृष्ण कहा गया है ।

बाह्य जगत मे पृथ्वी सूर्य और उनके ग्रहादि विश्व की महान् शक्तियो के द्योतक हैं । अत काली का यह कृष्ण वर्ण शक्ति प्रतिष्ठा को चिन्तित करता है । कहते हैं—सृष्टि से पहले चारों ओर अन्वकार ही अन्वकार था । यह स्थिति भी काली की ही है ।

यह काली का रहस्यात्मक चित्रण है ।

काली पूजन विधि

तत्र कालोत्त्वे । कामत्रय वहिनस्थ रतिविन्दुविभूषितम् ।

कूर्म युगम तथा लज्जायुगल तदनन्तरम् ॥
 दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबोजानि चोच्चरेत्
 अन्ते वह्नि वधू दद्याद्विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता ॥
 मन्त्रवर्य माहया मले । ककारोज्जवलरूपत्वात्केवल मोक्ष-
 दायिनी । ज्वलनार्थं समायोगात्सर्वं तेजोमयी शुभा ॥
 मायात्रयेण देवेणि सृष्टिम्यत्यन्तकारिणी ।
 विन्दुना निष्कलत्वाच्च केवलयफल दायिनी ॥
 वाजत्रया शाम्भवी सा केवल ज्ञानचित्कला ।
 शब्दवीजद्वयेनैव शब्द राशिप्रबोधिनी ॥
 लज्जावीजद्वयेनैव सृष्टिम्यत्यन्तकारिणी ।
 सम्बोधनपदेनैव सदा सन्त्विकाणी ।
 स्वाहया जगता माता सर्वं पाप प्रणागिनी ॥

काली तन्त्र के अनुवार कानो का मन्त्र यह है—“क्री क्री क्री हूँ हूँ ही ही दक्षिणे कानिके क्री क्री क्रो हूँ हूँ ही ही स्वाहा ।” यह सब मन्त्रों में श्रेष्ठ मन्त्र है। इसके बर्णों का प्रभिप्राप्त इस प्रकार है—जल रूपी ककार मुक्ति का देने वाला है, ग्रन्ति रूपी रेख सर्वनेजो-मयी है। क्री क्रो क्रो—यह सूर्य, स्थिरता और प्रनाम के बोनक है। बिन्दु निष्कलन व्रज्य रूप है, अन यह कैलय प्रदान करता है। हूँ हूँ—शब्द ज्ञान प्रदान करते हैं। ही ही यह दोनों बीज मृजन, स्थिरता और प्रलय का प्रतिनिवित्त करते हैं। जद दक्षिण कालिके को सम्बोधन किया जाता है तो इसमें देवी की समीपता अभिप्रेत है। स्वाहा से विश्व के मातृ रूप का बोव होता है। यह सर्व पापों को हरने वाला है।

दक्षिण कानिका के ग्रन्थ मन्त्र इस प्रकार है—क्री एकाक्षर मन्त्र है। यह महामन्त्र सभी इच्छाग्रों को पूर्ण करने वाला है। ही हूमरा एकाक्षर मन्त्र है। इस मन्त्र से उपासना करने पर उपासक सब

शास्त्रों का ज्ञाता हो जाता है इन दोनों एकाक्षर मन्त्रों का पुरश्चरण एक लाख मन्त्र जप का है और दशाश हवन का विधान है। कुल चूडामणि तन्त्र के अनुमार दिन में एक लाख मन्त्र और रात में एक लाख मन्त्र जप का विधान है। रात्रिजप में दक्षिण कालिका की सिद्धि होती है।

काली तन्त्र में काली के अन्य मन्त्र भी लिखे हैं—

ओ ही ही हूँ हूँ क्री क्री दक्षिणे कालिके क्री क्री हूँ हूँ ही ही है।

इसका एक नाम का पुरश्चरण होता है और दशाश हवन। विश्वसार तन्त्र के अनुमार उपरोक्त मन्त्र में 'स्वाहा' मिलाने पर यह २३ अक्षर का मन्त्र ही जाता है। इस २३ अक्षर वाले मन्त्र में से जब प्रणव को अलग कर दिया जाता है तो यह २२ अक्षर का बन जाता है, यथा—

ही ही हूँ हूँ क्री क्री दक्षिणे कालिके क्री क्री हूँ हूँ ही ही स्वाहा।

'प्रणव' और स्वाहा हटा देने पर २० अक्षर का मन्त्र बन जाता है।

'ओ ही क्री मे स्वाहा' यह मन्त्रों का राजा विल्पयत है। इसका नाम काली हृदय है।

दिश्वसार तत्र में कुछ और मन्त्रों का निर्देश है—

'क्री ही ही' यह महाकाली का महामन्त्र है जिसको स्वयं महाकाली ने कहा है।

क्री क्री क्री स्वाहा।

क्री क्री क्री फट् स्वाहा।

ए नम क्री ए नम क्री कलिकायै स्वाहा।

क्री क्री क्री ही दक्षिणे कालिके स्वाहा।

क्री हूँ ही दक्षिण कालिके फट् ।

क्री क्री हूँ ह ही ही दक्षिण कालिके क्री क्री ह ह हो हो स्वाह ।

क्री क्री क्री हूँ ह ही ही स्वाह ।

क्री दक्षिण कालिके स्वाह ।

क्री हूँ हूँ ही क्री है है हो स्वाहा ।

क्री क्री हूँ हूँ ही ही क्री क्री है है हो हो स्वाहा ।

क्री क्री ही ही हूँ है क्री क्री ही ही हो है स्वाहा ।

नम ए क्री क्री कलिकार्य स्वाह ।

नम आं आं क्री क्री फट् स्वाहा कलिके ह ।

क्री क्री क्री स्वाहा ।

क्री क्री क्री क्री स्वाहा ।

ए नम क्री क्री कलिकार्य स्वाहा ।

क्री ही ही दक्षिणे कालिके स्वाहा ।

क्री हूँ ही दक्षिणे कालिके फट्

क्री क्री हूँ हूँ ही ही दक्षिणे कलिके क्री क्री है है ही ही स्वाहा ।

की स्वाहा ।

क्री हूँ ही स्वाहा ।

क्री क्री क्री हूँ ही ही स्वाहा ।

क्री दक्षिणे कालिके स्वाहा ।

क्री हूँ ही क्री हूँ ही स्वाहा ।

क्री क्री है है ही ही क्री क्री है है ही हो हो स्वाहा ।

क्री क्री है है ही ही क्री क्री है है ही ही ही ही स्वाहा ।

मायातन्त्र मे यह मन्त्र निम्बा है—
नम ए की की कलिकाये स्वाहा ।

तन्त्रान्तर मे यह मन्त्र है—

नम आँ काँ आ को फट् स्वाहा कालि कालिके हूँ ।

स्वास

ऋष्यादि न्यास-

गिरसि महाकाल् भैरव ऋषये नम (दाँये श गूठे से)
मुखे उष्णिक् छन्दसे नम (मध्यमा अनामिका मे)
हृदये व्री दक्षिणकालिकादेवताय (नम त० प० अनामिका
कनिष्ठा से) ।

गुह्ये क वीजाय नम (तत्वमुद्रा से)
सर्वज्ञे र कीलकाय नम (करतलद्वय से)

करन्त्यास-

का अ गुष्टाम्या नम , की तर्जनीम्या स्वाहा,
क मध्यमाम्या वपट् , क अनामिका भ्या हुँ ।
कौं कनिष्ठाम्या वौषट् , क. करतलकरप्रष्टाम्या फट् ।

षड्जान्यास-

का हृदयाय नम. (अनामिका मध्यमा तर्जनी से)

की गिरसे स्वाहा „ „ „ „

कू शिखायं वपट् (मूठी वाघकर अगूठे से)

कै कवचाय हुँ (दोनों करतलों से)

कौं नेत्रव्रयाय वौषट् (तर्जनी मध्यमा, अनामिका से)।

क अस्त्राय फट् (दक्ष तर्जनी मध्यमा से वायी हयेलीमे फट्-
कार कर) ।

व्यापक न्यास

इस मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए ३, ५, ७ वार शिर मे पैर तक और फिर पैर मे शिर तक करे ।

अतिमातृका न्यास

धूम्राम विशुद्ध चक्र के १६ दलो मे १६ स्वरो के आदि मे 'ओ' और अन्त मे नम मिलाकर हर दल मे न्यास करना चाहिये । यथा 'ओ आ नम' आदि मूँगे की तरह लाल रङ्ग के अनाहत चक्र के १२ दलो मे 'क' से लेकर 'ख' तक के १२ व्यञ्जनो को उसी तरह एक व्यञ्जन का एक एक दल मे न्यास करना चाहिए । नील जीमूत वर्ण के मणिपूर चक्र के १० दलो मे 'ड' से 'फ' तक के १० घ्रस्तरो का पहले की तरह न्यास करना चाहिए । वियत् की तरह रग वाले स्वाधिष्ठान चक्र के ६ दलो मे 'द' से 'ल' तक ६ वर्णो का पहले की तरह न्यास करे । सोने की तरह लाल रग के मूलाधार चक्र का पहले की तरह न्यास करे । च द्रमा की तरह रग वाले आज्ञाचक्र के दोनो दलो मे 'ह' और 'ष' वर्णो का पहले की तरह न्यास करना चाहिए ।

बहिमर्तुका न्यास

सृष्टि, स्थिति आर सहार इसके तीन भेद है । यामल मे लिखा है कि गृहस्थो के लिए स्थिरता, ब्रह्मचारियो के लिए मिथ्यत्वा और यतो व वाणप्रस्थो के लिए सहारात्ता है ।

सृष्टि मातृका न्यास

मानसिक रूप से पुष्पो द्वारा तत्त्वमुद्वा और नीचे लिखी मातृका मुद्राओ से न्यास करना चाहिए ।

ओ ग्र नम - ललाट- अनामा ।

ओ आ नम,- मुखमण्डल-मध्यमा ।

ओ इ नम्, ओ ई नम् - दोनो नेत्र - तजनी - मध्यमा-
अनामा - वृद्धा, ओ उ नम् ओ ऊ नम् - दोनो कर्ण -
अगुष्ठ, ओ ऋ नम्, ओ ऋ नम्, - दोनो नासापुट - कनि-
ष्ठागुष्ठ, ओ लू नम्, ओ लू नम् - दोनो गाल - दोनो
मध्यागुलिया, ओ ए नम्, ओ ए नम्, । दोनो होठ मध्यमा
अनामा से ओ ओ नम्, ओ ओ नम् - दोनो दन्तपत्तियाँ,
ओ अ नम्, ओ अ नम् - जिह्वा और तालुमूल - (ब्रह्मारन्ध)
ओ क नम् - दक्षिण वाहूमूल, ओ र नम् - कूपंर (कुहनी),
ओ ग नम् - मणिवध (कलाई) ओ घ नम्, - अ गुलि - मूल,
ओ ड नम् - अ गुलि अग्र - मध्यमा । इसी प्रकार मध्यमा
से ओ च नम्, ओ छ नम्, ओ ज नम्, ओ झ नम्, ओ ङ्ग
नम् - वामवाहूमूल, कूपंर, मणिवध, अ गुलिमूल और
अ गुल्यग्र मे, ओ ट नम्, ओ ठ नम्, ओ ड नम्, ओ ढ नम्,
ओ ण नम् - दक्षिण पादमूल, जानु, गुल्फ और अ गुलियो
के मूल और अग्रभाग मे, ओ न नम्. - वामपाद मूले, जानु,
गुल्फ और - अ गुलियो अग्रभाग मे, दक्षपाश्व मे ओ पं नम
वामपाश्व मे ओ फ नम् । ओ व नम् - पृष्ठ मे - मध्यमा
अनामा और कनिष्ठा तीनो से, ओ भ नम् - नभि तजनी
छोड चारो अगुलिया से, ओ म नम् - पेट पांचो अगुलियो
हस्ततल से ओ यं नम् - हृदय ओ र नम् - दक्षवाहूमूल,
ओ ल नम् - ककुत - स्थल, ओ व नम् - वाम वाहूमूल,
ओ श नम् - हृदय से लेकर दाहिने हाथ तक, ओ य नम् -
हृदय से वाम कर पर्यन्त, ओ स नम् । हृदय से दक्ष पाद
पर्यन्त ओ ह नम् - हृदय से वाम पादपर्यन्त, ओ ल नम् -
हृदय से नाभिपर्यन्त, ओ क्ष नम्, - हृदय से मुख - पर्यन्त ।

२- स्थिति मातृका न्यास-

पहले की तरह ऋष्यादि कराङ्गन्यास कर मिति-मातृका सुरस्वती का इस तरह ध्यान करना चाहिए—

सिन्दूर कान्ति ममिताभरण त्रिनेत्रा ।

विद्याक्षसूत्रमृगपोतवर दधानाम् ॥

पाश्वस्थिता भगवतीमपि काञ्चनाङ्गी ।

व्यायेत् करावजधृत पुस्तक वर्णमालाम् ॥

'इ' से 'अ' तक और फिर 'अ' से 'ठ' तक न्यास करे ।

३, मंहार-मातृका न्यास-

पूर्व वर्णित श्रूष्यादि कराङ्गन्यास करके मंहार मातृका एरम्बनी का इस तरह ध्यान करना चाहिए—

अद्धन्त्रज हरिगणपोतमुदग्रटक ।

विद्या करेंगविरत दधती त्रिनेत्राम् ॥

अद्धन्दुमौलिमरुणामरविन्दुवासा ।

वर्णश्वरी प्रणमतस्तनभारतम्राम् ॥

'क्ष' से न्यास शुरू करके 'अ' तक विलोम क्रम से जब न्यास किया जाता है तो वह सहार मातृका न्यास कहलाता है ।

कला-मातृका न्यास-

४० अस्य श्री कलामातृकान्यासस्य प्रजापतिऋषि गायत्रे छन्द श्री शारदा देवता जपाङ्गत्वे (पूजाङ्गत्वे) विनियोग गिरसि प्रजापतिऋषये नम ।

मुखे गायत्री छन्दसे नम ।

हृदि श्री शारदा देवतार्थं नम ।

अ ओ आ अगुष्ठास्या नम ऊ ओ ष्ट अनामिकाभ्या नम ।

इ ओ इं तजनीम्या नम लू ओ लू कनिष्ठाम्या नम
उ ओ ऊ मध्यमाम्या नम् अ ओ अ करतलपृष्ठाम्या नम्.

इसी तरह षडङ्ग न्यास कर ध्यान करना चाहिए । यथा—

हस्तं पद्म रथाङ्ग गुणमय हरिण पुस्तक वर्ण माला टङ्क
शुभ्र कपाल दरममृतलसद्ब्रेमकुम्भ वहन्तीम् ॥
मुक्ता विद्युत्पयोदस्फटिकनवजवावन्धुरे, पञ्चवक्त्रैस्यक्षर्व-
क्षोजनम्भा सकलशशिनिभा शारदा ता नमामि ॥

ओ अ निवृत्ये नम ।

ओ आ प्रतिष्ठाये नम ।

ओ इं विद्याये नम ।

ओ इं शान्त्ये नम ।

ओ उ इत्थिकाये नम ।

ओ ऊ दीपिकाये नम ।

ओं ऋं रेचिकाये नम ।

ओ ऋं मोचिकाये नम ।

ओ लूं पराये नम ।

ओ लूं सूक्ष्माये नम ।

ओ ए सूक्ष्मामृताये नम ।

ओ ऐ ज्ञानमृताये नम ।

ओ ओ आप्यायिन्ये नम ।

ओ औ व्यापिन्ये नम ।

ओ अ व्योमरूपाये नम ।

ओ अनन्ताये नम ।

ओ क सृष्ट्ये नम ।

ओं ख ऋद्धर्ये नम ।

ओ ग स्मृत्ये नम ।

श्रो घ मेत्रायै नम् ।
 श्रो ड कान्त्यै नम् ।
 श्रो च लक्ष्मयै नम् ।
 श्रो छ द्युत्यै नम् ।
 श्रो ज स्थिरायै नम् ।
 श्रो झ स्थित्यै नमः ।
 श्रो ञ सिद्धयै नमः ।
 श्रो ट जरायै नम् ।
 श्रो ठ पालिन्यै नम् ।
 श्रो ड गान्त्यै नम् ।
 श्रो ढ ऐश्वर्यै नम् ।
 श्रो ण रत्यै नम् ।
 श्रो त कामिकायै नम् ।
 श्रो थ वरदायै नमः ।
 श्रो द ह्लादिन्यै नम् ।
 श्रो ध प्रीत्यै नम् ।
 श्रो न दीघर्यै नम् ।
 श्रो प तीक्षण्यै नम् ।
 श्रो फ रौद्रियै नमः ।
 श्रो व भयायै नमः ।
 श्री भ निद्रायै नम् ।
 श्रो म तन्द्रायै नम् ।
 श्रो य क्षुष्रायै नम् ।
 श्रो र क्रोधिन्यै नमः ।
 श्रो ल कियायै नम् ।

ओ श मृत्यवे नम ।
 ओ ष पीतायै नम ।
 ओ स श्वेतायै नम ।
 ओ ह अरुणायै नम ।
 ओ ल असितायै नम ।
 ओ क्ष अनन्तायै नम ।

श्रीकण्ठादिमातृकान्यास-

ओ अस्य थी कण्ठादिमातृकान्तासस्य दक्षिणामूर्ति-
 ऋषि गायत्रो छन्द, थीअर्धनारीश्वरो देवता हलो-
 वीजानि स्वरा शक्तय अव्यक्तय कीलकानि पूजाङ्गत्वे
 (जपाङ्गत्वे) विनियोग ।
 दक्षिणा मूर्ति ऋपये नम शिरसि ।
 गायत्री छन्द से नम, मुखे ।
 अर्धनारीश्वरदेवतायै नम, हृदये ।
 हलो वीजेभ्यो नम गुह्ये ।
 स्वरेभ्य शक्तिभ्यो नम, पादयो ।
 अव्यक्तेभ्य कीलकेभ्यो नम सर्वाङ्गे ।
 अ क ख ग घ ङ आ हसा अगुष्ठाभ्या नम ।
 इ च छ ज झ ञ ई हसी तर्जनोभ्याँ नम ।
 उ ट ठ ड ढ ण ओ हम मध्यमाभ्या नम ।
 ए त थ द ध न ए हसौ अनामिकाभ्या नम, ।
 ओ प फ व भ म हसौं कनिष्ठाभ्या नम ।
 अ य र ल व अ हस करतलपृष्ठाभ्या नम ।

इसी तरह हृदयादि ६ श्रगों मे न्यास कर ध्यान करना चाहिए—
 वन्धुककाङ्चननिभ रुचिराक्षमाला

पागा कुशी च वरद निजबाहुदण्डे ।

विभ्राणमिन्दुशकलाभरण त्रिनेत्र

मध्दमिंबकेशमनिग वपुराश्रयाम ॥

अब नीचे लिखे मन्त्रो से श्रीकण्ठादि न्यास करे । हर मन्त्र के आरम्भ मे हपी' प्रौ अन्त मे नम जोडना चाहिए । यथा—

हसौ, अ कण्ठेगपूर्णोदरीभ्या नम । आ श्री अनन्तेशविरजाभ्या नम । इ सूक्ष्मेश जालीभ्या ।

इं त्रिमूर्तीशलोलाक्षोभ्या । उ अमरेशवर्तुलाक्षीभ्या ।

ऊ अर्धीशदीघधोणाभ्या । ऋ भारभूतीशदीघमुखीभ्या ।

ऋ अतिथिशगोमुखीभ्या । लृ स्थारवीशदीघजिह्वाभ्या,

लृ हरेशकुण्डोदरीभ्या । ए भिष्टीशऊद्धवकेशीभ्या ए

भौतिकेशविकृतमुखीभ्या । ओ सद्योजातेश उवालामुखीभ्या

ओ अनुग्रहेशउल्कामुखीभ्या । अ अकूडेश श्री मुखीभ्या ।

अ महासेनेश विद्यामुखीभ्या । क कपीशमहाकालीभ्या ।

ख चण्डेश सरस्वतीभ्या ।

ग पञ्चान्तकेश गौरीभ्या ।

घ शिवेश त्रैलोक्य विद्याभ्या ।

ड एक रुद्रेश मन्त्रशक्तिभ्या ।

च कूमेश अष्ट शक्तिभ्या ।

छ एक नेत्रेशभूत मातृभ्या ।

ज चतुराननेशलम्बोदरीभ्या ।

झ अजेशद्राविणीभ्या ।

ञ सर्वेशनागरीभ्या ।

ट सोमेखेवरीभ्या ।

ठ लाङ्गलीशमङ्गरीभ्या ।

ड दक्ष केश कपिलीभ्या ।
 ढ अर्धनारीशवोरिणीभ्या ।
 ण उमा कान्तेश का कोदरीभ्या ।
 त श्राष्टाढीश पूतनाभ्या ।
 थ दण्डीश भद्रकालीभ्या ।
 द अत्रीशयोगिनीभ्या ।
 घ मीनेश शखिनीभ्या ।
 न मेषेश तर्जनीभ्या ।
 प लोहितेश कालिरात्रिभ्या ।
 फ शिखीश कुबिजकाभ्या ।
 ब छगलण्ड कपर्दिनोभ्या ।
 म महाकालेश जयाभ्या ।
 य वार्णीश सुमुखीश्वरीभ्या ।
 र भुजगेशरेवतीभ्या ।
 ल पिनाकीश माघवीभ्या ।
 व खड्गीश वारुणीभ्या ।
 श वकेश वायवीभ्या ।
 ष श्वेतेशर क्षोविधरिणीभ्या ।
 स भृगवीशसह जाभ्या ।
 ह नकुलीश लक्ष्मीभ्या ।
 ल शिवे शब्दापिनीभ्या ।
 क्ष सम्वर्तकेश महामाभ्या नम ।

वर्ण न्यास

निम्न न्यास तन्त्र मुद्रा से यथोक्त स्थानों में करें—

ओ अ आ इ इं उ ऊ ऋ ऋ लू लू नम- हृदय
Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MA

ओ ए ए ओ ओ अ अ क ख ग घ नम.
ओ ड च छ ज झ ज ट ठ ड ढ नम
ओ रा त थ द ध न प फ ब भ नम
ओ म य र ल व श प स ह थ नम

दक्ष भुजा
वाम भुजा
दक्ष जङ्घा
वाम जङ्घा

घोढ़ा न्यास

- १ ओ से पुटित मातृका और मातृका-पुटित प्रण मावृका
- २ लक्ष्मी बीज-पुटित मातृका और मातृका-पुटित लक्ष्मीबीज
- ६ कामबीज-पुटित मातृका और मातृका-पुटित कामबीज ।
- ४ माया बीज पुटित मातृका और मातृका-पुटित मायाबीज
- ५ काली बीज द्वय (क्री क्री) पुटित ‘ऋ ऋ लू लू और
ऋ ऋ लू लू’ पुटित कालीबीजद्वय ।
- ६ मूल-पुटित मातृका और मातृका-पुटित मूलबीज (क्री)

इनसे प्रत्युलोम और विलोम क्रम से तत्त्व मुद्रा मातृका न्यास के सब स्थानों में न्यास कर लेने पर मूल्य से १०८ बार व्यापक न्यास करना चाहिए ।

तत्त्व न्यास

मूल मन्त्र ‘क्री’ होने पर उसके ३ भाग करने चाहिए-क, र, ई । विद्याराज्ञी होने पर आरम्भ के ७ बीजों का पतला भाग (क्री क्री हूँ ही ही) मध्य खण्ड के ६ प्रक्षरो (दक्षिण कालिके) का और तीसरे खण्ड (क्री क्री हूँ ही ही ही स्वाहा) ती वर्णों का करना चाहिए । इन विभागों से सिर से नाभि तक, नाभि से हृदय तक और हृदय से सिर तक न्यास करना चाहिए ।

बीज न्यास

क्री नम न्रह्मरभ मे ।

क्री नम भ्रूयुगल मे ।
 क्री नम ललाट मे ।
 हूँ नम गुह्य मे ।
 हूँ नम. नाभि मे ।
 हूँ नमः मुख मे ।
 ही नम. सर्वाङ्गि मे ।

विद्यान्यास

सिर—क्री नम ,
 मूलाधार—क्री नम ,
 हृदय—क्री नम.,
 तीनो नेत्र—क्री नम ,
 दोनो कान—क्री नम ,
 मुख—क्री नम
 दोनो भुजा—क्री नम,
 पीठ—क्री नम ,
 दोनो जानु—क्री नम ,
 और नाभि—क्री नम ,

लघुषोद्धा न्यास

मस्तक—ओ नम ,
 मूलाधार—स्त्री नम ,
 लिंग—ए नम ,
 नाभि—क्री नम.,
 हृदय—ए नम ,
 कण्ठ—क्री नम .

भूमध्य—हसौ नम ,
दाहिनी वाहु—श्रो नम ,
वाम वाहु—श्री नम ,
दक्ष पाद—ह्री नम ,
वाम पाद—क्री नम ,
पीठ—क्री नम ,

पीठ न्यास

हृदय से तत्त्व मुद्रा से—श्रो ह्री श्राधार शक्तिरे नम ।
प प्रकृत्यै नम ,
क कूर्माय नम ,
घ गेपाय नम ,
त प्रथिव्यै नम ,
श्रो सुधाम्बुद्ध्ये नमः,
श्रो मणिद्वी पाय नमः,
श्रो चिन्ता मणिगृहाय नम,,
श्रो इमग्रानाय नम ,
श्रो पारिजाताय नम,,
श्रो रत्नवेदिकायै नम ,
श्रो नाना मुनिन्यो नम ,
श्रो नाना देवेन्यो नमः,
श्रो घर्मायि नम - दार्या कन्धा,
श्रो ज्ञानाय नम - चाया कन्धा,
श्रो वंराग्याय नम - दाहिनी कमर.
श्रो ऐश्वर्यायि नम, - वाई कमर,
श्रो ग्रवर्मायि नम - मुख,

ओ अज्ञानाय नम् — बाँया भाग,

ओ अवैराग्याय नम् — नाभि,

ओ अनेश्वर्यीय नम् — दाहिना भाग ।

इसके बाद षोडश दल के कमल की कर्णिका मे -

ओ आनन्दकन्दाय नम् ।

ओ अनन्ताय नम् ।

ओ पद्माय नम् ।

ओ अर्कमण्डलाय द्वादश कलात्मने नम् ।

ओ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नम् ।

ओ म वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नम् ।

ओ त तमसे नम् ।

ओ आ आत्मने नम् ।

ओ अन्तरात्मने नम् ।

ओ प परमात्मने नम् ।

ओ ह्री ज्ञानात्मने नम् ।

इसके बाद अष्टदलो पर पूव से - इ इच्छाशक्तयै नम्,,

ज्ञा ज्ञानशक्तयै नम् ,

क क्रियाशक्तयै नम् ,

क कामित्यै नम् ,

का कामदायै नम् ,

र रत्यै नम्,,

र रतिप्रियायै नम् ,

आ आनन्दायै नम् ।

कर्णिका पर - म मनोन्मत्यै नम् ।

उसके बाद ए परायै नम् ।

हर्सी प्रपराये नम ।

सदाशिव - महाप्रेतपच्चासनाय नमः ।

पूजा मन्त्र

आदी त्रिकोणमालिख्य त्रिकोण तद्बहिर्लिखेत् ।

ततो वै विलिखेन्मत्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ॥

ततो वृत्त समालिख्य लिखेदष्टदल तत

वृत्त विलिख्य विधिवत् लिखेदभूपूरमेककम् ।

मध्ये तु वेन्द्रव चक्र बीज मामा विभूषितम् ॥

“प्रथम विन्दु, फिर निज बीज की फिर भुवनेश्वरी बीज ‘ह्री’ लिखे और इसके बाहर त्रिकोण और उसके भी बाहर तीन त्रिकोण बना कर फिर अष्टदल पद्म और फिर वृत्त बनावे । उसके बाहर चतुद्वार बनावे । यही काली पूजा का यन्त्र कहा गया है” ।

जप

लक्ष्मेक जपेद्विद्या हविष्याशी दिवा शुचि ।

ततस्तु तदशाशेन होमपेद्विपा प्रिये ॥

पूजन के मन्त्र में मूल मन्त्र का एक लाख बार जाप करे और जप के दशाश घृत की आहुति दे ।

ध्यान

करालवदना धोरा मुक्तकेशी चतुर्भुजाम् ।

कालिका दक्षिणा दिव्या मुण्डमालाविभूषिताम् ।

सद्यश्छिन्नशिर खड्गवामाधोद्धकराम्बुजाम् ।

अभय वरदञ्चं व दक्षिणाधोद्धणाणिकाम् ॥

महामेघप्रभा श्यामा तथा चंद्र दिग्म्बरीम् ।

कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरच्चिताम् ॥
 कण्ठवितसतानीतजवयुग्मभयानकाम् ।
 घोरदष्टाकरालास्यां पीनोन्ततपयोधराम् ॥
 शवाना करसधातै कृतकाङ्गची हसन्मुखीम् ।
 मृक्कच्छगटागलद्रक्तधाराविस्फूरिताननाम् ।
 घोररावां महारीद्रीं इमशानालयवासिनीम् ।
 वालाकमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम् ॥
 दन्तुरा दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम् ।
 अवरूपमहादेवहृदयोपरि सम्प्रिताम् ॥
 शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ।
 महाकालेन च सम विपरीतरतातुराम् ॥
 सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम् ।
 एव सचिन्नयेत् काली सर्वकामसमृद्धिदाम् ॥

“भगवती कानी दबी करालवदना, घोरा, मुक्तकेशी, चार भुजावाली एव मुड़ोंकी माला से सुशोभित हैं। उनके बाए श्रग के दोनों हाथों में तत्त्वाल छेदित मृतक का शीश और खड़ हैं तथा दाँए श्रग के दोनों हाथों में श्रभ्य और वरमुद्रा स्थित हैं कण्ठ में मुण्डों की माला से युक्त वह देवी महामेघ के ममान इयाम वर्ण, दिग्म्बरा काली टपकते हुए नविर में चचिन, घोर दष्टा, पीन पयोधरा, दोनों कानों से लटके दो मृतक-मुण्ड अन कार द्वय से सुशोभित, कटि में मृतक-हाथों की कोघनी वाली, हास्यमुखी हैं। उनके ग्रोष्ठ द्वय से रुद्धिर धारा टपकने के कारण कम्पित मुख वाली घोर शब्द वाली, महरीद्री एव इमशान में निवास करने वाली हैं। तरण ग्रहण के समान उनके तीनों नेत्र, बड़े-बड़े दात और लम्बे-नम्बे त्रान हैं। वह मृतक नुत्य मदाशिव के हृदय पर विन है। घोर रव वाली गोदडी उनके चारों ओर धूमती हैं। महाकालके साथ

विषयीत व्यापार मे निमग्न वह देवी प्रमनमुखी एव सकल कार्यों के करने वाली है। ऐसा चिन्तन करे'

काली कवच

काली पूजा थ्रुता नाथ भावाश्च विविध प्रभो ।
डदानीं श्रोतुमिच्छामि कवच पूर्वसूचितम् ॥
त्वमेव शरण नाथ त्राहि मा दुखसङ्कटात् ।
त्वमेव स्थष्टा पाता च सहर्ता च त्वमेव हि ॥

मेरकी बोली- "प्रभो । काली-पूजन और उमके विविध भाव तो मैने सुने, अब उनके कवच को मुनना चाहती हूँ । याप उमका वर्णन कर मेरे दुख दूर कीजिए । हे नाथ ! तुम ही मेरे आश्रय हो । तुम ही रक्षा और महार करते हो" । १।

रहस्य शृणु वक्ष्यामि भैरवि प्राणवत्त्वमे ।
श्रीजनन्मगल नाम कवच मत्रविग्रहम् ।
पठित्व घरयित्वा चत्रैलोक्य मोसयेत् क्षणात् । २।

भैरव बोले- "हे प्रिये । मैं तुम्हारे प्रति श्री जगन्मगल नामक कवच को कहता हूँ । इसका पाठ करने अथवा इसे धारण करने से नाघक तीनों लोकों को शीघ्र ही मोहित कर सकता है" । २।

नारायणऽपि यद्यधृत्वा नारी भूत्वामहेश्वरम् ।
योगेश क्षीभमनयद्यद्वत्वा च रघूद्वह ।
वरदृप्तान् जघानैव रावणादिनिशाचरान् ॥

"भगवान् नारायण ने इसे धारण किया और नारी रूपसे योगेश्वर शकर को मोहित कर लिया तथा श्रीराम ने जब इसे धारण किया तो इसकी शक्ति से रावण आदि घोर राक्षसों को नष्ट कर डाला" । ३।

यस्य प्रसादादीशोऽहं त्रैलोक्यविजयी प्रभु ।

घनाधिप कुवेरोऽपि सुरेशोऽभूच्छ चीपति ।
एव सकला देवा सर्वसिद्धीश्वरा, प्रिये ।४।

“मैं भी इसी से वैलोक्य विजयी हुग्रा हूँ। इसी की कृपा से कुवेर घन के अधिपति हुए और शचिपति देवेन्द्र तथा सभी देवताओं ने इसी कबच के प्रसाद से सर्व सिद्धियों को प्राप्त किया” ।४।

श्रीजगन्मङ्गलास्यास्य कवचस्य ऋषि शिशब ।
छन्दोऽष्टु बदेवता च कालिका दक्षिणेरिता ।
जगता मोहने दुष्टानिग्रहे भुक्तिमुक्तिपु ।
योषिदाकपणे चैव विनियोग प्रकीर्तित, ।५।

“इस कबच के ऋषि शिश, छन्द अनुष्टुप्, देवता दक्षिण कालिका, मोहन, दुष्ट-निग्रह, भुक्ति मुक्ति तथा योषिदाकपण में इसका विनियोग है” ।५।

शिरो मे कालिका पातु कीच्छारंकाक्षरी परा ।
की की की मे ललाटच्च कालिका खङ्ग धारिणी ॥
ह ह पातु नेत्रयुग्म ही ही पातु श्रूती मम ।
दक्षिणा कालिका पातु ब्राणयुग्म महेश्वरी ॥
की की की रसना पातु ह ह पातु कपोलकम् ।
वदना सकल पातु हरी हरी स्वरूपिणी ।६।

“कालिका और कीकारा मेरे शिर की, की की और खङ्ग धारिणी कालिका मेरे ललाट की, हु हु दोनों नेत्र की, हरी हरी कानों की, दक्षिण कालिका दोनों ब्राण की की की की रसना की, हु हु कपोल की और हनी हनी स्वाहा स्वरूपिणी मेरे मम्पूर्ण वदन की रक्षा करें” ।३।

द्वाविशत्यक्षरी न्कन्वी महाविद्या सुखप्रदा ।
खङ्गमुण्डवरा काली सर्वाङ्गमभितोऽवतु ॥

कीहु ही व्यक्षरी पातु चामुण्डा हृदय मम ।

ऐ हु ओऐ स्तद्वन्द्वन ही फट् स्वाहा ककुत्स्यलम् ॥

अष्टाक्षरी महाविद्या भुजौ पातु सकृत्तका ।

कीकीहु हृ हीही करो पातु पडक्षरी मम । ७।

“बाईस मक्षरी विद्या रूपिणी महा विद्या दोनो कधो की, खङ्ग
मुण्ड वारण करने वाली काली सर्वांग की, हृ ही चामुण्डा हृदय की,
ऐ हु ओ ऐ दोनो स्तन की, ही फट् स्वाहा कन्वो की’ अष्टाक्षरी
महाविद्या दोनो भुजाओ ची तथा क्री आदि पडक्षरी विद्या मेरे दोनो
हाथो की रक्षा करे’ । ७।

की नाभि मध्यदेगञ्च दक्षिणा कालिकाऽवतु ।

की स्वाहा पातु पृष्ठन्तु कालिका सा दशाक्षरी ॥

ही की दक्षिणे कलिके हुँ ही पातु कटीद्वयम् ।

काली दशाक्षरी विद्या स्वाहा पातूरुयुगमकाभ् ॥

ओ ह्रां की मे स्वाहा पातु कालिका जानुनी मम । ८।

काली हृन्नाम विद्य य चतुर्वर्ग फलप्रदा । ८।

“की नाभि देश की, दक्षिणा कालिका मध्य देश की, की
स्वाहा और दशाक्षरी मन्त्र पीठ की, ह्री की दक्षिणे कलिके हु ही कटि
की, दशाक्षरी विद्या ऊस की तथा ओ ही की स्वाहा मेरे जानु प्रदेश
की रक्षा करें। यह विद्या चारों वर्गों को फल देने वाली है।” । ८।

की ही ही पातु गुल्फ दक्षिणे कालिकेऽवतु ।

की ही ही स्वाहा पद पातु चतुर्दशाक्षरी मम ॥

“की ही ही गुल्फ की, की ह ही स्वाहा पांच की एव चतु-
दशाक्षरी विद्या मेरी रक्षा करे, । ९।

खङ्गमुण्डधरा काली वरदा भय वारिणी ।

विद्याभि सकलाभि सा सर्वाङ्गमभितोऽवतु ॥

“खङ्ग मुण्ड धारण करने वाली, वरदायिनी, भय हारिणी भगवती काली अपनी सम्पूर्ण विद्याश्रो सहित मेरे सर्व शरीर की रक्षा करें” । १०।

काली कपालिनी कुल्वा कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
 विप्रचित्ता तथोग्रोग्रभा दीप्ता घनत्विष ॥
 नीला धना वालिका च माता मुद्रामिता च मास् ॥
 एता सर्वा खङ्गधरा मुण्डमालाविभूषिता ॥
 रक्षन्तु मा दिक्षु देवी ब्राह्मी नारायणी तथा ।
 माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता ॥
 वाराही नारसिंही च सर्वशिवामितभूषणा ।
 रक्षन्तु स्वायुधैदिक्षु मा विदिक्षु तथा तथा । ११।

“काली, कपालिनी, विप्रचित्ता, उग्रप्रभावाली, नीला, धना, वालिका, माता, खङ्ग धारिणी, मुण्डमाला विभूषिनी यह सब रूप वाली देवी, ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही, नारसिंही यह सब अमित घाभूषणों के धारण करने वाली भगवती मेरे दिक्षु, विदिक्षु की सर्वत्र रक्षा करें” । ११।

इत्येव कथित दिघ्य कवच परमादभुतम् ।
 श्रीजगन्मगल नाम महामन्त्रोघविग्रहम् ॥
 त्रैलोक्याकर्षण ब्रह्मकवच मन्मुखोदितम् ।
 गुरुपूजा विधायाथ गृह्णीयात् कवच तत ।
 कवच श्रि सकृद्वापि यावज्जीवञ्च वा पुन । १२।

“यह जगन्मल महा म श वाला कवच अद्भुत और परम दिघ्य कहा गया है। इसके द्वारा तीनो भुवन आमंपित हो सकते हैं। गुरु-पूजा के पश्चात् कवच को ग्रहण करे। इस कवच का एक बार, तीन बार अष्टवा जीवन पर्यंत पाठ करे” । १२।

एतच्छाताद्र्मावृत्य त्रैलोक्य विजयी भवेत् ।
त्रैलोक्य क्षोभयत्येव कवचस्य प्रसादत् ।
महाकविभवेन्मासात् सवसिद्धीश्वरो भवेत् । १३।

“इसके पचास बार पाठ करने से तीन लोक वश में हो सकते हैं । इसके प्रसाद से विभुवन क्षोभित हो सकता है और इसी कवचके पाठ प्रताप से सावक एक महीने में ही सर्व मिद्धियों का अधीश्वर होने में समर्थ होता है” । १३।

पृष्पाञ्जलीन् कालिकायै मूले नैव पठेत् सकृत् ।
गतवर्यमहम्नागा पूजाया फलमन्तुयात् । १४।

‘‘मथ जप के द्वारा काली को पृष्पाजलि भेट करे और यदि केवल एक बार इस कवच का पाठ करे तो सौ हजार वर्षों पूजा के समान ही माधक को फल की प्राप्ति होती है’’ । १४।

भूजर्ज विलिखिनञ्चैव स्वर्गेस्य धारयेद्यदि ।
शिखाया दक्षिणो वाहा कण्ठे वा धारयेद्यदि ।
त्रैलोक्य मोहयेत् क्रोधात् त्रैलोक्य चूर्णयेत्क्षणात् ।
वद्वपत्या जीववत्सा भवत्येव न सशय । १५।

“इम कवच को मोज पत्र या मोने के पत्र पर लिख कर शीश पर, दाहिनी भुजा पर या कराठ में बारण कर तो तीनों भुवनों को मोहित कर ले अथवा क्रीधावेश में उसे चूर्ण करने में भी समर्थ हो सकता है । स्त्री यदि इम कवच का पाठ करे तो वह मन्तानवती तथा जीवित चन्द्र हो सकती हैं, इसमें सशय नहीं है” । १५।

दस महाविद्याएँ

विद्या की परिभाषा

श्रुति से कहा है—

‘सा विद्या या विमुच्येय’

‘विद्या उसे कहते हैं जिससे मोक्ष की उपलब्धि हो ।’

‘अपृत् तु विद्या’

“विद्या अमृत है ।”

‘विद्या शक्ति समस्ताना शक्तिरित्यभिधीयते ।’

‘विद्या समस्तों की शक्ति होती है प्रतएव उसे शक्ति—इस नाम से कहा जाता है ।’

विद्यते देशकालानवच्छिन्नत्वेन वर्तते या सा विद्या ।

“देश और काल के अविच्छिन्न होने से ज्ञो मदा और सर्वविद्यमान रहती है उसे ही विद्या कहते हैं । देश-काल उमका वाघक नहीं है ।

ग्राचार्य शान्तनु के अनुसार—

वेदान्तोद्भावनीय परब्रह्मतत्त्वावगतिव्यप साकात्कार-
लक्षण विद्या ।

“वेदान्त के द्वारा उद्भव न करने योग्य परब्रह्म तत् का ज्ञान स्वप्न जो माक्षात्कार के लकण वाली है, वही विद्या है।”

पराशक्ति स्वयं ब्रह्म का प्रकाश है। इसे ही महाविद्या करते हैं—
देवी भागवत (१२।७।३२) में कहा है—

चेतनस्य न दृश्यत्वं दृश्यत्वे जडमेव तत् ।
स्वप्रग्राशन्च चेतन्य न परेण प्रकागितम् ॥

अर्थात् “चेतन्य का कभी नेत्रो में प्रत्यक्ष नहीं होता है और दृश्य है वह जड़ ही होना है, चेतन्य कभी नहीं होता। चेतन्य स्वयं ही प्रकाश होने वाला है, परके द्वारा कभी प्रकाशित नहीं होना है।”

सतोगुण जब रजोगुण और तमोगुण को दबा कर अपना प्रभुत्व स्थापिन करता है तो दैवी मम्पत्ति का विकास होता है। इसी ज्ञान को विद्या कहते हैं। इस विद्या के गुण हैं—मत्य, प्रेम, न्याय, अहिंसा, अभय, वुद्धि, तप, उदारता, इन्द्रिय निग्रह, श्रद्धा, मेघा, तुष्टि, पुष्टि, जानित, लज्जा, धृति, स्मृति, वोध शक्ति, स्त्री मात्र में भगवती के दर्शन करना आदि।

विद्या का धार्य इस प्रकार है—

‘विद् सत्तामाम् धातु से विद् ज्ञान—विद्यते, ज्ञायेत्’ व्युत्पत्ति से और ‘विद्नृ लाभे’ धातु से अर्थ है वह परमा शक्तिविद्या सच्चिदानन्दस्पा है।

ब्रह्म और विद्या का घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसे अग्नि और उसके जलाने की शक्ति अथवा उसकी गर्भी से होना है। तभी श्रवणालिकोपनिषद् में कहा है—

‘यत् सूत्रं तद् ब्रह्म’

‘जो सूत्र है वह ब्रह्म है।’

'यत् सुपिर सा विद्या'

'जो सुधिर है वही विद्या है ।'

सा विद्या परम मुक्तेहेतुभूता सनातनी ।
ससारबन्ध हेतुश्च संव सर्वेश्वरेश्वरी ॥

(उपनिषद्)

"वह विद्या ही परमाराध्या शक्ति और भक्ति का साधन है,
पर ग्राज्ञानियों के लिये समार बन्धन का हेतु भी वन जाती है" ।

परा यथा दक्षरमकिगम्यते ।

(मुण्डकी १-१-५)

"जिसके द्वारा अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान होता है, उसे परा-विद्या
कहते हैं ।"

सर्वज्ञताम्य शक्ति परिमिततनुरल्पवेघमात्रपरा ।

ज्ञान मुद्यादयन्ती त्रिव्येनि निग्रने वुवराद्यै ॥

(तत्त्व सन्दोह)

"इसकी भर्वज्ञता जक्ति परिमित होकर अन्य ज्ञान रखनी हुई
ज्ञान का उत्पादन करती है, उसे वृद्ध सुर्यी-जन विद्या कहते हैं ।"

ओ सब चंतन्य स्त्रा तामाद्या विद्या च ।

धीमहि । वुद्वर्योग प्रचोदयात् ।

(देवी भागवत्)

'जो आदि यात रहित सर्व चंतन्य स्वरूप, ग्रन्थविद्या मर्मी आदि
शक्ति हैं, उसका हम ध्यान नहीं है, वे हमारी बुद्धि को सम्मान पर
प्रेरित करे '

विद्यागात्कि, ममम्नाना शक्ति'ग्रित्यभि वोयते ।

गुणत्रयाक्षया विद्या सा विद्या च तदात्रया ॥

(वृहज्जावालोपनिपद्)

“सर्वत्र विद्या को ही शक्ति कहा गया है, वह विद्या तीन गुणों के अनुसार तीन प्रकार की है। समस्त प्राणी इन्हीं तीनों रूपों के आधित रहते हैं।”

दिव्यकालाद्यनवच्छृङ्खलत्वेन या विद्यते सा विद्या ॥

“जिमकी स्थिति प्रत्येक स्थान प्रत्येक काल में हो उसीको विद्या कहते हैं।”

निगम—ग्रागम दोनों शास्त्रों में सृष्टि का प्रतिपादन है। अत दोनों को ‘विद्या’ नाम से प्रभिहित किया जाता है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, पशु-पक्षी, कीट पतंग, घातु, रम, विष वनमर्पति, श्रोवर्षि, मनुष्य ये सभी पदार्थ विद्या के अन्तर्गत आते हैं। इन्हे ध्युद्र विद्याएँ कहा जाता है। समूर्ण विश्व विद्या तो महाविद्या है। मनोरियो ने इसके दस भाग किए हैं। इन्हीं में विश्व के स्वरूप, उत्पत्ति, विकास आदि सभी समस्याओं का समाधान किया गया है।

कुछ तान्त्रिक विद्वान् दश महाविद्याओं को माघना की भिन्न-भिन्न ग्रबम्या स्वीकार करते हैं। वे लक्ष्मी में कमला तक जीव की दस अवस्थाएँ मानते हैं। इन्हे भोग-वासना की एक प्रतिमा मानना चाहिए। इनका चयन क्रमशः इस प्रकार किया गया है कि साधक वीरे-घीरे एक-एक विकार ग्रन्थि को काटता हुआ ऊपर उठ जाता है और अन्त में काली-नूव तक जा पहुँचता है, जिसे माघना का चमत्कार अयवा शेषावस्था कहा जाता है। इस स्थिति में पहुँचने पर भौतिक वन्धन सब दीले पड़ जाते हैं। जीवका जीवत्व नमाम हो जाता है और वह इश्वरत्व में प्रवेग करता है। अत दस महाविद्याओं की उपासना जीव को धुद्रभूमि में दग्ध-माघना की उच्चतम् स्थिति तक पहुँचाना है। तभी

विद्या को परम् पद, परम् तत्त्व व अमृत-तत्त्व की सज्जा दी जाती है, क्योंकि विद्या से ही जीवन-मुक्ति प्राप्त होती है। विना विद्या के मनुष्य पशु कोटि में आते हैं। वे जीवित मृत कहे जाते हैं। विद्या ही जीवन है, स्फूर्ति है, शक्ति है, सब कुछ है।

देवी को महाविद्या के गौरवान्वित नाम से सम्बोधित करने के कारण पर प्रकाश ढालते हुए सप्तशती में कहा गया है—

विद्या समस्तास्तव देवि । मेदा
स्त्रिय, समस्ता मकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बियंतत्
काते स्तुति स्तव्यपरापरोक्ति

अर्यात् 'हे देवि । सारी विद्याएँ तुम्हारे ही भेद हैं और जगत् में जो समस्त क्षिया हैं वे भी आपके ही विभिन्न स्वरूप हैं । हे अस्ति ! आप एक में ही यह सम्पूर्ण विश्व पूरित कर रखता है । आपकी क्या स्तुति की जावे ? आप तो उक्तिशो द्वारा जो स्वरूप दिया जाता है उससे परतरा है ।

विद्या के तीन भेद हैं—ग्राहिभौतिक, ग्राह्यात्मिक और ग्राहिदेविक । इनका क्षेत्र इनके नामों से ही स्पष्ट है । विद्या के दो रूप हैं—परा और अपरा । इनका स्पष्टीकरण 'रुद्रहृदयोपनिषद्' में हम प्रकार दिया गया है—

द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा च ते ।
तत्रापरा तु विद्यैपा ऋजुवेदो यनुरेव च ॥
सामवेदस्तथाऽथर्ववेद शिद्धा मुनीश्वर ।
कल्पो व्याकरण चंव निरुक्त छन्द एव च ॥
ज्योतिष च तथाऽनात्मविषया अपि वुद्धय ।
अथेषा परमा विद्या ययऽन्मा परमाक्षरम् ॥

यतद्वे श्यमग्राट्यमगोत्र रूपवर्जितम् ।
 अचक्षु थोत्रमत्यर्थं तदपाणिपदं तथा ॥
 नित्यं विभु सर्वंगतं सुमूर्धम् च तदव्ययम् ।
 तदभूतयोनि पश्यन्ति धीरा नात्मानमात्मनि ॥

“परा और अपरा नाम की दो विद्याएँ हैं, वे साधक के लिये ज़’हन्य हैं। ऋूक, यज्ञ साम, अथर्व, यह चारों वेद, गिक्षा, कल्प, छन्द, निरुत्त, ध्याकरण और उद्योतिष्ठ—यह अपरा है। इसमें आत्म-विद्य के अतिरिक्त अन्य मन्त्र प्रकार का वौद्धिक ज्ञान भरा हुआ है। परन्तु जिसके द्वारा आत्म-ज्ञान होता है वह परा विद्या है। वही परम अविनाशी आत्मतत्त्व है। वह दिखाई नहीं पड़ता, न ग्रहण किया जा सकता है। उसका नाम, रूप, व गोत्रादि कुछ नहीं है। उसके न नेत्र हैं, हाथ पांव भी नहीं हैं। वह विषयों से परे, नित्य, विभु, सूक्ष्मातिसूक्ष्म हाँस से सर्वंगत और निर्विकार है। वह सब भूतों का आश्रय स्थान है। जानी पुरुष उस परमात्मा का अपने ही आत्मा में दर्शन करते हैं”।

दस महाविद्याओं के नाम इस प्रकार हैं—

काली तारा महाविद्या पोडशी भुवनेश्वरी ।
 भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥
 मातज्ज्ञी सिद्धविद्या च कथिता वगलामुखी ।
 एता दश महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥

१. काली २. तारा ३. पोडशी (त्रिपुर सु-दरी) ४. भुवनेश्वरी (राज-राजेश्वरी, श्रीविद्या, लक्षिता) ५. भैरवी (त्रिपुरभैरवी)
 ६. छिन्नमस्ता, धूमावती (श्रलक्ष्मी) ७. मातज्ज्ञी ८. वगलामुखी ९.
 १०. कमला (नदमी) ।

इनमें काली के शिव हैं महाकाल, तारा के अक्षोम्य, पोडशी के पञ्चवक्त्र, भुवनेश्वरी के अस्त्रक, भैरवी के दक्षिणमूर्ति, छिन्नमस्ता के

कवन्य, मातरी के मतग, वगलामुखों के एक मुख महारुद्र, कमला के सदाशिव थीविष्णु । वूमावती विघ्वा हैं ।

इन दस महाविद्याप्रों का दस अवतारों में भी सम्बन्ध व्यापित किया गया है—

कृष्णमूर्ति काली अरु तारा राममूर्ति जान,
छिन्ना नरसिंहमूर्ति वेदन वस्त्रानी है ।
वामन भुवेनेशी औ वगलाकीं कूर्म रूप,
मत्स्यमूर्ति जान धूमा शास्त्रन मे गानी है ॥
जामदग्न्य सुन्दरी औ भैरवी हन्ती को जान,
बौद्ध-रूप लच्छमी प्रसिद्ध वात मानी है ।
दुर्गा शान्तिरूप हो सो दश अवतार भए,
ताप त्रय दूर करे आदि महारानी है ॥

काली की कृष्ण मूर्ति है और तारा की राम मूर्ति जाननी चाहिए । छिन्न नरसिंह मूर्ति वेदों ने बनलाई है । भुवनेशी वामन और वगला का कूर्म रूप होना है । धूमा मत्स्य मूर्ति होनी है जो शास्त्रों मे गाई गई है । मुदगी जमदग्न्य और भैरवी हन्ती का स्वरूप है । लक्ष्मी बौद्धरूप है जो परम प्रसिद्ध है । दुर्गा शान्ति मम्बरूपा है । इस तरह ये दसों अवतार हैं जो तोनी तापों को भागते हैं और ये आदि महारानी हैं ।

दस संख्या का महत्व

दस संख्या की महत्ता निगम-ग्रन्तुगम श्रुतियों मे इस प्रकार वर्णित की गई है—

दशाक्षरा वै विराट् (शत १११)

‘दस अक्षर वाला विराट् है ।’

यज्ञो वै दश होता (तं त्रा २२१६)

‘यज्ञ वह होता है जिसमें दम हवन करने वाले हुआ करते हैं।’

विराट् वै यज्ञ (शत ११११)

‘विराट् ही यज्ञ होता है।’

यज्ञ उ वै प्रजापति (कौ ब्रा १०११)

‘यज्ञ ही प्रजापति है।’

प्रतिष्ठा दग मह (कौ ब्रा २७१२)

‘जिसमें दम की प्रतिष्ठा है।’

प्रजापतिर्वै दश होता (ते ब्रा २।२।१३)

‘प्रजापति दम होता वाला होता है।’

अन्तो वा एश यज्ञस्य यद्यगममह ते ब्रा २।२।४।१

‘अथवा यज्ञ का अन्त जिस दम वाला माना गया है।’

शास्त्र का कहना है कि दशाक्षर पूर्ण विराट् से मृष्टि की रचना नहीं होती। न्यून विराट् से यह कार्य सम्पन्न होता है। कहा भी है—‘न्यूनाद्वा इमा, प्रजा प्रजायन्ते।’ केवल पुरुष और पुरुष मिलकर सृष्टि नहीं कर सकते और नहीं स्त्री और स्त्री यह कार्य कर सकते हैं। भोग्य—स्त्री और भोग्य—पुरुष के सयोग से ही सृष्टि होती है। स्त्री सोम्या है, पुरुष आपनेय है। अत पुरुष प्रबल है, स्त्री उसमें न्यून है। इस न्यून सम्बन्ध से ही, पुरुष स्त्री के सयोग से ही उत्पत्ति होती है। इस शास्त्रीय भाषा में यह कहा जाता है कि दशाक्षर पूर्ण से प्रजोत्पत्ति नहीं होती, ६ अक्षर में न्यून विराट् से ही यह निर्माण कार्य होता है। विराट् सूक्ष्म है। उसमें से एक अक्षर कम कर दिया जाए तो उसके विराट्-पते में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता। शास्त्र भी इसका अनुमोदन करता है—

न वै एकेनाक्षरेण छन्दासि वियन्ति न द्वान्याम्।

६ वा मङ्गु भी महत्वपूर्ण है। रामायण में परशुराम की

धोष्ठता की चर्चा करते हुए कहा गया है कि — “नवगुण परम पुनीत तुम्हारे “ब्राह्मणों के, ब्रह्मपरायण व्यक्तियों के, परम पुनीत नौ गुण होते हैं। यह नौ गुण यह हैं — (१) मत्य (२) अहिमा (३) चोरी न करना (४) इन्द्रिय नियन्त्रण (५) अधिक सत्य का लोभ न करना (३) पवित्रता (७) कष्ट महिष्युना (८) विद्या (९) ईश्वर और धर्म पर आस्था। इन्हीं नौ परम पुनीत गुणों को थोड़े हेर-फेर के साथ धर्म के दश लक्षणों में गिनाया है। योग शास्त्र में इन्हे पाच यम और पाच नियम के नाम से बहा गया है। उन्हे मनुष्य का — इन्सानियत का चिन्ह भी कह सकते हैं।

इस भूलोक में नौ मिद्दियाँ हैं जिन्हे प्राप्त करने से आनन्द की वृद्धि होती है। जिसके पास यह नौ सिद्धियाँ जितनी अधिक सख्ता में होगी या जितनी अधिक मात्रा में सिद्धि होगी वह उतना ही सुखी रह सकेगा। नौ मिद्दियाँ इम प्रकार हैं — (१) विवेक, (२) पवित्रता (३) शान्ति (४) याहस (५) स्थिरता (६) कतव्य निष्ठा (७) स्वास्थ्य (८) समृद्धि (९) महयोग।

६ का अङ्ग इतना महत्वपूर्ण है कि इसकी महिमा कहते-रहते थक जाना पड़ता है। नीचे कुछ विवरण देखिये।

(१) रम्यो राम इमि जगत मे, नहीं द्वृत विस्तार।

जैसे घटत न अङ्ग नव, नव के लिखत पहार॥

नौ का पहाड़ा चाहे जितनी बार पढ़ा जाय पर उनके जोड़ का परिणाम ६ ही होता है (जैसे $6 \times 2 = 12$, $1 + 2 = 3$, $6 \times 3 = 18$
 $2 + 7 = 9$) इसी प्रकार चाहे जितनी बार नौ का पहाड़ा गिना जाय, उन अक्षरों का योग ६ ही होगा। जैसे नौ के पहाड़े की सब सख्ताओं में नौका अक्षर मिला हुआ है, उसी प्रकार समार की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर छिपा हुआ है।

(२) जगते रहु छत्तीस (३६) ह्वै, राम चरन छै तीन (६३) ।
तुलसो देखि विचार हिय, है यह मतो प्रवोन ।

छत्तीस की सह्या मे तीन और छै के अङ्को का मुख एक दृपरे मे विषयोन दिशा ने है, इपी प्रकार मामारिक माया वन्धनो से हमे विमुख रहना चाहिए प्रोग भाजन के चागो की ओर इप प्रकार अभिमुख रहना चाहिय, जैसे ६३ की सह्या मे यह दोनो अङ्कर आमन-सामने मुख किये रहने है । इन उपदेश दने वाली दो महाप्रो —३६ का तथा ६३ के अङ्को का भी जाह नो होता है ।

(३) अशोहिणी सेना की को मरण मे तो का ही प्रतिक्रिय है । अशोहिणी वो सह्या २१८७०० होती है इनका योग देखिये ।

$$2+1+5+7=15, \quad 1+5=6$$

(४) युगो की सह्याओ का परिणाम ६ होता है । देखिये कलियुग का वप ४३२००, ४+३+२=६, द्वापर वर्ष ८६४००० ।
८+६+४=१८, मे १+८=९ तो वर्ष १२६६००० मे १+२+६+६=१८ मे १+८=६, मत्युग वर्ष १७२८०००, १+७+२+८=१८ मे १+८=६ ।

(५) चारो युगो के वर्षो का योग (दिव्य युग) ८३२०००० ।
४+३+२=६ ।

(६) मन्वन्तर (७१ दिव्य युग) ३०२३२०००० ३+०+२+१+१
=१८ मे १+८=६ ।

(७) कन्द (१४ मन्वन्तर) वप ४२३६०८००००, ४+२+६
+४+८=२७ मे २+७=९ ।

(८) स्वरो मे ६ गुह हैं । या, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अ, अ ।

(९) चारो वेगो की पास मात्र १६८०८ है १५६४५

(१०) श्रीगमचन्द्रजी का जन्म नवमी को—“नवमी तिथि हरि मास पुनीता” ।

(११) रामयण की रचना नवमी को ।

(१२) तुलसीकृत रामायण में छन्द मख्या ६६६० है, $6+6=12$ में $2+7=9$ ।

(१३) विप्र के गुण ६ ऋजु (सरलता) रप्स्या, सत्तोष, क्षमा, अतृष्णा, जितेन्द्रियता, सत्य, अहिमा, स्वाध्याय ।

(१४) पुराण १८, $1+8=9$ ।

(१५) नक्षत्र २७, $2+7=9$ ।

(१६) माला में वीज १०८, $1+0+8=9$ ।

(१७) पूज्यों के लिये लिखी जाने वाली श्रीम ख्या—१०८ में $1+0+8=9$ ।

(१८) राग ६, रगिती ३०=दोनों का योग ३६, $3+6=9$

(१९) गिनती के अङ्ग १ से ६ तक=६ ।

(२०) शक्ति पूजा की नव रात्रि, पृथ्वी के नी खण्ड, नी, ग्रह, शरीर के नी छेद, नी रत्न, नी रस, नवधा भक्ति, नी नाढ़ी, नी द्रव्य, नी दुर्गा ।

इस प्रकार नी का अङ्ग अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होने से इसे ‘ब्रह्म अङ्ग’ कहा गया है ।

सामवेदीय छान्दोग्य सूत्र में नी देवताओं का वर्णन आया है, ये नी देवता यह हैं—(१) भो कार, (२) प्रग्नि, (३) अनन्त, (४) चन्द्र, (५) पितृ (६) प्रजापति (७) वायु, (८) मूर्य (९) सर्व देवता । यह नी देवता असल में नो शक्तियों के साम हैं, जो विकसित मनुष्यों में निवास किया करती है । इनका अर्थ इस प्रकार है—

१- श्रो कार—ऋग्य, परमात्मा, सर्वव्यापी, न्यायकारी मत्ता को सर्वत्र व्यापक देवकर द्वारे कामो से बचना ।

२- अन्ति—तेज, वीरता, पराक्रम, पुरुषार्थ ।

३- अनन्त—वैद्य प्रतीक्षा, आशा, टृट्ठा ।

४- चन्द्र—शीतलता, शान्ति, मवुरता, प्रसन्नता, प्रफुल्लता ।

५- पितृ—स्त्रेह, भात्सभाव, उपकार, वात्सल्य, अमा ।

६- प्रजापति—कुदुम्ब पालन, समाज की सुरक्षा ।

७- वायु—ध्वन्द्वना, सफाई ।

८- सूर्य—प्रतिमा, शक्ति, वन, दमन ।

सर्व देवता—मङ्गठन, महयोग, एकता, समाजसेवा सब लोगो के लिए भाद्र-भाव, समर्द्दन ।

इस तरह से दस श्रोर नो दोनों श्रद्धा महत्वपूर्ण हैं । दस विराट् का प्रतीक है परन्तु एक श्रद्धा कम होने से भी कोई अन्तर नहीं पड़ता । विद्या, ज्ञान, ज्योति और अमृतत्व का मूर्त्त रूप है । विद्या इस प्रकार की है । उनके रहस्य का विवेचन यहाँ किया जाता है—

१—काली

काली का ज्यान इस प्रकार से किया जाता है—

१० द्यायेत्काली महामावा त्रिनेत्रा वहृष्णिणी ।

चतुभुजा ललजिज्ज्वा पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥

नीलोत्पलदलप्रस्था शत्रुसघविदारिणीम् ।

नरमुण्ड तथा खङ्ग कमल वरद तथा ॥

विभ्राणा रक्तवदना दृष्टाली घोरहृष्णिणीम् ।

अद्वृद्वृद्वामनिरत सर्वदा च दिग्म्बराम् ॥

शवासनस्थिता देवी मुण्डमालाविभूषिताम् ।

‘जो महामाया, त्रिनेत्रा, ब्रह्मपिणी, चतुर्भुज, नपलपाती जिह्वा व नी, पूर्ण चन्द्र की तरह शोभायुक्त, नील कमन की पशुदियों की तरह सुन्दर, शत्रु मूह की नाशकर्ता हैं जो नरमुण्ड, खड़, कमल और वरमुद्रा वारण करती हैं। रक्ष मुखमण्डन, दध्नाओं की पक्ति में मयुक्त और धार रूपाली, अद्वृत्तास करने में मलगन दिगम्बरा, शावासन पर स्थित, मुगडों की माना में विभूषित हैं, उन काली देवी का ध्यान करे।’

भक्त कहना है—

ओ-काली कालहरा देवी कङ्कालबोजरूपिणीम् ।

कालरूपा कलातीता कालिका दक्षिणा भजे ॥

‘मैं दक्षिण कालिका का भजन करता हूँ जो काल की नाशकर्ता काली है। जो कङ्काल बीज हृपिणी, कालरूपा और कलाशों से परे है।’

काली की स्तुति करते हुए माधक कहता है—

घरित्री कीलाल शचिरपि समीरोऽपि गगन,

त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम् ।

स्तुति. का ते मातस्तव करुणया मामगतिक,

प्रमन्ता त्व भूया भवमनु न भूयात्मम जनु. ॥

‘हे काली ! पृथ्वी, जन, तेज, वायु और आकाश, यह सब कुछ तुम ही हो। तुम्ही कल्याणी, गिरिश रमणी हो, ह मातेश्वरी। तुम्हारी और स्तुति क्या करूँ ? मैं गति रहित हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न रहे ताकि मुझे प्रांग जन्म न लेना पडे।’

काली के स्वरूप और उसकी माधना की उत्कृष्टता पर प्रकाश डालने हुए शास्त्र का वचन है—

ओ अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्त्वे-
Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MA

कमूर्ति । गुणातीननिर्द्वयोधैकगम्या, त्वमेका परब्रह्मपेरा-
मिद्धा ॥

‘हे माता । तुम्हारे आकार और शक्ति को नापने मे कोई भी
समर्थ नहीं (अर्थात् तुम्हारा आकार और शक्ति कल्पनातीत है), चिन्ता
द्वारा भी उसे नहीं पाया जा सकता । तुम्हारा कोई एक अथान नहीं,
तुम तो हर मनुष्य मे मन्त्रमनि ने प्रतिष्ठित हो । केवल शिगुणातीत अद्वैत
ज्ञान मे ही तुम्हारी प्राप्ति सम्भव है । तुम तो केवल परब्रह्म रूप मे ही
अविद्धित रहती हो ।’

अगोक्रृतिन्वादनैकातिकत्वादलक्ष्यागमत्वादशेषाकरत्वात् ।
प्रपञ्चालमत्वादनारभकत्वात् त्वमेकापरब्रह्मपेरा मिद्धा ॥

‘तुम अगोक्रृत हो, आकार रहित हो, तुम मिथर पदार्थ नहीं हो,
तुम्हारी गति को लक्ष्य करना सम्भव नहीं, अस्तित्व वस्तु की तुम आकार
हो, इस विश्व-प्रपञ्च मे तुम विकसित नहीं होती, तुम विमी की आर-
मिमक नहीं हो, तुम तो केवल परब्रह्म मिद्ध हो ।’

असाधारणत्वादसम्बन्धकत्वादभिन्नाश्रयत्वादनाकरकत्वात् ।
अविद्यात्मकत्वादनाद्यत्तकत्वात् त्वमेका परब्रह्मरूपेरा मिद्धा।

‘तुम असामान्य हो, जगन के बाह्य प्रपञ्चो मे अथग हो, परन्तु
हर पदार्थ मे सयुक्त हो, तुम निराकार हो, अविद्या रूप वाली हो,
अनादि और अनन्त रूपिणी हो, तुम परब्रह्म रूप मे ही मिद्ध हो ।’

काली मवकी कारणभूता है --

यदा नैव द्वाता न दिर्गत र्द्वो न कालो न वा पञ्च
भूतानि नाशा । तदा कारणीभूत सत्त्वैकमूर्तिसत्वमेका
परब्रह्मरूपेरा मिद्धा ॥

‘जद रूपा, विष्णु और नद नहीं थे, काल, पञ्चभूत और

दिक् कुछ भी नहीं था तब तुम इन सबकी कारणभूता एक मात्र सत्त्व-मूर्ति से अधिष्ठित थी, तुम्हीं एक परब्रह्मरूप से सिद्ध हो ।'

न बाला न च त्व व्ययस्था न वृद्धा न च स्त्रो न षण्ड, पुमा-न्नैव च त्वम् । न च त्व सुरो नासुरो नो नरो वा त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

'न तो तुम बाला हो, न वयस्का हो, न वृद्धा हो, न स्त्रो हो, न नपुसक हो, न पुरुष हो, न देव हो न असुर और न ही मनुष्य हो, तुम तो केवल परब्रह्म रूपिणी सिद्धा हो ।'

विशुद्धापरा चिन्मयी स्वप्रकाशमृतानन्दरूपा जगद्व्यापिका च । तवेद्विविधा या निजाकारमूर्ति किमस्माभिरन्तर्हृदिध्यायितव्या ॥

'हे माता तुम विशुद्ध, चिन्मय, स्वप्रकाश, अमृत व आनन्दरूपा, जगद्व्यापिका हो, तुम्हारे इस प्रकार के स्वरूप का हम किस प्रकार से ध्यान करें ?'

काली के गुणों पर प्रकाश डालने वाला काली अष्टोतर कालनाम स्तोत्र है जिसमें काली के १०८ नाम दिए गए हैं वे इस प्रकार हैं—

काली कपालिनी कान्ता कामदा कामसुन्दरी ।

कालरात्रि कालिका च काल भंरव पूजिता । १ ।

कुरुकुल्ला कामिनी च कमनीयस्वभाविनी ।

कुलीना कुलकर्त्री च कुलवर्त्म प्रकाशिनी । २ ।

कस्तूरिरसनीला च काम्या कामस्वरूपिणी ।

ककारवर्णनिलया कामधेनु करालिका । ३ ।

कुलकान्ता करालास्या कामार्ता च कलावती ।

कृशोदरी च कामाख्या कौमारी कुलपालिनी । ४ ।

कुलजा कुलमन्या च कलहा कुलपूजिना ।

कामेश्वरी कामकान्ता कुञ्जरेश्वरगमिनो ।५
 कामदात्री कामहर्त्री कृष्ण चैव कपर्दिनी ।
 कुमुदा कृष्णादेह च कालिन्दी कुलपूजिता ।६।
 काश्यपी कृष्णामाता च कुलिशाङ्गी कला तथा ।
 क्रीरूपा कुलगम्या च कमला कृष्णपूजिता ।७
 कृशाङ्गी किन्तरी कर्त्री कलकरणी च कातिकी ।
 कम्बुकरणी कौलिनी च कुमुदा कामजीविनी ।८।
 कलस्त्री कीतिका कृत्या कीतिश्च कुलपालिका ।
 कामदेवकला कल्पलता कामागवर्द्धिनी ।९।
 कुन्ता च कुमुदप्रीता कदम्बकुसुमोत्सुका ।
 कादम्बिनी कमलिनी कृष्णानन्दप्रदायिनी ।१०।
 कुमारीपूजनरता कुमारीगणशोभिता ।
 कुमारीरञ्जनरता कुमारीव्रतधारिणी ।११।
 कद्म्बाली कमलीया च कामशास्त्रविशारदा ।
 कपालखटवागधरा कालभैरव रूपिणी ।१२।
 कोटरी कोटराक्षी च काशीकंलास वासिनी ।
 कात्यायनी कार्यकरी काव्यशास्त्रप्रभोदिनी ।१३।
 कामाकर्पणरूपा च कामपीठनिवासिनी ।
 कद्म्बनी काकिनी क्रीडा कुत्सिता कहलप्रिया ।१४।
 कुण्डगोलोदभवप्राणा कौशिकी कीर्तिवर्द्धिनी ।
 कुम्भस्तनी कलाक्षा च काव्या कोकनदप्रिया ।१५।
 कान्तारवासि कान्ति कठिना कृष्णावल्लभा ।
 इति ते कथितम् देवि गुह्यादगुह्यतरम् परम् ।१६।

सुन्दरी—कामनाओं के दान करने वाली - काम के समान सुन्दरी - काखराति - कालिका - काल भैरव के द्वारा पूजित - कुरुकुल्ला - कामिनी सुन्दर स्वभाव वाली - कुलीना - कुल के करने वाली - कुल के मार्ग प्रकाशित करने वाली - कस्तूरी रस के समान नीताकामना के योग्य - काम स्वरूप वाली - ककार वर्ण के विलय वाली - कामधेनु - करालिका - कुलकान्ता - कराल मुख वाली - काम से आतं - कला से पूरण - कृश उदार वाली - कुलजा - कुलमन्या - कलहर - कुलरात्रिता - कामेश्वरी कामकान्ता - छुञ्जरेश्वर के समान मन्द गमन करने वाली - कामनाओं की देने वाली - कामदेव का हरण करने वाली - कृष्णा - कपादिनी - कुमुदा - कृष्ण देह वाली - कालिन्दी - कुल के द्वारा पूजित - कश्यपी - कृष्ण माता - वज्र के समान अङ्गों वाली - कला-क्री रूप वाली - कुल-गम्या - कमला - कृष्ण के द्वारा पूजित - कृश अङ्गों वाली - किन्नरी - कर्ती - कल (मधुर) कण्ठ वाली - कार्तिकी - कम्बु के तुल्य कण्ठ वाली कौलिनी - कुमुदा - काम जीविनी - कलस्त्री - कीर्तिका - कृत्या कीति-कुल पालिका - कामदेव की कला - मनोरथों को पूरण करने वाली - कल्पलता - कोमाङ्ग के बढ़ाने वाली - कुतार - कुमुद प्रीता - कदम्ब के कुमुम के लिए उत्सुक - कदम्बिनी - कमलिनी - कृष्ण को आनन्द प्रदान करने वाली - कुमारियों के गुणों से शोभायुक्त - कुमारियों के रञ्जन रत - कुमारी ब्रतको धारण करने वाली - कद्माली - कमनीया-कामशास्त्र की परिषद - कपान और खाट का पाया धारण करने वाली - काल भैरव के रूप वाली - कोटरी - कोटर के तुल्य नेत्रों वाली - काशी और कैलाश पर निवास करने वाली - काम के आक्षण करने वाले रूप से युक्त - काम के पीठ(सिहामन)पर निवास करने वाली - ककिनी - काकिली - क्रीडा कुत्सिता - कलह की प्यार करने वाली - कुण्ड गोल से उद्भव प्राणों वाली - कौशिकी - कीर्ति को बढ़ाने वाली - कुम्भ के समान स्तनों वाली - क्लाक्षा - काव्या - कोक्षजद को प्रिय सानने वाली -

जगल मे वाम करने वाली - कान्ति - कठिना - कृष्णा की बत्तेभा— हे देवि । यह आपका अष्टोत्तरशत नाम वाला स्तोत्र परम गोपनीय से भी अति गोपनीय है, जो इस समय कहा गया है ।”

काली तत्त्व को जानने के लिए निम्न श्लोकों का विश्लेषण
आवश्यक है— }
}

शवारुद्धा महाभीमा घोरदध्ना हसन्मुखीम् ।

चतुर्भुजा खड्गमुण्डवराभयकरा शिवाम् ॥

मुण्डमालाधरा देवी ललजिजह्वा दिगम्बराम्

एव सञ्चिचन्तयेत् काली इमशानालयवासिनीम् ।

(शक्ति प्रमोद-काली तन्त्र)

‘वह काली शवारुद्धा, भयाकृति वाली, बड़ी तीक्षण व भयावह दध्ना वाली, हमसुखी, चतुर्भुज है । एक हाथ मे खड्ग, एक मे नरमुण्ड, एक मे अभय मुद्रा और एक मे वर है । उसके गले मे मुण्डमाल, जिह्वा बाहर को निकली हुई और दिगम्बरा है । उसका निवास इमशान है ।’

काली का यह ध्यान अलद्धारिक शैली मे वर्णित है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

काली शवारुद्धा है । शब का अभिप्राय किमी प्राणी के मुर्दे से नहीं है वरन् शक्तिहीन विश्व स है । जब विश्व शक्तिमान् होता है तो उसकी सज्जा—शिव है । जब उससे शक्ति निकल जाती है तो वह शब बन जाता है । विश्व जब शक्तिहीन होता है तो वह स्थिति प्रलय की है । कालो का सम्बन्ध प्रलय-गति के मन्य काल स है । इसीलिए वह कृष्ण वर्ण कहलाती है । वह विश्व का नाश करने वाली कालराति है । एव रुग्नी विश्व ही उसका भावार है, यही उसकी प्रतिष्ठा है । इसनिए काती का शब पर बड़ी दिवाया जाता है ।

काली भयानक ग्राहृति वाली है । महार उमरा धर्म है । महार

सुन्दरी—कामनाओं के दान करने वाली - काम के समान सुन्दरी - कालरात्रि - कालिका - काल भैरव के द्वारा पूजित - कुरुकुल्ला - कामिनी सुन्दर स्वभाव वाली - कुलीना - कुल के करने वाली - कुल के मार्ग प्रकाशित करने वाली - कस्तूरी रस के समान नीताकामना के योग्य - काम स्वरूप वाली - ककार वर्ण के विलय वाली - कामधेनु - करालिका - कुलकान्ता - कराल मुख वाली - काम से आर्त - कला से पूर्ण - कृश उदर वाली - कुलजा - कुलमन्या - कलहर - कुलरात्रिता - कामेश्वरी कामकान्ता - छुञ्जरेश्वर के समान मन्द गमन करने वाली - कामनाओं की देने वाली - कामदेव का हरण करने वाली - कृष्णा - कपादिनी - कुमुदा - कृष्ण देह वाली - कालिन्दी - कुल के द्वारा पूजित - कश्यपी - कृष्ण माता - वज्र के समान अङ्गो वाली - कला-की रूप वाली - कुल-गम्या - कमला - कृष्ण के द्वारा पूजित - कृश अङ्गो वाली - किन्नरी - कर्ती - कल (मवुर) कण्ठ वाली - कार्तिकी - कम्बु के तुल्य कण्ठ वाली कौलिनी - कुमुदा - काम जीविनी - कलस्त्री - कीर्तिका - कृत्या कीति-कुल पालिका - कामदेव की कला - मनोरथों को पूण करने वाली - कल्पलता - कामाङ्ग के बढ़ाने वाली - कुत्तार - कुमुद प्रीता - कदम्ब के कुमुम के लिए उत्सुक - कदम्बिनी - कमलिनी - कृष्ण को आनन्द प्रदान करने वाली - कुमारियों के गुणों से शोभायुक्त - कुमारियों के रञ्जन रत - कुमारी व्रतको धारण करने वाली - कद्माली - कमनीया-कामशास्त्र की परिषद - कपान और खाट का पाया धारण करने वाली - काल भैरव के रूप वाली - कोटरी - कोटर के तुल्य नेत्रो वाली - काशी और कैलाश पर निवास करने वाली - काम के आक्षण करने वाले रूप से युक्त - काम के पीठ(सिहामन)पर निवास करने वाली - ककिनी - काकिली - कीड़ा कुत्सिता - कलह को प्यार करने वाली - कुरुड़ गोल से उद्भव प्राणों वाली - कीशिकी - कीर्ति को बढ़ाने वाली - कुम्भ के समान स्तनों वाली - लाक्षा - काव्या - कोक्तद को प्रिय मानने वाली -

जगत् मे वाम करने वाली - कान्ति - कठिना - कृष्णा की वल्लभा— हे देवि । यह आपका प्रष्ठोत्तरशत नाम वाला स्तोत्र परम गोपनीय से भी अति गोपनीय है, जो इस ममय कहा गया है ।”

काली तत्त्व को जानने के लिए निम्न इलोकों का विश्लेषण
आवश्यक है— }
}

शवारुद्धा महाभीमा घोरदष्टा हमन्मुखीम् ।

चतुर्भुजा खड्गमुण्डवराभयकरा शिवाम् ॥

मुण्डमालाधरा देवी ललजिजह्ना दिगम्बराम् ।

एव सञ्चिन्तयेत् काली शमशानालयवासिनीम् ।

(शक्ति प्रमोद-काली तन्त्र)

‘वह काली शवारुद्धा, भयाकृति वाली, बड़ी तीक्ष्ण व भयावह दष्टा वाली, हममुखी, चतुर्भुज है । एक हाथ मे खड्ग, एक मे नरमुण्ड, एक मे अभय मुद्रा और एक मे वर है । उसके गले मे मुण्डमाल, जिह्वा बाहर को निकली हुई और दिगम्बरा है । उसका निवास शमशान है ।’

काली का यह ध्यान अनहूँरिक शैली मे वर्णित है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

काली शवारुद्धा है । शब का अभिप्राय किमी प्राणी के मुर्दे से नहीं है वरन् शक्तिहीन विश्व से है । जब विश्व शक्तिमात्र होता है तो उसकी मज्जा—शिव है । जब उससे शक्ति निकल जाती है तो वह शब बन जाता है । विश्व जब शक्तिहीन होता है तो वह स्थिति प्रलय की है । काली का सम्बन्ध प्रलय-रात्रि के मध्य काल स है । इसीलिए वह कृष्ण वर्ण कहलाती है । वह विश्व का नाश करने वाली कालरात्रि है । शब रुदी विश्व ही उसका भावार है, यही उसकी प्रतिष्ठा है । इसलिए काली का शब पर खड़ी दिखाया जाता है ।

काली भयानक आकृति वाली है । सहार उसका धर्म है । सहार

करने वाले योद्धा का रूप भग्नानक होना स्वाभाविक है। इसीलिए काली को प्रलयरात्रि रूपा सहारकारिणी शक्ति के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

युद्ध के दो पक्षों में से एक की विजय निश्चित होती है। विजेता को अपनी शक्ति पर गर्व होने लगता है और वह अपने शत्रु को निर्वलना पर हेतु है। काली तो शक्ति पुण्ड्र है, जब वह आमुरी शक्तियों पर विजय प्राप्त करती हैं, तो वह भी शत्रु पक्ष की निर्वलता पर अद्वृहास करती है। इसलिए उसे 'हसन्मुखीय' कहा गया है।

काली की चार भुजाएँ हैं। यह चार भुजाएँ पूर्णत्व की द्योतक है क्योंकि पूरा वस्तु को चतुरस्र कहा जाना है। उसके एक हाथ में खड़ग है जो नाश शक्ति का चिन्ह है। नरमुण्ड विनष्ट प्राणियों का प्रतीक है। वह स्वयं निर्भय रहती हैं। जो भी उसका आश्रय ग्रहण करता है, वह भी निभय रहता है। इस आश्वासन के रूप में वह एक हाथ में अभय मुद्रा धारण करती है और एक में वर। इसीलिए वह 'वराभयकरा' कहलाती है। ऐसी बात नहीं कि वह केवल विनाश ही विनाश करती है, उसमें अपने भवतों के प्रति अपार दया और करुणा भी है। अपनी शक्ति का जितना भाग सहार में ध्यय करती है, उतना ही वह कारुण्य में करती है क्योंकि उसके दो हाथ एक कार्य करते हैं और शेष दो हाथ दूसरा काम।

जीवित प्राणियों के अतिरिक्त मृत प्राणियों का आश्रय भी काली ही है। इसलिए मुण्डमाला पहनती हैं। निरुत्तर तत्त्व और काम-धनु तत्त्व में एक और भाव भी दिया गया है—

पञ्चाशद्वर्णमुण्डालीगलद्रुधिरच्चचिताम् ।

(निरुत्तर तत्त्व)

'पचास वरण वाले मुण्डों से टपकते हुए रुधिर से ग्राप चर्चित होती है।'

ममकण्ठे स्थित वीज नवाशद्वर्णमद्भुतम् ।

(कामधेनु रत्न)

'मेरे कण्ठ में स्थित वीज भी पचास बणों वाला अतीव अद्भुत है।'

विश्व ही ब्रह्मव्या कालीका प्रावरण-वस्त्र है। काली का सम्बन्ध सो प्रलय रात्रि में है जब साग विश्व नष्ट और लीन हो जाता है। विश्व के अभाव में वह 'ग्रवस्त्रा' नरन रह जाती है। केवल 'दिशाएँ' ही उसके वस्त्र रह जाते हैं। इसी स्थिति को 'नरन' सज्जा दी गई है।

जब जगत् का लय हो जाता है, जब साग जगत् इमशान बन जाता है, तभी काली का विकास माना जाता है। उसका पूरा विकास-काल विश्व का प्रलय काल है।

सावना में इसका एक और भाव भी है। भगवतो की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि अपने हृदय को इमशान बनाया जाय। राग, कामादि का नाश किया जाए। इस जगत् की आपकिन, मोह, लगाव और लिसता को दूर किया जाए। जगत् भाव को बनाए रखने वाले जितने भी आसुरी तत्व हैं, उनसे अलिस रहा जाए तभी विश्व में रहते हुए विश्व का विनाश समझा जायेगा और जगत् इमशान सुल्य लगेगा। जब तक इस भावना का जागरण नहीं होता भगवती का वर व अभय मुद्रा वाले हाथ आशीर्वाद के लिए नहीं उठने।

२— तारा

परिभाषा

तारा के नाम से ही विदित होता है कि इसका सम्बन्ध 'तारण' भवता 'तरण' से है। वाचुत्र में तारण करने वाली शक्ति को 'तारा' Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MA

कहते हैं। इसका शब्दार्थ भी यही है—‘तरत्यनया मा तारा’ अर्थात् इस भवसागर से जो तारती है, वह तारा है। तारा ने स्वप्न भी कहा है—
 तारयिष्याम्यह नाथ। नाना भवमहारण्वात् ।
 तेन तारोति मा लोके गायन्ति मुनिपुञ्जवा. ॥

अर्थात् ‘हे नाथ। मैं अनेक प्रकार के समार रूपी महासागर से तार ढूँगी। इसी कारण से लोक मे मुझको मुनियो मे श्रेष्ठ लोग ‘तारा’ नाम से गान किया करते हैं।’

श्रितापो—प्राचिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक से तारने वाली को तारा कहते हैं। सासारिक बन्धनो, विपत्तियो और कठिनाइयो से मुक्ति दिलाती है। समार सागर से तारती है, उभारती है, तभी तारा कहलाती है।

वेदिक माहित्य में जगन् की सृष्टि सूर्य से मानी गई। वही इसका आधार है। सूर्य भग्नि का महापिराड है। अग्नि हिरण्यरेता कहलाती है और सौरमण्डल हिरण्यमय। इस हिरण्यमय मण्डल के मध्य में सारे ब्रह्मतत्व अविद्यित हैं ‘इसलिए सौरब्रह्म—हिरण्यगर्भ’ कहलाता है। इसी हिरण्यगर्भ की शक्ति को तारा कहते हैं। जिस तरह महाकाली महाप्रलय की अधिष्ठात्री हैं, उसी तरह ‘उग्रतारा’ सूर्य प्रलय की अधिष्ठात्री है। दोनो ममानधर्म हैं।

सूर्य का नाम रुद्र भी है। इसके दो रूप हैं—शान्त और घोर। हिरण्यगर्भ की उग्रता क्षुग के कारण थी। अग्नि की भ्राह्मति से उसकी शान्ति रहती है। उग्र—हिरण्यगर्भ की शक्ति को ‘उग्रतारा’ कहते हैं।

तारा के विविध नाम हैं। तारा, तरणि, तरना, तारिणी, प्रभा,

प्रिह्णा, तत्वज्ञानप्रदा, ग्रनथा, सत्वरूप, रजोह्णा तमोह्णा, परानन्दा साक्षात् चेतन्य शक्ति स्वरूपा आदि ।

तारा को द्वितीय महाविद्या अथवा सिद्ध विद्या कहते हैं । तारा की तीन शक्तियाँ हैं । वह सरलता से ज्ञान दर्ती है इसलिए नील सरम्बती कहलाती है । वह केवल्य दायिनी है इसलिए एक जटा है । वह उपासकों की उग्र प्राप्तियों का निवारण करती है इसलिए 'उग्रतारा' नाम पड़ा । विद्वानों का यह भी विद्वास है कि योग दशन से जिस 'शून्यम्भरा प्रज्ञा' की चर्चा है, वह इसी विद्या द्वा स्पष्टीकरण किया गया है ।

तारा परमशक्तिरूपा है । यह परब्रह्म परमात्मा से अभिन्न है । कथा आती है कि जब देवामुर सग्राम हुआ तो देवों के नेता इन्द्र ने अमुरों पर विजय पाने के लिए भगवती तारा की उपासना की थी, जिससे उन्हें अभीष्ट मिथि मिली थी ।

महिमा

शास्त्रो मे तारा की महिमा इम प्रकार वर्णित है—
 ब्रह्मतरी जय तारिणि मुक्ते
 ब्रह्मविष्णुशिवशाखयुक्ते ।
 मोक्षफल फलमम्बुतमरस
 नित्यानन्दमये कुरु कुरु गम् ॥

अर्थात् 'आप ब्रह्म के तरु के स्वरूप वाली हैं तथा मुक्त और तारण करने वाली हैं । आपकी जय हो । ब्रह्मा, विष्णु और शिव उसी ब्रह्म तरु की शाखाएँ हैं । मोक्ष रूपी इसका फल है जो अतीत अद्भुत और सरस है । आप नित्य ही आनन्द से परिपूर्ण रहती हैं—कल्याण करो—मङ्गल करो ।

किमन्यन्महेशि । प्रियत्वेन देवा
 भवत्पादधूलीलवैकेन देवा

त्वया यन्न सूक्ष्मीयपुक्षीस्वरूपो
 निरीहो नरीनत्यंसौ विश्वरूप ।
 त्वयैवोजिजहीते परेशोऽपि शक्त्या
 नमामीश्वरि । त्वामह देविभक्त्या ॥
 मूलप्रकृतिविकृतिर्महदाच्या, प्रकृतिविकृतय, सप्त ।
 घोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृति पुरुष ॥

अथात् 'हे महेशि । अन्य क्या कहा जावे । ये देवगण आपके ही प्रियपात्र होने वाले हैं । समस्त देवगण आपके चरण की धूलि के एक कण के समान हैं । जिसको सूक्ष्मीय पुक्षी स्वरूप नहीं किया है, वह निरीह विश्वरूप नृत्य किया करता है । परेश को भी आपने ही अपनी शक्ति के द्वारा प्रभावशाली बना दिया है । हे ईश्वरि । हे देवि । मैं भक्ति-भाव से आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित करता हूँ । प्रकृति मूलस्वरूपा है और महत्तत्वादि सातो उसी की विकृतियाँ हैं । इस प्रकार से सोलह विकृतियाँ हैं । प्रकृति में कोई भी विकार नहीं है और पुरुष भी विकृत नहीं होता ।'

नील तत्त्व के अनुसार—
 ज्वलत्पावकज्वालजाभिभास्व-
 च्चितामध्यसस्था सुपुष्टा सुखर्वम् ।
 शव वामपादेन कण्ठे निपीड्य
 स्थिता दक्षिणोनाड् ग्रिहणाड् व्रि निपीड्य ॥

अर्थात् 'जलती हुई अग्नि की ज्वालाओं के जाल के कारण अभिभास्वमाण चिता के मध्य में स्थित—सम्पूष्ट और मुखर्वा आप हैं । वयि पाद से शश को कण्ठ में निपीडित करके सम्यित है तथा दाहिने पाद से चरण को निपीडित करने वाली हैं ।'

और भी कहा है—
 विना ध्यान विना जाप्य विना पूजादिभि प्रिये ।

विना वलि विनाम्यास भूतशुद्धयादिभिर्विना ॥
विना वलगादिभिर्देवि देहदुखादिभिर्विना ।
सिद्धिगंगु भवेद्यमात्समात्सर्वोत्तमा मता ॥

अथर्वा 'विना' ध्यान, जप, पूजा, वनि, अम्यास, भूतशुद्धि, घलेश, देह दुख से ही इसकी सिद्धि प्राप्त होती है । इसीलिए सभी प्रकार की मिद्धियों ने इसे मर्वोत्तम माना जाता है ।

अन्य धर्मो व देशो मे तारा-भक्ति का प्रसार

तारा इननी नोकप्रिय देवी है कि इसकी पूजा केवल हिन्दू धर्म मे ही नहीं, अन्य धर्मो और सम्प्रदायों मे भी होती है । इस देश मे ही नहीं, विदेशो मे भी इसका उच्च सम्मान था ।

जैन धर्म मे 'सुतारा' व 'सुतारका' नाम से देवी रो उपासना होती है । श्वेताम्बर शाखा इसे सुविधि नाथ की शासन दर्शन या यक्षिणी मानती है ।

तारा बीदू धर्म के महायान सम्प्रदाय की एक प्रसिद्ध देवी है । हिन्दू धर्म मे जो प्रतिष्ठा तारा अथवा दुर्गा की है, वही महायान मे तारा की है । जैमे शिव की शक्ति को 'दुर्गा' नाम दिया गया है, वैस बीदू धर्म मे तारा अवनोक्तिश्वर की शक्ति है । तारा को वहाँ देवमाना के सम्मानीय पद से विभूषित किया गया है ।

तारा की उपासना तिच्वर मे भी प्रचलित थी । मगोलिया मे भी तारा की उपासना होती थी । वहाँ इसका नाम 'दर-एके (Dara-ek) था ।

तारा तत्त्व को जानने के लिए उसके विभिन्न प्रकार के ध्यानों का अवलोकन करना होगा । मन्त्र-शास्त्र मे तारा का ध्यान इस प्रकार है—

विश्वव्यापकदारिमध्यविलसच्छेवेताम्दुजन्मस्थिता
 कर्त्रीखड्गकपालनीलनलिनै राजत्करा नीलभासु ।
 काञ्चीकुण्डलहारकङ्कणलसत्केयूरमञ्जीरता-
 माप्तेनगिवरंविभूषिततनूमारक्तनेत्रवयासु ॥
 पिङ्गोग्रे कजटा ललत्सुरशना दष्टाकरालानना
 चर्म द्वैषि वर कटी विदधती इवेतास्थिपटुलिकासु ।
 अक्षोम्येरा विराजमानशिरस स्मेराननाम्भोरुहा
 तारा शावहृदासना दृढकुचाम्बा त्रिलोक्या रमरेत् ॥

अथत् 'विश्वव्यापी' जल से निकले हुए एक सफेद कमल पर
 अधिष्ठित, कैची, खड्ग, कपाल, और नीलोत्पल को हाथो में धारण
 किए हुए, सर्पों से बने काञ्ची, कुण्डल, हार, कङ्कण, केयूर, मञ्जीर,
 (नूपुर) से विभूषित, तीन रक्त नेत्रों वाली, एक पीली जटा वाली,
 सुन्दर रशना से मणिडत, विकराल दष्टा से युक्त, कटि प्रदेश में चीते के
 चर्म को लपेटे हुए, श्वेत हड्डियों की पट्टालिका धारण 'किए हुए, शव-
 हृदयासना, जिसके सर पर 'अक्षोम्य' प्रतिष्ठित है, ऐसी स्मितवदना,
 त्रैलोक्य-जननी भगवती तारा का स्मरण करे ।'

'नील तन्त्र' में इस प्रकार व्यान करने का प्रादेश दिया गया है—
 प्रत्यालीढपदा घोरा मुडमालाविभूषितासु ।
 खर्वी लम्बोदरी भीमा व्याघ्रचर्मावृता कटी ।
 नवयौवनसम्पन्ना पञ्चमुद्राविभूषितासु ।
 चतुर्भुजा ललजिज्हामहभीमा वरप्रदासु ॥
 खडगकर्त्रीधरा सव्ये यामे मुण्डोत्पलन्त्रितासु ।
 पिंगोग्रे कजटा ध्यायेन्मौलावक्षोम्यभूषितासु ॥
 वालाकर्मण्डलाकारलोचनवय भृशितासु ।
 प्रज्वलतृष्णितृ भूमध्यगता दष्टाकरालिनीसु ॥

सावेगस्मेरवदनामस्थ्यालकार भूषिनाम् ।
विश्वव्यापकतोयान्त इवेनपञ्चोपरिस्थितम् ॥

अर्थात् 'पद को प्रत्यालीढ़ करने वाली—घोर और मुराडो की माला से विभूषित हैं । खर्व (छोटे कद वाली)—लम्बे उदर से युक्त—भयानक कटिभाग में व्याघ्र के चम को धारण करने वाली हैं । नूतन योवन से युक्त तथा पाच भुजाओं से ममलकृत हैं । चार भुजाओं वाली तथा जीभ को वाहर निकाले हुए महान् भीम स्वरूप वाली एवं वरदान प्रदान करने वाली है । बाये हाथ में खड़ और कर्वी धारण करने वाली तथा नरमुराडो के कपालों से युक्त हैं । पिंग एवं उग्र आगे की जटा वाली मस्तक में अक्षिमाला से विभूषित का ध्यान करना चाहिए । बाल सूर्य-मण्डल के आकार वाले तीन लोकनों से ग्रलकृत हैं । प्रज्ञनित पितृमूर्ति (शमशान) के मध्य में रहने वाली, बड़ी बड़ी दाढ़ों से कराल स्वरूप में युक्त, आवेश से युक्त, मुस्कान पूर्ण मुख वाली, अस्थियों के भूषणों से भूषित एवं विश्व में व्यापक जल के अन्दर इवेन पञ्च पर स्थित हैं ।'

मन्त्र चूडामणि में तारा का ध्यान इस प्रकार दिया गया है—

तम्योपरिगृहे देवी खर्वी नीलमणिप्रभाम् ।

लम्बोदरी व्याघ्रचमसमावृतनितम्बिनीम् ॥

पीनोन्तपयोभरा रक्तवत्तुललोचनाम् ।

ललजिज्ह्वा महाभीमा दृष्टाकोटिमुज्जवलाम् ॥

नीलोत्पललम्नमाला बद्धजूटा भयकरीम् ।

इवेनास्थिपटिकायुक्तरुगालरञ्जशोभिताम् ॥

ललाटे रक्तनागेन कृत रुणांवितसकाम् ।

श्रतिशुभ्रमहानागनहारमहोजजवलाम् ॥

हूर्वदिलश्यामनागकृतयज्ञोपवीतिनोम् ।

हृत्युभ्युर्जारक्तमप्युपरिहस्तिनिम् ॥

जटाजूटाक्षयुरेण शाभिता तीक्ष्णावाग्या ।
 यद्गोन दक्षिणम्याद्वं शाभिता ओरनादिनीम् ॥
 तदध, स्थाटीजवृन्तकर्त्तकालगृहा परम् ।
 वामाद्व रक्तगालिन दिग्मवरमनोहराम् ॥
 दधती नालपद्मच्च तदध स्थानु कपानकम् ।
 जगता जात्यग्युक्त दधती कुन्दगन्तिभाम् ॥
 धूमाभनागसन्दोहकृतकेयूरसत्वराम् ।
 सुवण्णरण्णनामेन ककणोजज्वलपाणिकाम् ॥
 शुभ्रपणमहादेवगृहसदविमलासनाम् ।
 तियन्नरणिग्रातद्वत् सकुचत् प्रपदात्मकाम् ॥
 शवपादद्रयारूपामपादा हमन्मुखीम् ।
 कुन्दाभनागस्याभिकटिसूत्रा त्रिलाचनाम् ॥
 अमृगक्तेन नागेन गृननूपुरपल्लवाम् ।
 सधदिद्वन्नगतदरक्त मुण्डेरक्तविभूपणे ॥
 अन्योन्यकेशग्रथित पादपद्मविलम्बिते ।
 पञ्चाशदभिमहामालाशोभिता परेमदवरीम् ॥
 ज्वलच्छितामध्यसस्था द्यीपिचर्मोत्तराशुकाम् ।
 अक्षोभ्यनागसम्बद्धजटाजूटा वरप्रदाम् ॥
 एवभूता महादेवीमात्मान यागवस्तु च ।
 विज्ञापयेन्महादेव पण्डितान्हे महाकवि ॥

अथर्वा 'उमरा' क्षेत्र गृह में खर्त और नीनमणि की प्रभा के समान प्रभा वाली है। लम्बे उदर से युक्त तथा वाघ के चर्म से ढके हुए जितम्बो गाली हैं। पीत एव उन्नत स्तनों से रामन्त्रित तथा रक्त और और वरुंज लोचनो वाली हैं। जोभ को बाहर निकाले हुए—अति

भयानक तथा करोड़ो दाटो मे ममुज्जवल हैं। नीन कमलो की माला मे शोभित प्रांग अपने जूटे को बाधे हुए भयद्वार रूप वाली है। इवेत अस्मियों के पट्टिका से युच्च पाँच कपालो मे शोभा वाली है। ललाट मे रक्त नाग मे कणावतम बनाये हुए तथा अत्यन्त शुभ्र महानाग का हार धारण करके महान् उज्जवल स्वरूप वाली है। दूर्वा दे दल और श्याम नाग का यज्ञोपवीन धारण करने वाली है। चार मुजाहो से युक्त तथा रुविर और माम के टुकडो मे मणिटन मुष्टि वाली है। जटाजूट और अक्षो के मूत्र मे शोभित—नीदण धार वाले खग से दक्षिण भाग के ऊपर वाले भाग मे शोभा मे पूर्ण हैं तथा वीर-नाद करने वाली हैं। उसके नीचे रहने वाले भाग मे वीज वृन्त की करने वाली से भूषित पर तथा वास ऊर्ध्व भाग मे रक्त नाग मे युक्त प्रौर दिग्म्बर एव मतोहर स्प वाली हैं। नील पद्म और उसके नीचे कपान कोधारण करने वाली हैं। जगतो की जडता मे सयुक्त को धारण किये हुए कुन्द के तुल्य हैं। धूम्र की आभा वाले नागो के ममूह मे केयूरो वाली—सत्त्वर हैं। सोने के वर्ण वाले नागो से हाथो मे उज्जवल कङ्कण धारण करने वाली हैं। शुभ्र वर्ण वाले महादेव के साथ सत् और विमल आसन वाली है। नियन्त्रण के भय से आपके माथ मकोच वाले प्रपदो से युक्त हैं। शब के दोनो पादो पर अपना वाँया पाद ममाहृ करने वाली हैं। हास्ययुक्त मुख वाली है। कुन्द के पुष्प की आभा वाले भाग मे शोभित कटिमूत्र वाली एव नील लोचनो मे युक्त हैं। रुविर के नमान रक्त नाग से नूपुर पलनवो की रचना करने वाली हैं। तुरन्त ही भेदन करने से जिनमे रुविर वह रहा है ऐसे रक्त मे भूषित मुण्डो से जिनके केश एक दूसरे मे ग्रयित हो रहे हैं और चरण कमल तक लटके हुए हैं ऐसे पचास मुण्डो की महामाला ने शोभा वाली परमेश्वरी है। जनती हुई चिता के मध्य मे घ्यित हाथी के चर्म से उत्तरीय वर्ष धारण करने वाली हैं। अक्षोभ्य नाग मे जटाजूट को वाँधने वाली तथा वर देने वाली हैं। ऐसी महादेवी

को अपने आप को समर्पित करना है। महादेव को महाकवि परिडत के द्वारा विज्ञापित करना चाहिए।'

उपरोक्त ध्यानो में जो विषय जाए हैं, उनका स्पष्टीकरण यहाँ किया जाता है—

◆ जगत्कृत्यापी जल मे कमल पर स्थित

भगवती तारा विश्वकृत्यापी जल से निकले एक इवेत कमल पर लड़ी हैं। इसने सूचिन हो गई है कि वह जल-प्लावन के भय का निवारण करती है। यह लघुभट्टारक रचित 'लघु स्नव' के निम्न पद मे स्पष्ट हो जायगा।

लक्ष्मी राजकुले जया रण भुवि क्षेमद्वारोम व्वनि
क्रव्यादद्विपन्ति भाजि शब्दरी कान्तारदुर्गे गिरी।

भूतप्रेतपिशाच राक्षसभये स्मृत्वा महाभैरवी
व्यामोहे त्रिपुरा तरन्ति विपदस्तारा च तोयालवे ॥

अर्थात् 'राज-कुल में लक्ष्मी - रणभूमि मे जया - माग मे क्षेम करने वाली - क्रव्याद - हायी - सप वाले कान्तार दुर्ग तथा गिरि मे - सूत-प्रेत पिशाच और राक्षसो के द्वारा होने वाले भय मे महा भैरवी का स्मरण करे। व्यामोह होने पर त्रिपुरा को और नोय ज्लव मे तारा का स्मरण करने पर विपत्तियो मे उद्वार हो जाता है।'

नह्याण्ड पुराण मे ललितोपाल्यान मे भी इस तथ्य की पुष्टि की गई है—

सनो नाम महाशाल

तत्प्रध्यक्ष्या भागस्तु सवर्ष्यमृतवापिका ।

न तत्र गन्तु मार्गोऽस्ति नौकावाहनमन्तरा ॥

तारा नाम महाशक्तिर्वर्त्तते तोरणेश्वरी ।

बहुवयरतत्रोत्पलश्यामास्ताराया परिचारिका ॥
 रत्ननीकासहस्रे रण खेलन्त्यस्सरसीजले ।
 अपर पारमायान्ति पुनर्यान्ति पर तटम् ॥
 कोटिशस्तत्र ताराया नाविकयो नवयौवना ।
 मुहुर्गयिन्ति नृत्यन्ति देव्या पुण्यतम् यज ।
 अरित्रपाण्य काश्चित्काश्चिच्छृगाम्बुपाण्य ।
 पिबन्त्यस्तत्मुधातोय सञ्चरन्त्यस्तरीशते ॥
 तासा नौकावाहिकाना शक्तीना श्यामलत्विपाम् ।
 प्रधानभूता ताराम्बा जलौघशमनक्षमा ॥
 आज्ञा विना तयोस्तारा मन्त्रिणीदण्डनाथयो ।
 त्रिनेत्रस्यापि नो दत्ते वापिकाभिरि सान्तरम् ॥
 तारातरणिशक्तीना समवायोऽतिसुन्दर ।
 इत्थ विचित्ररूपाभिनौकाभि परिवेष्टिता ॥
 ताराम्बा महती नौकामधिगम्य विराजते ॥

अर्थात् 'मनो नाम वाली एक महाशाला है, उसके मध्य वाले कक्ष मे एक ऐना भाग है जहाँ पर अमृत की बावडी है। वहाँ पर नौका वाहन के बिना जाने का कोई मार्ग नहीं है। वहाँ तारा नाम वाली महाशक्ति तोरणेश्वरी विद्यमान है वहाँ बहुन-सी उत्पन के समान श्याम वण वाली तारा की परिचारिकाएँ भी विद्यमान रहती हैं। सहस्रो रत्नों की नौकाओं से वे सरसी के जल मे बिहार किया करती हैं। दूसरे तट पर आ जाती है और फिर इस तट पर आ जाती है। वहाँ पर करोड़ो नवीन योद्धन वाली तारा की नाविनाएँ हैं। वे बारम्बार देवी के पुण्यतम् यज्ञ का गायन किया करती हैं और नृत्य किया करती हैं। कुछ के हाथों मे ग्रन्थ हैं तो कुछ के हाथों मे शूगाम्बु हैं। वे उस अमृत जल का पान किया करती हैं और सैकड़ो नौकाप्रो मे सञ्चरण किया

करती है। श्यामल कान्ति वाली उन नोका वाहिनी शक्तियों में प्रधान-भूत ताराम्बा है जो बलवान् पापों के शमन करने में समर्थ है। दण्डनाथ उन दोनों की आज्ञा के विना ही मत्रिणी तारा पूर्ण समय है। उस वापिका के जन में वह विनेत्र को भी अन्तर नहीं देती है। तारा तरणी की शक्तियों का अत्यन्त सुन्दर समवाय है। इस प्रकार से विचित्र रूप वाली नोकाओं से वह परिवेषित है। ताराम्बा एक बड़ी नोका में बैठ कर विराजमान होती है।

इसका एक और भाव भी है। जगत् में जल के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इस स्थिति को श्रूति में ‘निरति शमानन्दामृतसागर’ की सज्जा दी है। इस श्रानन्दामृत सागर में भगवती इवेत कमल पर स्थित है। इवेत वर्ण विशुद्ध सत्त्व का प्रतीक है। अर्थात् यही कमल उनका आमन है।

◆ चतुर्मंजा

चार भुजाओं से खड़ा, कैची, कपाल और कमल है। विष्णु-पुराण १५२७४ के अनुसार खड़ा अविद्यामय कोश से आच्छादित विद्यामय ज्ञान का प्रतीक है। भगवती तारा आव्यातिक ताप के निवारण के लिए, कर्म वन्धन को ज्ञान व्यापी खट्टे में काटती है। जीव के आत्म विकास के लिए इस अस्त्र का रहना अत्यन्त ग्रावश्यक है, क्योंकि हमारे चारों ओर का वातावरण तामसिक व राजसिक प्रवृत्तियों से अोत्प्रोत है। आमुर्ति, शक्ति घान लगाए बैठी रहती है, शोडी-मी श्रसावधानी से वह आक्रमण करके अपना प्रभुत्व जमा लेनी है। कैची से भगवती आविभौतिक या आधिदेविक तापों को दूर करती है। यट्टे और कैची दोनों का भाव एक ही है, अनन्त बेवल वटे और लट अभ्य का है। सकुचित स्थानों पर जहाँ खट्टे स प्रहार नहीं किया जा सकता, वहाँ कैची से काम निया जाता है।

कपान से रक्तपान का प्राभास होता है। रक्त वर्णं रजोगुणं का

धोतक है। भगवती रजोगुण अथवा मोह का पान या निवारण करती है। जीव को भी मोह रूपी रूपता को पान करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता चाहिए।

कमल अलिभता का प्रतीक है। भगवती अज्ञानात्मकार, अविद्या, त्रितापो और मोहादि से संघर्ष करती है, उन पर विजय ही प्राप्त करती है, किसी से प्रभावित नहीं होती, रजोगुण रूपी रूपता का पान करती हैं परन्तु एक भी छीटा उन पर पड़ नहीं पाता। साधक को भी ऐसी ही मिथ्यता तक पहुँचने वा प्रयत्न करना चाहिए ताकि जगत् में रहते हुए भी उससे अलिप्त रहे।

अष्टनाग विभूषिता

भगवती अष्टनागो में वने विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण करती है। इसमा अभिप्राय आठ प्रकार की प्रकृतियों से हैं जिसका वह प्रतिनिवित्व करता है। वह अष्टवा सिद्धियों से विभूषित है। यह सिद्धिगां प्रदान करने की भी सामर्थ्य रखती है, परन्तु आत्मविकास के मार्ग में वह वाधक का काम करती है, इसलिए नाग रूप में उन्हे प्रदणित किया गया है जो भौतिक शरीर की दृढ़लीला समाप्त करने की शक्ति रखते हैं अर्थात् जीव की यात्रा में वधक सिद्ध होते हैं। एक भाव यह भी है कि पूर्णता की प्राप्ति के लिए यम, नियमादि योग के आठ अङ्गों का पालन आवश्यक है। भगवती के साधक को इस मार्ग पर चलना ही चाहिए।

त्रिनयना

भगवती तारा के तीन नेत्र हैं जो चन्द्र, सूर्य और अग्नि के प्रतीक हैं। इसमें वह सर्वमाध्यी और अन्तर्यामी सिद्ध होती है। वह ज्ञान, इच्छा और क्रिया—त्रिशक्ति की द्योतक है। किसी भी मिद्धि के लिए सर्व प्रथम उसका ज्ञान अर्जित करना आवश्यक होता है। फिर उसे Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MA

ध्यवहारिक रूप देने के लिए इच्छा जाग्रत होती है। इच्छा बलबन्धी होने पर क्रिया रूप धारण करती है।

भगवती त्रिकालदर्शी है। वह भूत, भविष्यत् और वर्तमान में जो कुछ हुआ है, हो रहा है या होने वाला है, सबको जानती है। इन तीनों की गतिविधि का ध्यान रखते हुए कार्य करने वाले को ही त्रिकालदर्शी कहते हैं। अत भगवती का आदेश है कि भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों को देखो, त्रिकालदर्शी बनो और विवेक, अनुभव, स्थिति रथा दूरदर्शिता के आवार पर अपने कार्यक्रम बनाओ। ससार में जितने भी दुख हैं, उनके तीन कारण हैं—प्रज्ञान, प्रशंकित और प्रभाव। भगवती का इन तीनों पर नियन्त्रण है और उन्हे दूर करने की क्षमता रखती है।

भगवती तीन नेत्रों से भुवनक्रय, भू, भुव स्व पृथ्वी, अन्तरिक्ष और ज्योलोक को देखती है। उसकी दृष्टि बड़ी पैंती है, उससे कुछ लिपा नहीं है। अत छिप कर पाप करना, मानसिक पाप करना ज्यर्थ है। इन सबको वह क्षण भर में जान जाती है, और चित्रगुप्त को लिखाने के लिए सूचित कर देती है।

वह अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत—इस त्रिदर्शन की प्रथिष्ठानी है तभी पराविद्या सिद्ध होती है।

तारा त्रिदेवो—ग्रहा, विष्णु और महेश की उत्पत्ति, पात्रन और सुहार का मधी प्रकार का कायं करती है वयोकि सूर्य, चंद्र और अग्नि इन तीन विद्यतियों के प्रतीक हैं।

भगवती वा गुणत्रय—सत्य, प्रेम और न्याय को योग निरन्तर ध्यान रहता है। सत्य की प्राप्ति के लिए विवेक वा प्राध्य लेना प्राप्तश्वक होना है। दूसरों के प्रति नि न्याय ग्रात्मीदना का होना ही मन्त्रा

त्रैम है। न्याय का अर्थ है—सन्तुच्छन। न ग्रपना ग्रषिकार हरण करने देना और न किसी का करना। भगवनी की व्यवहार-नीतियाँ इन्हीं गुणों पर आवागित हैं। भगवनी को प्राप्त करने के लिए इन गुणों का विकास आवश्यक है।

◆ पिंगैकजटा

भगवनी तारा की एक जटा पिंग गण की है। एक जटा का अभिप्राय केशों को वेणी के रूप में बनाना है। केश का आध्यात्मिक अर्थ विद्वता—ब्रह्मा, विष्णु और महेश है जिसमें 'क' का प्रतीक ब्रह्मा, 'श' का प्रतीक विष्णु और 'ईश' का महेश है। ब्रह्मा सतोगुण का, विष्णु रजोगुण का और महेश तमोगुण का द्योतक है। एक जटा में तीनों गुण मिथ्रित हैं। उनको अलग करना असम्भव है। वह तो साध-साध्य ही रहते हैं। सात्त्विकता की वृद्धि चाहने वाले को रज और तम से घृणा नहीं करनी चाहिए, वह भी इस जीवन की स्थिरता के लिए आवश्यक है। केवल आवश्यकता इस बात की है कि उनके प्रभाव से घनासक्त व अलिप्त रहा जाए। एक जटा से अभिप्राय तीनों गुणों की एकता से है। मत्, रज और तम के प्रतीक वर्णों को यदि मिलाया जाए तो परिणाम पिंग वर्ण ही होगा। भगवनी को तीनों की एकता ही अभीष्ट है, तभी वह जटा में पिंग वर्ण धारण करती है सौर यह भी सकेत करती है कि इस अभीष्ट मिद्दि के लिए घोर परिश्रम, तप की अपेक्षा है (पिंग वर्ण तप का द्योतक है)। सात्त्विकता के विकास के लिये आवश्यक है कि रज और तम को तम किया जाए, दवाया जाए, इसके लिये तप करना होगा।

◆ दष्टाकोटिममुज्ज्वला

इसका तात्पर्य ममुज्ज्वल दशन पक्षि से है जिससे सपलपाती दित्ता को दवा कर रखती है। उज्ज्वलता का प्रतीक सतोगुण है।

लाल जिहवा रजोगुण की द्योतक है। यहाँ सतोगुण ने रजोगुण को दबा रखा है। भगवनी वे उपासकों को भी यही प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें रजोगुण को नियन्त्रण में रखना चाहिये।

◆ चीते के चर्म को श्रोढ़ने वाली

तारा चीते के चर्म को श्रोढ़नी हैं। चीता महान् क्रूर स्वभाव का है। प्रत, तमागुण का प्रतीक है। किंपी पशु का चर्म श्रोढ़ने के लिए उसका वध आवश्यक है। वध करने वाला उसमें शक्तिशाली होता है तभी वह साहस कर सकता है। चीते के चर्म के श्रोढ़ने का अभिप्राय तम को निय लगा में रखना है। सतोगुण के विकास के लिए तम को दबाना ही पड़ेगा।

◆ श्वेतास्थपट्टिकायुक्त

तारा श्वेत अग्नियों के आभूपणों में विभूषित है। अस्ति माँस मज्जा से तभी अनग होती है जब मृत्यु होनी है। सारे जगत के प्राणियों की मृत्यु ना अभिगाग प्रलय से है। इस समय की तारा श्वेत आभूपण धारण किए हुए है। श्वेत वर्ण सतोगुण का प्रतीक है। चाहे अपने पर कंसी भी प्राप्ति वयो न आ जाए, कंगो भी गिरी हृदई परिम्यतियों से वयो न गुजरना पड़ रहा हो, अपनी आत्मा के स्वाभाविक गुण--मत्र की ही अपनी शोभा समझना चाहिए।

◆ अवासना

प्राणी यत्र त्वं मे तभी आता है जब उसमें गात्मशक्ति का अभाव हो जाता है। यत्र प्रलयावस्था एवं मृत्युनिति करता है। प्रत्य में सभी कुछ निर्जीव हो जाता है तेवत भगवनी ही अपने स्वाभाविक स्वप्न में विद्युमान रहती है। प्रलय विनाश का चिन्ह है। भगवनी इस द्यापक दिनांक म प्रभावित रहती है उन्हिं उग प्रग निय गण रम्यती है।

जब से यह भी लक्षित होता है कि यह भौतिक जगत् अनित्य है। जो अनित्य जगत् के मोह में फ़प जाता है, वह मदेव दुखी रहता है वयोकि नष्ट होने वाली वस्तु का स्वभाव ही नाश है। यदि उसमें आसक्ति रही तो शोक होगा ही। भगवती ने इम अनित्यता की भावना को अपने विरो के नीचे दबा रखा है और उस पर स्वयं खड़ी है ताकि वह उठ न सके। प्रात्मा नित्य हैं। जिनमें प्रात्म प्रकाश होता है, यह इसी प्रकार अनित्यता रूपी धर पर खड़े हुए गोचर होते हैं।

◆ अक्षोभ्यनाग मम्बद्ध जटाजूटाम्

तत्प्र-प्रन्थों से अक्षोभ्य शिव का ही नाम है। ताग तन्त्र अथवा तोड़ल तन्त्र में कहा है--

ममुद्रमथने देवि । कालकूट समुत्तियतम् ।
 सर्वे देवाऽन्न देवश्च महाक्षोभमवाप्नुयु ॥
 क्षोभादिरहित यस्मात् पीत हालाहल विषम् ।
 अतएव महेगानि । अक्षोभ्य परिकीर्तिः ॥
 तेन साद्व महामाया तारिणी रमते मदा ।

अक्षोभ्य नाम का मम्बन्व पुण्यों की ममुद्र मन्यन की क्या मे है। ममुद्र मन्यन करते हुए जब हलाहल विष निकला तो चारा ओर का वातावरण विपाक्त होने लगा, मारे विश्व में खलबली मच गई तो देवताओं ने भगवान् शङ्कर से प्रार्थना की कि वे इम सङ्कृट से उवारें। शङ्कर ने इम विष का पान कर लिया और विश्व में शान्ति स्थापना हुई। मधी को यह विश्वाग या कि शङ्कर को इसमें क्षोभ होगी परन्तु ऐसा नहीं हुआ। वे क्षोभङ्घिन रह, इसलिए उनका 'अक्षोभ्य' का आव्यातिमक अर्थ 'अहङ्कार शून्य' है। 'प्रहङ्कार' महान् विष है, उसे जो पीता है और अप्रभावित रहता है, वही अक्षोभ्यावस्था से प्राप्त होता है। यह शान्ति की उच्चतम प्रवस्था है। तारा को कौमी भी

आसुरी शक्तियों से जूझना पड़ा हो, विर्यले बातावरण के सम्पर्क में आना पड़ा हो, वह अक्षोभ्य ही रहती है। उसके मन्त्रितष्ठक में स्थायी शन्ति स्थिर रहती हैं। नाग 'क्षोभ' का प्रतीक है, उसके रहते हुए भी वह खुब्ज नहीं होयी, यही इसकी विशेषता है। तभी इसी अवस्था के द्योतक अक्षोभ्य को उन्होंने अपने मस्तक पर पारण कर रखा है, पर्याति उच्च सम्मान प्रदान किया है।

◆ प्रत्यलोढा

प्रत्यलोढा का अर्थ ने बांया पर आगे और दांया पीछे। स्वीका शक्ति जब क्रियाशील होने लगती है तो बांया पर ही पहिले उठता है। यह सक्रियता का द्योतक है। तारा सतोगुण के विकास की प्रतीक है और सदैव रजोगुण और तमोगुण को नियंत्रण में रखने को तत्पर रहती है, यह उनकी इस विशेष मुद्रा में ही लक्षित होता है।

◆ मुण्डमाला घारिणी

मुण्डमाला प्रलयावस्था की सूचक है। तारा उसे अपने नियंत्रण में रखती है।

पचास मुण्ड वर्णों के भी प्रतीक हैं। इससे तारों का धात्वा रूप शब्द जह्य प्रतीत होता है।

◆ खण्डर युक्त

तारा प्रलयावस्था से सम्बन्ध रखती है। जिस तरह महाकाली को महाप्रलय की अविष्टात्री माना जाता है, उसी तरह 'उग्रतारा' को सूर्य-प्रलय की अविष्टात्री स्वीकार किया गया है। सौरप्रलय के समय सूर्य सभी प्राणियों का रस सुखा देता है और उग्रतारा उसे पी जाती है। इस विशेष रूप से शिर के कपाल में रहता है। इसीलिए खण्डर से सम्बन्ध है।

◆ स्थूल उदर वाली

स्थूल उदर से ब्रह्म के विराट् विश्व रूप की ओर सकेव है। जैसे वह कूटस्थ व सूदम होता है, वैसे वह स्थूल होता है। इससे प्रणव के आकार का भी बोध होता है क्योंकि उच्चार का प्रभिप्राप्त हिरण्यगम का तजस् रूपी सूदम शरीर और मकार से घन्धाकृत प्रज्ञारूप कारण शरीर है। भगवती का स्थूल शरीर प्रणव का विराट् विश्व शरीर है।

◆ कराल वदना

भगवती तारा कराला है, उसे देख कर भय लगता है। ब्रह्म के परम उपर रूप को ही उग्रतारा कहते हैं। तारा ब्रह्म की मूल सत्ता व पराक्रान्ति है, वह नित्य विराट् मत्ता है जिसके प्रादेश वर सभी अपरा शक्तियाँ कायरत रहती हैं। मूर्यं, चन्द्रं, पृथ्वी, अन्य नक्षत्र, वायु आदि सभी प्राकृतिक शक्तियों का सञ्चालन भगवती फरती है। उसके भीषण रूप को देख कर सभी अपने-अपने कायं में रत रहते हैं। इस उग्रता से विराट् ब्रह्म का तेजस्वी रूप ही सूचित होता है।

◆ खर्वा

तारा को खर्वा इमलिए कहते हैं कि वह एक क्षण मात्र में दिग्नोविषों के प्रहङ्कार को चकना-चूर कर देती है, गब को खब कर देती है। इसीलिये इसका भोजन भी प्रहङ्कार मात्र बताया जाता है। वह इसी पर जीवित रहती है।

एक भाव भी यह है। खर्वा का धर्म नाटी भी होता है। तारा स्थूल उदर वाली है, उसका विराट् विश्व रूप है, नितनी वह विराट् है, उतनी सूक्ष्म भी है। ब्रह्म के यह दोनों रूप हैं, विराट् भी और अग्नु से अग्नु भी। इन दोनों में साहश्यता है। विराट् और ब्रह्मागड़ की शक्तियाँ एक ही हैं। विष्णु विराट् हैं, विश्वव्यापी देव हैं, वही वामन—

बोने रूप में ग्रवतरित हुए। वह पहले ढंगा था, प्रल्प था, फिर वह बड़ा और विराट हो गया। ग्रणिमा ही भूमा बनता है। श्रणु ही विस्तार पाकर महत्र बनता है, वामन ही विरतृत हो कर विष्णु बनता है, विराट बनता है। तारा के भी यह दोनों रूप हैं, वह विराट भी है और श्रणु भी है।

◆ व्याघ्र चम्पादृता

तारा ने वाघ के चर्म का अष्टोवत्र धारण कर रखा है। वाघ बन का राजा कहलाता है, वह शक्ति सम्राट है परन्तु वह शक्ति स्थूल है, अनित्य है। पशुत्व उम्का वास्तविक रूप है, अज्ञानता ने उसे धेर रखा है। वह रजोगुण का प्रतिरूप है। इसे मार कर भमवती ने उसके चर्म औ ओढ़ रखा है, अर्थात् उसे अपने नियन्त्रण में कर रखा है क्योंकि उसका वध किए विना चर्म प्राप्त नहीं किया जा सकता। इससे विदित होता है कि तारा का रजोगुण पर अधिकार है।

◆ नवयोवनावस्था

साधारण जीवों का योवन अस्थायी रहता है क्योंकि उत्पत्ति, स्थिति और लय उनका धर्म होता है। इस जगत की हर वस्तु उत्पन्न होकर बढ़नी है, एक सीमा तक बढ़ कर बिनष्ट होने लगसी है। किसी के लिये किसी भी अवस्था में स्थिर रहना सम्भव नहीं है। वह तो प्रकृति के नियमों के विरुद्ध हो जायेगा। परन्तु तारा की स्थिति असामान्य है। वह नित्य योवनावस्था में ही रहती है, उसका विनाश नहीं होता, परिवर्तन नहीं होता, काल का उस पर कोई प्रभाव नहीं। इसलिये वह 'नवयोवनावस्था' कहलाती है।

◆ पञ्चमुद्रा विभूषित

मुद्रा आनन्द की बोधक है। पञ्च मुद्राएँ पाँच क्लेशों का

का निवारण करती है। योग दर्जन माध्यम पाद के तीवरे सूत्र के अनु-सार बलेश पांच प्रकार के हैं—१- अविद्या २- अस्मिता ३- राग ४- द्वेष ५- अभिनिवेश। इन ब्रेशों को मिथ्या ज्ञान, विपर्यय ज्ञान, आन्ति ज्ञान, प्रज्ञान भी कहते हैं। माँहर परिभाषा में अविद्या को तम, अस्मिता को मोह, राग को महामोह, द्वेष को तामित्र अभिनिवेश को अध्यतामित्य कहते हैं। भगवनों का इन पर अप्रिकार है, वह इन्हे दूर करने की क्षमता रखती है।

तारा के आभूषण पांच महाभूत हैं। इनकी गतिविधियाँ भगवती को इच्छा पर मञ्चलित होती हैं। यह मानव देह इन्हीं भूतों से बना है। इसमें स्पष्ट है कि सभी प्राणवारियों में क्रियाशीलता का मूल कारण भगवती है।

मातव शरीर में पांच कोश हैं—प्रथमय, प्राणय, मतोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। योगिक भाषा में यह जीवात्मा के पांच बन्धन हैं। इनका खोलना मातव का परम लक्ष्य है। भगवती के पास इनकी चाढ़ी है। वह इहे खोन मकरी है अथवा सहयोग दे सकती है। आत्मिक अन्तिम के इन पांच द्वारों तक पहुँचना भगवती की कृपा से ही सम्भव है।

पांच मुद्राओं का अभिराय पञ्च रश्मि ने भी है जिसका प्रणव की ओर महत है। भगवती का आभूषण प्रणव है।

◆ पीतोन्तत पयोधरा

तारा के स्तन दूध से भरे हैं। माता अबने दूध से शिशु का पालन करती है। तारा मारे ब्रह्माण्ड के पालन पोषण की क्षमता रखती है। उसके पास आहार की कमी नहीं हड़ती। उसके स्तन सदैव दूध से भरे रहते हैं। तारा का रूप केवल उप्र ही नहीं, वह नाश हो-

नाश नहीं करती रहती, पालन भी करती है। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिशक्तियों का काय करती है। ‘पीनोन्नतपयोधरा’ से पालन शक्ति का बोध होता है।

◆ नीलवर्णा

तारा का वण नीला है। जब आकाश में मेघ नहीं होते तो वह नीला होता है। आकाश व्यापकत्व का प्रतीक है। भगवती का भी यही गुण है।

जैसे श्याम दर्ण तमोगुण का प्रतीक माना जाता है, वैसे नील दर्ण सतोगण का प्रतीक स्वीकार किया गया है भगवती सात्त्विकता, पवित्रता, निमलता, शुद्धता की साक्षात् प्रतिमूर्ति है।

◆ अट्टहास की मुद्रा

बड़ी जोर की हँसी को अट्टहास कहते हैं। हँसी प्रसन्नता का परिणाम है। भौतिक सफलताओं के कारण जब मानव को अतीव प्रसन्नता प्राप्त होती है तो गम्भीर मुद्रा के सकोच को छोड़ कर वह मुक्त रूप से हँसता है। इससे उसकी हार्दिक प्रसन्नता का बोध होता है। आनन्दमय स्थिति का भी यह द्योतक है। भगवती तो आनन्द ब्रह्म है। उसे भौतिक त्रिरूपों से वया सम्बन्ध है? वही सदैव आनन्दमयी रहती है। अट्टहास इसी मवस्था का प्रतीक है।

◆ ज्वलच्चितामध्यस्था

भगवती जलती हुई चिता के मध्य में निवास करती है। मानव देह के नाश के बाद चिता जलाई जाती है। भौतिक शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता, वह तो अपनी नित्य की स्थिति में रहती है। तारा का भी यही रूप है। उसके चारों ओर अग्नि की

लपटे रहती हैं जो भौतिक वस्तुओं को बन्न करते की क्षमता रखती है, परन्तु तारा का निवास ही वही है।

मृत्यु इस जीवन का सबसे बड़ा कष्ट है, चिना उनका रूप है। इस जीवन की महानतम् विपत्तियों के प्राने पर भी तारा की स्थिति सदैव की तरह एक जैसी रहती है, यही अन्तिम प्राप्ति का विन्ह है। तारा अपने भक्तों को इसी मार्ग की प्रारंभ ले जाती है।

◆ चन्द्रार्थकृतगेखर

तारा मरुक पर चन्द्रकला को धारण किए रहती है। इम स्थान विशेष का सम्बन्ध सोम मण्डन से है, जो ब्रह्मगत्त्र में नीचे और आज्ञा चक्र के ऊपर स्थित है। इस सोममण्डल से अमृत की धारा का मखरण प्रवाह चलता है। इम स्थान पर चन्द्रकला को धारण करने का तात्पर्य यही है कि तारा अमृत रूप है, अमृत की सरिता का मूल प्रवाह उसी से होता है।

उपरोक्त स्पष्टीकरण में तारा के तत्त्वज्ञान पर ग्रच्छा प्रकाश पड़ता है।

तारा-पूजन-विधान

भगवती तारा देवी का मत्र चार प्रकार में वर्णित किया गया है। इन चारों में से कियी भी एक मत्र के द्वारा उपासना की जा सकती है -

- (१) ही स्त्री हूँ फट्
- (२) श्रोम् ही स्त्री हूँ फट्
- (३) श्री ही हूँ फट्
- (४) श्रो ऐ ही की हूँ फट्

दिक्‌पालन्यासः

१—ही त्री हुँ अ उ ऋ लृ ए ओ अ ललाटपूर्वे इन्द्राय-
नम । २—हो त्री हुँ आ ई ऋ लृ ए ओ अ ललाटा-
ग्नेया दिशिग्रनयेनम । ३—ही त्री हुँ क ख ग घ ड
ललाट दक्षिणे वमाय नम । ४—ही त्री हुँ च छ ज भ
ञा ललाटनैऋत्या दिशि निश्चृतये नम । ५—ही त्री हुँ
ट ठ ड ढ रण ललाट परिश्चमाया दिशि वरुणाय नम ।
६—ही त्री हुँ त थ द ध न ललाट वायव्यादिगि वायवे-
नम । ७—ही त्री हुँ प फ व भ म ललाटोत्तरस्या दिशि
सोमायनम । ८—ही त्री हुँ य र ल व ललाटैशान्या
दिग्नी ईशानायनम । ९—ही त्री हुँ श ष स ह ललाटो-
ध्वर्यादिशि व्रह्मणेनम । १०—ही त्री हुँ ल क्ष ललाट-
धोदिशि अनन्तायनम ।

षट्‌वक्रं न्यासः

१—ही श्री हुँ व श प स डाकिनीयुत ब्रह्माणा चतुदलस-
मन्त्रितमूलाधारे न्यसेत । २—ही त्री हुँ व भ म य र ल
राकिनीयुत श्री विष्णुलिगस्य पड़दले त्वाविष्णानकक्षे न्यसेत्
३—ही त्री हुँ ड ढ त थ द ध न प फ लाकिनीयुतरुद्र
दशदलचक्रनाभिस्थे मणिपूरके न्यसेत् । ४—ही त्री हुँ
क ख ग घ ड च छ ज भ ञा ट ठ काकिनीयुतमोश्वर
अनाहते द्वादशदले चक्रेहृदिन्यसेत् । ५—ही त्री हुँ अ आ
ई उ ऊ ऋ लृ लृ ए ए ओ औ अ अ आकिनी-
युत सदाशिव विशुद्धरुद्ध पोडशदले कण्ठस्थे विन्यसेत् । ६—
ही त्री हुँ ह क्ष हाकिनी युत पर शिवमाज्ञाचक्रे मनोहरे अ
मध्यस्थिते प्रविन्यसेत् ॥

तारादित्यासः

१— ही त्री हुँ अ आ क ख ग घ ड तारायैनमो ब्रह्मरन्ध्रे ।
 ही त्री हुँ इ इं च छ ज झ उग्रायै नमोललाटे । ही त्री
 हुँ उ ऊ ठ ठ ढ ढण महोग्रायैनमो भ्रुमध्ये । ही त्री हुँ
 ऋ ऋ त थ द ध न वज्जायै नम कठदेशे । ही त्री हुँ लू
 लू प फ ब भ म महाकाल्यैनमोहृदि । ही त्री हुँ ए ए य
 र ल व श सरस्वत्यैनमो नाभौ ही त्री हुँ श्रो श्रौ श प स
 ह कामेश्वर्यै नमो लिगमूले । ही त्री हुँ अ अ. ल क्ष चामु
 पडायैनमोयिगमूले ।

पीठ न्यासः

ही ३ अ इ उ ऋ ऋ ए ओ अ कामरूप पीठायनम आधरे।
 ही ३ आ इं ऋ लू श्रौ अ जालवरपीठाय नमोहृदि ।
 ही ३ क ख ग घ ड पूर्णगिपीठाय नमोललाटे । ही ३ च
 छ ज झ झ उङ्क्लियात पीठायनम केशरन्धौ । ही ३ ण
 ठ ड ढ ढण वाराणासी पीठायनमोभ्रुवो । ही ३ त थ द
 ध न अबन्ति पीठाय नमो नयनद्वये । ही ३ प फ ब भ म
 माया पुर्णी पीठायनमो मुखे । ही ३ य र ल व मयुरापीठा
 यनमो कण्ठे । ही ३ श प स ह अयोध्या पीठाय नमो नाभौ।
 ही ल क्ष काञ्चीपुरी पीठाय नम कट्टो ॥ इति पीठ-
 न्यास ॥

२— हा त्रा हा हा एकजटायै ह्यदयातत्तम । हा त्रा हा तारिण्यै
 शिर से स्वाहा । हा त्रा हा वज्रोदकयै शिखायै वपट् । हा
 त्रा हा उग्रतारिण्यै कवचाहुँ । हा त्रा हाँ महापरिसरायै
 नेत्रवत्यायवीष्ट् ।

हा त्रा एक जटायै अगुष्टाश्या नम । हा त्रा हा तरिण्यै
 Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MA

तर्जनीभ्या स्वाहा । हा त्रा हा वज्रोदकायै मध्यमाभ्या
वषट् । हाँ त्राँ हा उग्रतारायै अनामिकाभ्या हु । हा त्राँ हा
महापरिसरायै कनिष्ठिकाभ्याँ फोपट् ।

ध्यानम्—विश्वव्यापक वारिमध्य विलसच्छ्वेताबुजन्मस्थिता ।
कर्त्री खङ्गकपाल नीलनलिनै राजत्करा नीलभा ।
काञ्चीकुण्डलहार ककणलस्तकेयूर मञ्जीरताम् ।
आप्सैर्नागवरं विभूषिततनूमारक्तनेत्रवयाम् ।१।
पिगोग्रैकजटा लसत्सुरसनाँ दष्टाकरालाननाम् ।
चर्मद्वैपिवर कटौविदधनी इवेनास्थिय पट्टालिकाम् ॥
श्रक्षोभ्येण विराजमानशिरस स्मेराननाभोरुहाँ ।
तारा शावहृदासना दृढ़कुचामम्बा त्रिलोकयो स्मरेत् ।२।

एक मन्त्र है—

ओ ही त्री फट् ।

यह पञ्च शक्ति का मन्त्र है। जब इस मन्त्र में ओकार न लगाया जाए तो इसे 'एकजटा' कहते हैं और 'ओ फट्' को निकाल देने पर 'नील सरस्वती' कहलाती है।

आसन देनेका मन्त्र—‘सा हीं सरस्वती योगपीठात्मने नम’;
जल देने का मन्त्र—“ओ वज्रोदके हुँ फट्” ।

श्राचमन मन्त्र “हीं सुविशुद्धधर्मं सर्वं पापानि शामभ्या
शेषविकल्पानपनय स्वाहा”

शिखा बन्धन मन्त्र—ओ मणिधरिवज्ररिय सर्वं वशकरणि
क ह फट् स्वाहा”

भूमि शोधनका मन्त्र—ओ रक्ष २ हु फट् स्वाहा’ ।

विघ्न निवारण मन्त्र—‘ओ सर्वविघ्नानुमारय हुँ फट् स्वाहा

तारोपनिषत् मे ताग वे कुछ ज्यान इस प्रकार दिये गए हैं—

विरुद्धवाक्यायं चरीरमण्डले नवाम्बुदाभा गुहमुन्ततोदरीम् ।
अतिवखर्वं नवयौवनस्यामव - स्थगादूलककृत्तिमूधजाम् ॥
अनेक्यमाहत्य शवोपरिस्थिता गवाधमालीढ़-परीतमध्यमाम् ।
विशोर्णवर्णा नृशिर स्त्रजोदवा त्रयीविवर्तहिणलोचनवयाम्
ग्रभेदपिंगे कजटाविरजिता विभूपणाच्छृन्न सितास्थि भीष-
णाम् । महाएसिद्धि प्रकागहिभूपणामद्व दृहासेजगताम-
भीतिदाम् ॥

जटाम्बनन्त थवसोऽव तक्षको महाहिपद्मो हृदिहार भूप-
णम् । तथैव कर्कोटकृतोपवीतिका सुमेखलायामय देव-
वामुकि ॥

सगखपाल किल ककणे मन पदेषु पञ्च किल नूपुरश्रियम ।
भुजेषु नाग कुलिकोङ्ग दोमतो भुजाऽधमालामहतास्थिति
स्थिता ॥

मितश्च रक्तो धवलश्च मेचकस्तयं च नागोऽय मितश ॥
पारेडर । भुजगमानामिह वर्णजातयो भवन्ति सर्वे मुनि-
भिर्ज्वलच्चिताम् ॥

कपालकर्णी ग्रथितोग्रमूधजा सनालमिदीवरकान्तिमालाम् ।
वक्तोपखड्ग सतत च दक्षिणे स्वपोहपात्थं दं वती भृजे सदा ॥
पदार्थदृष्टाद्वय पञ्चमुद्रया विराजमानामभि तोत्पलम्बजम् ।
विचिन्तयेत्ता च कदित्वकारिणीमन्यागतार्थं प्रजपेच्च तारि-
णीम् ॥

तारा के जप का पुरश्चरण चार लाख मन्त्र का है । रक्त-कमल
दे दूब और धो मिनाकर दशाश अर्थात् ४० हजार शाहूतियों का हवन
— । नारिया ।

तारा मन्त्र

सुवरण्डि पीठे गोरोचनाकु कुमादिलिसे 'ओ ओ सुरेखे
वजुरेखे ओ फट् स्वाह, इति मत्रेणाधोमुख त्रिकोणगर्भाष्टि
दलपद्य वृत्त चतुरस्त्र चतुद्विरियुक्त मन्त्रमुद्धरेत ।

"स्वर्ण आदि से बनी चौकी पर गोरोचन, कु कुम आदि से लेप
करके 'ओ ओ सुरेखे, इत्यादि मन्त्र से अधोमुखी निकोण मे, अष्टदल
कमल बनावे और उसके बाहर गोलाकार चौकोर और चतुर्द्वार युक्त यत्र
क। लेखन करे" । ३।

लक्षद्वय जपेद्विद्या हविष्याशी जितेन्द्रिय ।

पलाश कुसुमेदेवी जुहुयात्तद्वगाशत ॥

"हविष्याशी और जितेन्द्रिय रहता हुआ साधक दो लाख बार
मन्त्र-जप करे और पलाश पुष्प के द्वारा उपका दशाश होम करे" ।

दिव्य हि कवच देवि ताराया, सब्बकामदम् ।

शृणुष्व परम तत्तु तव स्तेहात् प्रकाशितम् ॥

'भैरव बोले—हे देवि । भगवती तारा का यह कवच परम
श्रेष्ठ और सभी कामनाओं का देने वाला है । तुम्हारे प्रति स्तेह होने से
ही उसे प्रकट करता हूँ' । ४।

अक्षोभ्य ऋषिरित्यस्य छद्मित्रष्टुबुदाहृतम् ।

तारा भगवनो देवी मन्त्रसिद्धौ प्रकोर्त्तितम् । २।

"इम कवच के ऋषि अक्षोभ्य, छद्मित्रष्टुप, देवता भगवती
तारा देवी और मन्त्र मिद्दि मे इसका विनियोग है" । २।

ओकारो मे शिर पातु ब्रह्मरूपा महेश्वरी ।

ह्लीङ्कार पातु ललाटे बोजरूपा महेश्वरी ॥

हुङ्कार पातु हृदये तारिणी शक्तिहृपधृक् ।३।

“धोकार युक्त ब्रह्मरूप महेश्वरी मेरे द्विर की रक्षा करें, हीकार दोज रूपा महेश्वरी मेरे ललाट की रक्षा करें, स्त्रीकार लज्जा रूपा महेश्वरी मेरे मुख की रक्षा करें और हु कार शक्ति हा तारिणी देवी मेरे हृदय की रक्षा करें” ।३।

फट्कार पातु सव्वर्गे सर्वमिद्धि फलप्रदा ।

खर्वा मा पातु देवेशो गणेडयुगमे भयापहा ॥

लम्बोदरो सदा स्कन्धयुगमे पातु तहेश्वरी ।

ब्याघ चर्मावृता कटि पातु देवा शिवप्रिया ।४।

‘फट्युक्तं सर्वमिद्धिरो का फन देने वाली देवी मेरे मर्वांग की रक्षा करें, खर्वा देवी मेरे दोनों कपोलों की रक्षा करें, लम्बोदरी महेश्वरी मेरे दोनों स्कंधों की मदा रक्षा करें, और ब्याघ वर्ष से आवृत्त भगवती शिव प्रिया मेरी कटि दग की रक्षा करें’ ।४।

पीतोन्ततस्तनी पातु पाश्वयुगमे महैश्वरी ।

रक्तवत्तु लनेत्रा च कटिदेवे सदावनु ।।

ललजिज्जट्टा सदा पातु नाभो मा भुवनेश्वरी ।

करालास्या सदा पातु निंगे देवा हरप्रिया ।५।

‘पीतेस्तनी महेश्वरी मेरे दोनों पाश्वों को रक्षा करें, रक्तवत्तु के गोल नेत्र वाली भगवती मेरे कटि देश की रक्षा करें, लोल जित्ता भुवनेश्वरी माना मेरी नाभि को रक्षा करें और शक्ति को प्रियतमा करान बदता देवी मेरे उत्तरदय की रक्षा करें’ ।५।

विवादे कलहे चंद्र ग्रग्नो चरणमध्यत ।

सव्वदा पातु मा देवी किण्ठीरूपा वृकोदरी ।६।

“विवाद, कलह, भग्नि के मध्य में और समृद्ध मूर्मि में झिझी रुपा वृकोदरी देवी मेरी सदा ही रक्षा करती रहे” ।६।

सर्वदा पातु मा देवी स्वर्गे मत्ये रसातले ।

सर्वस्त्रभूषिता देवी सर्वश्वप्रपूजिता ॥

क्री क्री हु हु फट् फट् पाहि समन्तत । ७।

“स्वर्ग लोक में या मत्य लोक में सदा ही भगवती मेरी रक्षिका हो । वह देवी सभी देवतामो द्वारा पूजिता और सभी प्रकार के ग्रस्त्रों से विभूषिता है । ‘क्री क्री हु हु फट् फट्’ यह बीज मेरी सब और से रक्षा करने वाले हो” । ७।

कराला घोरदशना भीमनेत्रा वृक्षोदरी ।

अद्वृहासा महाभागा विघूणितत्रिलोचना ॥

लम्बोदरी जगद्वात्री डाकिनी योगिनीयुता ।

लज्जारूपा योनिरूपा विकटा देवपूजिता ॥

पातु मा चण्डो मातगी ह्युग्रचण्डा महेश्वरी । ८।

“कराल रूप वाली, घोर दातो वाली, भीषण नेत्र वाली, वृक्षोदरी, महाभाग, अद्वृहास करने वाली, घूणित नयनशय वाली, लम्बोदरी, जगत के रचने वाली, डाकिनी और योगिनियों को साथ रखने वाली, लज्जा रूपिणी, विकटा, चण्डी, मातगी, उग्र चण्डा, देव पूजिता महेश्वरी सदैव रक्षा करने वाली हो” । ८।

जले स्थले चान्तरिक्षे तथा च शत्रुमध्यत ।

सर्वंत पातु मा देवी खड्गहस्ता जयप्रदा । ९।

“जल, स्थल एव शून्य में तथा शत्रुघ्नों के मध्य में भी जय प्रदायिनी भगवती खड़ द्वाध में लिये हुए सर्वंत्र ही मेरी रक्षा करे” । ९।

कवच प्रपठेद्यस्तु धारयेच्छृणु यादपि ।

न विद्यते भय तस्य त्रिपु लोकेषु पार्वति । १०।

“जो धनिर इस कवच का पाठ करते, इसे धारण करते ग्रथवा

सुनते हैं, उनके लिए तीनों लोकों में कहो भी भय उपस्थित नहीं होता' । १०।

३—षोडशी (त्रिपुरमुन्दरी)

मध्याह्न को जब सूर्य की शक्ति उग्र होती है, तब उसका नाम रुद्र होता है और उसकी शक्ति का नाम तारा । प्रातः कालीन सूर्य शक्ति शिवात्मक है जिसे 'पञ्चवक्त्र शिव' की सज्जा 'शिव तन्त्र' में दी गई है । इसकी शक्ति 'पोडशी' है । निर्माण का कार्य इसी शक्ति के द्वारा सम्पन्न होता है । यह कहना चाहिए कि प्रशान्ति हिरण्यगर्भ या सूर्य शिव है और इनकी शक्ति का नाम पोडशी ।

चारों दिशाएँ और ऊर्ध्व दिशा के अभिमुख होने के कारण से शिव का नाम पञ्चवक्त्र' पड़ा ।

शङ्कुर के अधोर तत् पुरुष, वामदेव सद्योजात और ईशान पाच मुख बताए जाते हैं । ईशान का लाल रंग बताया जाता है । यह अग्नि प्रवान है और स्वयम्भू मण्डल का प्रतीक है । यह सबसे ऊपर स्थित रहता है । श्वेत रूप का तत्पुरुष पूर्व की ओर सूर्य मण्डल में स्थित रहता है । सूर्य किरणों में सात रंग होते हैं, उनके मिलने पर सफेद रूप बन जाता है । कृष्ण वर्ण का अधोर रूप दक्षिण की ओर होता है और उप प्रधान जनलोक का प्रतिनिधि माना जाता है । यह मूर्ति मध्य में रहती है । पीत वर्ण में सद्योजात मूर्ति पश्चिम की ओर होती है जो महलोंक में स्थित मानी जाती है । श्वेत वर्ण के वामदेव का मुख उत्तर की ओर रहता है । यह तपोलोक का प्रतीक है ।

इसमें स्पष्ट हैं कि शिव के यह पाच मुख पाँच लोकों के प्रतीक हैं ।

शिव पुराण, वायु स हिता (उत्तर भाग) में इन पाच मूर्तियों का विवरण इस प्रकार दिया है -

शिवजी की पच ब्राह्ममूर्ति मम्पूर्ण विश्वव्याप्त है। ईशान, पुरुष, घोर, वामदेव और सद्योजात यह उनकी पचमूर्ति विश्व-विख्यात हैं। उनकी ईशान नामक प्रथम मूर्ति प्रकृति की भोक्ता होकर क्षेत्र में स्थित उत्तुरुष नामक स्थानु की मूर्ति गुणाश्रय होकर भोगती है, वह अव्यक्त में स्थित है।

अबोर मूर्ति शिव के बुद्धित्व में पूजित है तथा धर्मादि प्रष्टाङ्ग से युक्त होकर स्थित है। विघाता या वामदेव नामक शिव-मूर्ति को शास्त्रज्ञ-जन अहङ्कार में स्थित रहने वाली कहते हैं। शिव की सद्योजात मूर्ति को ज्ञानी जन मन में स्थित होने वाली वताते हैं। श्रोत्र, वाणी, शब्द और आकाश की विभु तथा सब को ईश्वरी मूर्ति को ज्ञानियों ने 'ईशान' कहा है। तद्वा, हाथ, स्पर्श और वायु की अधीश्वरी मूर्ति को पुराणवेत्ता जन पुरुष' कहते हैं चक्षु, चरण अग्नि की अधीश्वरी मूर्ति को विद्वानों ने अधोर कहा है। रसना, वायु रस और जल के अधीश्वर मूर्ति को उसके ज्ञाताओं ने 'वामदेव' कहा है। ध्रुण, उपस्थ, गन्व और पृथिवी की अधीश्वरी मूर्ति 'सद्योजात' नाम वाली कही गई है।

इसी शिवात्मक शक्ति का नाम 'घोडशी' है। इसमें पोडश कला पुरुष का पूरण विकाम है। भू भुव स्व रूपी तीनों व्रह्यपुरों को यही उत्पन्न करती है। भूत तत्त्व में इसका नाम 'त्रिपुर मुन्दरी' पड़ा। ध्रीविद्या का नामान्तर ही त्रिपुरा है। तीन पुर मन, बुद्धि और चित्त के प्रतीक है, वह इनमें निवास करती है, इसलिए त्रिपुरा कहलाती है। तीन योगिक नदियो—इडा, पिङ्गला और सुपुम्ना को भी त्रिपुरा कहा जाता है। यह सत्, रज, तम को अपने तियन्त्रण में रखने की क्षमता रखती है। भूत. त्रिपुरा है। उसके ज्ञान, क्रिया और इच्छा शक्ति—

तीन रूप हैं। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश को उत्पन्न करती है, वह ऋषि, यजु और सामर्थ्यी है। इमलिए प्रिपुरा है।

‘श्रीविद्या’ ही पोडपी, महात्रिपुरा सुन्दरी, राजराजेश्वरी, पञ्चदशी, ललिता, वाला आदि नामों से प्रसिद्ध है। दस महाविद्याओं में पोडशी विद्या ‘श्री विद्या’ का ही परिणत स्वरूप है। यह श्री विद्या ही ब्रह्मविद्या है। ‘श्री’ शब्द श्रेष्ठता, सम्मान और उच्चता का द्योतक है। इमलिए ममानीय व्यक्तियों के साथ यह सम्बन्ध किया जाता है। त्यागमूर्ति म यामी श्रेष्ठता का प्रतीक माना जाना है इसलिए उसे ‘श्री १०८’ के श्रेष्ठता सूचक नाम से विभूषित किया जाता है। ‘श्री’ का अर्थ महालक्ष्मी गौण है। हरितायन सहिता और ब्रह्माएडपुरगणोंनर खण्ड के अनुसार श्री का मुख्य अर्थ ‘महा त्रिपुर सुदर्दी’ है। श्री विद्या के उपासक को लोक और परलोक दोनों में सिद्धि प्राप्त होनी है। शास्त्र का प्रमाण है—

यत्रान्ति भोगो न च तत्र मोक्षो
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगा ।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणा
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥

अर्थात् ‘जहाँ पर भोग है वहाँ मोक्ष नहीं होता जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग का प्रभाव है। यह सावारण नियम है, किन्तु श्री सुन्दरी के स्तवाराधन में तत्पर रहने वाले पुरुषों को भोग और मोक्ष दोनों ही पदार्थ साथ हाथ में रहा करते हैं।

श्री शङ्कर भगवत्पादाचार्य ने सौन्दर्य लहरी स्तोत्र में कहा है—
त्वदन्त्य पाणिभ्यामभयवरदो देवतगण-
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवरा भीत्यभिनया ।

भयाद् त्रातु दातु फलमपि च वाञ्छासमधिक
शरण्ये लोकाना तव हि चरणादेव निपुणौ ॥

अर्थात् 'आपसे प्रत्य कोई भी देवगण नहीं हैं जो दोनों हाथों से अभय का वरदान प्रदान कर देवे । अभीति के अभिनय वानी और वरदान प्रकट करने वाली आप एक ही हैं प्रत्य कोई भी नहीं । भय से परित्राण करने को और फल देने के लिए जो कि इच्छा से भी कहीं अधिक होता है आप ही एक हैं । जो आपकी शरणागति में आ जाते हैं उनकी पूर्ण मुरक्खा करने में आपके चरण परम निपुण हैं । आपके चरण की शरण में प्राप्त होने पर फिर अमङ्गल रहता ही नहीं ।'

श्री विद्या आत्म शक्ति हैं, श्रिपुराम्बा आत्म शक्ति है । हरितायन सहिता में श्री दत्तात्रेय गुह ने परशुराम जी से 'श्रिपुराम्बा' के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि उप शक्ति का वर्णन करना सम्भव नहीं है, वैश्वास्त्र और तन्त्र इस कार्य में असमर्थ रहते हैं, जहाँ विष्णु और महेश भी इफ शक्ति के स्वरूप से अनभिज्ञ हैं, इस पराशक्ति की महिमा का गान कौन कर सकता है ? क्योंकि शक्ति-महिमा स्तोत्र में देविकेन्द्र दुर्वासा ने इनकी उत्पत्ति ही श्रिपुर सुन्दरी से मानी है ।

त्रयी तिस्त्रो वृत्तीस्त्रभुवनमथो त्रीनपि सुरानकारा-
द्यैर्वर्णेस्त्रभिरभिदधत्तीर्णविकृत ।

तुरीय ते धाम ध्वनिभिखर्णधानमणुभि ।

समस्त व्यस्त त्वा शरणाद गृणात्योमिति पदम् ॥

(म० स्तो०)

'त्री अर्थात् वेदत्रयी है—तीन वृत्तियाँ हैं—भुवन भी तीन हैं—जहाँ, विष्णु और महेश यह देव भी तीन हैं । तीन विकृति भी

अवकाशादि वरणों के द्वारा तीन प्रकार से कही गई है। ध्वनियों से अवरुद्ध आपका घास तुगीय है। अणुप्रो समस्त और व्यस्त आपको है शरणद। औम्—यह पद ग्रहण किया करता है।

आद्येरग्निरवीन्दुविम्बनिलयेरम्बत्रिलिङ्गकात्मभि-
मिश्रारक्तसितप्रभैरनुपमर्युष्मतपदैस्तैस्त्रिभि ॥
स्वात्मोत्पादितकाललोकनिगमावस्थामरादित्रये-
रुद्भूत त्रिपुरेति नाम कलयेहास्ते स धन्यो ब्रुधः ॥
—क्रोषभट्टारक (श०म० स्तोत्र

अर्थात् 'हे अम्बा ! आद्य ग्नि--रवि--शशि के त्रिम्ब में विलय वाले त्रिलिङ्ग स्वरूप से युक्त--मिथ्र, धारकन और मित प्रभा से समन्वित--अनुपम आपके उन तीन पदों से—अपनी भात्मा से उत्पादित काल, लोक—निगमावस्था और अमरादित्रय में सद्भूत त्रिपुरा—इम नाम को जो लेना है वह मनुष्य परम् ब्रुध और इम विश्व में प्रतीव धन्य है।

भावनोपनिषद् के अनुमार 'इच्छाशक्तिं महात्रिपुर सुदर्शी' इच्छा शक्ति ही महात्रिपुर सुन्दरी नामक आराध्य भगवती है।

इसका ध्यान इस प्रकार है—

वालाकं मण्डलाभासा चतुर्वाहा त्रिलोचनाम् ।
पाशाकुशधनुर्वर्णान् धारयन्ती शिवा भजे ॥
(शक्ति प्रमोद—पोडशी तत्र)

अर्थात् 'उस वालक' मण्डल की उरह भाभा वाली ग्नि, सूर्य और सोम रूपी त्रिनेत्र वाली, चतुर्भुज, पाश अं कुश चाप और शर को धारण करने वाली का ध्यान करता हूँ।'

सूर्य की उप्रता से जब सोम की आहुति दी जाती है, तब उसकी

उग्रता शान्त हो जाती है। इद्र—शिव वन जाते हैं। मध्याह्न में उग्रता रहती है और प्रात् शान्ति। प्रात्, कालीन सूर्य को ही 'बाल-सूर्य' के नाम से अभिहित किया गया है।

सूर्य की शक्ति सारे ब्रह्माएङ्ग में व्यापक रूप से विद्यमान रहती है। यह ब्रह्म एड चतुर्भुज है। इसलिए 'षोडशी' को 'चतुर्वाहीं' कहा है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश और यम चारों देवता इसके नियन्त्रण में रहते हैं, 'चतुर्वाहीं' का एक भाव यह भी है।

त्रिलोकना का अभिग्राय सूर्य, सोम और अग्नि नामक तीन नेत्रों से है।

सूर्य में इतनी आकर्षण शक्ति है कि वह पृथ्वी व अन्य ग्रह-नक्षत्रों को एक व्यवस्थित नियमानुसार अपने चारों और छुमाने की शक्ति और सामर्थ्य रखता है। इन पर निवास करने वाले समस्त प्राणी उप पर आश्रित हैं, उनका जीवन सूर्य के कारण ही क्रियाशील रहता है, अत सभी उनके च गुन में, पाश में हैं। पाश का आध्यात्मिक भर्य राग है 'राग पाश' (भाव सूच ३३)। राग को मानेश्वरी ने अपने अविकार में ले रखा है।

इसी के भय से अग्नि और सूर्य तपते हैं और इन्द्र, वायु, यमराज अपने-अपने कार्यों में लगे हुए हैं—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य ।

भयादित्तदश्व वायुश्च मृत्युर्धाविति पञ्चम ॥

(कठ० २१३।३)

इसमें अकुश का भाव विदित होता है। अकुश का आध्यात्मिक भाव है—द्वेष, 'द्वेषोऽङ्गूष्ठ' (भाव० २४)। वह द्वेष भाव को वक्षित नहीं होने देती।

यजुर्वेद में वर्षा, पवन, और अन्न को 'इषु' (वाण) कहा है—
नमोऽस्तु रुद्रे म्यो ये दिवियेषा वर्षंमिष्वत् ।

(१६।६४)

'जो रुद्र स्वर्ग में विद्यमान हैं, जिनके वाण वृष्टि रूप हैं, उन
रुद्रों को नमस्कार है ।

नमोऽस्तु रुद्रेष्यो येऽन्तरिक्षे येषा वातऽइषवः ।

(१६।६५)

'जो रुद्र अन्तरिक्ष में वास करते हैं, जिनके वाण पवन हैं, उन
रुद्रों को नमस्कार है ।

नमोऽस्तु रुद्रे म्यो ये पृथिव्या येषामन्तमिष्वत् ।

(१६।६६)

'जो रुद्र पृथ्वी पर विद्यमान हैं, जिनके वाण अनन्त हैं, जो अन्न
के मिथ्या प्राहार-विहार द्वारा रोगोत्पत्ति कर मारते हैं, उन रुद्रों को
नमस्कार है ।'

पञ्चवाणों का अभिप्राय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध रूपी
पदचतन्मात्राएँ हैं । शब्दादितन्मात्रा पञ्च पुण्डवाणा (भाव २१) ।

मन ही इष्टपत्नु है । 'मन इष्टु षनु,' (भाव २२) । उत्तर
षनु शती शास्त्र में पाशु, भ कुश, षनुप और वाण का मष्टीकरण इस
प्रकार किया गया है—

इच्छागत्तिमय पाशम कुश ज्ञानरूपिणम् ।

क्रियागत्तिमये वाणवनुपी दवदुज्जवलम् ॥

अर्थात् 'इच्छा शक्ति—पाश, ज्ञान शक्ति, भ कुश, और क्रिया-
शक्ति स्वरूप—यह वाण और षनुप हैं । महात्रिपुर मुन्द्री इनका
प्रतिनिधित्व करती है ।

षोडशी पूजन विधि-सन्त्र

श्री ही कली ए सौं ओ ही श्री क ए ई
ल ही हृषकहृष कही सकलही सो ए कली ही श्री ।

कवचम्

श्रीदेव्युवाच—

भगवन् देवदेवेश लोकानुगहकारक ।
यदुक्त मे महादेव कवच सुधरीप्रियम् ॥
तन्मे कथय देवेश यदि स्नेहोऽस्ति मा प्रति ।

श्रीमहादेव उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवच मन्त्रविग्रहम् ।
सर्वथिंसाधक देवि सर्वसम्पत्तिपूरकम् ॥

अस्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीमन्त्रवणात्मककवचमहा
मन्त्रस्य दक्षिणा मूर्तिभंगवान् ऋषि अनुष्टुप्छन्द श्री
महात्रिपुरसुन्दरो देवता । ए बोजम् । सौ शक्ति ।
कली कीलकम् । मम शरीररक्षणार्थं जपे विनियोग ।
हामित्यादि करहृदयन्यास ॥

धरनम्

बालाक्षमण्डलाभासा चतुर्बाहीं त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशघनुर्बाणन् घारयन्ती शिवा भजे ॥
लमित्यादि पञ्चपूजा ए हीं श्री योग्या प्रणम्य—
ककार, पातु मे शीषं एकार पातु फालकम् ।
ईकार पातु मे वक्त्र लकार पातु कर्णकम् ॥

ह्रीङ्कार पातु हृदय वारभवृच सदाऽवतु ।
हकार पातु जठर सकारो नाभिदेशकम् ॥

ककारोऽव्याहृस्तिमाग हकार पातु लिङ्गं नम् ।
लकारो जानुनो पातु ह्रीङ्कं गो जह्वा॒रुमकम् ॥

कामगजम्बदा पातु जठरादिप्रदेशकम् ।

सकार पातु मे जह्वे॑ ककार पातु पृष्ठकम् ॥

लकारोऽव्यान्तितम्ब मे ह्रीङ्कार, पातु मूनकम् ।

वक्तिगोजस्सदा पातु मूनावारादिदेशनम् ।

त्रिपुरा देवना पातु त्रिपुरेशा च सर्वदा ।

त्रिपुरा सुदरी पातु त्रिपुरा श्रीस्तथाऽवतु ॥

त्रिपुरा मालिनी पातु त्रिपुरा त्रिपुरेशाऽवतु ।

त्रिपुराम्बा तथा पातु पातु त्रिपुरमैरवी ॥

अणिमाद्याम्तथा पात्नु व्राह्म्याद्या पात्नु मा नदा ॥

दशमुद्राम्तथा पात्नु कामकपंणपूर्विका ॥

पात्नु मा पोडगदले यन्त्रेऽनङ्गकुमारिका,

पात्नु मा पृष्ठरत्र तु सर्वसक्षोभणादिका ॥

पात्नु मा व्राह्मदिक्षोणा मध्यदिक्षोणे नया ॥

नवंज्ञाद्याम्तथा पात्नु सर्वानोष्टप्रदायिका ।

वाण्याद्याम्तथा पात्नु वसुरनम्य देवना, ॥

त्रिकोणम्बाम्तराले तु पात्नु मामायुधानि च ।

कामेऽवर्यादिका पात्नु त्रिकोणे कोणम्बिना ॥

विन्दुवक्ते तथा पातु महात्रिपुरमुन्दरी ।

पृष्ठमादिवौनिमुद्रा प्रणामान्त श्री ह्री एं श्रो—

इतीद कवच देवि कवच मन्त्रसूचकम् ।
 यस्मै कस्मै न दातव्य न प्रकाश्य कथञ्चन ॥
 यस्त्रिसन्ध्य पठेद्वै लक्ष्मीस्तस्य प्रजायते ।
 श्रेष्ठम्या च चतुर्दश्या य पठेत् प्रयतस्सदा ॥
 प्रसन्ना सुन्दरी तस्य सर्वं सिद्धिप्रदायियो ।

ध्यानम्

अरुणा करुणातरङ्गिताक्षी धृतपाशाङ्क शपुष्पवाणचापाम् ।
 अग्निमादिभिरावृता मयूखंरहमित्येव भवानीम् ॥
 ध्याये पद्मासनस्था विकसितवदना पद्मापत्रायताक्षी
 हेमाभा पीतवस्त्रा करकलितलसद्वै मपद्मा वराङ्गीम् ।
 सर्वालङ्घारयुक्ता सततमभयदा भक्तनम्रा भवानी
 श्रीविद्या शान्तमूर्ति सकलसुरनुतां सर्वसम्पत्प्रदात्रीम् ॥
 सकुकु मविलेपनामलिकक्रम्बिकतूरिका
 समन्दहसितेक्षणा सशरचापपाशाकु शाम् ।
 अशेषजनमोहिनीमरुणमाल्यभूषा वरा
 जपाकुमुमभासुरा जपविघ्नी स्मरेदम्बिकाम् ॥
 —अथ खड्गमालापारायण कृत्वा—
 —तत न्यासज्ञालात्मक कुर्यात्—

मुन्यादिन्यासः

ही श्री दक्षिणामूर्तये नम	मूर्चित
„ पद्मक्षये नम	मुखे
„ त्रिपुरसुन्दर्येनम.	हृदि

,, ऐ बीजाय नम् गुह्ये
 ,, सो शक्त्ये नम् पादयोः
 ,, कली कीलकाय नम् नाभौ
 इति मुन्यादिन्यास। ॥

अथ बहिर्मतिका

अम्य श्रीबहिर्मतिकासरस्वतीन्याममहामन्त्रस्य
 ऋह्वणे ऋषये नम् (शिरसि) 'गायत्र्ये छन्दसे नम्
 (मुखे) श्रीबहिर्मतिकासरस्वत्ये देवताये नम् (हृदये)
 हल्म्यी बीजम्यो नम् (गुह्ये) स्वरेम्यशक्तिम्यो नम्.
 (पादयो) विन्दुम्य कीलकेम्यो नम् (नाभौ) मम
 श्रीविद्याङ्गत्वेन बहिर्मतिकाप्रसादसिद्धयर्थं न्यासे विनि-
 योगाय नम् (करसम्पुटे) सर्वमातृक्या त्रिव्यपिक
 सर्वाङ्गे अञ्जलिना ।

ए ह्वी श्री ऐ ल्की सौ अ क ख ग घ ड आ अङ्गुष्ठाम्या नम्
 हृदयाय नम्

,, इ च छ झ ञ इ तर्जनीम्या नम्
 शिरसे स्वाहा

,, उ ट ठ ड ढ ण ऊ मम्यमाम्या नम्
 शिखाये वषट्

,, ए त थ द ध न ए ग्रनामिकाम्या नम्
 कवचाय हुं

, ओं प फ भ म ओं कनिष्ठिकाम्या नम्
 नेत्रत्रयाय वौषट्

,, य य र ल व श ष स ह क्ष यं कर-
 तलकरपृष्ठाम्या नम् ग्रन्धायफट्

ध्यानस्

पञ्चाशद्वर्णभेदविहितवदनदो पादयुक्तुक्षिवक्षो-
देशा भास्वत्कपद्मक्लितशशि लामिन्दुकुन्दावदाताम् ॥
अक्षस्त्रक्तुम्भचिह्नामभयवरकरा त्रीक्षणामवजसस्था-
मिच्छाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरा भारती ता नमामि ॥

लमित्यादि पञ्चपूजा

दक्षोद्धर्वकरमारम्य दक्षाध करपर्यन्तं प्रादक्षिण्येन आयुधस्थिति
ए ही श्री ए क्ली सौ. अ नम, मूर्विन

"	आ	"	मुखवृत्ते
"	इ	"	दक्षनेत्रे
"	क्र	"	वामनेत्रे
"	उ	"	दक्षकर्णे
"	ऊ	"	वामकर्णे
"	ऋ	"	दथनासापुटे
"	ऋ	"	वामनासापुटे
"	लू	"	दक्षकपोले
"	लू	"	वामकपोले
"	ए	"	ऊद्वोष्टे
"	ऐ	"	अधरोष्टे
"	ओ	"	ऊर्वदन्तपड़क्तो
"	ओ	"	अब्रोदन्तपड़क्तो
"	अ	"	जिह्वाग्रे
"	अ.	"	गिरावृत्ते
"	क	"	दक्षिणवाहुमूले
"	ख	"	तद्वाहुमध्ये

"	ग „	दक्षिणमणिबन्धे
"	घ „	दक्षिणकराङ्गुलिमूले
"	ड „	दक्षिणकरागुल्यग्रे
ऐं ही श्री ए वली सौ चनम वामवाहुमूले		
"	ज „	तत्कूर्विरे
"	भ „	वामकराङ्गुलिमूले
"	ञ „	तदङ्गुल्यग्रे
"	ट „	दक्षिणपादसूले
"	ठ „	तज्जानुनि
"	ड „	तद्रुहफे
"	ढ „	तदङ्गुलिमूले
"	ण „	तदङ्गुल्यग्रे मोहमूले
"	थ „	वामजानुनि
"	द „	वामगुल्फे
"	ध „	वोमपादाङ्गुलिमूले
"	न „	वामपादाङ्गुल्यग्रे
"	प „	दक्षपाश्वे
"	फ „	वामपाश्वे
"	ब „	पृष्ठे
"	भ „	नाभौ
"	म „	जठरे
"	य „	हृदये
"	र „	नम दक्षकक्षे
"	ल „	चलपृष्ठे
"	व „	वामकक्षे

ऐ ही श्री कली श नम हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तं
 " प " हृदयादियामकराङ्गुल्यन्तं
 " स " हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तं
 " ह " हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तं
 " ल " पादादिनाभ्यन्तम्
 " क्ष " नाभ्यादिव्रह्मरन्ध्रान्तम्

हसी अ+क्ष द्वन्सी नम इति त्रिव्योपकत्वेन
 सर्वाङ्गव्याक न्यदत्

इति वहिमृतिका

अथ अन्तमर्तिका

अस्य श्री अन्तमर्तिकासरस्वतीन्यासमहामन्त्रस्य
 ब्रह्मणे ऋषये नम (शिरसि) गायत्रे छन्दसे नम,
 (मुखे) अन्तमर्तिकास रस्वत्ये देवताये नम (हृदये)
 हत्यो वीजेभ्यो नम (गुह्ये) स्वरेभ्यशक्तिभ्यो नम,
 (पादयो) विन्दुभ्य कीलकेभ्यो नम (नाभौ) अन्त-
 मर्तिकासरस्वतीप्रमादसिद्धयथं न्यासे विनियोगाय नम ॥
 करहृदयादिन्यास वहिमृतिकान्यासवत्

ध्यानम्

आधारे लिङ्गनाभी हृदयसरसिजे तालुमूले ललाटे
 द्वे पत्रे पोऽशारे द्विदगदशदले द्वादशार्धे चतुष्के ।
 वासान्ते वालमध्ये उफकठसहिते कण्ठमूले स्वराणा
 ह क्ष तत्वाथंयुक्त सकलदलयुत वर्णरूप नमामि ॥

लमित्यादि पञ्चपूजा

(हंससोहं सोहं हसः)

विशुद्धचक्रे षोडशारे अ नम + अ नम हससोहं ।
 अनाहतचक्रे द्वादशदले क नम + ठ नम हम्मसोहं ।
 मणिपुरकचक्रे दशदले ड नन + फ नम हससोहं ।
 स्वाधिष्ठानचक्रे षड्दले ब नम + ल नम हससोहं ।
 मूलावारचक्रे चतुर्दले व नम + स नम हससोहं ।
 आज्ञाचक्रे द्विदले ह नम क्ष नम हससोहं ।

ब्रह्मरन्ध्र सहस्रारे पञ्चाशदर्णान् अनुलोमप्रतिलोमेन
 अकारादि क्षकारान्ति क्षकाराद्यकारान्ति विन्यसेत्
 इत्यन्तमर्तुकान्त्यास
 करशुद्धिन्यास

दक्षकरतले अ नम तत्पृष्ठे आ नम तत्पाश्वे सौ.
 नम वामकरतले अ नम तत्पृष्ठे आ नम तत्पाश्वे सौ
 नम मध्यमयो, अ नम अनामिकयो आ नम कनि
 ष्ठिकयो सौ नम अगुष्ठयो अ नम तर्जन्यो आ नम,
 करतलकरपृष्ठयो सौ नम ॥

इति करशुद्धिन्यास

आत्मरक्षान्यास

ऐ ही श्री ऐ कली सौ महात्रिपुरसुन्दरि आत्मान
 रक्ष रक्ष इत्यज्ञालि हृदये दद्यात्

इत्यात्मरक्षान्यास

चतुराव्यास

ह्यो लक्षी सौ श्रीदेव्यात्मासनाय नम पादयो. ४

है ही हसौ श्रीचवत्रासनाय नम जङ्घयो हसै
हस्तकी हमौ सर्वमन्त्रासनाय नम जान्त्वो ही कली ब्लैं
साद्यसिद्धासनाय नम, मूलाधारे ॥

इति चतुरासनत्यासा

बालाडङ्गत्यासः

ए हृदयाय नम	सौ कवचाय हु
बली शिरसे स्वाह	बली नेत्रवत्याय वौषट्
सी शिखायं वषट्	ए अस्त्राय फट्

इति बालापडङ्गत्यास

वाग्देवतात्यास

श्रो अ . अ, १३ब्लू वशिनीवाग्देवतायै नमः
शिरसि-क २ कली कामेश्वरीवाग्देवतायै नम ललाटे
च ५ त्वली मोदिनी- वाग्देवतायै नम, भ्रूमध्ये ट ५
ल्यू विमलवाग्देवतायै नम कण्ठेत ५ उम्री श्रुणावा
ग्देवतायै नम, हृदये प हस्तव्यू जयिनी वाग्देवतायै
नम नाभो य ४ भूम्रयू सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नम गुह्ये
श ३ क्षम्री कौलिनी वाग्देवतायै नम. मूलाधारे ॥

इति वाग्देवतात्यास

मूलविद्यात्यासः

मूर्धन क-मूले ए हृदये ई दक्षिणेत्रे ल-वामनेत्रे
ही-भ्रूमध्ये ह दक्षिणश्रोत्रे स वामश्रोत्रे क मुखे ह

दक्षिणभुजे न वामभुजे ह्री-पृथे मु दक्षजानुनि क वाम-
जानुनि ल नाभी ह्री ॥

इति मूलविद्यान्याम् ॥

तत्त्वन्यासः

दक्षगादे आत्मतत्त्वाय तम वामे क्रित्रयागत्क्ये
नम दक्षपाद्वें विद्यातत्त्वाय नम वामे ज्ञानशक्त्ये नम
दक्षकपोने गिवतत्त्वाय नम वामे इच्छाशक्त्ये नम
मूर्धिनीमवंनत्त्वाय नम तत्र व तुर्य शक्त्ये नम ॥

इति तत्त्वन्याम् ॥

श्रथान्तश्चक्रत्यास

श्रथ महन्त्रारे अ आ सी चनुरश्वत्रयात्मक त्रैलो
क्यमोहनचक्राविष्ठ त्र्य अणिमाद्यष्टाविश्वतिगत्क्षिमहि
तप्रकटयोगिनीहृपाये त्रिपुरादेव्ये नम, तदुपरि विपु-
सन्त्रे पद्मले एँ क्ली सी पीडगदलपद्मात्मकमवंशापरि
पूरकचक्रविष्ठात्र्ये कामाक्षिग्यादिपाडगशक्तिमहिन
गुप्रदोगिनीहृपाये त्रिपुरेश्वरीदेव्ये नम, आधारे ह्री
वनी सी अष्टदलपद्मात्मकसर्वलोभणचक्राविष्ठ त्र्ये
अनज्ज्ञकुमुमाद्यप्रशक्तिसहितगुप्रतरयोगिनीहृपाये त्रिपुर
सुन्दरादेव्ये नम नम स्वाविष्ठाने है हक्ली हूमी,
चतुर्दशारात्मकमवंसीभाग्यदायकचक्राविष्ठात्र्ये सर्वम
क्षाभिरुद्यादि चतुर्दशक्तिसहितसम्प्रदाययागिनीहृपाये
त्रिपुरवामिनीदेव्ये नम मणिपुरे हमे हक्ली हसी.
वहिदगारात्मकमवंशिमावकचक्राविष्ठात्र्ये सर्वसिद्धप्र
दादिदगशक्तिसहितकुनोत्रोर्णवोगिनीहृपाये त्रिपुराश्री-

देव्यै नम ग्रनाहते ही कली ब्ले अन्तर्दंशारात्मकसर्वरा
क्षाकरचक्राधिष्ठात्र्यै स्वज्ञादिदशशक्तिसहितनिगर्भयो
गिनीरूपायै त्रिपुरमालिनीदेव्यै नम विशुद्धौ ही श्री
सौ. अष्टात्मकसवरोगहरचक्राधिष्ठात्र्यै वशिन्याद्यष्टश
क्तिसहितरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुरासिद्धादेव्यै नम
लम्बिकाम्रे हसै हस्कली हसौ त्रिकोणात्मकसर्वसिद्धिप्र
दचक्राधिष्ठात्र्यै कामैश्वर्यादित्रिशक्तिसहितातिरहस्य
योगिनीरूपायै त्रिपुराम्बादेव्यै नम आज्ञाया क १५
विन्द्वात्मकसर्वनिन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै पड़ङ्गायुधदशश
शक्तिसहितपरापररहस्ययोगिनीरूपायै महात्रिपुरसुन्द-
रोदेव्यै नम पुन, आज्ञाचक्रकोपरि एकेकाङ्गुलदेशे
बिन्दी अ आ सौ नम अर्धचन्द्र ऐ कली सौ नम
रोधिन्या ही बली सौ नम नादे हैं हकली हसौ नम,
नादान्ते हसै हस्तकी हसौ नम शक्ती ही लकी ब्ले नम
व्यापिकाया ही श्री सौ नम समनाया हसै हस्तकी
हसौ नम उन्मनाया क १५ नम ब्रह्मान्धै महाबिन्दी
क १५ श्री नम इत्यादिचक्रेश्वरी मन्त्रान् न्यसेत् ॥

इत्यन्तश्चक्रन्यास ॥

अथ बहिरुचक्रन्यास

पादयो अ आ सौः चतुरश्चत्रयात्मकत्रैलोक्यमो-
हनचक्राधिष्ठात्र्यै अणिमाद्यष्टाविशतिशक्तितहितप्रकट
योगिनीरूपायै त्रिपुरादेव्यै नम जान्वो एँ कली सौः
पौडशदलपद्मात्मकसर्वशापरिपूरकचक्राधिष्ठात्र्यै का-
माकषिण्यादिपौडशशक्तिमहितगुम्बयोगिनीरूपायै त्रिपुरे
श्वरीदेव्यै नम, ऊर्मूलयो हीं लकी सौ अष्टदलपद्मा-

मकमवंमक्षोभणचक्राधिष्ठात्र्य अनज्ञकुमुमाद्यष्टग्वित
 सहितगुप्ततर्योगिनीस्पाय त्रिपुरसुन्दरीदेव्य नम
 नाभौ हैं हल्की हर्मा चतुदग्गारात्मकमवसोभाग्यदायक
 चक्राधिष्ठात्र्य सर्वमक्षोभिण्यादिचतुर्दशग्वितसहितस
 स्प्रदाययोगिनीस्पाय त्रिपुरवामिनीदेव्य नम, हृदये हमे
 हम्स्की हमी महितकुलोत्तीर्णयोगिनीरूपाय त्रिपुराश्री-
 देव्य नम कण्ठे ही लकी ल्वे अन्तदेशारात्मकरक्षाकर-
 चक्राधिष्ठात्र्य सर्वज्ञादिदशग्वितसहितनिगर्भयोगिनी
 रूपाय त्रिपुरमालिनीदेव्य नम, मुखे ही थी सौ अष्टद-
 लपद्यात्मकसर्वगेगहरचक्राधिष्ठात्र्य विज्ञ्याद्यष्टग्वित-
 सहितरहस्ययोगिनीरूपाय त्रिपुरामिद्वादेव्य यम नेत्रयो
 हृत्र्य हम्स्की हम्सी त्रिकोणात्मकमवसिद्धिप्रदचक्राधि-
 ष्ठात्र्य कामेश्वर्यादित्रिशक्तसहितातिरहस्ययोगिनीरू-
 पाय त्रिपुराम्बादेव्य नम मूर्धि क १५ विन्द्रात्मक
 सर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्य पड़ज्ञायुधदग्गवितसहित
 परापररहस्ययोगिनीरूपाय महात्रिपुरसुन्दरीदेव्य नम ॥

इति वाहिश्चक्षकन्यास ॥

कामेश्वर्यादिन्यास

मूलेश्वारे ए ५ अग्निचक्रे कामगिरीपीठे मित्रेश-
 नाथात्मिके जाग्रटशधिष्ठात्र्यिके इच्छाशक्तयात्मकरुद्रा-
 त्मग्वितश्रीमहाकामेश्वर्य नम, अनाहते लकी ह ३ मूर्य-
 चक्रके जालम्बरपीठे पष्ठीशनाथतिमिके स्वप्रदशाधिष्ठात्र्यि
 के ज्ञानशत्यात्मकविष्णवात्मग्वितश्रीमहावज्रेश्वर्य नम,
 आज्ञाया सौ, स ४ मोमचक्रके पूराणगिरीपीठे उडीशनाथ-

तिमके सुषुप्तिदशाधिष्ठायिके क्षिर्याशत्यात्मकन्रह्यात्म-
शवितश्रीमहाभगमालित्यं नम ब्रह्मरन्ध्रे एँ लकी सौ
क १५ परद्रवचक्षके महोडयाणपीठे चर्यानन्दनाथात्मके
तुरीयदशाधिष्ठायिके शान्तिशत्यात्मकपरब्रह्मगवितश्रो-
महात्मिपुरसुन्दर्यं नम, ॥

इति कामेश्वर्यादित्यास, ॥

श्रीषोडशाक्षरीत्यास

ओ ए ही श्री मूलविद्यामुञ्चर्यं नम इति दक्षम
ध्यमानाभ्या शिरसि न्यसेत् ।

पुनस्ता दीपाभा स्वत्सुधारसा महासौभाग्यदा
ध्यात्वा पुनस्तथैव तामुञ्चार्यं महासौभाग्य मे देहि पर-
सौभाग्य दण्डयामि इति सौभाग्यदण्डित्या मुद्रय वामक-
णसवैष्टनपूर्वकं आमस्तकचण वामङ्गे न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चाय मम शूत्रन् निगृह्णामीति
रिपुजिह्वाग्रया मुद्रया वामपादाधो न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चाय त्रैलोक्यस्याह कतेति त्रिख-
ण्डा फाले न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्यं वदने वैष्टनत्वेन न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्यं दक्षकण्ठादिवामकणन्ति
मुखवैष्टनत्वेन यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्यं गलोध्वमाशिरो न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामाद्यन्तप्रणवमुच्चार्यं मस्तकात् पाद-
पयन्त पादादामस्तकं च न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्यं योनिमुद्रया मुखे न्यस्य ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्यं योनिमुद्रया ललाटे न्यसेत् ॥
इति पोडशाक्षरीन्यास. ॥

सम्मोहनन्यासः;

श्रीविद्या स्मृत्वा तत्प्रभया जगदरुणं विभावयन्
अनामिका ऊर्ध्वं परिभ्राम्य मूलविद्यां पुनः पुनरुच्चर्य
न्रह्यरन्ध्रं मणिवन्धद्वितये फाले च विन्यसेत् ॥

इति सम्मोहनन्यास ॥

सहारन्यासः;

ओ ए ही श्री श्री नम पादयो,

- ” ही „ जङ्घयो
- ” क्ली „ जान्वो
- ” ए „ कटिभागद्वये
- ” सो „ पृष्ठे
- ” श्रो „ लिङ्गं
- ” ही „ नाभो
- ” श्री „ पाश्वयो
- ” क-५ „ स्तनयो.
- ” सो „ मूर्धि
- ” ए „ मुखे
- ” क्ली „ नेत्रयो
- ” ही „ कर्णयुगसन्निधी
- ” श्री „ कणवेष्टनयो,

इति सहारन्यास ॥

सृष्टिन्यासः

ओ ए ह्री श्री नम ब्रह्मरन्ध्रे
 „ ह्री „ फाले
 „ क्ली „ नेत्रयोः
 „ ए „ वर्णयो
 „ सौ „ नासापुटयोः
 „ ओ „ गण्डयो
 „ ह्री „ दन्तपडक्तो
 „ श्री „ ओष्ठयो
 „ क-५ „ जिह्वाया
 „ ह-६ „ चोरकूपे
 „ स ४ „ पृष्ठे
 „ सौ „ सर्वाङ्गे
 „ ए „ हृदि
 „ क्ली „ स्तनयोः
 „ ह्री „ उदरे

ओ ए ह्री श्री नम लिङ्गं च न्यस्य मूलेन व्यापकं
 कुर्यात्

इति सृष्टिन्यासः

स्थितिन्यासः

ओ ए ह्री श्री नम अङ्गष्टयो
 „ ह्री „ तजम्यो
 „ क्ली „ मध्यमयो.

„ ए „ अतामिकयोः
 „ सौ „ कनिछिकयोः
 „ ग्रो „ मूर्धिन
 „ ही „ मुमे
 „ श्री „ हृदि
 „ क-७ „ नाभी
 „ ह-६ „ कण्ठादिनाभिपर्यन्त
 „ स-४ „ मूर्धादिकण्ठान्त
 „ सौ „ पादाङ्गुष्ठयो
 „ ए „ पादतज्ज्यो
 „ बली „ पादमध्यमयो
 „ ही „ पादानामिकयो
 „ श्रा „ पादक्षिणिष्ठरुयो

इति स्थितिन्यास ।

—तत् मुलेन पड़ज्ञन्यास कुर्यात् —

४-भुवनेश्वरी

पृष्ठिगत शिव का ग्रन्थिभाग 'श्रम्बन शिव माता' जाना है, उसकी महाशक्ति 'भुवनेश्वरी' है ।

श्रम्बक का शब्दार्थ इस प्रकार है—श्रम्बक त्रि + श्रम्बक श्रम्ब नाम दिता है । 'त्रयणा लोकाता श्रम्बक पिता श्रम्बक ।' तीनों तोकों का जो सिता है, वह 'श्रम्बक' है । यजुर्वेद ३।५८ में कहा है—

‘अब रुद्रमदीमह्यवं देवं त्यम्बकम् ।’

रुद्र पापियो को सन्तप्त करने वाले, तोन नेत्र वाले हैं, उनके नेत्रों से तीनों लोक प्रकाशित होते हैं ।

तीनों भुवनों की सञ्चालक शक्ति भुवनेश्वरी है । सहिता में यहाँ तक लिखा है कि भगवती भुवनेश्वरी चौदह भुवनों पर अपना स्वामित्व रखती है । इसीलिए उक्तका नाम ‘भुवनेश्वरी’ पड़ा ।

इसका स्वरूप इस प्रकार है—

उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटा तुङ्गकुचा नयनत्रययुक्ताम् ।

स्मरेमुखी वरदा छ्वंशपागाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

ग्रथात् ‘प्रात कालीन सूर्य की आभा की तरह रक्त वर्ण वाली, चन्द्रमा को मुकुट रूप से ग्रहण कर, उन्नत कुच, त्रिनेत्र, मृदु हास करती हुई, पाश, अङ्गूष्ठा, वरद और अभय मुद्रा से युक्त हाथों वाली भगवती भुवनेश्वरी की मैं आराधना करता हूँ ।’

भगवती के वर्ण की उपमा प्रात कालीन सूर्य की प्रभा से दी गई है जो अरुण वर्ण की होती है । जब सूर्योदय हो रहा होता है, वह रक्त वर्ण का ही होती है । यह रक्त वर्ण प्रकृति के रजोगुण का प्रतीक है । सृष्टि के कार्य में रजोगुण की ही प्रवानता रहती है । भुवनेश्वरी इससे सम्बन्धित है क्योंकि वह चौथी सृष्टि की धारा है, चौथी सृष्टि विद्या है ।

मुकुट रूप चन्द्रमा सोम का प्रतीक है । सोम जगत का पौषण करता है । इसीलिए सोम को शतपथ नाह्यण ३।३४।२१ में विज्ञान कहा गया है । सोम को ऋग्वेद ६।८६।४१, ६।८६।२५ व कौषीतक ब्राह्मण ७।१० में चन्द्रमा कहा है, क्योंकि इसके पान से शीतलता प्राप्त होती है ।

श्रुत्वेद ६।५।१२, ६ ६७।३२ में इसे प्रमूल की सज्जा दी गई है क्योंकि इसे ग्रहण करने वाला भद्रव निरोगी रहना है, और श्यावि उसके पास फटकने भी नहीं पानी। शतपथ ५।१।३।७ में इसे प्रजापति कहा है क्योंकि यह नई शक्तियों का सूचन करना है। शतपथ १२।७।३।१३ में इसे दुष्प्र यहा गया है क्योंकि उसकी तरह पोषण का गुण रखता है। तैत्तिरीय व्रात्युण १।४।७।४-५ में माम को सुर्खण कहा है इसका गुण स्वास्थ्यकी मिष्ठता व सुदृढना है। सोम भी यही करता है।

'उन्नन्त कुच' का अभिप्राय पालन पोषण की शक्ति-सामर्थ्य रखने की क्षमता में है क्योंकि कुच में विद्यमान दुर्ग्र का कार्य शिशु का पालन ही है।

'नयनत्रयमुक्ताम्' का अथ सूर्य चन्द्रमा और अर्णि नामक तीन तेजों से है। तीन नेत्र इच्छा, ज्ञान और क्रिया के भी प्रतीक हैं।

'स्मरमुखी' का अर्थ नित्यानन्द स्वरूपा है। मृदु हास आनन्द रूपता को ही प्रकट करता है। मन्द हास्य में कृपा दृष्टि का भी निदान बनाया गया है।

भवती के चारों हाथों में पाश, अङ्गुष्ठ, वर प्रीत अभय मुद्राएँ हैं। इनमें पाश अर्थ की सूचना देता है क्योंकि इसी शक्ति के बन्धन में बेंध कर मनुष्य आवागमन के चक्र में घूमता रहता है। इसी लिए पाश को आकर्षण शक्ति कहा जाता है।

अङ्गुष्ठ वर्म का रूप है क्योंकि वातावरण से प्रभावित होकर जब मनुष्य दुरे माग की ओर प्रवृत्त होता है तो वह ही उसे अङ्गुष्ठ की तरह रोकने की शक्ति रखता है। इसमें स्वमन की शक्ति होती है। पाश और अङ्गुष्ठ शासन शक्ति के भी सूचक हैं।

पर मुद्रा से भवतों की मांसारिक ऐश्वर्यों का वरदान देती है।

अभय मुद्रा का यह अभिप्राय है कि भगवती सभा प्रकार के भयो से सुकृत करने वाली है। यह मुद्रा मीष्ठ की सूचक है।

भुवनेश्वरी पूजन विधि-मन्त्र

‘ नकुलीशोऽग्निमारुदो वामनेत्राद्द्वच द्रवान् ’ इर्थति नकुलीश (ह), अग्नि (२), वामनेत्र (ई), अद्वचन्द्र (*) इन चार एरों को मिलाने से ‘ही’ बीज बनता है जो भुवनेश्वरी का मन्त्र है।

भुवनेश्वरी का प्रात -सन्ध्या का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

अथ वक्ष्ये जगद्गात्रीमधुता भुवनेश्वरीम् ।

ब्रह्मादयोपि या ज्ञात्वा लेभिरेश्चियमूर्जिताम् ॥

नकुलीशोऽग्निमारुदो वामनेत्राद्वचन्द्रवान् ।

बीज तस्या समाख्यान सेवित सिद्धिकाक्षिभि ॥

ऋषि शक्तिर्भवेच्छन्दो गायत्री देवता मनो ।

कथिता सुरसङ्घेन सेविता भुवनेश्वरी ।

षडदीर्घयुक्तबीजेन कुर्यादङ्गानि षटकमात् ।

इसका ध्यान इस प्रकार है—

उद्यद्विनद्युतिमिन्दुकिरीटा तुङ्गकुचा नयनत्रययुक्ताम् ।

स्मेरमुखी वरदाकुशपाशाभीतिकरा प्रभजेऽङ्गुवनेशीम् ॥

मध्यान्ह सन्ध्या का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

वाग्भव शम्भुवनिता रमाबीजत्रयात्मकम् ।

मन्त्र समुद्धरेन्मन्त्री त्रिवर्गफलसाधनम् ॥

षडदीर्घभाजा मध्येन वाग्भवाद्येन कल्पयेत् ।

पठङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि मन्त्रवित् ॥

और ध्यान इस प्रकार है—

सिद्धूरारुणविग्रहा त्रिनयना माणिक्यमौलिस्फुरत्

तारानायव शेखरा स्मितमुखीमापीनदक्षोरहाम् ।
पाणिम्यामलिपूर्णरत्नचपक रक्तोत्पल विभ्रती,
सीम्या रत्नघटरथ सद्चरणा ध्यायेत् पराभम्बिकाम्

सायकालीन सन्द्या का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

वाग्वीजपुटिता माया विद्येय त्र्यक्षरी मता ।
मध्येन दीघ युक्तेन वाक्पुटेन प्रवत्पयेत् ॥
अङ्गानि जातियुक्तानि क्रमेण मनुवित्तम् ।

ध्यान यह है—

ध्यामाङ्गी शशिशेखरा निजकरंदासिञ्च रक्तोत्पल,
रक्तनाढ्य चषक परभयहर सविभ्रती शाश्वतीम् ।
भुवतहारलसत्पयोवरनुता नेत्रवयोल्लासिनी,
वन्देऽहं सुरपूजिता हरवधू रक्तारविन्दस्थिताम् ॥

अत्मर्तुका न्यास

विनियोग—

३५ अस्य श्रीअन्तमर्तुका महासरस्वती मन्त्रस्य
ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषय ऋग्यजु सामानि छन्दासि
अन्तमर्तुका महासरस्वती देवता हलो बीजानि स्वरा,-
शक्तय विन्दव. कीलकानि अन्तमर्तुका महासरस्वती
प्रसाद सिद्धयर्थे जपेविनियोग ।

ऋष्यादि न्यास

शिरसि ब्रह्मविष्णुऋषिभ्यो नम ।
मुखे गायत्री त्रिष्टुव अनुष्टुव छन्दोभ्यो नम ।
हृदि अन्तमर्तुका महासरस्वतीदेवतायै नमः ।

गुह्ये ईं व्यञ्जनेभ्यो बीजेभ्यो नम ।
 पादयो ओ स्वरे, भ्य शक्तिभ्यो नम ।
 सर्वाङ्गे बिन्दुभ्य कीलकेभ्यो नम ।

प्राणायाम

ओ ऐ ही श्री आ इ ई उ ऊ ऋ ऋ लृ लृ अ
 आ इन स्वरो से पूरक, ओ ए ही श्री क ख ग घ ड -
 च छ ज भ झ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ व भ म
 इन व्यञ्जनो से कुम्भक और ओ ए ही श्री य र ल व
 श स ह —

इनसे रेवक प्राणायाम करना चाहिए ।

कराग और षडङ्ग न्यास

ओ आ ही कौं अ क ख ग घ ड पृथिव्यप्तेजो
 वाटबाकाशात्मने आ अङ्गुष्ठाभ्या नम ।

ओ आ हीं कौं इ च छ ज भ झ शब्दस्पशरूपरस
 गन्धात्मने ईं तर्जतीभ्या स्वाहा ओ आ हीं कौं ड ट ठ
 ड ढ ण वाक् पाणिपादपायुप स्थात्मने, ओ मध्यमाभ्या
 वषट् । ओ आ हीं कौं ए त थ द ध न श्रोत्रवक्चक्षु-
 जिह्वाप्राणात्मने ए अनामिकाभ्या हुँ । ओ हीं कौं प
 फ व भ म मनोबुद्धिचिन्तविज्ञानानन्दात्मने श्रौं कनि-
 ष्ठिकाभ्या वौषट् । ओ आ हीं कौं य र ल व श प स ह
 वचनादानगमन विसर्गानन्दात्मने अ करतलकरपृष्ठाभ्या
 फट् ।

ओ आ हीं कौं अ क ख ग घ ड पृथिव्यप्तेजो-

वखाकाशात्मने आ हृदयाय नम ।

(इसी प्रकार अन्य प्रज्ञों से न्यास करना चाहिए ।)

ध्यान

आधार तु चतुर्दल। रुणर्णि वासान्तवर्णवृत् ।

स्वाविष्ठानमनेकविद्युतनिभ वालान्तपट्पत्रकम् ॥

रक्ताभ मणिपूरक दण्डलंठाद्यै फकारान्तके,,

पत्रैद्विग्नभिम्त्वनाहतपुर हैम ठकारान्तकम्

मात्राभि स्वरपोऽशच्छदयुन ज्योतिर्विगुद्धाम्बुज ।

ह क्ष द्वयक्षरपद्यपत्रयुगल मुक्ताममाज्ञाम्बुज

तस्मादूध्वरप्त सदा विकसित पद्य सहस्रच्छद ।

नित्यानन्दमय रादाशिवमय तत्व पद गाश्वतम् ॥

शरत्पूर्णन्दुगुभ्रा सकललिपीमयी लोलरक्त त्रिनेत्रा ।

शुबलालङ्कारभासा शशिमुकुट जटा जूटायुक्ता प्रसन्नाम् ॥

विद्यास्त्रकपूर्णकुम्भान् वरमपि दधती शुल्कपुष्पाम्बवराढच्या,
वारदेवी पद्मवक्त्रा स्तनभरनमिता चिन्तयेत् साधकेन्द्र ॥

ध्यान के बाद मातृश वर्ण के शुण मे 'ओ ऐ ही श्री' और
अन्त मे 'नम' हम सोह' लगाकर चक्रदलों में न्यास करना चाहिए ।

मूलाधार के अरुण आभावाले चतुर्दलकमल मे-
व, श प स ।

स्वाधिष्ठान के विद्युत प्रकाश वाले पट्टदलकमल
मे-- व भ, म, य, र, ल ।

नाभि के मणिपूरक के रक्तवर्ण दश- दलकमल
मे-- ड, ढ ण, त, थ, द, ध न, प, फ ।

हृदय के अनाहत के सुवर्णवर्ण द्वादशादल कमल में - क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ ।

कण्ठ के विशुद्ध के उज्जवल षोडसदलकमल में-- अ, आ, इ, उ, ऊ, औ, लू, लू ए, ऐ, ओ, औं, अ, अ ।

भौहो के बीच आज्ञा के मुक्तावर्ण-द्विदलकमल में--ह, क्ष ।

अब सहस्र दल कमल में सारे मातृका में आने वाले वर्णों का अनुलोम और विलोम क्रम से न्यास करना चाहिए ।

यथा-- अ, आ, इ, ई, शष स ह ल क्ष और विलोम क्ष, ल, ह, स....ई, इ, आ, अ ।

अथ बहिर्मत्तिका

ओ अस्य श्रीग्रन्तमर्तुका महासरस्वती यन्त्रस्य ब्रह्माविष्णु महेश्वरा ऋषय, ऋद्धगुजु सामानि छन्दासि बहिर्मत्तिका महासरस्वतो मन्त्रस्य देवना हलो बोजानि स्वरा, शक्तय विन्दव कीलकानि बहिर्मत्तिका महासरस्वती प्रसाद सिद्धयर्थे जपे विनियोग ।

ऋष्यादिन्यास, प्राणायाम करन्यास एव पठङ्गन्यास आदि ग्रन्तमर्तुका न्यास की तरह करना चाहिए ।

ध्यानम्

पञ्चाशलिलपिभिर्विभिन्न मुखदोर्पन्मसदरवक्षस्थली ।
भास्वन्मीलिनिवद्वचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ॥
मद्र मश्शग्ग मुवाढ्यरुलश निग्रावद हस्ताम्तुर्जे-

विभ्राणा विगदप्रभा त्रिनृता वारदेवतामाश्रये ॥

बहिर्सर्तृका न्याम करते ममय हर मातृका वर्ण के शुरू मे 'ओ' और अन्त मे 'नम्' लगाना चाहिए ।

अ ललाटे अनामा से ।

आ मुखमण्डले मध्यमा से ।

इ दक्षनेत्रे अ गूठा और अनामिका से ।

ई वामनेत्रे अ गूठा और अनामिका मे ।

उ दक्षकरणे " "

ऊ वामकरणे " "

ऋ दक्षनामायाम् अ गूठा और कनिष्ठा से ।

ऋ वामनासायाम् " "

लृ दक्षगण्डे तर्जनी मध्यमा अनामा से ।

लृ वामगण्डे " " "

ए ऊर्ध्वं ओष्ठे मध्यमा से ।

ऐ अधरोष्ठे "

ओ ऊर्ध्वं दन्तपक्ती अनामा से ।

ओ अथो दन्तपक्ती " "

अ जिह्वाया मध्यमा से ।

अ. लम्बिकाया "

क दक्ष वाहुमूले मध्यमा अनामिका कनिष्ठका से ।

ख दक्षकूपरे " " "

ग दक्षमणिवन्धे " " "

घ दक्षकरतले " " "

ङ दक्ष कराग्रे " " "

च वाहुमूले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 छ कूपरे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ज वाम मणिबन्धे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 झ वाम करतले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ञ वाम कराञ्चे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ट दक्षोरुमूले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ठ दक्ष जानुनि कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ड गुल्फे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ढ दक्ष पादतले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 ण दक्ष पादाञ्चे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 त वामोरुमूले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 थ वाम जानुनि कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 द वाम गुल्फे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा

 घ वाम पाद तले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
 न वाम पादाञ्चे " " "
 प दक्ष पाश्वे " " "
 फ वाम पाश्वे " " "
 ब पृष्ठे " " "
 भ नाभी अ गुष्ठा कनिष्ठा अनामा मध्यमा
 म जठरे अ गुष्ठ तर्जनी मध्यमा अना० कनि०
 य त्वगात्मने हृदि मध्यमा अनामिका
 र असृगात्मने दक्षाशे , "
 ल मासात्मने ककुदि " "
 व मेदात्मने वामाशे " "
 श अस्यात्मने हृदादि दक्ष कराञ्चल्यन्तम् ।

ष मज्जात्मने हृदादि वास करा द्वाल्यन्तम् ।
 स शुक्रात्मने नाभ्यादि दक्ष पादान्तम् ।
 ह जीवात्मने नाभ्यादिवास वास पादात्म ।
 ल परमात्मने हृदादि कुक्षो ।
 ध ज्ञानात्मने हृदादि मुखे ।

मूल मन्त्र न्यास

विनियोग —

अभ्यं श्रीभूवनेश्वरी मन्त्रम्य शक्ति ऋषि गायत्री
 छन्दं श्रीभूवनेश्वरी देवता ही वीज श्रीं शक्ति कनी कीलक
 श्रीभूवनेश्वरी देवता सिद्धयर्थं विनियोग ।

ऋष्यादिन्यास

शिरसि शक्ति ऋषये नम । मुखे गायत्री छन्दसे
 नम , हृदि श्रीभूवनेश्वरीदेवताय नम । गुह्ये हीं
 वीजाय नम । पादयो श्री शक्तये नम । सर्वाङ्के कली
 कीलकाय नम ।

करन्यास

ओ हा अगुप्ठाभ्या नम । ओ हीं तर्जनीभ्या
 स्वाहा । ओ हूं मध्यमाभ्या वपट् । ओ अनामिका-
 भ्या है । ओ हीं कनिष्ठाकाभ्या वौपट् । ओ ह्न कर-
 तलकरपृष्ठाभ्या फट् ।

षड्ङ्गान्यास

ओ हा हृदयाय नम । हीं ओ गिरसेस्वाह ।

ओ हूं शिखायै वपट् । ओ हूं कवचाय हुँ । ह्रीं नेत्र-
त्रयाय वौषट् । ओ ह, अस्त्राय फट् ।

बोजमन्त्रन्यास

ओ हृलेखायै नम, मस्तके । ओ एै गगनगायै
नम मुखे । ओ ऊ रक्तायै नम हृदये । ओ इै करालि-
कायै नम गुह्ये । ओ औं महोच्छुष्मायै नम पादयो ।
ओ एै ऊ इै औं हृलेखायै नम सर्वज्ञे ।

ओ हृलेखायै नम ऊर्ध्वमुखे । ओ एै गगनगायै नम
पूर्वमुखे । ओ ऊ रक्तायै नम दक्षिणमुखे ओ इै करा-
लिकायै नम उत्तरमुखे । ओ औं महोच्छुष्मायै नम,
पश्चिममुखे ।

व्यापक न्यास

इम तरह से न्यास करके तीन बार व्यापक न्यास करना
चाहिए । यह शिर से पैर तक भौर पैरो से शिर तक करना चाहिए ।

भुवनेश्वरी कवच

पातक दहन नाम कवच सर्वकामदम् ।
शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव स्नेहात्प्रकाशितम् ॥

शक्त बोले— हे पार्वती । मैं तुम्हारे प्रति भुवनेश्वरी कवच
कहता हूं । उसका नाम ‘पातक दहन’ है । इम कवच से सभी काम-
नाशों की सिद्धि होती है । तुम्हारे प्रति स्नेह के वश होकर ही इसे
प्रकट करता हूं ॥

पातक दहनस्यास्य सदाशिव ऋषि स्मृत् ।
छन्दोऽनुष्टुद्व देवता च भुवनेशो प्रकीर्त्तता ।

धर्मपर्यंकाममोक्षेषु विनियोग प्रकीर्त्तित ।२।

पातक दहन के शृणि सदाशिव छद अनुष्टुप् दवता भुवनेश्वरी
ओर विनियोग धर्मार्थ काम में क्ष आदि में है ।२।

ए वीज मे शिर पातु हनी वीज वदन मम ।

श्री वीज कटिदेशन्तु सर्वज्ञ भुवनेश्वरी ॥

दिक्षु चंव विदिथवीय भुवनेशी सदावतु ।३।

ऐ वीज मेरे मस्तक की, ही मुख की, श्री कमर की ओर
भुवनेश्वरी सवांग की रक्षा करें। दिशा-विदिशा मभी मे भुवनेश्वरी
मेरी रक्षा करे ।३।

अग्न्यापि पठनात्सद्य कुवेरोऽपि धनेश्वर ॥

तस्मात्सदा प्रयत्नेन पठेयुम्र्मानवा भुवि ॥

इस कवच के पढने से ही कुवेर तुरन्त बनाविप हुए इस लिये
प्रयत्न पूर्वक इसका उदा पाठ करना उचित है ।४।

स्तव

अथानन्दमयी साक्षाच्छब्दव्रह्मस्वरूपिणीम् ।

ईडे सकल सम्पत्यं जगत्कारणमम्बिकाम् ।१।

‘जो भगवती ग्रानन्दमयी साक्षात् शब्द रूप वाली एव व्रह्मा
स्वरूपा हैं, जो जगन्माता और जगत्कारण रूपा हैं उन देवी की सपत्ति
लाभ के निमित्त स्तुति करता हूँ ।१।’

आद्यामशेषजननीमरविन्दयोने-

विष्णो शिवस्य च वपु प्रतिपादयित्रीम् ॥

सृष्टिस्थितिक्षयकरी जगता त्रयाणा

स्तुत्वा गिर विमलयाम्यहमम्बिके वाम् ।२।

'हे माता ! तुम ससार की आद्या हो, ब्रह्मारड तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुआ है ब्रह्मा, विष्णु, शकर भी तुम्ही से प्रकट हुए हैं । त्रैलोक्य की रचयित्री, स्थित और विनाश करने वाली हो । तुम्हारी स्तुति के द्वारा मैं शपनी वाणी को पवित्र करता हूँ । २।'

पृथग्या जलेन शिखिना मरुताम्बरेण
होत्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्तिभाज ।
देवस्य मन्मथरिपोरपि शक्तिमत्ता
हेतुस्त्वमेव खलु पर्वतराजपुत्रि । ३।

हे पावंती ! जो पृथग्यी, जल, तेज, वायु, प्राकाश प्रग्निहोशी, सोम, सूय के रूप में जो देवी स्थित हैं तथा जिन्होंने कामदेव को भस्म किया था, उन भगवान् शकर को भी त्रैलोक्य सहारिणी शक्ति तुम्हारे द्वारा ही सम्पन्न होती है । ३।'

त्रिस्त्रोतस सकललोकसमर्चिताया
वैशिष्ठ्यकारणमवैमि तदेव मात, ।
त्वत्पादपकञ्जपरागपवित्रितासु
शाम्भोर्जटासु नियत परिवर्तन यत् । ४।

'हे माता ! तुम्हारी चरण-रेणु से पवित्र हुई, शहर की जटा में तीन स्रोत वाली भागीरथी सदा प्रवाहित रहती हैं इस लिए उनका सभी पूजन करते हैं और इसी लिए वह गगांबो प्राप्तानता को प्राप्त हुई है । ४।'

आनन्दयेत्कुमुदिनीमधिप कलाना
नान्यामिन कमलिनीमथ नेतरा वा ।
एकस्य मोदनविधौ परमेकभीष्टे
त्वन्तु प्रपञ्चमभिन्दयसि स्वदृष्ट्या । ५।

'जैसे उनावन्न चम्द्रना कुमुदिनी तो प्रानन्द रेते हैं और किसी

को नहीं ग्रथवा सूर्यं भी केवल व मन का ही आनन्द-वर्द्धन करते हैं अन्य किसी का नहीं करते। जिन प्रकार एक एक द्रव्य के आनन्द वर्द्धन को एक एक द्रव्य ही निहिट है, वैसे ही इस समूर्ण विश्व को एक तुम्हीं अपनी वृष्टि से आनन्द प्रदान करती हो ॥५॥

आद्याप्यजेपजगता नवयौवनासि

शैलाधिराजतनयाप्यतिकोमलासि ।

अथा प्रसूरपि तथा न समीक्षितासि

ध्येयापि गौरि मनसौ न पथि रिथतासि ॥६॥

‘हे माता ! सब की आद्या होकर भी तुम नवयुवती ही हो । पर्वतराज की पुत्री होकर भी तुम अत्यत कोमलागी हो । जो वेद तुम मे प्रकट हुए हैं वे तुम्हारा तत्व निष्पण बरते श्रस भगवती । तुम ध्यानगम्या होते हुए भी मन मे अयमित्यन नहीं हो पाती ॥’

आसाध्य जन्म मनुजेषु चिराढ्युराप

तत्रापि पाटवमवाप्य निजेन्द्रियाणाम् ।

नाभ्यच्चर्यन्ति जगता॑ जनयिक्ती ये त्वा

नि श्रेणिकाग्रमधिरुह्य पुन पतन्ति ॥७॥

‘इम अमाध्य मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर भी और इद्रियो के विभिन्न सामर्थ्य को पाकर भी जो मनुष्य तुम्हारी पूजा नहीं करते, हे माता । वे मुक्ति की सीढियो पर चढ़ भी जाय, तो वहाँ से पुन गिर जाते हैं’ ॥७॥

कपूरचूर्णहिमवारिविलोडितेन

ये चन्दनेन कुमुमेश्च मुजातगन्धै ।

आराध्यन्ति हि भवानि समुत्सुकास्त्वा

ते खल्वशेषभुवनादिभव प्रथन्ते ॥८॥

‘हे माता ! कर्म चूर्ण मिले ठंडे जल में घिसे हुए चन्दन
और श्रेष्ठ सुगंध वाले पुष्पों के द्वारा उत्कठित मनोभाव से तुम्हारी
आराधना करते हैं, वे मनुष्य सब भूतों के स्वामी होते हैं’ ।६।

आविश्य मध्यपदवी प्रथमे सरोजे
सुप्राहिराजसदृशी विरचय विश्वम् ।
विद्युल्लतावलयविभ्रममुद्वहन्ती
पद्मानि पञ्च विदलय्य समश्नुवाना ।६।

‘हे माता ! तुम मूलाधार कमल में शपन करते हुए सप राज
के समान विराजती हुई जगत की रचना करती हो और वहाँ से विद्युत
रेखाओं के समान क्रमानुसार ऊर्ध्व स्थित पच दल कमल को भेद कर
सहस्रदल कमल की कण्ठिका के मध्य में स्थित परम शिव सहित मिलती
हो ।६।’

तन्तिर्गतमृतरसं रभिषिच्छ गात्र
मार्गेण तेन विलय पुनरण्डवासा ॥
येषा हृदि स्फुरति जातु न ते भवेयु-
म्मातिर्महेश्वर कुटुम्बिनि गभभाज ।१०।

‘हे माता ! तुम सहस्रदल कमल से तिक्कलते हुए सुधारस से
देह को अभिषिक्त करती हुई सुपुम्ना के मार्ग में जाकर लीन हो जाती
हो । जिस मनुष्य के हृदय पद्म में तुम्हारा उदय नहीं होता, वह मनुष्य
वार वार गर्म धारण का दुख उठाता है ।१०।’

आलाम्बिककुन्तलभरामभिरामवका-
मापीवरस्तनतटी तनुवृत्तमध्याम् ।
चिन्ताक्षसूक्षकलशालिखिताढ्यहस्ता,
मातनमामि मनसा तव गोरि मूर्तिम् ।११।

हे माता । तुम्हारे केश लम्बे हैं, तुम्हारा मुख अत्यन्त रमणीक है, उन्नत वक्ष, पतली कमर और चार भुजाओं से युक्त हो । उन भुजाओं से ज्ञानमुद्रा, जप माला, कलश और पुस्तक सुशोभित है । हे देवी । तुम्हारे गोरी स्वरूप को हम नमस्कार करते हैं । ११।'

आस्थाय योगमवजित्य च वैरिपटक-
मावध्य चेन्द्रियगण मनसि प्रसन्ने ।
पाशाकुशाभयवराद्यकरा सुवक्रा-
मालोक्यन्ति भुवनेश्वरि योगिनस्त्वाम् । १२।

'हे भुवनेश्वरी । योग का ग्रवलम्बन करने वाले योगी कामादि वैरियों को जीत कर इन्द्रिय निग्रह पूर्वक प्रफुल्लित मन से पाशाकुश, श्रभय वर युक्त तुम मनोहारिणी का दर्शन करते हैं । १२।'

उत्तप्तहाटकनिभा करिभिश्चतुर्भि
रावर्तितामृतघट्टरभिपिच्छमाना ।
हस्तद्वयेन नलिने रुचिरे वहन्तो
पद्मापि सामयकरा भवसि त्वमेव । १३।

'हे जननि । तस्य स्वर्ण के समान वर्ण वाली, हाथों में पद्म और दो हाथों में श्रभय एव वर मुद्रा धारिणी चार हाथी । जनकांजल पूर्ण घट से प्रभिषेक करते हैं, वह देवी रूपिणी लक्ष्मी तुम्ही हो । १३।'

अष्टाभिस्त्रविविधायुधवाहिनीभि-
र्दोविंलरीभिरधिरह्य मृगाधिराजम् ।
दूर्वादिलद्युतिरमत्यविपक्षपक्षान्
न्यक्कुव्वती त्वमसि देवि भवानि दुर्गे । १४।

'हे भगवती । सिंह पर आरोहण कर विमिन्न शस्त्रास्त्र युक्त आठ हाथों से सुशोभित दूर्वादिल के समान उड्डल वर्ण वाली, देवताओं को भी जीत लेने वाली दुर्गा तुम्ही हो । १४।'

आविनिदाघजलशीकरशोभिवक्रो
गुञ्जाफलेन परिकल्पितहारयष्टिम् ।
रत्नाशुकामसितकान्तिमलकृतान्त्वा
माद्या पुलिन्दतरुणीमसकृत् स्मणामि ।१५।

श्रम विन्दुओ के द्वारा जिनका मुख महल सुशोभित है, जिन्होंने चौटली का हार धारण किया हुआ है पत्रावली जिनके वस्त्र रूप हैं, उन्हीं इयाम वर्ण वाली आद्या पुलिद तरुणी वाली का मे ध्यान करता हूँ ।१५।'

हसंगतिववणितनूपुरदूरवृष्टि-
मूर्तौरिवास्वचनंरनु म्यमानौ ।
पद्माविवोद्धर्मुखरूदसुजातनालौ
श्रीकण्ठपत्तिं गिरसंव दधे तवाद्यी ।१६।

हे नीलकण्ठ-प्रिये । जूपुर के शब्द को सुन कर जैसे हस दूर से खिचे चले आते हैं वैसे ही सब शास्त्र तुम्हारे पद पद्मो का अनुगमन करते हैं । तुम्हारे वे पद पद्म सुन्दर नील कमल के समान सुशोभित है, जिन्हे मैं अपने शिर पर सदा धारण करता हूँ ।१६।'

द्वाभ्या समीक्षितुमतृत्पिमितेन द्वग्भ्या
मुत्पाद्यता त्रिनयने वृपकेतनेन ।
सान्द्रानुरागभवनेन निरीक्ष्यमाणे
जघे उभे अपि भवानि तवान्ततोऽस्मि ।१७।

'वृपकेतु भगवान् शकर अपने दो नेत्रों से तुम्हारे रूप का अवलोकन करते हुए तृप्ति को न प्राप्त होकर ही मानो तीसरे नेत्र को प्रकट कर तुम्हारा रूप दर्शन करते हैं । प्रन, मैं तुम्हारे जानुप्रो को नमस्कार करता हूँ ।१७।'

शोभौ भुजौ निजरिपोमंकरध्वजेत ।
कण्ठग्रहाय रचितौ किल दीघपाशौ
मातम्मम स्मृतिपथ न विलघयेताम् ।१५।

‘हे माता ! तुम्हारे दोनों हाथ देखने पर अनुमान होता है कि काम देव ने ही अपने शशु श्वरूप शकर काक ठ पकड़ने के निमित्त दीर्घ पाश की रचना की हो । मैं तुम्हारे उन दोनों हाथों को कभी भी न भूलूँ ।१५।’

नात्यायत रचितकम्बुविलामचौर्ये
भूषाभरेण विविधेन विराजमानम् ।
कण्ठ मनोहरगुण गिरिराजकन्ये
सञ्चिन्त्य तृप्तिमुपयामि कदापि नाहम् ।१६।

‘हे पार्वती ! तुम विविध प्रकार के वस्त्राभूपणों से अलगुन हो । कठ अत्यन्त मनोहर है । मैं उसका ध्यान करता हुआ कभी भी वृत्त न होऊँ ।१६।’

अत्याथताक्षमभिजातललाटपटू ,
मन्दस्मितेन दरफुल्लकपोलरेखम् ।
विम्बाधर वन्दमुन्नतदीर्घं नास
यस्ते म्मरत्यसकृदम्ब म एव जात , ।२०।

‘हे जननि ! तुम्हारे मुख मण्डल पर सून्दर और विस्तृत नयन सुशाभित हैं । तुम्हारा ललाट अत्यन्त रमणीय दृष्टिगत होता है । मृदु हास्य के कारण कपोन भी प्रफुल्लित हैं । विम्ब के ममान अधर और उन्नत तथा लम्बी नासिका शोभा पा रही है । जो तुम्हारे ऐसे मुख मन्डल का ध्यान करते हैं, उनका जन्म धन्य है ।२०।’

श्रुतिसुरचितपाक धोमता स्तोत्रमेतत् ।
पठति य इह मत्यो नित्यमाद्रान्तरात्मा ॥
स भवति पदमुच्चं सम्पदा पादनम् ।

क्षितिपमुकुटलक्ष्मी लक्षणाना चिराय ।२१।

'जो व्यक्ति मेवावो जनो द्वारा रचित इस सुन्दर स्तोत्र को आद्रं प्रन्तरात्मा द्वारा नित्य पढ़ते हैं, सभी मम्पदाएँ उनकी श्राक्षित होती हैं और राजा भी उनके चरणों में शिर झुकाते हैं। २१।'

५—छिन्नमस्ता

ब्याख्या

भगवती छिन्नमस्ता के एकनिष्ठ साधकों में जहाँ योगी, ऋषि रहे हैं वहाँ असुरों की भी वह पाराविका रही हैं। योगियों में गोरखनाथ और मन्स्येन्द्रनाथ का नाम उल्लेखनीय है। ऋषियों में याजवल्य का नाम सबसे ऊपर आता है। इन्होंने जनक की सभा में शाकल्य का मस्तक डसी शक्ति से काटा था। भगवान् परशुराम भी भगवती के उपासक थे। असुरों में हिरण्यकशिषु और वैरोचन का नाम आता है। जिन्होंने भगवती की साधनासे महान् शक्तियाँ उपलब्ध की थी। भगवान् बुद्ध भी इसके उपासक बताए जाते हैं। देवी भगवति को हयग्रोद विद्या और वृहदारण्यक की मधु विद्या यही है। भगवती धर्म, अर्थ काम और मोक्ष सभी प्रकार के फल प्रदान करती है। उसे जैसे भाव से पूजा जाए, वैसा ही फल प्राप्त होता है। इसीलिए असुरों और ऋषियों दोनों की आराध्य रही है।

विपरिणामान विश्व का अविष्टाता केतन कवन्य शिव माना जाता है, उसकी महाशक्ति छिन्नमस्ता है।

छिन्नमस्ता सृष्टि प्रक्रिया से मन्वन्धित है। सूर्य जगत का मूल कारण हैं। श्रुति कहती है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुवश्च ।

(यजुर्वेद)

सूर्य जगत का जात्मा है। उससे सृष्टि मञ्चालित होती है। उसके प्रभाव से यह मन्व विश्व की व्यवस्था अस्त व्यस्त हो जाए। इसीलिए इसे यज्ञ पुरुष कहा गया है। 'सूर्यो वा ज्योतिष्ठोम, सूर्यो ह वा अग्निहोत्रम् ।'

सूर्य की दो शक्तियाँ हैं, एक का उसमें घनिष्ठनापूर्वक सम्पर्क रहना है और दूसरी उससे अनग होकर विश्व का निर्माण व पालन-पोषण करती है। जो सूर्य से अप्रथक रहती है, उसे वैदिक भाषा में 'अह्मौदन' कहते हैं और जो प्रथक होकर जगत की सृष्टि करती है, उसे 'प्रवर्ज्य' नाम दिया गया है। सूर्य अग्नि का महापिराड है। जो अग्नि सदैव उमका एक श्रग बनी रहती है, जो किरण के माध्यम से चारों ओर वरसती है। वनस्पतियो व अन्य प्राणियो में प्रविष्ट होकर उनमें प्राण शक्ति का मञ्चार करती है, वह 'प्रवर्ज्य' कहलाती है। उन दोनों को वैदिक भाषा में सूर्य पुरुष के दो मस्तक कहा गया है। गोपय व्राह्मण ३।७ में सूर्य पुरुष की 'द्वे शीषे' कहा गया है।

विश्व-निर्माण के लिए प्रवर्ज्य शक्ति प्रावश्यक है। यदि वह सङ्कोच करे तो जगन का निर्माण खतरे में पड़ जाय। वह ऐसा नहीं करना। इसलिए उसे यज्ञ रूप कहा गया है। यह प्रवर्ज्य भाग सूर्य से अलग होता रहना है, कट्टा रहना है, इसलिए कटा मस्तक की सज्जा दी गई ह। इसे ही 'छिन्न शीष' कहने हैं। तभी कहा है 'छिन्नशीर्पे वै यज्ञ, I' इस छिन्न शीष को 'कवन्त्र' भी कहते हैं। इसकी शक्ति 'द्विन्मस्ता' है।

महिमा

श्री भैरव तन्त्र में छिन्नमस्ता की उपासना से लोकिक और पारलोकिक सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन है—

प्रचण्डचण्डिका वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदाम् ।

यस्या स्मरणमात्रेण सदाशिवो भवेन्तर ॥

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो घनवान भवेत् ।

कावत्व दीर्घपाइडत्य लभते नात्र सशय ॥

अर्थात् 'प्रचण्ड चण्डिका' श्री छिन्नमस्ता के सम्बन्ध में कहते हैं, जिनकी उपासना से सब काम फलप्रद होते हैं, साधक स्वयं सदाशिव बन जाता है, अपुत्रों को पुत्र और घनहीन को घन प्राप्त होता है। कविता शक्ति और पाइडत्य शक्ति का विकास होता है, इसने कुछ भी सशय नहीं।'

'उमा सहस्रम' नामक काव्य में छिन्नमस्ता भगवती की महिमा। इस प्रकार वर्णित की गई है—

तव छिन्ना शोर्पं विदुरखिलधाञ्चागमविदो ।

मनुष्याणामस्ते बहुलतपसा यद्विदलिते ॥

सुपुम्नाया नाड्या तनुकरणसपकंरहिता वहि ।

शक्त्या युक्ता विगत चिरनिद्रा विलससि ॥

अर्थात् 'आपके छिन्न क्षीर्प को हे अखिलधाञ्चि ! आगम के ज्ञाता मनीषी लोग जानते हैं। मनुष्यों के अन्यथिक तप से जो विदलित होता है उसमें और सुपुम्ना नाड़ी में तनुकरण के सम्पर्क में वाहर शक्ति में युक्त विगत चिर निद्रा विलसित होती है—चिर निद्रा से रहित होकर आप शोभा नो प्राप्त होती है।'

गोरक्ष सहिता मे योगीराज गोरखनाथ ने भगवती की बन्दना
इस प्रकार की है—

नाभौ शुभ्रार्विन्द तदुपर्गि विमल मण्डल चण्ड-
रश्मे, समारस्यंकरुपा त्रिभवनजननी धर्मदात्री नरा-
णाम् । तस्मिन् मध्ये त्रिमार्गे त्रितयतनुवरा छिन्नमस्ता
प्रशस्ता, ता वन्दे ज्ञानरूपा मरणभयहरा योगिनी योग-
मुद्राम् ॥

(गो० प० २ ७६)

अर्थात् 'नाभि' मे स्फटिक वर्ण कमल पर अधिष्ठित पवित्र मूर्य
मण्डल का चिन्तन करता हुआ, जगत् की त्रिभुवन जननी, धर्म दात्री,
दयामूर्ति, प्रशस्ता, ज्ञान रूपा, मरण भय का हरण करने वाली योग-
मुद्रा, योगिनी छिन्नमस्ता देवी की में व दना करता हूँ ।'

ध्य

छिन्नमस्ता भनवती का ध्यान इस प्रकार है—

प्रत्यालीढपदो सदैव दघती छिन्न शिर, करूका
दिग्वस्त्रा म्बकवन्धशोणितमुधाधारा पिवन्ती मुदा ।
नागावद्धशिरोमणि त्रिनयना हृद्युत्पलालङ्कृता
रत्यासक्तमनोभवोपरि हृष्टा ध्यायेऽज्जवासन्निभाम् ॥
दक्षे चातिसिता विमुक्तचिकुरा कर्त्री तथा खर्पर
हस्ताम्बा दघती रजोगुणभवो नाम्नापि सा वर्णिनी ।
देव्याश्छन्नकवन्धत पतदसृग्धारा पिवन्ती मुदा
नागावद्धशिरोमणिमनुविदा ध्येदा सदा सा सुरं ॥
प्रत्यालीढपदा कवन्धविगलद्रक्त पिवन्ती मुदा

सेषा या प्रलये समस्त भुवन भोक्तु क्षमा तामसो ।
शक्ति सापि परात्परा भगवती नाम्ना परा डाकिनी ॥
(शक्ति प्रमोद छिन्नमस्तातत्त्व)

अर्थात् 'प्रत्पालीढ पद वाली, छिन्न शिर और खड़ घारिणी, दिगम्बरा, छिन्न कण्ठ से निकलते हुए रक्त का पान करती हुई, मस्तक में सप से बैंधी हुई मणि, तीन नेत्र कमल माल से अलकृत वक्षस्थल, जवाकुमुम के समान वर्ण वाली, दाहिने भाग में श्वेत वण, मुक्त केशी कैची और खपर घारिणी देवी हैं । यह गले से निकलने वाली रक्त घारा को पान करती हुई, मस्तक में नाग से बैंधी मणि वाली, बाँए भाग में खड़ और खर्पर घारण किये श्याम वर्ण की दूसरी देवी हैं, यह भी गले से निकले रुखिर को पीती हुई, दाँए पाव को प्राप्त किए और बाँए पाँव को पीछे किए भियत हैं । प्रलय काल में यह समूण विश्व को मक्षण करने में समर्थ 'डाकिन' नाम वाली हैं ।'

उत्पत्ति की अलकारिक कथा—

एक बार वह प्रपनी सखियो—जया और विजया के साथ मन्दाकिनी नदी में स्नान के उद्देश्य से गई । स्नान के पश्चात् उनमें कामारिन भड़क उठी । इसमें उनका वर्ण कृष्ण हो गया । तभी सखियों ने भोजन की मौग की तो उहें कुछ समय बाद देने का आश्वासन दिया । वह धुग्गा में पीड़ित हो रही थी, अत उन्होंने बार-बार मौगना शुरू किया और प्रार्थना की माता तो भूत्व लगते पर प्रपने वच्चों को अवश्य भोजन देती है, अत हमें भी मिलेता ही चाहिए । भगवती ने कराग्र से प्रपना शिर काट डाला । उससे रक्त की तीन धाराएँ निकली । दो धाराएँ तो जया और विजया (जिन्हें डाकिन और वर्पिनी भी कहते हैं) के मुख में जाने लगीं । तीवरी पारा भगवती प्रपने कटे हुए

जिर से पीने लगी । तभी मेरे भगवती छिनमना कहनारी हैं । इस तरह की और भी कथाएँ उपलब्ध होती हैं ।

स्पष्टीकरण

इस अलङ्कारिक कथा का सम्बन्ध योग मारणा में है । योग-गान्ध में तीन सूक्ष्म वन्दनों का वर्णन आता है, जिन्हे योगिक भाषा में ग्रन्थियों के नाम से घ्रन्थिहिन किया गया है । उनके नाम हैं—रुद्र ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि, व्रह्म ग्रन्थि । यह तीन ग्रन्थियाँ जब सुसावन्या में रहती हैं, तब तक जीव नावारण दीन हीन दशा में पड़ा रहता है, उसे अशक्ति, अज्ञान और अभाव के दुख बने ही रहते हैं, परन्तु जब यह ग्रन्थियाँ खुलने लगती हैं, तो लीकिक व पार्श्वोक्तिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ उसके समझ नतमस्तक होकर उपस्थित हो जाती हैं, आत्मिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है, क्षुद्रना महानता में परिवर्तित होने लगती है, दैत से अद्वैत की ओर मार्ग खुन जाता है ।

रुद्र ग्रन्थि आज्ञा चक्र में, व्रह्म ग्रन्थि मूलावार में व विष्णु ग्रन्थि मणिपुर में अवस्थित है । योगियों का मत है कि विष्णु और व्रह्म ग्रन्थियों के खुलने पर भी यदि अहङ्कार दूर न हो पाया तो रुद्र ग्रन्थि का भेदन रुक्षा रहता है, इसलिए इसका खुलना अत्यन्त आवश्यक होता है तभी यावागमन के चक्र से छुटकारा सम्भव है । योग शास्त्र के इस मार्ग का सबसे बड़ा वाधक काम तत्त्व को माना है तभी भगवती को कामाग्नि से पीड़ित होकर कृष्ण वर्ण का हाना प्रदर्शित किया गया है । भगवती के ध्यान में इसका प्राभास मिलता है ।

‘अस्यालावरा देवो नागयज्ञोपवीतिनी ।

रतिकामोपविष्टा च सदा ध्यायन्ति मन्त्रिण ॥’

विपरीतरत्तासक्ती ध्यायेद्रतिमनो भुवी ।’

ग्रथाति 'हड्डियो की माला को धारण करते वाली—नागो के यज्ञोपवीत वाली—रत्निकाम में उपनिषद् देवी का मन्त्र के ज्ञाता सदा ध्यान विया करते हैं। द्विपरीत रति में समारक्त रति और कामदेव का ध्यान करना चाहिए ।'

योगियो का विश्वास है कि मणिपूर चक्र के बीच की नाड़ियो में काम का निवास रहता है। इसी पर छिन्नमस्ता भगवती का अधिष्ठान है। वह काम के निम्नगामी प्रवाह को रोकती है। उसकी दशा को मोहती है और ऊँचगामी बनाती है। जब तक काम का प्रवाह नीचे की ओर होता रहता है, तभी तक रुद्र ग्रन्थि का भेदन रुका रहता है। जब वह ऊपर की ओर प्रवाहित होने लगता है, तब उसका मार्ग प्रशस्त होता है और साधक पूण्यता की ओर पग बढ़ाने की क्षमता वाला हो जाता है।

भगवती छिन्नमस्ता चाहती है कि काम-तत्त्व को नियन्त्रण में करके मुक्ति मार्ग के तीन ब बनो को खोलता हुआ साधक अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचे।

छिन्नमस्ता-पूजन-विधि-मन्त्र

विश्वसार और रुद्रयामल तन्त्रो में छिन्नमस्ता देवी कार्योङ्गशास्त्र इस प्रकार लिखा है—

श्री कली ह्रीं एं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

यह समस्त कार्यों में मगल कारक माना जाता है।

पत्नी को भनुकूल में करने का मन्त्र है—

कली श्री ह्रीं एं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

पापो के नाश का मन्त्र है—

ह्रीं श्री कली एं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

मुक्ति पथ प्रशस्त करने वाला मन्त्र है—

ए श्री कलो ही वज्रं रोचनीये- हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

अन्य मन्त्र इस प्रकार है—

ही कर्ली श्री ए हुँ फट् ।

ओ ही ह्लौं वज्रं रोचनीये हुँ फट् स्वाहा ।

हूँ

हूँ स्वाहा

ऊँ हूँ स्वाहा

ऊँ वग्रवं रोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

श्रीं ही हुँ ए वज्रवं रोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

ही श्री हुँ ए वज्रवं रोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

हुँ श्री ह्लौं ए वज्रं रोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा

ए श्री ही हुँ वज्रं रोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

वज्रवं रोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

ही श्री हु ए वज्रं रोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा श्री ।

हुँ श्री ही ए वज्रं रोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाह हुँ ।

ए श्रा हो हुँ वज्रं रोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ए ।

ऊँ श्री ही हुँ ए वज्रं रोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

ऊँ श्री ह्लौं हुँ ए वज्रं रोचनीये श्री ह्लौं ए फट् स्वाहा ।

अथ बहिर्मतुका

विनियोग —

अस्य श्री बहिर्मतुका मन्त्रस्य व्रज्ञा ऋषि गायत्री
छन्द श्री मातृका सरस्वती देवता, हलो वीजानि,
स्वराः शक्तयोऽव्यक्त कीलक, देहशुद्धिसिध्यर्थं विनियोग ।

ऋष्यादि न्यास

ओ ब्रह्मणे नम शिरसि ।
 ओ गायत्री छन्दसे नम मुखे ।
 ओ मातृका सरस्वती देवताय नम हृदि,
 ओ हलभ्यो नम, गुह्ये ।
 ओ स्वरेभ्यो नम पादयो ।
 ओ अव्यक्तकीलकाय नम, सर्वज्ञे ।

करन्यास

ओ अ क ख ग घ ङ आ अगुष्ठाभ्या नम ।
 ओ इ च छ ज झ झ ई तर्जनीभ्या स्वाहा ।
 ओ उ ट ठ ड ढ ग ऊ मध्यमाभ्या वषट् ।
 ओ ए त थ द ध न ए अनामिकाभ्या हु ।
 ओ ओ प फ ब भ औ कनिष्ठिकाभ्या वौपट् ।
 ओ अ य र ल व श ष स ह ल क्ष अ करतल-करपृष्ठा-
 भ्या फट् ।

क ठे धूम्रवर्णे पोडशदले विशुद्धे—ओ अ नम ।
 ओ आ नम, । ओ इ नम, । ओ ई नम । ओ उ नम ।
 ओ ऊ नम । ओ ऋ नम । ओ ऋ नम । ओ लृ-
 नम, । ओ ल नम । ओ ए नम ओ ए नम ओ ओ-
 नम । ओ औ नम ओ अ नम । ओ अ, नम ।

हृदये रक्तवर्णे द्वादशदले अनाहते—ओ क नमा ।
 ओ ख नम, । ओ ग नम । ओ घ नम । ओ ट नम ।
 ओ च नम । ओ छ नम । ओ ज नम, । ओ झ नम
 ओ झ नम, । ओ ट नम । ओ ठ नम ।

नाभौ मेघवर्णे दशदले मणिपूरे—ओ ड नम ।
 ओ ह नम । ओ रु नम । ओ त नम । ओ थनभ,
 ओ द नम । ओ ध नम । ओ न नम । ओ प नम
 नम ओ फ नम ।

लिङ्गमूले विद्युद्वर्णे पट्टदले स्वाधिष्ठाने ओ व
 नम । ओ भ नम । ओ म नम । ओ य नम । ओ र
 ओ ल नम ।

सुवर्णे चतुर्दले मूलाधारे—ओ व नम । ओ श
 नम । ओ ष नम । ओ स नम ।

भ्रूमध्ये श्वेतवर्णे द्विदले आज्ञाके—ओ ह नम ।
 ओ क्ष नम ।

यद्व शरीर के बाहरी अगो मे मातृका वर्णों का न्यास करना
 चाहिए । पहले बाह्यमातृका सरस्वती का ध्यान किया जाय । यथा—
 पञ्चाशलिलपिर्विभक्तिमुखदो पन्मध्यवक्षस्थला ।
 भास्वन्मीलिनिवद्वशकलानापीनतुङ्गस्तनीम् ॥
 मुद्रामक्षगुण सुधाढच्यकलश विद्या च हस्ताम्बुजे
 विभ्राणा विशदप्रभा त्रिनयना वारदेवतामाथये ॥

इस प्रकार ध्यान कर न्यास करे—

ओ अ नम शिरसि । ओ आ नम मुख वृत्ते ।
 ओ इ नम दक्ष नेत्रे । ओ ई नम वाम नेत्रे । ओ ऊ
 नम दक्ष करणे । ओ ऊ नम वाम करणे । ओ ऋ
 नम, दक्ष नासायाम् । ओ ऋ नम वाम नासायाम् ।
 ओ लृ नम दक्ष गण्डे । ओ लृ नम वाम गण्डे । ओ ए
 नम ऊङ्खं ओष्ठे । ओ ए नम अघोओष्ठे ओ ओ नम

ऊर्ध्वं दन्तपक्तो । ओर्हा नम अघो दन्तपक्तो । ओर्हा नम नम न्रहुरन्धे । ओर्हा नम मुखे ।

ओर्हा क नम दक्ष वाहुमूले । ओर्हा ख नम दक्ष कूपरे । ओर्हा ग नम दक्ष मणिवन्धे ओर्हा घ नम, दक्ष अगुलिमूले । ओर्हा ड नम, दक्ष कराग्रे । ओर्हा च नम वाम वाहुमूले । ओर्हा छ नम वाम कूपरे । ओर्हा ज नम वाम मणिवन्धे । ओर्हा झ नम वाम अगुलिमूले । ओर्हा झा नम वाम कराग्रे । ओर्हा ट नम दक्षोरु मूले । ओर्हा ठ नम दक्ष जानुनि । ओर्हा ड नम गुलफे । ओर्हा ढ नम दक्ष पादतले । ण नम दक्ष पादाग्रे । ओर्हा त नम वामोरु मूले । ओर्हा थ नम वाम जानुनि । ओर्हा द नम, वाम गुलफे । ओर्हा घ नम वाम पादतले । ओर्हा न नम वाम पादाग्रे ओर्हा प नम दक्ष पाश्वे । ओर्हा फ नम वाम पाश्वे । ओर्हा ब नम पृष्ठे । ओर्हा भ नम नाभौ । ओर्हा म नम जठरे । ओर्हा य त्वगात्मने नम हृदि । ओर्हा र नम दक्षाशे । ओर्हा ल नम ककुदि । ओर्हा व नम वामाशे । ओर्हा श नम, हृदादि दक्ष करागुल्यन्तम् । ओर्हा ष नम हृदादि वाम करागुल्यन्तम् । ओर्हा स नम नाभ्यादि वाम पादात्तम् । ओर्हा ल नम हृदादि कुक्षी । ओर्हा क्ष नम हृदादि मुखे ।

बोज न्यास

श्रीं मुखे ही दक्षनासापुरे हूँ वामनापुरे ऐं दक्ष नेत्रे
बली वाम नेत्रे श्री ही बली दक्षकर्णे ऐं वाम कर्णे
हूँ नाभौ को हृदये कौ शिरसि ।

ध्यानम्

स्वानाभी नीरज ध्यायेदधि विकसित मित :
 तत्पद्मकोषमभ्ये मण्डल-चण्डोच्चिप ॥
 जपा कुसुम सङ्काश रक्त वन्द्युकसन्निभ ।
 रज सत्वतमो रेखायोनिमण्डलमण्डितम् ॥
 मध्ये तु ता महादेवीः सूर्यंकोटि समप्रभाम् ।
 छिन्नमस्ता करे वामे धारयन्ती स्वमस्तकम् ॥
 प्रसारित मुखो भीमा लेलिहाना ग्रजिह्विका ।
 पिवन्ती रौघरी धारा निजकण्ठविनिर्गता ॥
 विकीर्णकेशपाशाच्च नानापुष्पसमन्विताम् ।
 दक्षिणे च करे कर्त्री मुण्डमालविभूषिताम् ॥
 दिग्म्बरा महाघोरा प्रत्यालीढपदस्थिताम् ॥
 अस्थिमालाधरां देवि नागयज्ञोपवीति नीम् ॥
 रत्निकामोपविष्टा च सदा ध्यायति मत्रिण ।
 सदा षोडशवर्षीया पीनोन्नतपयोवराम् ॥

छिन्नमस्ता के दर्ये और स्थित वर्णिभी शक्ति का इस प्रकार ध्यान करें ।

वर्णिनी लोहितां सौम्याम् मुक्तकेशी दिग्म्बरा ।
 देवीगलोच्छलद्रक्तधारापान प्रकुर्वतीम् ॥
 नागयज्ञोपवीताङ्गी कन्त्रिखर्षरहस्तकाम् ॥
 सदा द्वादशवर्षीया मुण्डमालाविभूषिताम् ॥

फिर बांधी ओर स्थित हाकिनी शक्ति का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए ।

हाकिनी वामपाश्वे तु कल्पा-तदहनोपमाम् ।
 विद्युच्छटाभन्यर्ना दन्तपक्तिवलाकिनीम् ॥

दशा करालपदना पीनोन्नतपदीघराम् ।
 महादेवी महाघोरा मुक्तकेशी दिगम्बराम् ॥
 लेलिहानमहाजिह्वा मुण्डमालाविभूषिताम् ।
 कपालकर्त्रिकाहस्ता सदाभीपणहृषिणीम् ॥
 देवीगलोच्छनद्रक्त धारापान प्रकुर्वतीम् ॥
 नाभी चुद्धारविन्द तदुभरि कमल मण्डल चण्डरश्मे
 ससारस्यंकसारा त्रिभुवनजननी धर्मकामोदयाद्या ॥
 तस्मिन् मध्ये त्रिकोणे त्रितयतनुघरा छि नमस्ता प्रशस्ता
 ता वन्दे ज्ञानहृग निखिलभयहृग यागिनी योग मुद्रा

छिन्नमस्ता कवच

हु वीजातिमका देवी मुण्डकर्तुंघरापरा ।
 हृदम् पातु सा देवी वर्णिनी डाकिनीयुता ।१।

'वर्णिनी डाकिनी युक्त मुण्डकर्त्त' को धारण करने वाली, हु वीजातिमका देवी मेरे हृदय की रक्षा करे' ।१।

श्री ही हु ऐ चैव देवी पूर्वस्था पातु सर्वदा ।
 सर्वाङ्ग मे सदा पातु छिन्नमस्ता महाबला ।२।

'श्री, ही, हूँ, ऐ वीजातिमका देवी पूर्व दिशा में तथा महाबला छिन्नमस्ता मेरे देह के सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करे' ।२।

वज्रवैरोचनीये हु फट् वीजसमन्विता ।
 उत्तरस्था तथागनी च वारुणे नंकृतेऽवतु ।३।

'वज्र वैरोचनीये हु फट्' इस बीज से समन्विता देवी उत्तर, आग्नेय, वारुण और नंकृत्य इन दिशाओं से मेरी रक्षा करने वाली हों' ।३।

इन्द्राक्षी भैरवी चैवासितागी च सहारिणी ।
सव्वंदा पातु मा देवो चात्यान्वामु हि दिक्षुवै ॥४॥

‘इन्द्राक्ष, भैरवी, असितागी और उद्धारिणी देवी सब दिश आओ
मैं मेरी रक्षा करे ॥४ ॥’

६—भैरवी

दक्षिणमृति कान भैरव की महाशक्ति भैरवी है । कान भैरव
की विशेषता उमके नाम से ही प्रष्ठ है । वे विनाश करते हैं । जिम
तरह छिनमना का सम्बन्ध मठाप्रचलन में है, उपी तरह काल भैरव
नित्य प्रनय का अधिष्ठाना है, यह हर समय वस्तुप्रो का नाश करता
रहता है । अतः ‘यम’ नाम पड़ा । यम को दक्षिण दिशा का लोकपाल
माना जाता है क्योंकि यमाग्नि इसी दिशा में प्रवस्थित रहती है ।
इसीलिए इमका नाम दक्षिणामृति पड़ा । इनकी महाशक्ति त्रिपुर भैरवी
है । यह तीनों भुवनों के हर समय विनाश में सुन्दर रहती है ।
त्रिपुर सुन्दरी का कार्य इनकी रक्षा करना है ।

इसका व्यान इम प्रकार है—

उद्यदभानुसहन्त्रकान्तिमरुणकीमा गिरोमालिका ।
रक्तालिसपयोवरा जपपटी विद्याम भोर्ति वरम् ।
हस्तावजंदेवती त्रिनेत्रविलमदवक्त्रारविन्दश्रिय
देवी वद्वहिमाशुरत्नमकुटा वन्दे समन्दरिमताम् ॥ ५ ॥

अर्थात् ‘रदय होने वाले हजारों नूरों के समान अवण कान्ति
दाली क्षीमास्त्र को प्रारण किए मुण्डनाला पहने हैं । उनके पयोवर

रक्त ने लिस है, त्रितेजा है, हिमाशुगद मुकुट को धारण किए हुए हैं, हाथ में जपवटी, विद्या, वर और अभय मुद्रा हैं।'

त्रिपुर भैरवी प्रतिष्ठण विनाश ही करती रहती है, मारे विश्वमें यह प्रक्रिया चल रही है। परन्तु माथ ही साथ निर्माण की शक्तियाँ भी अपना कार्य सुचारू रूप से कर रही हैं। पिण्ड और ब्रह्माएङ्ग दोनों में विनाश और निर्माण के दोनों विरोधी कार्य हर अण होते रहते हैं। हमारे शरीर में भी परमाणुओं के विनाश का कार्य निरन्तर चलता रहता है परन्तु निर्माण कार्य इतनी शीघ्रता से होता है कि विनाश का अनुभव नहीं हो पाता। जब तक निर्माण विनाश पर अपना प्रभुत्व जमाए रहता है, तब तक स्वास्थ्य सुट्ट बना रहता है परन्तु जब विनाश की गति बढ़ जाती है और निर्माण काय शिथिल होता जाता है, उस स्थिति में तो शरीर रोगी, निर्वल और विनाश की ओर अग्रसर हो जाता है। जब निर्माण कार्य विलकुन बन्द हो जाता है, तभी भृत्यु हो जाती है। यदि हमें जीवित रहना है तो निर्माण की गति को बनाए रखना होगा, वैसे ही उपायों को अपनाना होगा, स्वास्थ्य को नियमों का पालन करना होगा। विनाश के साधनों को रोकना होगा, सिगरेट, बीड़ी, शराब माँस जैसे तामसिक भोजन विनाश के परमाणुओं के सहायक मिहर होते हैं, मिठाई, चाट-पकोड़ी, तले पदार्थ, रवड़ी आदि राजसिक पदार्थ भी पेट को खराब करते हैं और नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं, अश्लील कहानी, उपन्यास व चलचित्रों से काम तत्व का जागरण होता है, भोग की लिप्ति बढ़ती है, वीर्य का क्षय होता है, यह विनाश के सशक्त साधन हैं। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष से महिलाओं की नसे जलती हैं। इन पर ही मारे शरीर का स्वास्थ्य निर्भर रहता है। विकृत विचारों से स्वास्थ्य भी विकृत होता है।

यह तत्त्व त्रिपुर भैरवी के कार्यों में हाथ बटाते हैं। विनाश से बचने के लिए इनके कुप्रभावों से बचना होगा, अपने निर्माण की

गतिविविधों को तीक्र करना होगा तभी शरीर को स्थिर रखना सम्भव होता है ।

आध्यात्मिक धेन्म में सावक को यदि नित्य होने वाले विनाश का ध्यान रहे तो वह पायो, वुगडियों और कुप्रवृत्तियों से बचा रहेगा । आत्मिक उन्नति चाहने वाले के लिए यह ध्यान आवश्यक है ।

भैरवी पूजन-विधि

भैरवी के अनेक ऐद हैं जैसे त्रिपुर भैरवी, सम्पत्प्रदा भैरवी, कौलेश भैरवी, भक्त मिद्दाभैरवी, भय विद्विनी भैरवी, चैनन्य भैरवी, कामेश्वरी भैरवी, पट्कूटा भैरवी, नित्या भैरवी । इनके विवान में कुछ-कुछ अन्तर है ।

त्रिपुर भैरवी का मन्त्र है—‘ह्रीं हक्कनर्गं ह्रीं’

ध्यान इस प्रकार है—

पद्ममष्टदलोपेत नवयोताद्य कर्णिकम् ।
चतुर्द्वार समायुक्त भूगह विलिङ्वेत्तत ॥

“बद वीनि मय कर्णिका अकित कर उसके बाहर अष्ट दल कमल और उससे भी बाहर चतुर्द्वार और भू-गृह बनावे । यह भैरवी पूजा मन्त्र है ।

दीक्षा प्राप्य जपेन्मन्त्र तत्त्व लक्ष जितेन्द्रिय ।

पुर्पेभन्द्रि सहस्रारिण जुहुयाद् व्रह्मवृक्ष जे ॥

“त्रितेन्द्रिय रहता हुमा दीक्षा प्राप्त सावक दण नाद्व मन्त्र जरे और दाक के पूर्णो द्वारा बारह हजार ग्रामीणियाँ इ” ।

भैरवी कवचस्यास्य सदाशिव ऋषि स्मृतः ।

छन्दोऽनुष्टुव् देवता च भैरवी भयनाशिनो ।

धर्मर्थिंकाममोक्षेपु विनियोग प्रकीर्तिः ॥

“भैरवी कवच के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप, देवता भय-
नाशिनी भैरवी, और विनियोग धर्मर्थ काम मोक्ष की प्राप्ति में है । १।

हसरै मे शिर, पातु भैरवी भयनाशिनी ।

हसकलरी नेत्रञ्च हसरोश्च ललाटकम् ।

कुमारी सर्वंगात्रे च बाराही उत्तरे तथा ॥

पूर्वे च वैष्णवी दवी इन्द्राणी मम दक्षिणे ।

दिग्दिक्षु सर्वंत्रैव भैरवी सर्वदावतु ॥

इद कवचमज्ञात्वा यो जपेददेविभैरवीम् ।

कल्पकोटि शतेनापि सिद्धिस्तस्य न जायते ॥

“हसरै मेरे मस्तक की, हसकलरी नेत्रे की, हसरी ललाट की
और कुमारी मेरे गात्र की रक्षा करे । उत्तर में बाराही, पूर्व वैष्णवी,
दक्षिण में इन्द्राणी तथा सभी दिशा, विदिशा में भैरवी मेरी रक्षा करे ।
इस कवच को जाने बिना जो भैरवी मात्र का जप करता है, वह सो
करोड़ कल्प में सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते ” । २।

७—धूमावती

धूमावती का ध्यान इस प्रकार है—

विवरणं चञ्चला दुष्टा दीर्घी च मलिनाम्बर ।

विमुक्तकुन्तला वै सा विघवा विरला द्विज ॥

काकध्वजरथास्ढा विलम्बितपयोघरा ।

अपंहस्तातिरूक्षाक्ष धूमहस्ता वरानना ॥

प्रवृद्धघोणा तु भृश कुटिला कुटिलेक्षणा ।

क्षुत्पिपासांछिता नित्य भयदा कलाहास्पदा ॥

(शाक्त प्रमोद-धूमावती तन्त्र)

अर्थात् 'विवर्णा, चञ्चला, दुष्टा, दीर्घ तथा मलिन शम्बर वाली विधवा रूप में निवाम करने वाली, काक ध्वज वाले रथ पर आलह, लम्बे पयोवर वाली, हाथ में शूर्प ग्रहण करने वाली, कांपते हाथ, लम्बी नासिका, कुटिल स्वभाव, कुटिल नेत्र, भूख त्यास से पीड़ित, नित्य भयप्रद और कलह रूपिणी है ।'

धूमावती विधवा है । विधवा का जीवन समस्या पूर्ण रहता है । दुख और दिनद्विता उमे हर समय घेरे रहते हैं । वह अपने को नि महाय समझती है । निराशा उसके अग-अग से टपकती है । वह जीवन को एक बोझ सा समझती है । मगल पदार्थों का उपयोग उसके लिए वर्जित माना जाता है । यदि वह इसके विपरीत व्यवहार करे तो सामाजिक आलोचना की बोक्खार उस पर होने लगती है । वह अमगल की प्रतिमा ही टप्पिंगोचर होती है । इसलिए विश्व की अपांगला स्थिति वी द्वोतक धूमावती है जिसे 'अलक्षणी' भी कहा जाता है । वह दिनद्विता का रूप है । वह निश्चृंति रूपा है । निश्चृंति दिनद्विता, कलह, क्लेश और रोगादि की अविष्टारी है । शास्त्रकारों का मत है कि चतुर्मासि में इसका प्रभुत्व रहता है जबकि देव प्राण (आग्नेय और ऐन्द्र) निवंल हो जाते और प्रासुर प्राण (आप्य) सबल रहते हैं यह काल अपाठ शुक्ला एकादशी से कार्तिक शुक्ला एकादशी तक रहता है । यही कारण है कि निश्चृंति के साम्राज्य काल में विवाहादि क्षोई भी शुभ कार्य नहीं किया जाता है । निश्चृंति को अन्तिम तिथि कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी है जिसे घार्मिक जगत में 'नरक चतुर्दशी' के नाम से सम्बोधित किया जाना है क्योंकि निश्चृंति नारकीय कार्यों की सञ्चालिका है । इसी रोग को

धर्मर्थिंकाममोक्षेपु विनियोग प्रकीर्तित ॥

“भैरवी कवच के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप, देवता भय-
नाशिनी भैरवी, और विनियोग धर्मर्थ काम मोक्ष की प्राप्ति मे है । १।

हसरे मे शिरः पातु भैरवी भयनाशिनी ।
हसकलरी नेत्रञ्च हसरौश्च ललाटकम् ।
कुमारी सर्वंगात्रे च वाराही उत्तरे तथा ॥
पूर्वे च वैष्णवी दवी इन्द्राणी मम दक्षिणे ।
दिग्गिविदिक्षु सर्वत्रैव भैरवी सर्वदावतु ॥
इद कवचमज्जात्वा यो जपेददेविभैरवीम् ।
कल्पकोटि शतेनापि सिद्धिस्तस्य न जायते ॥

“हसरे मेरे मस्तक की, हसकलरी नेत्रे की, हसरो ललाट की
ओर कुमारी मेरे गात्र की रक्षा करे । उत्तर मे वाराही, पूर्व वैष्णवी,
दक्षिण मे इन्द्राणी तथा सभी दिशा, विदिशा मे भैरवी मेरी रक्षा करे ।
इस कवच को जाने बिना जो भैरवी मन्त्र का जप करता है, वह सो
करोड़ कल्प मे सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते ” । २।

७—धूमावती

धूमावती का ध्यान इस प्रकार है—

विवर्णं चञ्चला दुष्टा दीर्घी च मलिनाम्बर ।
विमुक्तकुन्तला वै सा विधवा विरला द्विज ॥
काकद्वजरथारुद्धा विलम्बितपयोधरा ।
शूर्पहस्तातिरुक्षाक्ष धूमहस्ता वरानना ॥

प्रवृद्धवोणा तृ भृग कुटिला कुटिलेक्षणा ।

क्षुत्पिपासार्छिता नित्य मयदा कलाहास्पदा ॥

(शाक्त प्रमोद-धूमावती तन्त्र)

अर्थात् 'विवर्णा, चञ्चला, दुष्टा, दीर्घ तथा मनिन शम्बुर वाली विवरा स्वप्न में निवास करने वाली, काक ध्वज वाले नथ पर श्राम्भ, लम्बे पयोधर वाली, हाथ में शूर्प ग्रहण करने वाली, कांपते हाथ, लम्बी नामिका, कुटिल स्वभाव, कृटिल नेत्र, भूख त्यास से पीड़ित, नित्य भयप्रद और कन्ह रूपिणी है ।'

धूमावती विवरा है । विवरा का जीवन समस्या पूर्ण रहता है । दुख और दरिद्रता उमे हर समय घेरे रहते हैं । वह अपने को नि महाय समझती है । निराशा उमके अग-अग से टपकती है । वह जीवन को एक बोझ सा समझती है । मगल पदार्थों का उपयोग उमके लिए वर्जित माना जाता है । यदि वह इसके विपरीत व्यवहार करे तो मामाजिक आलोचना की ओछार उम पर होने लगती है । वह अमगल की प्रतिमा ही विष्टिगोचर होती है । इसलिए विश्व की अपांगला स्थिति की द्योतक धूमावती हैं जिसे 'श्वलक्षणी' भी कहा जाता है । वह दरिद्रता का रूप है । वह निश्चृंति रूपा है । निश्चृंति दरिद्रता, कलह, क्लेश और रोगादि की अविष्टारी है । शास्त्रकारों का मत है कि चतुर्मास मे इसका प्रभुत्व रहता है जबकि देव प्राण (आग्नेय और ऐन्द्र) निवंल हो जाते और ग्रासुर प्राण (ग्राघ्य) सबल रहते हैं यह काल अपाठ शुक्ला एकादशी से कार्तिक शुक्ला एकादशी तक रहता है । यही कारण है कि निश्चृंति के साम्राज्य काल मे विवाहादि क्षोई भी शुभ कार्य नहीं किया जाता है । निश्चृंति की अन्तिम तिथि कातिक कृष्णा चतुर्दशी है जिसे घार्मिक जगत में 'नरक चतुर्दशी' के नाम से सम्बोधित किया जाता है ज्योकि निश्चृंति नारकीय कार्यों की सञ्चानिका है । इसी रोग को

किञ्चनि-दरिद्रता के जाने में दूसरे दिन लक्ष्मी का अवनरण होता है और दीपावली उत्सव मनाया जाता है।

विधि

धूमावती देवी का मन्त्र इस प्रकार है—
धू धू धूमावती स्वाहा ।

धूमावती स्तव

भद्रकाली महाकाली डमरुवाद्यकारिणी ।
सफारितनयना चैव टकट कितहासिनी ॥
धूमावती जगत्कर्त्री गूर्जहस्ता तथैव च ।
अष्टनामात्मक स्तोत्रय पठेद्भक्तिसंयुत ॥
तस्य सर्वार्थमिद्धि स्यात्सत्यं सत्यं हि पावर्ति ॥

“भद्रकाली, महाकाली, डमरु बजाने वाली, विस्फारित नयन वाली, किटकिटा कर हैमने वाली, सासार की रचयित्री धूमावती छाज हाथ में धारण किये हुए हैं, उनका यह आठ नाम वाला स्तोत्र पाठ करने से सर्वार्थ सिद्ध होता है” ।

धूमावती कवच

धूमावती मुख पोतू धू धू स्वाहास्वरूपिणी ।
ललाटे विजया पातु मालिनी नित्यसुन्दरी ॥

धू धू स्वाहा स्वरूप वाली धूमावती मेरे मुख की तथा नित्य सुन्दरी मालिनी और विजया मेरे ललाट की सदा रक्षा करें ।

कल्याणी हृदय पातु हसरीं नाभिदेशके ।
सद्वर्ग पातु देवेसी निष्कला भस मालिनी ॥

“इल्याणी मेरे हृदय की, हृसगी नामिदेशकी और निष्कला भगमालिनी देवी मेरे सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करें ।

सुपुण्य कवच दिव्य य पठेद्ग्रुक्तिमयुत ।
सौभाग्यमतुन प्राप्य चाते देवोपुर यर्या ।३।

“यह कवच अत्यन्त पुण्यमय एव दिव्य है । भक्तिपूर्वक इसका पाठ करने पर नाघक इस लोक में भर्व सौभाग्य की प्राप्ति करता है। इसन्त में भगवती के लोक को प्राप्ति होता है” ।

८—वगलामुखी

एक वक्त्र महारुद्र की महाशक्ति ‘वगलामुखी’ है । वैदिक शब्द ‘वलगा’ है, उसका विकृन ग्राममोक्त शब्द ‘वगला’ है । अत वलगामुखी को ‘वगलामुखी’ कहा जाता है । इसका सम्बन्ध प्राणी के ‘अथर्वा सूत्र’ से है जिसके सहयोग से मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के अभिचार प्रयोग किए जा सकते हैं । पुराण कथाओं के अनुसार देवता इसी के द्वारा कृत्या प्रयोग किया करते थे, अपने शत्रु-पक्ष पर वे सूक्ष्म प्रहार करते थे ।

जिह्वाग्रमादाय करेण देवी वामेन शत्रून् परिपीड्यन्तीम् ।
गदाभिधातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढया छिभुजा नमाभि
(शक्तप्रसोद-वगलामुखी तन्त्र)

अर्थात् शत्रु के हृदय पर आरूढ़, वायि हाथ से शत्रु की जिह्वा को खीच कर दायेहाथ से गदा का आक्रमण करने वाली, पीताम्बर धारण किए हुए, छिभुजा वगला है । उसे नमस्कार करता हूँ ।

“मध्ये सुधाविधि मणिमण्डपरतनवेदी सिहासनोप-
रिगता परिपोतवण्णम् । पीतम्बराभरणमाल्य विभूषि-
ताङ्गी देवी नमामि धृतमुदगवैरजिह्वाम् ॥”

अर्थात् ‘सुधा समुद्र के बीच अवस्थित मणि मरण्डन पर रत्न-
वेदी है, उस पर रत्न सिहासन पर पीत वर्ण प्रोर पीत वर्ण के अभूबण
माल्य से विभूषित शरीर वाली वलगा है, उसके एक हस्त में शत्रु जिह्वा
प्रोर दूषरे में मुदगर है, उस वलगा देवी को नमस्कार करता है ।

कृत्या प्रयोग आदि का माध्यम प्राणी का ‘अथर्वा सूत्र’ है जिसे
विकसित और संक्षिप्त करके काम में लाया जा सकता है । स्वाभाविक
रूप से यह काक और कुत्ते में धर्मिक विकसित मिलता है । हमें विश्वास
नहीं होना है कि हमारे घर में पाने वाले को पूर्व सूचना काक दे देता
है । राजकीय नियन्त्रण में एक विशेष उद्देश्य से पोषित कुत्तों के चम-
कार तो प्राय देखने में असते हैं जब अनेक व्यक्तियों में छिपे चोर को
वह पहचान लेते हैं । जिय मार्ग से चोर जाता है, उसे सूंघते हुए भी
चोर के गत्तव्य स्थान पर पहुँच जाते हैं । यह उनको विकसित अथर्वा
शक्ति का ही परिणाम है । कई बार ऐसा होता है कि संकड़ों मील दूर
अपने किसी परिजन के दुख से हम आक्रान्त हो जाते हैं । यह अथर्वा
सूत्र के ही माध्यम से होता है । इसे एक तरह की वायरलेस टेली-
ग्राफी भी कह सकते हैं । यह सूक्ष्म होने के कारण हृषि में नहीं आ
सकता । अनुभव ही किया जा सकता है । हमी के सहयोग से मारण
प्रयोग किए जा सकते हैं ।

बगला पूजन-विधि

मन्त्र —

ॐ ह्ली बगलामुखि सर्वदुष्टाना वाच मुख पद स्त-

Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MA

वगला-गायत्री का मन्त्र एवं विनियोग—

मन्त्र

ॐ हन्ति व्रह्मास्त्रायं विद्धहे । स्तम्भनवाणायं
घमिहि तन्तो वगला प्रचोदयात् ।

विनियोग

ओ अस्य श्रीवगलागायत्रीमन्त्रस्य व्रह्मा ऋषि,,
गायत्रीछन्द , वगलानाम्नो चिन्मयशक्तिरूपिणो गायत्री
देवता, ओ बीज, हन्ति शक्ति , विद्धहे कोलक गायत्रीजपे
विनियोग ।

सन्ध्या विधि

आचमन मन्त्र—

‘ओ आत्मतत्त्वाय स्वाहा । ओ विद्यातत्त्वाय स्वाहा ।
ओ शिवतत्त्वाय स्वाहा ।’

शिखरा बधन मन्त्र

‘ओ मणिवारिणी वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हु
फट् स्वाहा ।’

मूल मन्त्र से तिनक फरके इसी से तीन बार प्राणायाम करे
फिर निम्न सकल्प करके विनियोग फढे—

संकल्प

देशकाली सकीर्त्य ओमद्य श्रीवगलामुखीप्रतिये प्रात
संध्यामह करिष्ये ।

विनियोग

‘ओमस्य श्रीवगलामुखीमहामन्त्रस्य नारद ऋषि

बृहती च्छन्दं श्रीवगलामुखी देवता हूली बीज स्वाहा
शक्ति मम सकलकामनासिद्धधर्थे जपे विनियोग ।'

ऋष्यादित्यास

नारदश्वरपये नम , शिरसि । बृहतीच्छन्दसे नम ,
मुखे । बगलामुखीदेवतायैनम , हृदि । हूली बीजाय नम ,
गुह्ये ।

स्वाहाशक्तये नम , पादयो ।

करन्यास

ओ ह्ली अङ्गुष्ठाभ्या नम । बगलामुखि तर्जनीभ्या
नम । सर्वदुष्टाना मध्यमाभ्या नम, । वाच मुख स्तम्भय
अनामिकाभ्या नम । जिह्वा कीलय कीलय कनिष्ठका-
भ्या नम । बुद्धि विनाशय हूली ओ करतलकरपृष्ठाभ्या
नम ।

अङ्गुष्ठास

ओ ह्ली हृदयाय नम बगलामुखि शिरसे स्वाहा ।
सर्वदुष्टाना शिखायै वषट् । वाच मुख पद रत्मभय कव-
चाय हुम् । जिह्वा कीलय कीलय नेत्रत्रयाय वौषट् ।
बुद्धि विनाशय हूली ओ अस्त्राय फट् ।

प्रातः काल ध्यान

उद्यदादित्यसकाश पुस्तकाक्षकरा स्मरेत् ।
कृष्णाजिनधरा ब्राह्मी ध्यायेत्तराङ्किताभ्वरे ॥

मध्याह्न का ध्यान

शुक्ला शुक्लाम्बरधरा वृषासनकृताश्रयाम् ।

त्रिनेत्रा वरदा पाश गूल च नृकरोटिकाम् ॥
सूर्यमण्डलमध्यस्था ध्यायेद् देवी समस्यसेत् ॥

साषंकाल ध्यान

श्यामवरणीं चतुर्बहुं शङ्खचक्रलस्त्कराम् ।
गदापद्मधरा देवी सूर्यासनकृताश्रयाम् ।
सयाह्वे वरदा देवी गायत्री सस्मरेद्धुदि ॥

मार्जन

मूल मन्त्र के उच्चारण से तीन बार इष्टदेव के मस्तक पर, दो बार भुजाओ पर, नीन बार हृदय पर, तीन बार नाभि में और दो बार भुजाओ पर, तीन बार हृदय पर, तीन बार नाभि में और दो बार ऐरो पर जल छिड़कते हुए मार्जन करे ।

कवच

ओ अस्य श्रीबगलामुखीकवचस्य नारदऋषि अनु-
ष्टुप् छन्दं श्रीबगलामुखी देवता ल बीज ई शक्ति एं
कोलकम् पुरुपार्थं चतुष्प्राप्तये जपे विनियोग ।
शिरो मे बगला पातु हृदयैकाक्षरी परा ।
ओ ही ओ मे ललाटे च बगला वैरिनाशिनी ।१।
गदाहस्ता सदा पातु मुख मे मोक्षदायिनी ।
वैरिजित्वा धरा पातु कण्ठ मे बगलामुखी ।२।
उदर नाभिदेश च पातु नित्य परात्परा ।
परात्परतरा पातु मम गुह्य सुरेश्वरी ।३।
हस्तौ चैव तथा पातु पार्वती परिपातु मे ।
विवादे विषमे धोरे सग्रामे रिपुसङ्कटे ।४।
पीताम्बरधरा पातु सर्वज्ञ शिवनर्तकी ।

श्रीविद्या समया पातु मातङ्गी पूजिता शिवा ।५।
 पातु पुत्र सुता चेव कलत्र कालिका मम ।
 आतर पातु नित्य मे पितर शूलिनी सदा ।६।
 रन्ध्रे हि वगलादेव्या कवच मन्ममुखोदितम् ।
 नैव देयतमुख्याय सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।७।
 पठनादु धारणादस्य पूजनाद् वाऽन्ध्रत लभेत् ।
 इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेदु बगलामुखीम् ।८।
 पिबन्ति शोणित तस्य घोगिन्य प्राप्य सादरा ।
 वश्ये चाकपणे चेव मारणे मोहने तथा ।९।
 महाभये विपत्ती च पठेद् वा पाठयेत् य ।
 तस्य सर्वर्थसिद्धि स्याद् भक्तिपुक्तस्य पाव॑ति ।१०।

अंतमत्तुका

अस्य अन्तमर्तुकान्यासमन्त्रस्य व्रह्मान्त्रषि गायत्री
 छन्द मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वरा,
 शब्द अव्यवन कीलक श्रोबालालिपुराङ्गवेन मम शरी-
 रघुद्वयर्थं अन्तमर्तुरान्यासे विनियोग ।

मातंगी

गुप्त साधना सन्त्र में मातंगी भगवती की महिमा इस प्रकार
 वर्णित को गई है—

अस्यविज्ञानमात्रेणपुनर्जन्मनविद्यते ।
 कामतुल्यश्चनारीणारिपूणाशमनोपम ॥
 कुवेरइववित्ताद्योधरणीसहशक्षम ॥

अर्थात् 'जिस व्यक्ति ने इस महाविद्या का विज्ञान ममभ लिया,
 उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह जिन्होंके समीप कामदेव के समान

हृषि वाला होता है, शत्रुघ्नी के नमस्त्रयमग्रज की तरह, कुवेर की तरह घनवान होकर, पृथ्वी की तरह समाशील बन जाता है।'

उच्चदादित्यमङ्ग्लाग्नातयनवयग्नोभिताम् ।
भक्तानांवरदादेवी मातगी तात्प्रसशय ॥

अर्थात् 'उन मातगी देवी को मैं नमस्कार करता हूँ जिनके शरीर की कान्ति उदय होने वाले सूर्य की तरह उज्ज्वल है, वह भक्तों को वरदाता है और तीन नेत्रों से धोभित है।'

सीदामितीसमाभासानानालकारसयुनाम् ।
इन्द्रादिदेवतामेव्यामातङ्गो तानमाम्यहम् ॥

अर्थात् 'उन मातगी देवी को मैं नमस्कार करता हूँ जो विजली के समान प्रभा वाली, घनेकों प्रकार के घनकारों से संयुक्त और हृष्टद्वादि देवता भी जिनकी सेवा में रत रहने हैं।'

दिद्मुखेदशचन्द्रादृच्छामुधावर्पणकारिणीम् ।
देववृन्दसमायुक्तोमातगी तानमाम्यह ॥

'उन मातगी देवी को नमस्कार करता हूँ दयो दिशाएँ जिनके शरीर के समान हैं, जो घपने चन्द्रवत् मुखों से विश्व में अमृत की वर्षा करती हैं और जो देव वन्दित है।'

पूजन-विधि

सन्त्र—

ओ ह्ली क्ली हूँ मातग्ने फट् स्वाहा ।
विराट्कृच्छ्रद्दो महेशानिमातगी देवतामृता ।
घर्मायिंकाममोक्षेऽपि विनियोग प्रकीर्तित ॥

'हे महेशानि ! इस मन्त्र का छन्द विराट् है और देवता मातगी है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इसका विनियोग है अर्थात् इससे प्राप्त होते हैं।'

ध्यान

श्यामा शुभाशुभाला त्रितयनकमला रत्नसिंहासनस्था
नीलाम्भोजाशुकान्ति निशिचरनिकरारण्यदावाग्निरूपा
पाश खड़ग चतुर्भिर्वरकमलकरै खेटकञ्चाङ्गुशञ्च ॥
मातङ्गीमावहन्तीमभिमतफलदा मोदिनी चिन्त्यामि ।

अर्थात् 'श्याम वर्ण वाली, मस्तक पर चन्द्र को ग्रहण करने वाली तिनेश्वा, रत्न जडित सिंहासन पर स्थित, नील वर्ण के कमल की कान्ति वाली राक्षस रूप वन को जनाने में दावानल रूपा, चार भुजाओं में पाश, खड़ग, खेटक और अकृश वाली, भक्तों की इच्छाओं की पूर्ति करने वाली और प्रसुरों को मोहित करने वाली मातगी का ध्यान करता हूँ।'

मातगी मतग शिव की महाशक्ति है ।

मातङ्गी यन्त्र

पट्कोणाष्टदल पद्म लिखेद्यन्त्र मनोहरम् ॥

पट्कोण बना कर उसके बाहर अष्टदल कमल वनावे और पट्कोण में देवी का मूल मन्त्र लिखे । इस प्रकार मातगी यन्त्र प्रस्तुत होता है ।

मातङ्गी कवच

त्रिलोक्यरक्षणस्यास्यदक्षिणामूर्तिसज्जक ।

ऋषिश्छन्दोविगाड़ोविमातगीदेवतामृता ॥
घर्मर्थकाममोक्षेपुविनियोग प्रक्रीतिन्

इम कवच से त्रिलोकी की रक्षा होती है। इम कवच के ऋूपि दविणमूर्ति हैं, छन्द विराट् है, मातगी देवी देवता हैं और घर्म, प्रथ, काम और मोक्ष इसका विनियोग है।

कवच इम प्रकार है—

ओवीजम्मेगिर पातु ही वोजम्मेललाटकम् ।
क्लीवीजवक्षुरो पातुनामाप्राम्परिक्षतु ॥
माकार वदनम्पातुनकार कण्ठकेऽवतु ।
डूरपंक्तार म्क्त्वदेव चक्रकारम्बाहुयुगमकम् ॥
टकर हृदयम्पातुम्बकार मनयुगमकम् ।
पृष्ठेशन्तथानाभिज्ञठर लिगदेवकम् ।
पादद्वन्द्व चमवीपहाकारम्परिरक्षतु ।
साढ़ दगाक्षरीविद्यामर्वाङ्ग परिरक्षतु ॥
इन्द्रामाम्पातुपूर्वेचत्रहिंकाण्डनाऽवतु ।
यमोमादक्षिणेगातुर्मूर्त्यानिऋतिश्चमाम् ।
पश्चिमेवरुण पातुवायव्यापवनोऽवतु ॥
कूवे गोदिशिकंवेष्मिशडिगानकाण्के ।
ऊर्ध्वव्रह्मामदापातु अवश्चानन्तएवच ॥
रक्षाहीनन्तुयत्स्यानवर्जितकवचेनतु ।
तत्स वरक्षमेदेविमातगिसर्वमिद्वै ।

कवच की महिमा इष प्रकार वर्णित की गई है—
त्रिसन्ध्यय पठेन्तित्यससाक्षाच्छ्रुतर स्वयम् ॥
पुष्पाजलाप्तकन्दत्वामूले नैवपठेन्सकृत् ।
गतवप्महन्ताणामाजाया, फनमाप्नुयात् ॥
भूर्जविलव्यगुलिकाम्बवग्नेस्यावारयेद्याद ।

सबं सिद्धियुतं सोऽपि सबं सिद्धितपोयुतः ॥
 ब्रह्मास्त्रदिनिशस्त्राणिततुगात्रप्राप्य पावन्ति ।
 माल्यानिकुम्भा येव भवन्त्येवन सशय ॥

‘इस कवच का नित्य तीन सन्ध्याओं में पाठ करने वाला साधक साक्षात् शिव स्वरूप हो जाता है। मूल मन्त्र से आठ बार पुष्पाङ्गुलि ऐकर एक बार कवच का पाठ करने वाला हजार वर्ष की पूजा करने का फल प्राप्त करता है। भोज-पत्र पर लिख कर सोने में भढवा कर पहनने वाला साधक तपस्या से सब तरह की सिद्धियों के अनुकूल बन कर सिद्धि सम्पन्न बन जाता है। ब्रह्मास्त्र जैसे अस्त्रों के लगने पर भी वह शरीर पर फूलों की मात्रा जैसे सुकोमल लगते हैं, इसमें कुछ भी सशय नहीं।’

हवन

षट् षहस्र मन्त्रं जप करके दशाश हवन करने को कहा गया है—
 ब्रह्मवृक्षोद्भवै, काष्ठं हौमातसर्वं समृद्धिदं ।
 तर्पणाचाभिषेकचदशाशमाचरेत्सुधी ॥

‘दाक की समिधाओं से हवन करना चाहिए। इससे सर्वसिद्धि को प्राप्त होगा है। हवन का दशवाँ भाग तर्पण और तर्पण का दशवाँ भाग अभिषेक करना चाहिए।’

पूजा विधि

‘मन्त्र महोदधि में ‘मातगी’ की पूजा विधि इस प्रकार दी है—
 श्रीमातगेश्वरिपदसर्वशूलीनलातशम् । करिवह्नि-
 प्रियामन्त्रोद्वाविशद्वर्णवानयम् । १।
 मतगोमुनिरस्योक्तोनुष्टुप्छदस्तुदेवता । मातगी-
 सर्वजनतावशीकरणतत्परा । २।
 चतुर्भिः षड्भिरङ्गैश्चषडषट्यनंरपि । मन्त्रोस्यवर्ण-
 रगानित्यस्यदेवी विचितयेत् । ३।

घनश्यामलागीरितारत्नपीठे शुकस्योदितशृङ्खती-
रक्तवस्त्राम् । सुरापानमत्तामरोजस्थिताश्रीभजेवल्लकी
बादय तीमत गीम् ।४।

जपोयुतसहन्त तुहोम पुष्पेमधूकजे । मध्वक्तं पूजे-
येत्पीठेवद्यमाणविधानत ।५।

त्रिकोणाष्टदलद्व द्व कलास्वतुरक्तम् । पीठकृत्वा-
यजेत्तस्मन्पीठगक्तीर्नवेष्टदा ।६।

विभूतिरुन्नति कान्ति सृष्टि कीतिश्चसम्भवि ।
च्युष्टिरुक्तिष्ठद्वीचमातग्यता समीरिता ।७।

सर्वं गक्तिकमस्यातेलासनायहृदतिक । तारभाया-
वाग्रमाद्य पीठम क्वं कलारंक ।८।

विश्वाण्यासनमेतेनपाञ्चादीनिप्रकल्पयेत् । मूलेनपु-
ष्पूजातेकुयदिवरणाचंतम् ।९।

त्रिकोणेष्वर्चयेत्तिन्नोररिप्रीतिमनोभव । केसरेपु-
षडगानिमातृश्चदलमध्यगा, ।१०।

द्वितीयेष्टदलेष्टज्याअसितागादिभेरवा । पोडशा-
खयेतुवामाख्याज्येष्टागैद्रीप्रशातिका ।११।

अद्वामातृश्वरीचापिक्रियाशक्तिश्चसम्भवी । सुल-
धमी, सृष्टिमोहिन्योप्रथमथाश्वासिनीतथा ।१२।

विद्युल्लताचचिच्छक्तिसुन्दरीनदयासह । नदवुद्धि,
पोडशीतुपूजनीया प्रयत्नत ।१३।

चतुरम्बेचतुर्दिक्षुमातगीसामहादिका । महालक्ष्मी-
स्तथासिद्धिषुनवह्न्यादिकोणत ।१४।

दुर्गाविदुकक्षेत्रेशादिगघवास्तत । वज्राद्या स्युरित्थ-
सिद्धिमनोभंवेत् ।१५।

ध्रुवभवानीवारवीजरमामादीप्रयोजयेत् । सर्वाविर-
णदेवानामातुगीपदमतत ।१६।

मलिलकाकुसुमेहर्माद्वोगोराज्यचविल्वजं । पत्रे
फलैर्विश्यास्याज्जनताव्रह्मजेक्षजै । १७।

रोगनागोमृताखड़ेनिबै श्रीस्तु डुलंरपि । आकृष्ट-
लंबणेविद्यात्तगर्वेत्सर्जलम् । १८।

लवणीनिम्बत्तेलाक्षै शत्रुनाशोवमाशनम् । निशा-
चूर्णयुत्तेलैर्हर्मात्स्यात्स्तभननुणाम् । १९।

रक्तचदनकच्छ्रूरमासीकुकुमरोचना चदनागुरुकपूर्व
रंगधाष्ठककुदोरितम् । २०।

एतद्वोमाजजगद्वश्यजायतेमत्रिणेध्रुवम् । एतति-
ष्ठशतजप्त्वातिलकेनजगत्प्रिय । २१।

कदफीलहोमेनसर्वेष समवाप्नुयात् । किवहूक्तेन-
मातगीपूजिताकामदानुणाम् । २२।

“ग्रोम् हो ऐ नमो भावनी उचिद्वृत्त चण्डानि श्रीमारङ्गो-
इवरी सब जन वशकरि स्वाहा” यह बत्तीस वर्ण वाला मन्त्र है। इसका
मतद्वं ऋषि, प्रनुष्टुप् छन्द और समस्त जनों को वश्य करने में तत्पर
मातद्वं देवता है। इस मन्त्र के चार-छै, छै-पाठ और दो वर्णों का
अङ्ग न्याम करे और देवी का ध्यान करे । १-३।

ध्यान—मेघ के समान श्याम अङ्ग वाली, रत्न निर्मित पीठ
पर विराजमान, शुक्र की कथित वाणी को श्रवण करती हुई, रक्त
वस्त्र धारण करने वाली, मदिरा पान में उन्मत्त, वल्नाको का वाहन
करने वाली और कपल पर स्थित श्रीरामाङ्गी का भजन करता हूँ । १।
दश हजार इस मन्त्र का जप और सहस्र मधूक के पुष्प मधु में ग्रह
करके होम करे । ४-५।

पीठ पर श्रिकोण, दो अष्ट दलादि पर इष्टदा-विभूति आदि
नव शक्तियों का “ग्रोम् हो ऐ श्री सबं शक्ति कमलासताय नम”
इस पीठ मन्त्र से भजन करे। पाद्या सनादि होकर मून मन्त्र से आव-
रण का अवर्णन करे। श्रिकोण में रति प्रीति और मनोभव की पूजा
करनी चाहिए। केसरो में छै अङ्ग, दलो में मातृका रथा द्वितीय अष्ट

दनों में अमिताङ्गादि का पूजन करे । योट्टग नाम वाले में वामा, जगेष्ठा आदि का पूजन करे । ६-११

चतुरक्ष में चारों दिशाओं में महामातृङ्गी आदि का पूजन करे । अग्नि आदि कोणों में दिशेश दृष्टि वटुक, आदि का तथा दिगीश और उनके बज्रादि आयुधों के पूजन करन से मन्त्र की मिद्दि हो जाती है । मत्लिङ्का पूष्यों के होप से भोग की प्राप्ति, विल्व दनों से राज्य, विल्व के फनों से भी राज्याप्ति, इह वृक्ष के पूष्यों से जलवश्यता, गिनोय के टुकडों से रोग का नाश, निम्ब से श्री तट्टुलों में प्राप्तपण, लवण से विद्या, तगर अथवा वेतम जल, दिम्ब तेलोक्त लवण से शत्रु नाश, हरिद्रा चूर्ण ने युक्त लोण से नमस्तभन और चन्दन गूगल-क्षपुर आदि गन्धाष्ठक के होप से ममस्त जगत् वश्य होता है । इम पीम कर तिलक से जगन् का प्रिय होता है । कदलों फन का होप करन से मव कामनाये पूर्ण होती है ।

१०—कमला

घूमावती और कमला दो विरोधी शक्तियाँ हैं । घूमावती अलक्ष्मी है, कमला लक्ष्मी है । वह दरिद्रा है, यह समृद्धि और ऐश्वर्य की देवी है । घूमावती का सम्बन्ध ज्येष्ठा नक्षत्र से है जिसमें उत्पन्न व्यक्ति दरिद्रता के घ गुन में फँसा रहता है । इसलिए इसे प्रवरोहिणी भी कहते हैं क्योंकि कमला का रोहिणी नक्षत्र से सम्बन्ध है, जिसमें उत्पन्न व्यक्ति ऐश्वर्यशाली होता है ।

कमला का महात्म्य इम प्रकार दर्शित है—

कमला च भवेह्वेवी कमला सर्वं देवता ।

कमला पावंती साक्षात् कमला सर्वं कारणम् ॥

यम्या पूजसमात्रेण त्रैलोक्य पूजन भवेत् ।

कमला च महादेवी त्रिधामूर्ति व्यवस्थिता ।

परा चैवापराचैव तृनोया_च परापरा ॥



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

'केवल कमला की पूजा करने में सब देवताओं की, यही तक कि त्रिभुवन की पूजा हो जाती है। कमला साक्षात् पार्वती है और सब का कारण है। वह परा, मपरा और परापरा इन त्रिमूर्तियों से व्यवस्थित होती है।'

कमला पूजनाच्चैव कोटि पूजाफल लभेत् ।
हन्ति विघ्नान्पूजिता स तथा शङ्गु महोत्कटम् ।
व्याधय सर्वारिष्टानि पलायन्ते न सशय ।

अर्थात् 'कमला की पूजा से कोटि गुण फल लाभ होता है। सर्व विघ्नों और महातीव्र शङ्गु प्रोक्ता नाश होता है, इसमें कुछ सशय नहीं।'

कमला-पूजन विधि

कमला सदाशिव पुरुष की महाशक्ति है। इसका मन्त्र 'ओ' है। इसका ध्यान इम प्रकार है—

कान्त्या काञ्चनसन्निभा हिमगिरिप्रख्यैश्चतुभिर्गजे-
हंस्तोत्क्षसहिरण्मयामृतघटेरासिच्चमाना श्रियम् ।
विभ्राणा वरमबज्जयुग्ममध्य हस्ते किरीटोज्जवला
क्षीमाबद्धनितम्बविम्बलिता वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥

(शक्ति प्रमोद कमला तन्त्र)

अर्थात् 'सुवर्ण के समान कान्ति वाली, हिमगिरि के समान इवेत घर्ण वाले चार हस्तियों के द्वारा शुएड से ग्रहण किए हुए सुवर्ण कलशो से स्नापित, चार भुजाओं में वर, अभय, और कमल द्वय और किरीट ग्रहण किए हुए, क्षीम वस्त्र से प्रावृत कमला का स्मरण करता है।'

द्वादश लक्ष मन्त्र जप से पुण्यचरण करे और मधु-शकरा मिथ्रित द्वादस सहस्रकमल और तिलो से हवन करे।

॥ तन्त्र विज्ञान का दूसरा खण्ड समाप्त ॥